चिन्तनशील कवि, मधुरवक्ता
मुनिश्री महेन्द्रकुमार जी 'कमल'

जन्म: आषाढ शुक्ला ४ वि० सं० २००५
बेगू (चित्तौड)

दीक्षा: आषाढ शुक्ला १० वि० सं० २०२०
मोडलगढ (राजस्थान)

स्वस्थ विचार, उदार चिन्तन, सरल और भावनाशील हृदय, जिनकी वाणी मे महावीर के मानवतावादी स्वर की अनुगूज है, जिनके काव्य मे नव चेतना की हुकार है, वे है प्रतिभाशाली श्रमण मुनिश्री महेन्द्रकुमार जी 'कमल'।

आप मेवाडकेसरी श्री मोहनलाल जी महाराज के सुयोग्य शिष्य है। कहानी, कविता, जीवन-चरित्र, काव्य आदि विविध विषयो पर अबतक २५ पुस्तके आप लिख चुके है।

आप मधुर गायक और ओजस्वी वक्ता होने के साथ ही समाज की युवा पीढी को धर्म की ओर आकृष्ट करने मे कुशल नेतृत्व सपन्न सत है।

—'सरस'

स्व० श्रीयुत गजेन्द्रसिंह जी साहव भण्डारी की पावन स्मृति स्वरूप

अन्तर्दृष्टि

प्रवचनकार

मेवाड़ केसरी श्री मोहनलालजी महाराज के सुशिष्य

मुनिश्री महेन्द्रकुमार 'कमल'

संकलिका

श्रीमती भुवनेश्वरी भण्डारी

प्रकाशक

जैनरत्न श्रीयुत सेठ सुगनमल जी भण्डारी

नन्दनवन कोठी

१, एम० जी० रोड, इन्दौर-४५२ ००१

पुस्तक : "अन्तर्दृष्टि"

प्रवचनकार : मुनिश्री महेन्द्रकुमार 'कमल'

भूमिका : श्री विजयमुनि शास्त्री

प्रवचन स्थल : इन्दौर वर्षावास १९७६

संकलिका : श्रीमती भुवनेश्वरी भण्डारी
(धर्मपत्नी स्व० श्री गजेन्द्रसिंहजी भण्डारी)

प्रकाशक : जैनरत्न श्रीयुत सेठ सुगनमलजी साहब भण्डारी

प्रेरक : श्री जसवीरसिंह जी० भण्डारी
श्री जम्बूकुमार जी० भण्डारी
श्री सतीशकुमार जी० भण्डारी

संपादन-सज्जा : श्रीचन्द सुराना 'सरस', आगरा

प्रथम मुद्रण : दिसम्बर १९७६ (४७वी जन्मतिथि के उपलक्ष्य मे)

मुद्रक : पुरुषोत्तमदास भार्गव, दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–४

मूल्य : भण्डारी परिवार की ओर से सस्नेह भेंट

युवा पीढ़ी के प्रेरणा स्रोत, प्रतिभा और पुरुषार्थ के धनी

स्व० श्री गजेन्द्रसिंह जी भन्डारी

जन्म : ९ नवम्बर १९२९
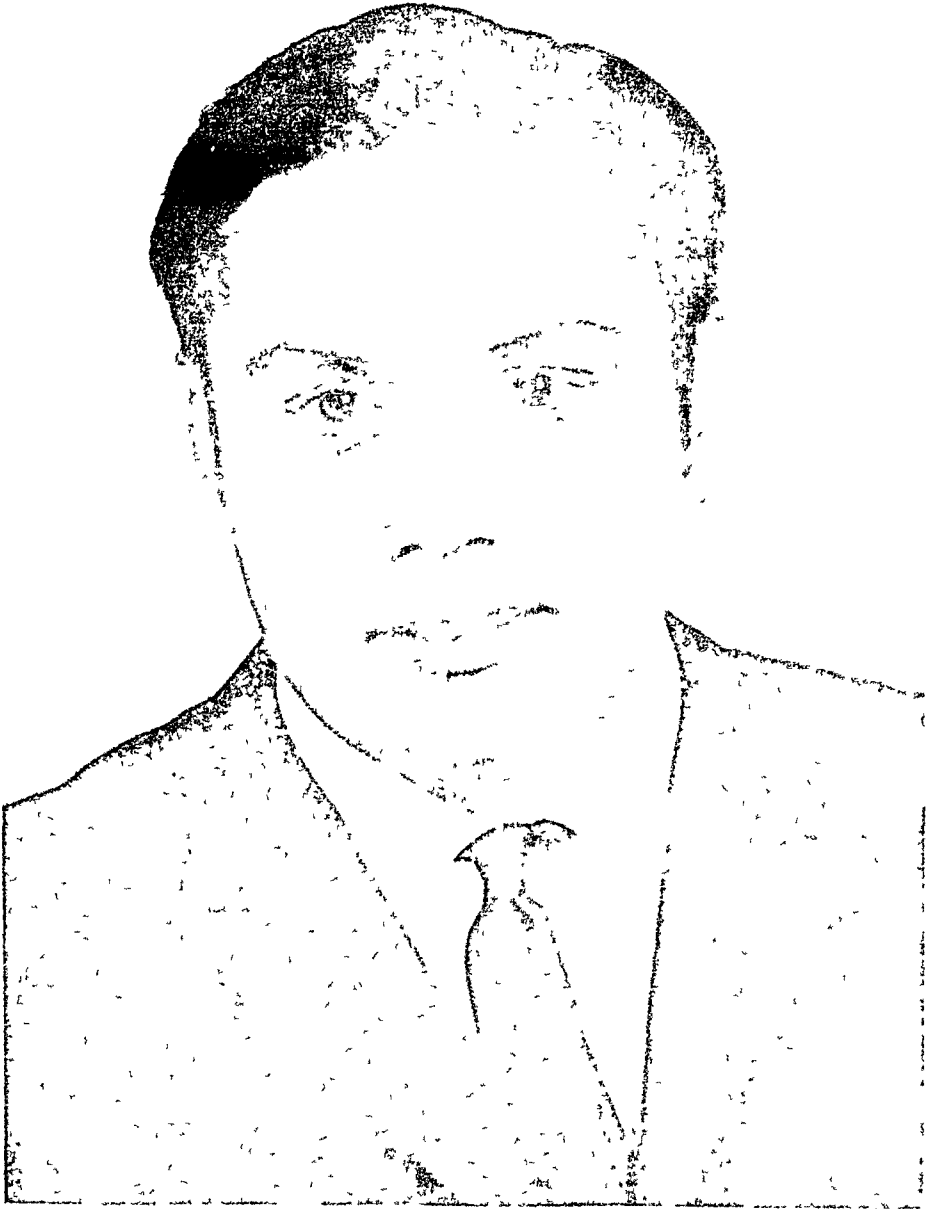
स्वर्गवास : २४ सितम्बर १९७१

समर्पण

मुनिवर 'कमल' कथित भावांजलि
"अन्तर्दृष्टि" समर्पित सादर!
पुत्रत्रय के कर-कमलों से
ग्रहण कीजिए पितः! समादर॥

श्रद्धावनत :—
जसवीरसिंह जी० भण्डारी
जम्बूकुमार जी० भण्डारी
सतीशकुमार जी० भण्डारी

मणि-कांचन-योग

परम श्रद्धेय महामनीषी मेवाड-केशरी पूज्य गुरुदेव श्री मोहनलाल जी के सुशिष्य जैनरत्न-प्रभाकर मुनिश्री महेन्द्र कुमारजी 'कमल' एक प्रतिभावान जैन संत होने के साथ ही एक प्रबुद्ध कवि और वाग्मी-प्रखर वक्ता और साहित्यकार भी हैं। इन्दौर भाग्यशाली है कि इस वर्ष उनका वर्षायोग यहाँ सम्पन्न हुआ और उनकी प्रवचन पीयूषधारा से यहाँ के आबाल-वृद्ध नर-नारी उपकृत हुए। उनकी प्रबुद्ध अध्यात्मिक सुकृतियों मे जनमानस और जन-जन को धर्म के पथ पर गतिशील करने की अपार शक्ति है। ऐसे महान् सन्त के प्रभावशाली प्रवचन दिग्दिगन्त तक सर्वत्र गूज सकें और समाज को सर्वतोमुखी उन्नति के प्रशस्त मार्ग पर डाल सके। इसी ध्येय से पूज्य पितुश्री की पुनीत-पवित्र स्मृति मे प्रवचनों का यह संकलन श्रद्धाजलि-रूप समर्पित है।

यह मणि-काचन संयोग ही है कि एक महान् सन्त और एक प्रतिभाशाली पुरुषार्थ-सम्पन्न व्यक्ति की युगल जीवन-धाराएँ संयुक्त रूप मे प्रस्तुत कृति मे संग्रथित हुई है। और यहा इस बात का उल्लेख भी उचित प्रतीत होता है कि इन प्रवचनो का संकलन हमारी मातुश्री भुवनेश्वरीजी के अनवरत श्रम से ही सम्भव हुआ है।

हमारा विश्वास है कि मुनिश्री "कमलजी" के प्रवचनो की यह उत्कृष्ट चयनिका "गजेन्द्र-स्मृति" के माध्यम से पाठकों को एक उदात्त श्रेष्ठ और समर्पित जीवन की प्रेरणा देने मे सफल होगी। प्रतिपल हमारा प्रयत्न रहा है कि चयनिका को एक स्वस्थ और विचारोत्तेजक व्यक्तित्व प्रदान किया जा सके। इसीलिये जहाँ एक ओर यह हमारे पूज्य पिताश्री गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी के आदर्शों की ज्वलन्त प्रतीक है, वही दूसरी ओर श्रमण संस्कृति और साहित्य की जीवन्त प्रतिनिधि भी यह है। निश्चय ही हम मुनिश्री के असीम कृतज्ञ है कि उन्होने सम्पूर्ण भण्डारी-परिवार को अध्यात्म की परम पवित्र श्रोतस्विनी मे अवगाहन का यह शुभ अवसर प्रदान किया है।

नन्दनवन
१ म०गा० मार्ग
इन्दौर
६ नवम्बर, १९७६

—जसबीरसिंह जी० भण्डारी
—जम्बूकुमार जी० भण्डारी
—सतीशकुमार जी० भण्डारी

पुस्तक के विषय में

"अन्तर्दृष्टि" पुस्तक मुनि श्री महेन्द्रकुमारजी "कमल" के प्रवचन, मेरे पति स्वर्गीय गजेन्द्रसिंहजी भण्डारी की जीवनी एवं उनके अविस्मरणीय संस्मरणों का सकलन है। इस पुस्तक की प्रेरणा निसन्देह मुझे मुनि श्री महेन्द्रकुमारजी "कमल" के इस वर्ष चातुर्मास मे हुए प्रवचनो से मिली। मैं यह पुस्तक अपने स्वर्गीयपति के श्रीचरणों में श्रद्धांजली के रूप मे समर्पित करने जा रही हूँ। जानती हूँ कि मेरा यह प्रयास उस तिनके के समान है जो अथाह सागर के भँवर से निकलने या उसमे आत्मसात होने का असफल प्रयास कर रहा है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि अनुभूतियाँ अनेक हैं, और शब्दकोश के शब्द भी असीम। किन्तु जिनका जीवन व्यापक रहा हो, उनकी स्मृतियो की अभिव्यक्ति सूर्य को दीपक दिखाने के समान है।

जब-जब भी मैं मुनिजी के सम्पर्क मे आई, तो वे सदैव मुझ से यही कहते कि पति के संस्मरणों की अभिव्यक्ति ही आपकी सच्ची साधना है और आपको किसी भी स्थिति मे अपने कर्तव्य से विमुख नही होना चाहिये। आपके संस्मरण के अभाव मे इस पुस्तक का कोई भी औचित्य नही और न ही यह आपकी सच्ची श्रद्धांजली ही होगी।

उनके इस आत्मीयता भरे सम्बोधन ने मेरे हृदय को झकझोर दिया और आज जब मैं अपने पति स्वर्गीय गजेन्द्रसिंहजी की अनगिनत स्मृतियो को लेखनी के माध्यम से साकार रूप प्रदान करने का प्रयास कर रही हूँ, तो सोचती हूँ, कि विधि के विधान ने इतिश्री तो करदी है, किन्तु आरम्भ कैसे करूँ? यदि एक भी संस्मरण लिखना भूल गई तो वे मुझे कदापि क्षमा नही करेंगे। एक ओर मुनिश्री के आदेश, तो दूसरी ओर पति की अनगिनत स्मृतिया। आदेश की अवहेलना करती हूँ तो स्वर्ग असमव और यदि एक संस्मरण का अनजाने मे परित्याग करती हूँ तो यह उनके प्रति अन्याय। भावना और कर्तव्य के प्रति अन्तरमन मे उठे इन विचारो का समाधान कैसे करूँ, समझ नही पा रही हूँ। पुनः विचार आता है कि यदि भावना के श्रोत मे वहती चली गई तो मृत्यु उपरांत आत्मा सदैव भटकती ही रहेगी अतः कर्तव्य के माध्यम से मुक्ति के पथ का अनुसरण कर क्यो न स्वर्ग मे जा पहुँचूं, जहाँ वे मेरे आने की आतुरता से वाट जोह रहे हैं। जब उन्हें मेरे अन्तरमन की भावनाओ की अनुभूति होगी तो वे मुझे अवश्य क्षमाकर देंगे और दो आत्माएँ सदैव के लिए एक हो जावेगी।

इन विचारो ने विगत जीवन की उन स्मृतियो की ओर दृष्टिपात करने के लिए विवश कर दिया और मैं अतीत की उन स्मृतियों मे खो गई। एक के बाद एक कई स्मृतिया मानस-पटल पर उभरने लगी। यह जानते हुए भी कि उन असीम स्मृतियों को शब्दो की सीमित भाषा मे आबद्ध करना सहज नही है आज वे भौतिक रूप से मेरे पास नही है किन्तु उनकी जाज्वल्यमान आत्म-ज्योति हर पल, हर क्षण मेरे जीवन रूपी दीपक को प्रज्ज्वलित करती रहती है। जब भी मैं अपने जीवन में निराश हो जाती हूँ तो उनकी प्रेरणा निराशा के आवरण को दूर कर पुनः नव-जीवन का संचार कर देती है। ऐसी महान आत्मा को मेरी अश्रुपूर्ण श्रद्धांजली समर्पित है।

री लेखनी, बस बहुत है अब और बढ़ना व्यर्थ है,
है यह अनन्त कथा तू सर्वथा असमर्थ है।
करती हुई शुभ कामना निज वेग सविनय थामले,
करती हुई जय गजेन्द्र की, जीवन तनिक विश्राम ले॥

—भुवनेश्वरी जी० भंडारी

—: स्वामी श्री आत्मानंदजी महाराज :—

मानव सेवा के प्रति समर्पित स्वामी श्री आत्मानन्दजी महाराज का जन्म ६ अक्टूबर १६२६ को रायपुर के बरबंदा ग्राम मे हुआ । आप बचपन से ही मेधावी कुशाग्रबुद्धि और प्रतिभाशाली थे । अन्य परिक्षाओं मे हमेशा प्रथम स्थान पाने के साथ ही आपने आय ए एस तथा आय एफ. एस की परीक्षाओं मे भी गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त किया ।

श्री रामकृष्ण विवेकानन्द विचारधारा से प्रभावित व स्वामी श्री विरजानद जी महाराज के सपर्क के परिणाम स्वरुप आपने सन् १६५१ मे रामकृष्ण आश्रम की नागपुर शाखा मे प्रवेश प्राप्त किया । सन् १६६० मे आपने सन्यास दीक्षा ग्रहण की और स्वामी आत्मानंद के नाम से परिचित हुये । स्वामी विवेकानन्द की स्मृति को अक्षुण्ण बनाये रखने के उद्देश्य से रायपुर मे रामकृष्ण विवेकानन्द आश्रम की स्थापना की जिसके आप वर्तमान संचालक है ।

पूज्य स्वामी जी के कुशल सपादन मे 'विवेक ज्योति" पत्रिका का प्रकाशन होता है । आश्रम के छात्रावास मे विद्यालयीन छात्रों को चरित्र निर्माण की शिक्षा प्रदान की जाती है । दिनाक ५-१२-७६ को आपके हाथों प्रस्तुत पुस्तक का विमोचन सपन्न हो रहा है ।

शुभकामना

स्वामी आत्मानन्द

दूरभाष—१०४६
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम
रायपुर ४६२-००१ (म० प्र०)

यह जानकर विशेष प्रसन्नता हुई कि मुनिश्री मोहनलालजी महाराज के सुयोग्य शिष्य मुनिश्री महेन्द्र कुमार 'कमल' के प्रवचनो का संग्रह 'अन्तर्दृष्टि' के रूप में प्रकाशित हो रहा है। मुझे समूचे ग्रन्थ के अवलोकन का अवसर तो नही मिला पर जो कुछ मैंने देखा है, वह निस्सन्देह सभी धर्मो और सम्प्रदायो के साधको को आध्यात्मिक जीवन के दुरुह और कण्टकाकीर्ण पथ पर आगे बढ़ने के लिए बहुमूल्य पाथेय प्रदान करेगा। ग्रन्थ का प्रत्येक अध्याय अपने आप मे पूर्ण है और वह उत्थापित विषय की सम्यक् विवेचना करता है।

यही कामना है कि यह ग्रन्थ अपने पाठकों मे अन्तर्दृष्टि की उद्भावना कर अपने नाम को सार्थक करे।

रायपुर
३-११-७६

—स्वामी आत्मानन्द

शुभ सन्देश—

आदरणीय श्री सेठ साहब
सादर जय श्रीकृष्ण,

भगवत कृपा से स्व० श्री गजेन्द्रसिंहजी के पावन स्मृति मे मेवाड़ केसरी मुनिश्री मोहनलालजी महाराजजी के शिष्य कविरत्न महेन्द्रमुनि जी 'कमल' उनके पावन चातुर्मास प्रवचनों एवं स्व० गजेन्द्रसिंहजी के पावन संस्मरण को पुस्तक रूप मे प्रकाशित करने का शुभ संकल्प किया है, बहुत प्रसन्नता हुई।

परमपिता परमात्मा के श्रीचरणो मे प्रार्थना है कि इस प्रकाशित हो रही पुस्तक को सभी धर्म व जाति के धर्म प्रेमीजन पढ़े तथा उससे प्रेरणा प्राप्त कर समाज मे लोकोपकारी तथा कल्याणकारी कार्य करे। यही प्रार्थना है।

वैसे स्वर्गीय श्री गजेन्द्रसिंहजी तथा उनके परिवार की असीम कृपा व सहयोग इस संस्था पर प्रारम्भ से ही रहा है।

सभी सहयोगियो को सादर जय श्रीकृष्ण।

शेष भगवत् कृपा।

आपका ही बाबा
बालमुकन्द
संस्थापक, गीता भवन ट्रस्ट, इन्दौर

●

RAMAKRISHNA MISSION
Along, Dist. Siang
Arunachal Pradesh
12 November 1976

I am very glad to learn that an anthology of Revered Mahendramuni 'Kamal's writings on spiritual subjects is being brought out by the Bhandaris of Indore. I hereby convey my heartfelt congratulations to the Bhandaris for their noble venture. It is needless to mention the usefulness of such a publication to the spiritually minded people of India in general and of Indore in particular.

Swami Gautamananda
Secretary

आभार दर्शन

प्रस्तुत 'अन्तर्दृष्टि' में संकलित प्रवचनों एवं संस्मरणों के लेखन-कार्य से लेकर मुद्रण पर्यन्त मुझे यह लिखते हुए अत्यन्त गौरव एवं सन्तोष की अनुभूति हो रही है कि इस प्रयास हेतु परमपूज्य गुरुवर मेवाड केसरी श्री मोहनलाल जी महाराज साहब एवं पूज्य मुनिवर श्री महेन्द्रकुमार जी 'कमल' का शुभ आशीर्वाद एवं मार्गदर्शन सदैव मेरे साथ रहा जिसके फलस्वरूप मैं इस स्मारिका को प्रकाशित करने का दृढ़ संकल्प कर सकी।

संकलन कार्य निःसन्देह मेरे लिए अत्यन्त दुष्कर एवं नवीन था लेकिन इन महान् तपस्वियों की स्नेहसिक्त प्रेरणा के संवल से ही मैं यह पुस्तक प्रकाशित कर सकी।

इस कृति मे पूज्य गुरुवर श्री महेन्द्र मुनि 'कमल' के ओजस्वी एवं मधुर प्रवचनों की पावन श्रृंखला का रसास्वादन आप करेंगे। जिसमे उनके व्यक्तित्व की सुवास एव सुरभी व्याप्त है। इसमे मुनिश्री की साधनोज्वल वाणी प्रस्फुटित हुई है जो समाज के अन्तराल मे गूंजकर उसे सर्वतोमुखी उन्नति का मार्ग प्रशस्त करेगी तथा जिसकी सौरभ दिगदिगन्त तक फैलकर आध्यात्म प्रेमियो की प्यास बुझाती रहेगी।

द्वितीय खण्ड मे मेरे पतिदेव स्वर्गीय श्री गजेन्द्रसिहजी भण्डारी की पुण्य-पावन स्मृति मे उनके पुरुषार्थपूर्ण जीवन की झांकी संस्मरणो के माध्यम से आप पढेगे।

यह संकलन जहाँ एक सत की वाणी को मुखारित करता है, वही दूसरी ओर एक कर्मनिष्ठ व्यक्ति के जीवन का दर्पण दर्शाता है।

पाठक वर्ग ने इस स्मारिका के माध्यम से जहां एक ओर अध्यात्म लाभ लेगा वही दूसरी ओर समाज एव देश के कल्याण के लिये सोचने को अवश्य विवश होगा। मेरी यह हार्दिक अभिलाषा है कि यह सुकृति केवल प्रचार का साधन-मात्र न वनकर मानव-जीवन के उत्कर्ष पथ का सृजन कर सकी तो मेरा यह प्रयास सार्थक होगा।

रामकृष्ण विवेकानन्द आश्रम रायपुर के संचालक पूज्यपाद स्वामी आत्मानन्द जी महाराजजी ने अपने अत्यधिक व्यस्त समय मे से समय निकालकर प्रस्तुत पुस्तक के विमोचन के लिये स्वीकृति प्रदान कर हमे गौरवान्वित किया, इसके लिये मैं उनकी हृदय से आभारी हूँ।

मेरे परम श्रद्धेय पूज्यवर वाबूजी (ससुर साहव श्रीमान जैनरत्न सुगनमलजी साहव भण्डारी) के प्रति मैं किन शव्दो मे कृतज्ञता व्यक्त करूं जिन्होने विपदाओ की घड़ी मे धैर्य के साथ मेरा मार्ग प्रशस्त कर मुझे समाज सेवा के लिये प्रेरित किया।

श्रीमती रजनी भण्डारी (धर्मपत्नी स्वर्गीय श्री महेन्द्रसिंह जी भण्डारी) जिन्होंने सम्पूर्ण प्रतिक्रियाओ मे छाया की तरह मुझे असीम सहयोग प्रदान किया। साथ ही परिवार के समस्त सदस्यों का भी अभूतपूर्व योगदान रहा।

मेरे तीनो ही पुत्र चि० जसवीर, जम्बू एवं सतीश भण्डारी इस संकलन के पीछे एक अकंप दीपशिखा की तरह खडे रहे। उनके मन मे सदैव यही भावना रही कि, 'हमारे पापाजी जाने किस रूप में कब और कहां हमारे समक्ष आकर खडे हो जावेगे और उन्हे कभी भी यह महसूस न हो कि हम मे शिथिलता का आभास हो रहा है" शायद इसी भावना एवं उनकी अटूट निष्ठा ने मेरे प्रयास को अडिग बनाये रखा।

मेरे निष्काम स्नेही भाई श्री योगेन्द्र कीमती एवं उनके परिवार की हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने महाराज साहब के प्रवचन स्थलो पर जाकर समय-समय पर प्रवचनो को टेप करके शब्द श्रृंखला मे बाधा है।

शब्दो के अपार समूह को श्री वरणगावकर ने कठिन परिश्रम द्वारा भाषा को सुचारु रूप प्रदान कर टाईप द्वारा सुन्दर प्रेस कापी मे परिणित किया एवं श्री रमेश जोशी जिन्होने इस संकलन के सभी प्रयासों मे अविश्रात श्रम करके उचित समय में सम्पूर्ण कार्य निपटाया है। यह उनका अपने स्वर्गीय भैयासाहब के प्रति असीम स्नेह एवं श्रद्धा का ही परिचायक है।

श्री पार्थसारथी एवं श्री मेहता जी जिनके मन मे अपने भैयासाहब के प्रति सदैव अनुराग रहा है, इन्होने पुस्तक के प्रकाशन मे जो सक्रिय योगदान दिया, उसका मूल्य शब्दो एव रूपयो से चुकाया नही जा सकता।

श्री अमर भारती आगरा के संपादक प्रसिद्ध साहित्यकार श्रीचन्दजी साहब सुराणा 'सरस' ने इस स्मारिका को सुसज्जित करने मे जो अपूर्वयोगदान दिया, तथा श्री दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा के संचालक श्री पुरुषोत्तमदास जी भार्गव ने रात-दिन की परवाह किये बिना समय पर मुद्रण किया उनका यह सहयोग अवर्णनीय है। इसके लिये मैं उनकी आभारी हूँ।

अन्त मे मेरे स्वर्गीय पतिदेव के प्रति श्रद्धा एवं आदर रखने वाले उन सभी महानुभावों के प्रति अन्तःकरण से आभारी हूँ, जिन्होंने अपने संस्मरण भेजकर इस पुस्तक को साकार रूप प्रदान किया, साथ ही जिन्होने भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से इस स्मारिका के संकलन से प्रकाशन तक मुझे अटूट सहयोग प्रदान किया।

सर्वगुण सम्पन्न प्रभु से यही मेरी हार्दिक प्रार्थना है कि अज्ञान तितिर के नाशक मुनिश्री सत्-सत् दीर्घायु हो।

—भुवनेश्वरी गजेन्द्रसिंह जी भंडारी

स्व० श्री गजेन्द्रसिह जी भन्डारी स्मृति अंक के लिए गुरुदेव श्री मोहनलालजी महाराज अपना स्मृति वचन प्रदान करते हुए ।

श्री महेन्द्रमुनि जी 'कमल' स्व० श्री गजेन्द्रसिह जी भंडारी के प्रति अपनी स्नेह एव आदरपूर्ण श्रद्धाजलि का आलेखन करते हुए ।

हम अन्तर्दृष्टि विमोचन का
करते हैं शत-शत अभिनन्दन

□□

यह धन्य हुआ इन्दौर नगर भँवरों को मानो मिली गन्ध।
आत्मानन्द जी के आने से आ गई स्वर्ण में भी सुगन्ध॥
गीता गंगा से मिली आज दो संस्कृतियो का मधुर मिलन।
इस सुप्रभात की वेला में पुलकित है अव जन जन का मन॥
क्या परशुराम से मिले राम या मिले वीर से महावीर।
जिनकी वाणी का प्रवहमान धरती पर सुखदायक समीर॥
यदि धर्मक्षेत्र इस कुरुक्षेत्र मे चातुर्मास नहीं होता।
तव अन्तर्दृष्टि कहाँ मिलती, ले गये लाभ लाखों श्रोता॥
मोहन की मुरली, मुनि महेन्द्र के गीत, राम का शंखनाद।
गूंजा जब लुप्त हुआ क्षण में अर्जुन का कुछ क्षण का विपाद॥
जिनकी वाणी मे स्वयं शारदा आकर नर्तन करती है।
ऐसे सन्तों की वाणी ही युग का परिवर्तन करती है॥
वे सच्चे सन्त कहाते जो मानव में मानवता भर दे।
जो सुप्त हृदय की वीणा के तारो को भी झंकृत कर दें॥
वीणावादिनी जिन सन्तो की वाणी में अमृत भरती है।
भारती स्वयं उस वाणी की आरती उतारा करती है॥
भारतमाता के नौनिहाल मुनिवर मानस के धवलहंस।
हैं धन्य, लोककल्याण हेतु घूमा करते करुणावतंस॥
ऐसे सन्तो के दर्शन को देवों का भी ललचाता मन।
जो मोक्षधाम तक चले गये तू चढ़ा उन्हें अक्षत चन्दन॥

हम अन्तर्दृष्टि······

इस देव सभा को कर वन्दन, आगे की कथा सुनाता हूँ।
दुःखमोचन ग्रन्थ विमोचन के इस मूल विषय पर आता हूँ॥
संजय को अन्तर्दृष्टि मिली, मन की वीणा हो उठी मुखर।
भावों के ज्वार उठे मन में प्रकटे तव उद्‌वोधन के स्वर॥
ये अमल "कमल" मुनिवर निर्मल, साहित्य सृजन में सदा लीन।
इसमें कुछ भी अत्युक्ति नही लिखने की सचमुच है मशीन॥
पुस्तक में प्रतिबिम्वित वाणी उस महावीर की कल्याणी।
कर दिया दूध का दूध हंस ज्यों करता पानी का पानी॥
जैनागम के जो सूत्र ग्रन्थ उनका अमृत यदि पीना है।
मुक्तामणियों से जडा हुआ रसिको ! यह ग्रन्थ नगीना है॥
आगम का सार भरा इसमें यह ग्रन्थरत्न अनुपम कृति है।
सचमुच ही श्रमण सभ्यता की यह पुस्तक जीवित संस्कृति है॥
उनको ही तो अमरत्व मिला जो हालाहल पी जाते है।
जो अन्धकार में भटके हैं वे ही आलोक दिखाते है॥
जो जला नहीं जो गला नहीं वह क्या प्रकाश बरसायेगा।
जो स्वयं न हो चेतन जड़ में वह क्या चेतना जगायेगा ?॥
है वही जाति जीवित जग में जीवित जिसका साहित्य रहा।
जातियाँ अनेकों लुप्त हुई यह महावली है काल अहा॥
साहित्यकार के चरणों मे न्यौछावर कर दो तन मन धन।
जो सत्यं, शिवं, सुन्दर के समुपासक है उनको वन्दन॥
हम अन्तर्दृष्टि-विमोचन का······

वृद्धों से कहना है, जोड़ो बिखरे समाज की लड़ियों को।
भौतिक तापों से तपी हुई जलने मत दो फुलझड़ियों को॥
तरुणो ! जागो निद्रा त्यागो, करना है तुमको पूरा प्रण।
इस नये क्षितिज से झाँक रही है आशा की सुनहरी किरण॥
चलने वाले कब रुकते हैं, परवानों से जलना सीखो।
कण्टकाकीर्ण पथ पर भी तुम हंसते हंसते चलना सीखो॥
भूलों को तो दुहराओ मत, वश मे करलो प्रतिकूलों को।
रूढ़ियाँ मिटानी हैं तुमको, कुचलो मत कोमल फूलों को॥

कुछ त्याग तपस्या अपरिग्रह अपनाओ अपने जीवन में।
है सब धर्मो का यही सार रक्खो तुम दयाभाव मन में॥
इतिहास उन्हे दुहराता है जो खुद इतिहास वनाते हैं।
जो स्वय भगीरथ वनकर के गंगा घरती पर लाते हैं॥
थे मानवेन्द्र सचमुच गजेन्द्र, उनका जीवन ही था विशिष्ट।
थे युवाशक्ति के सम्प्रेरक, विनयी, उदार, कर्तव्यनिष्ठ॥
शिक्षा लो उनके जीवन से हमको जो जीना सिखा गये।
कुछ वर्षो के संघर्पो में ही राह हमें जो दिखा गये॥
स्वर्गस्थ उन्ही की स्मृति में यह जो स्वप्न हुआ साकार आज।
क्या भुला सकेगा कभी उन्हें उनका ही यह जीवित समाज॥
पारस-चिंतामणि जैसा था भण्डारी जी का अन्तर्मन।
उनके पदचिन्हों पर चलने वालों का हो शत-शत वन्दन॥
हम अन्तर्दृष्टि-विमोचन का.......

—श्री पद्मशास्त्री, माण्डलगढ़

□

Swami Chandrakiranji
Chandra Masa Adwaith Sadhanalaya
Maharishi Kanvashrama
Kanalada, Dist. Jalgaon (M. S.)

I never have thought it previously that my spiritual daughter Shrimati Bhuvan Kumariji would ask me to pen down the hidden divine Mystery which exists and prevails in this vast Universe, invisible to the naked visible Eyes.

It happend on Friday, Phagun 29, 1895 Shake, *i e.*, 22nd March 1974, about dusk hour.

Blessed family of Bhandari's of Indore was introduced to me only four days prior to this holy incident. While one of the family members Shri Surendrasinghji requested me to accompany him to Dewas, to attend the 54th death anniversary of a very famous saint Taposidhi Sadguru Yogendra Shreemad Sheelnathji Maharaj, I readily agreed.

While re-entering Indore, on that blessed day, Shri Surendrasinghji proposed to drop in for a while at Nandanvan the abode of Bhandaris. I was reluctant at first hearing, because hardly I knew anyone there.

Shri Surendrasinghji took me to the spacious drawing room and left me there and my young Brahmachari Shri Satyanandaji.

From Drawing-room I was about to enter the bed room, when I felt a severe vibration, Surendrasinghji was calling the servant from outside. I was still near the threshold of two rooms.

It was before my naked Eyes. Cloud like whitish aspect mingled with approaching dusk darkness, somewhat floating above the level of the carpet.

It was human shape, undoubtedly it was an astral element, beyond the description of human brain.

A smiling folded-handed youth, in his forties probably, at a distance of ten feet merely, white joggy attire. I could see the brilliance of his eyes. Pin drop silence. My Brahmachari who was on my heels, stood still behind sensing some thing odd.

Crystal clear, melodious voice, from afar I heard, "I was awaiting you—Welcome."

I heartily reciprocated his desire, perhaps I did smile as well.

I sinked in abyss of thoughts, contemplating the link between the Saint of Dewas and this blessed soul of Nandanvan.

Shri Surendrasinghji entered the room in haste. The vision dısappeared We could not communicate the Eternal Divine message. I felt a sort of heaviness on my mınd. Our spiritual renderance came to an end.

Next day, Shrimatı Bhuvankumariji paid a kınd visit. During odd conversation she came to the poınt and asked me with moist eyes—

"Excuse my presumption Swamıjı, I do sincerely feel that you have had some sort of vıbrations durıng your brief halt at Nandanvan ?

On hearıng this strange and straight-forward quirıe, I could not make up myself.

Who she was ?

What does she know about vıbrations ?

I was balancing my thoughts ın my mind and after some hesıtation I admitted, less realising that the vision was of her beloved departed husband, Shrı Gajendrasinghji.

Again at Nandanvan, I showed them the spot where I saw the vısion standing I was told that on the very spot he breath hıs last.

Then they brought out two group photographs. I showed there the man. He was in both the photographs.

What a blessed soul, what nobılıty on his countenance.

I still cherish in the abyss of my medıtation that godly face of the man whom I never met on this planet of the earth. God alone knows what connection we were having ın our previous bırths. That wıll remain an unsolved mystery for ever.

I am been asked by my spiritual daughter Srimati Bhuvankumariji to pen the same incident regardıng her ambitious book which, after thorough zeal and labour have relıgiously dedıcated to the glorious memory of her beloved husband.

If, through his auspıcious Charity, she gains her mental peace and satısfacıon of her mind. May the most high shower Hıs mercıes unto her and her noble three sons.

May the departed soul of Shri Gajendrasinghji be rest in Eternal peace.

Wıth blessıng and salutatıons.

November 13, 1974 **—Pujya Chandrakiranji**

क्षमस्व

प्रस्तुत पुस्तक एवं स्व० श्रीमान् गजेन्द्रसिंह जी साहव भंडारी के संस्मरणों के प्रकाशन की योजना वहुत विलम्व से वनी और विमोचन का कार्यक्रम भी शीघ्र निश्चित हो गया। संस्मरण आने में समय लगता है, दूर-दूर के मित्र, स्नेही और सद्-भाव भावी जनो के काफी संस्मरण तो प्राप्त हो गये फिर भी वहुत से महत्त्वपूर्ण सज्जनो एव हितैपियों के संस्मरण तथा सद्भावनापूर्ण पत्र अभी भी प्राप्त हो रहे है जवकि दिनाक ५।१२।७६ को पुस्तक का विमोचन संपन्न हो गया और पुस्तक की जिल्द भी वँध चुकी है। इस कारण हम चाहते हुए भी उन सुन्दर संस्मरणों का उपयोग इस पुस्तक में नहीं कर सके। प्राप्त कुछ महत्त्वपूर्ण संस्मरण इस प्रकार हैं—

- ☐ पद्म श्री डा० एन. एल. वोरदिया
- ☐ सौ. डा० हीरावाई वोरदिया एम. ए., पी-एच. डी.
- ☐ श्रीमती स्नेहलता वोरदिया का श्रीमती गजेन्द्रसिंह भंडारी के विषय मे एक महत्त्वपूर्ण परिचय
- ☐ श्री सी. कान्त रणदिवे, इन्दौर
- ☐ श्री मुरलीनारायण माथुर, उदयपुर
- ☐ श्री शीलव्रत शर्मा उदयपुर

हम उक्त महानुभावों के स्नेह एवं सौजन्य का आभार मानते हुए क्षमा चाहते है कि उक्त सज्जनो के संस्मरण पुस्तक मे नही छप सके।

—**प्रकाशक**

संशोधन

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन मे कुछ शीघ्रता एव कुछ इन्दौर मे संकलन तथा आगरा मे मुद्रण होने के कारण, तथा टाइप आदि की अशुद्धि आदि कारणों से कुछ अखरने वाली भूलें रह, गई है जिनके प्रति हमे हार्दिक खेद है। सावधानी बरतते हुए भी त्रुटि रहना मनुष्य का स्वभाव है, हम इस बात को स्वीकार कर अपनी भूलो का संशोधन करना चाहते हैं।

विज्ञ पाठकों से निवेदन है कि वे निम्न स्थलो का संशोधन करके पढ़ें—

पृष्ठ	पंक्ति	
३२	२०	अशुद्ध— . . साथ में पूज्य बाई जी जाने.... संशोधन— . . साथ मे पूज्य बाबू जी जाने....
५८	१८	अशुद्ध— आज वही वैधव्य मेरी माताजी.... संशोधन— आज वही वैधव्य मेरी भाणजी....
६३		शीर्षक के नीचे— अशुद्ध—श्रीमती स्नेहलता बोरदिया प्रसिद्ध डा० बोरदिया की धर्मपत्नी संशोधन—श्रीमती स्नेहलता बोरदिया

आशा है टाइप आदि की अशुद्धि व क्षेत्रीय दूरी व स्थिति की अनभिज्ञता के कारण इन अखरने वाली भूलो को महानुभाव क्षमा करेंगे।

—विनीत
प्रकाशक

अन्तर्दृष्टि पर एक दृष्टि

भारतीय-संस्कृति मे जैन-संस्कृति अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है। जैन-संस्कृति का विविध वाङ्मय विशाल तथा व्यापक है। जीवन-स्पर्शी एक भी दृष्टि-कोण इस प्रकार का नहीं है, जिसके विषय में 'जैन-वाङ्मय मे संख्यावद्ध ग्रन्थ उप-लव्व न हो। परन्तु यह समग्र वाङ्मय संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं मे उपनिवद्ध किया गया है। अत: आज का पाठक वर्ग प्राचीन भाषाओ से परिचय न होने के कारण उस उर्वर, सरस एव सुन्दर साहित्य का आनन्द नही ले सकता। सौभाग्य से इस आधुनिक-युग मे हिन्दी भाषा मे प्राचीन ग्रन्थो का अनुवाद प्रारम्भ हो चुका है। भले ही हिन्दी मे मौलिक ग्रन्थ उपलव्व न हो, फिर भी पर्याप्त संख्या मे प्राचीन साहित्य सामग्री को हिन्दी भाषा मे अवतरित किया जा रहा है। यह एक भविष्य के लिए मंगलमय सकेत है।

जैन-परम्परा का अधिकांश साहित्य धर्म-दर्शन तथा आगम से सम्वद्ध है। काव्य के क्षेत्र मे जैनाचार्यो ने जो उपादेय सहयोग दिया है, वह अत्यन्त अल्प भले ही हो, किन्तु उस क्षेत्र को शून्य नही कहा जा सकता। आचार्य हेमचन्द्र का काव्यानुशासन तथा वाग्भट का वागभट्टालकार काव्य-शास्त्र सम्वद्ध प्रसिद्ध ग्रन्थ है। जैनाचार्यो ने इस विषय पर ग्रन्थ लिखे अवश्य, पर उनका पर्याप्त परिष्कार नही हो सका। यद्यपि साहित्यिक क्षेत्र मे सम्प्रदायवाद को लेशमात्र भी अवकाश नही है, तथापि मनुष्य का सम्प्रदाय मोह टूट जाना उतना सहज नही है। यही कारण है कि भारत के विशिष्ट विद्वान अभी जैन वाङ्मय की ओर उतने उन्मुख नही हुए, जितना होना आवश्यक है। स्वयं जैन भी इस दिशा मे दिशा-शून्य और साथ ही विचार-शून्य प्रतीत होते हैं। काव्य-शास्त्र तथा काव्य के क्षेत्र मे जैनाचार्यो का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा है। भारतीय-साहित्य शास्त्र को समझने के लिए जैन-आचार्यो द्वारा प्रणीत काव्य-शास्त्र ग्रन्थो के अध्ययन की परम्परा अव विकसित होती जा रही है। कुछ विद्वानो ने इस दिशा मे मात्र प्रयास ही नही किया, सफलताएँ भी प्राप्त की है।

जैन वाङ्मय का द्वितीय क्षेत्र प्रवचन-साहित्य अथवा प्रवचन-कला है।

स्थानकवासी-परम्परा ही नही, समग्र जैन-परम्परा मे सर्वप्रथम प्रवचन-साहित्य ज्योतिर्धर आचार्य जवाहरलाल जी महाराज का प्रकाशित हुआ था। यह साहित्य अनेक नूतन वक्ताओं के लिए उपजीव्य बना। अनेक व्यक्तियो को प्रवचन-कला मे सफलता प्राप्त करने का आधार जवाहर-साहित्य रहा है। यह एक आश्चर्य ही है, जो लोग जीवनभर ज्योतिर्धर जवाहर का विरोध करते रहे, वे लोग भी जवाहर-साहित्य को आधार बनाकर उससे प्रेरणा लेकर अथवा उससे सामग्री लेकर अपने प्रवचनों में उनका खुलकर प्रयोग करते रहे और आज भी यह साहित्य उतना ही प्रेरणाप्रद है, जितना पहले कभी भी था।

प्रवचन-साहित्य के क्षेत्र मे जवाहर-युग के बाद अमर-युग का भव्य प्रारम्भ होता है। विविध विषय, भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से अमर-प्रवचन-साहित्य निश्चय ही अगला चरण कहा जा सकता है। अमर-प्रवचन-साहित्य माला मे प्रकाशित पुस्तके समाज मे सर्वत्र समादर एव सन्मान के साथ पठन-पाठन के उपयोग मे आ रही है। इस साहित्य से विशेष रूप मे युवक और युवतियों को पर्याप्त प्रेरणा मिली है।

इस प्रकार जैन-परम्परा का प्रवचन-साहित्य तथा प्रवचन कला पर्याप्त मात्रा मे विकसित हो चुकी है। आज तो अनेक ओर से अनेक प्रकाशन इस दिशा मे किए जा रहे है। इस क्षेत्र मे एक प्रकार की प्रतिद्वन्द्विता-सी प्रारम्भ हो चुकी है। इस क्षेत्र मे आज योग्यता और अयोग्यता की कोई कसौटी नही की जा सकती। कारण स्पष्ट है, कि कुछ लोगो ने इस क्षेत्र मे दूसरे के विचारो का अपहरण करके, दूसरे स्थान से सामग्री लेकर अपनी योग्यता और क्षमता न होते हुए भी प्रवचन पुस्तकें प्रकाशित की है। इस प्रकार की प्रकाशित पुस्तको मे न कुछ मौलिकता है, न अपने विचारो की कोई देन है, और न ही उनसे कुछ प्रेरणा पाठक को प्राप्त होती है। परन्तु नाम की भूख मनुष्य से अनुचित कार्य भी करा सकती है, यह उसका एक ज्वलन्त उदाहरण कहा जा सकता है।

कुछ प्रवक्ता सहज-स्वभाव से अपनी जन्म-जात प्रतिभा लेकर प्रवचन-कला के क्षेत्र मे अवतरित हुए है। निश्चय ही इन लोगो ने अपने श्रम से अपना पथ चुना है। उनकी अपनी शैली है। उनकी अपनी भाषा है। उनकी अपनी अभिव्यक्ति है। अपने विचारो को प्रकट करने की उनकी अपनी पद्धति है। मैं इस प्रकार के प्रवक्ताओं को प्रवचन-कला का सफल प्रवक्ता घोषित करता हूं। अपने श्रम से अपना विकास-पथ तैयार करना एक प्रशंसनीय कार्य है।

मुनि प्रवर महेन्द्रकुमार जी 'कमल' एक उदीयमान कवि है, उदीयमान साहित्यकार है, तथा एक उदीयमान सफल प्रवचनकार भी है। इनके प्रवचनो मे सरलता,

सौम्यता तथा सहजता ने अच्छी अभिव्यक्ति पाई है। न कही भावों की गहनता है, न कही भाषा का अटपटापन है। सीधी-सादी मुहावरेदार भाषा मे सुन्दर विचारों की अभिनव अभिव्यक्ति है। मैं समझता हूँ, एक सफल प्रवक्ता मे जिन गुणो की आवश्यकता है, वे समस्त गुण कमलजी मे विद्यमान हैं। प्रसन्नता है, कि अपने चरण-न्यास के अवसर पर ही वे इस दिशा में पर्याप्त सफल हुए है।

मुनि प्रवर महेन्द्र कुमारजी 'कमल' की प्रस्तुत प्रवचन पुस्तक 'अन्तर्दृष्टि' एक प्रवचन पुस्तक है। मुनिश्री ने मालव देश की राजधानी इन्दौर मे अपने सफल चातुर्मास मे अपने ओजस्वी एवं मधुर प्रवचनो से इन्दौर नगर के जन-मन को मन्त्र मुग्ध कर दिया था। मुनिश्री की जादूभरी वाणी का ही प्रभाव था, कि जनता उनसे जो कुछ सुनने उसे प्रकाशित करने का भी उनका आग्रह रहा। यदि ये प्रवचन न लिखे जाते, तो काल के गाल मे समाहित होकर बिखर जाते। श्रोताओं के मस्तिष्क की स्मृति भी धुंधली पड़ जाती। प्रवचनो का संकलन कराकर उन्हें प्रकाशित करके साधको के लिए एक मधुर प्रेरणा का कार्य हुआ है। प्रायः समस्त प्रवचन भाव, भाषा एव शैली की दृष्टि से रुचिकर और मधुर है। मुनिश्री की भाषा व्यंग्यात्मक है और परिहासात्मक भी। प्रवचनों के शीर्षक भी बड़े सुन्दर दिये गये है, जैसे—"बाहर से कुछ दीखे नहीं, भीतर चमके नूर, माया के वात्याचक्र; विपन्नता से दूर, तथा सम्पन्नता से भरपूर; धर्म की वैज्ञानिकता, और विज्ञान की धार्मिकता"—इन शीर्षको से प्रतीत होता है, कि मुनिश्री के चिन्तन की दिशा स्पष्ट है। प्रवचनों मे संस्कृत, प्राकृत, और हिन्दी-भाषा के सुभाषित पद्यों को यथास्थान उद्धृत किया गया है। कहीं-कही पर प्रवचनकार मुनि ने स्वयं अपनी कविताओ का भी यथास्थान सुन्दर उपयोग किया है। जैसे कि—

"कह रहा है मूक रवि क्यों,
तुम मेरा पूजन करे रे।
पुष्प कलियों जल चढ़ाकर,
क्यों मेरा अर्चन करे रे।
तू स्वयं है ज्योतिर्मय,
वह ज्योति सारा तमस हरती।
सुप्त मानव की समझ में,
जागृति का ज्ञान भरती।"

इस प्रकार की अन्य कविताएँ भी प्रस्तुत प्रवचन पुस्तक मे यथाप्रसंग अंकित की गई हैं। वस्तुतः यह निर्णय करना कठिन है, कि मुनिश्री सफल प्रवचनकार हैं

अथवा सफल कवि है। उनके प्रवचन और उनकी कविताएँ—दोनों पाठक के मन मस्तिष्क पर एक मधुर प्रभाव छोडने मे सक्षम है।

इस पुस्तक की एक सर्वोत्तम प्रेरणा यह है कि इनका संकलन एक अत्यन्त सम्पन्न परिवार की विदुषी महिला (श्रीमती भुवन भण्डारी) ने किया है। जिनके सामने आत्मिक शांति की प्रेरणा का एकमात्र ध्येय रहा है। और फिर उनका प्रकाशन भी वे अपने स्वर्गीय पति की स्मृति मे करवा रही हैं जो प्रेरक और उद्‌बोधक है।

मैं आशा करता हूँ कि भविष्य मे इससे भी अधिक सुन्दर कृति मुनिश्री समाज देवता को समर्पित करेंगे। मुनिश्री की अन्य कुछ पुस्तके भी मैंने देखी हैं—गद्य और पद्य दोनो प्रकार की भाषा पर कमल मुनिजी का समान अधिकार प्रतीत होता है। निश्चय ही इस प्रवचन पुस्तक के अध्ययन, मनन एवं चिन्तन से वर्तमान पाठको को तथा भावी प्रजा को एक प्रेरणा मिलेगी, जीवन की एक स्वस्थ दिशा मिलेगी।

प्रस्तुत पुस्तक साहित्यिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक सभी दृष्टियों से सुन्दर है। प्रस्तुत पुस्तक के सम्पादन तथा प्रकाशन मे श्रीचन्दजी सुराना 'सरस' ने जो श्रम और प्रयास किया है, उसे सोने मे सुगन्ध कहा जा सकता है।

जैन भवन
मोती कटरा, आगरा

विजय मुनि 'शास्त्री'

एक वियोग : एक सुयोग : एक अभिनव प्रयोग

यह एक कटु सत्य है, कि जो मनुष्य नियति का निर्माता है वह उसके हाथ का खिलौना भी है। अपनी प्रतिभा, पुरुषार्थ और अदम्य साहस के बल पर जो मनुष्य नियति का, भाग्य का निर्माण करता है, न केवल अपना ही बल्कि, अपने अन्य स्नेही-स्वजनो का, अपने समाज और राष्ट्र का भी, वही पुरुष कभी-कभी क्रूर नियति के निर्मम हाथो का खिलौना बनकर सबको मझधार मे छोडकर चला जाता है, यह नियति का कैसा क्रूर मजाक है !

हम, अल्पज्ञ व्यक्ति नियति की इस कौतुक-क्रीड़ा को मजाक या खिलवाड़ ही कहते हैं, किन्तु सम्भव है इसके पीछे भी कोई विशिष्ट रहस्य छिपा हो ? नियति, उस महिमाशाली व्यक्तित्व के माध्यम से सम्भवत: और भी अधिक महत्त्व का, कोई विशिष्ट कार्य सम्पन्न करना चाहती हो, जो न केवल एक राष्ट्र के, किन्तु सम्पूर्ण मानवता के लिए कल्याणकारी सिद्ध हो, और उस महान् कार्य की सिद्धि के लिए हमारी धरोहर को हम सब के बीच से उठा लिया हो, यह भी हो सकता है।

जहाँ तक मेरा अनुमान है, युवा पीढी के होनहार उद्योगपति श्रीगजेन्द्रसिंह भण्डारी का असामयिक वियोग प्रकृति व नियति के किसी विशिष्ट सुयोग की अज्ञात योजना का ही परिणाम होगा। नही तो यह कैसे सम्भव था कि एक परम धार्मिक आस्थाशील पिता, एक सुशीला साध्वी-सती विदुषी पत्नी, और फूलो से कोमल भाग्यशाली पुत्रो को बिलखते छोड़कर तथा राष्ट्र निर्माण के महान् स्वप्नो को अधूरा ही छोड़कर वे हमारे बीच से चले जाते ? मन समाधान खोजता है, पर अन्य कोई समाधान अब तक नही मिला।

उन वियोगजन्य दुखद स्मृतियो के बोझ को उतार फेंकना सहज नही है। किन्तु यह एक सुयोग ही कहना चाहिए कि उनकी स्मृतियो की प्रेरणा को निर्माण मे नियोजित कर उनके अधूरे सपनो को पूरा करने मे आज उनका समस्त परिवार जुट गया है। इस पुस्तक के परिवेश मे यह रूपान्तर छिपा है।

प्रवचन पुस्तकें भी अनेक निकलती है, और बडे आदमियों के स्मृतिग्रन्थ, तथा स्मारिकाएँ भी समय-समय पर प्रकाशित होती रहती हैं। किन्तु प्रवचन-

पुस्तक के साथ स्मारिका को जोड़ने का प्रयोग, कई अर्थों में एक अभिनव प्रयोग कहा जा सकता है। उन वियोग एवं शोक की कटु स्मृतियों को आध्यात्मिकता की रसधार से कटुता विहीन बनाने का प्रयत्न इस पुस्तक में हुआ है। उन स्मृतियों से निर्माण के स्वप्न साकार करने का संकल्प यहाँ व्यक्त किया गया है, सचमुच यह नया प्रयोग है। इस नव प्रयोग की कल्पना की है श्रीमती भुवनेश्वरी महेन्द्रसिंह भण्डारी ने। सचमुच एक कर्त्तव्यपरायण, विचारशील विदुषी पत्नी से ऐसी ही अपेक्षा समाज करता है। जो पति-वियोग की असीम वेदना को हृदय में छुपाकर भी अपनी संतति को हँसी-खुशी के वातावरण में जीने का कठोर दायित्व पूरा करती है और नव-निर्माण की मरहम से उन घावों को भरने में प्रयत्नशील बनती है। इस 'अन्तर्दृष्टि' के अथ से इति तक निर्माण में, संकलन-संयोजन तथा सम्पादन प्रकाशन में एक नारी की निष्ठा, त्याग, कठोर साधना और अडिग आत्मबल के स्वर मुखरित हो रहे हैं—यह एक आश्चर्यकारक गौरव की बात है।

मुनि श्री महेन्द्रकुमार जी 'कमल' जो स्थानकवासी जैन समाज की युवा पीढ़ी के चिन्तनशील श्रमण हैं, ओजस्वी वक्ता और भावनाशील कवि हैं। उनके प्रवचनों से उनकी जादुई वाणी से प्रभावित होकर श्रीमती भण्डारी ने यह उपक्रम किया है, कि पाठक प्रवचनों के स्वाध्याय से, जहाँ धार्मिक नव चेतना प्राप्त करें वहाँ एक प्रेरक व्यक्तित्व की स्मृतियों से, संस्मरणों से राष्ट्र एवं समाज के सत्संकल्पों के लिए प्रबुद्ध भी हों। श्रीमती भण्डारी, तथा श्री जसवीर, जम्नू एवं सतीश भण्डारी एवं भण्डारी परिवार के सभी सदस्य, स्नेही जन इस शुभ प्रयत्न के लिए धन्यवादार्ह तो हैं ही, साथ ही उनकी उदात्त कल्पना हम सब के लिए प्रेरक भी है।

इस उपक्रम को पूर्णता देने में कुछ यश मुझे भी प्राप्त हुआ इसलिए मैं पुनः मुनिश्री जी की कृपा, तथा भण्डारी परिवार के सत्संकल्पों के प्रति अपना आदर व्यक्त करता हूँ।

—श्रीचन्द सुराना 'सरस'

गुरु गंगाजल सारखा

(मेवाड केशरी पूज्य श्री मोहनलाल जी महाराज का सरल संक्षिप्त जीवन परिचय)

मेवाड़ भूमि अनेक महापुरुषो की प्रसवभूमि रही है अनेक नग मणियो ने विश्व को चमत्कृत किया है। वीरता से ओतप्रोत जीवन यदि महाराणा प्रताप का रहा, तो त्याग, वैराग्य और संयम, तप-साधना पूर्ण जीवन मीरावाई का रहा। इसी पावन भूमि के आँचल मे पूज्य मोहनलाल जी महराज साहव का जन्म वि०सं० १९७६ आसाढ सुदी ७ को साहपुरा के एक ब्राह्मण कुल मे हुआ, आपकी मातुश्री विरजूवाई एवं पिताश्री कालूलाल जी ने आपको सुसंस्कारों से शृ गारित किया।

भारतीय परम्परा के अनुसार ब्राह्मण-श्रमण धार्मिक तेजस्विता के प्रतीक रहे है। पूज्य श्री मोहनलाल जी भी इसी के अनुरूप पूर्व संस्कारों से प्रेरित होकर श्रद्धेय भूरालाल जी एवं छोगालाल जी महाराज साहव के सम्पर्क मे आए तथा संस्कृत-प्राकृत का अध्ययन कर लेने के पश्चात् १७ वर्ष की अलपवय मे वि०स० १९९८ मे पार सोली मे आपने पूज्य गुरुदेव के चरणो मे प्रव्रज्या ग्रहण की। गुरुदेव के चरणों में वैठकर आपने १६ शास्त्र कंठस्थ किये। आपका स्वर मधुर एवं ओजस्वी है। जव प्रवचन करते है तो श्रोतागण झूम उठते हैं। जैनदर्शन के साथ ही अन्य दर्शनों का भी आपको अच्छा अध्ययन है। शास्त्रो की गम्भीर से गम्भीर वात भी आप इतने सरल और सहज ढंग से प्रस्तुत करते है कि तत्त्व की सूक्ष्म वातें भी श्रोताओं की समझ मे आ जाती हैं।

परम आदरणीय श्रद्धेय मेवाड़केसरी मोहनलाल जी महाराज साहव के जीवन मे सहिष्णुता एवं मधुरता विशिष्ट रूप से विद्यमान है। आपने वाल्यकाल से ही जैन संत की कठिन साधना स्वीकार की। क्षणभंगुर जीवन की गतिशीलता देखकर भाव्यात्माएँ प्रवुद्ध हो उठती हैं। गुरु का निमित्त पाकर आपश्री ने सभी सांसारिक सुख-साधन दुष्प्रवृतियो का त्यागकर आत्म साधना के राजमार्ग पर आरूढ़ हो गये।

आपका अध्ययन वहुत गहन गम्भीर है। संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी पर आपका पूर्ण अधिकार है। जैन आगमों का आपने तलस्पर्शी अध्ययन किया है। आपकी वक्तृत्वकला में जनमान को आकृष्ट कर लेने की विलक्षण क्षमता है। गम्भीर चिन्तन एवं

वाणी का जादुई असर ! इस उम्र में भी आपके कण्ठ मे माधुर्य विद्यमान है और जब आप शास्त्रो को अभिव्यक्त करते है तो जन-जन का मन सहज ही आपकी ओर आकर्षित हुए विना नहीं रहता है।

आपके ओजस्वी प्रवचनों मे अहिंसा और अभयदान की भावना रमी होती है। जैन साधु अहिंसा का जीता-जागता प्रचारक है। आपका एकमात्र ध्येय हिंसा को मिटाकर संसार मे अहिंसा का एकाधिपत्य स्थापित करना है। महाराजश्री मे जीव दया की भावना कूट-कूट कर भरी पड़ी है और आपके सदुपदेश का अमृतपान करके कितने ही भाई-वहनो ने हिंसा प्रवृत्ति को त्यागा है—इसका जीता-जागता उदाहरण है मेवाड जोगणी माता का स्थान, जहाँ पर सैकडो मूक पशुओं की वलि हर वर्ष दी जाती थी। जब मूक पशुओ की करुण चित्कार अव्यक्त रूप से आपको सुनाई दी तो आपके मन मे अभयदान की प्रेरणा स्फुरित हुई और हृदय की इसी तीव्र सवेदना, करुणा की मन्दाकिनी की तीव्रधारा और अभयदान की भावना के कारण आप चले हिंसा-परायण लोगो को समझाने 'जीओ और जीने दो' की आवाज को उन लोगो मे जागृत करने के लिए अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व से उन लोगो के हृदय मे सद्भावना पैदा की। उनके हृदय से हिंसा भावना को परिष्कृत करके कोमल वनाया और उन हिंसक लोगो के मन मे अहिंसा के वीज आपने जैन मुनी के सिद्धान्त एव आगमो के द्वारा व 'अहिंसा परमोधर्म.' का नारा गाँव-गाँव शहर-शहर तक गुंजायमान किया।

सन्त पुरुषो के विषय मे लिखना अत्यन्त दुष्कर कार्य है क्योंकि उनका व्यक्तित्व हिमालय जैसा महान होता है और कृतित्व अनन्त सागर की तरह विराट होता है। उनके विराट व्यक्तित्व और कृतित्व को शब्दों की सीमा मे आवद्ध करना मेरी लेखनी के वश की वात नही है। आपका आगमन मालव प्रान्त की शस्य श्यामला भूमि पर वडे ही सुखद क्षणो मे हुआ आपके दर्शनो का सौभाग्य मुझे इन्दौर के गीता भवन प्रागण मे मिला। आपका पदार्पण इन्दौर मे गाँधी नगर से उसी दिन हुआ था। आपकी मधुरवाणी सुनने का मौका मुझे वही मिला। उसके पश्चात् हम सभी दर्शन करने ऊपर कमरे मे गये वहाँ पर श्रीमती वापना ने हमारे परिवार के सदस्यों का परिचय श्रद्धेय महाराज साहव एवं वहाँ पर विराजित सभी सन्तो से करवाया। प्रथम परिचय प्राय. जल्दी एका एक नही होता है किन्तु इस सन्त समुदाय के दर्शनो के पश्चात् मुझे ऐसा लगा कि यह मेरा प्रथम परिचय है—कुछ ही दिनो मे अतीत की अमाप्य दूरी समाप्त हो गई।

आप सवो के सम्पर्क मे आने से मुझे अनुभव हुआ कि उनकी प्रवुद्ध विचार चेतना दृढनिष्ठा से मेरे अन्तर मन को अनिर्वचनीय शान्ति प्राप्त हो रही है; वस, जिज्ञासा जगने की देर थी कि आपके सुशिष्य आदरणीय महेन्द्रमुनि जी महाराज साहव के प्रवचनो का टेप रिकार्डर द्वारा संकलन चालू कर दिया। इतने अल्प समय मे

मेवाड़ केसरी श्री मोहनलाल जी महाराज

जन्म	दीक्षा :
वि. सं. १९७६ आषाढसुदि ७	वि. सं. १९९८
शाहपुरा (राजस्थान)	पाडसोली

हृदय बड़ा ही सरल आपका
समता-रस में रहते लीन।
गुरुवर मोहन, है जन-मोहन
ज्ञान-ध्यान में सतत प्रवीण।

श्री महेन्द्र मुनि 'कमल'

पुस्तक तैयार हो जावेगी उसकी कल्पना हमे भी न थी न महाराज साहब को थी। श्रद्धेय महाराज साहब की ओर से सदैव मुझे पूर्ण सहयोग मिलता रहा मेरा मनोबल सदैव बढ़ाते रहे। जब भी पुस्तक के विषय मे चर्चा होती—बड़े ही स्नेहयुक्त सम्बोधनों से बरबस अपनी ओर खींच लेते कभी भी प्रमाद नही आने दिया। आप श्री की निरन्तर प्राणदायक प्रेरणा से ही यह प्रवचन साकार रूप लेने मे समर्थ हुए और आदरणीय महेन्द्र मुनिजी ने तो इस कार्य मे अपनी शक्ति और बुद्धि तो क्या अस्वस्थ शरीर की भी परवाह न की। यदि यह कह दूँ कि प्राण भी उड़ेल दिया तो अतिशयोक्ति नही होगी।

गुरु कारीगर सरीखा, टांची वचन विचार।
पत्थर की प्रतिमा करे पूजा लहे अपार।

२०३३ का इन्दौर का चातुर्मास यदि एक ऐतिहासिक चातुर्मास कह दिया जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी गुरु महाराज की ही भाषा मे कि 'माणो इन्दौर रो चातुर्मास जीसो चातुर्मास तो पिछला वर्षा का कठा को ही नी हुओ।' और इदौर निवासियो की भी एक ही आवाज रही कि अनेको सन्त साध्वी मण्डल आये, किन्तु इस बार जैसी धर्म की गगा एव छटा देखने को कम ही बार मिली, पर्युषण के समय का रजवाड़े का जो दृश्य था देखते ही बनता था।

और मेरे लिये तो यह वर्षावास गगा की पवित्र धारा का स्रोत सिद्ध हुआ। मेरे जीवन की एक अतृप्त प्यास आप श्री एवं आपके सुशिष्य 'कमल' मुनिजी के प्रवचन की पीयूषधारा के कुछ संकलन एव पुस्तक मुनिश्री द्वारा अपने अभिन्न श्रावक के प्रति अभिव्यक्त की गई यह श्रद्धा युग-युग तक जन-जन की स्मृति मे रहेगी।

—भुवनेश्वरी जी० भण्डारी

चिन्तनशील कवि, मधुरवक्ता श्री महेन्द्रमुनि 'कमल'

अरावली की पर्वत शृंखलाओ मे कई छोटे-छोटे ग्राम नगर है, जिनमें लाखो लाख मनुष्य रहते है और सामान्य जीवन व्यतीत करते है। ग्राम वेगूं भी मेवाड़ के चित्तौड जिले का ऐसा ही छोटा किन्तु सुन्दर गाँव है। यह गाँव प्राकृतिक सुषमा से ओतप्रोत है, और इसकी माटी मे आध्यात्मिक सुरभियों का निवास है। यहाँ एक भाग्यशाली क्षण मे स्व० श्री मोहनलालजी गोखरू की धर्मपत्नी श्रीमती सुन्दरबाई की पुण्यशालिनी कोख से एक शिशु रत्न का जन्म हुआ जो आगे चलकर न केवल वेगूं का अपितु सम्पूर्ण मानवता का रत्न सिद्ध हुआ। कहावत है, 'होनहार विरवान के होत चिकने पात' यह उक्ति चरितार्थ हुई। मुनिश्री महेन्द्रकुमार 'कमल' के नटखट किन्तु आध्यात्मिक वैभव से सम्पन्न शैशव पर।

इतिहास साक्षी है कि प्रतिभा पर वज्रपात होता है। हमारे चरित्र-नायक जब छ. वर्ष के थे तभी अचानक इस दु:खद वियोग ने उन्हे झकझोरा अवश्य किन्तु तूफानो के बीच भी एक अकम्प व्यक्तित्व विकसित होता चला गया। संसार की क्षण-भगुरता ने उनकी आध्यात्मिक शक्तियो को उद्घाटित किया, अपने परम गुरु मेवाड़ केसरी महाराज साहब श्रद्धेय मोहनलालजी का सानिध्य पाकर उनकी ज्ञानान्जन शलाका से कमल मुनि के आध्यात्मिक पुरुषार्थ ने अँगड़ाई ली। वे संसार से विरक्त हो उठे और आत्म-साधना के राजमार्ग पर आरूढ़ हो गये। इस क्षेत्र मे वे इतने तेजस्वी सिद्ध हुए कि मेवाड मे उनके व्यक्तित्व का आलोक चारो ओर विस्तीर्ण होता गया।

इस वर्ष युवा कविरत्न मुनिश्री 'कमलजी' का वर्षावास इन्दौर मे हुआ। यह एक महत्त्वपूर्ण और अविस्मरणीय घटना है। प्रतिदिन इनके प्रवचन हुए। प्रवचन ज्ञान के खजाने है ये प्रेरणा और उत्साह के कभी न समाप्त होने वाले स्रोत है। इन प्रवचनो का सग्रह हम अपने विज्ञ पाठको को 'अन्तर्दृष्टि' शीर्षक से प्रस्तुत कर रहे है। यह प्रवचनमाला एक युवासन्त साधक के जीवन का दीव्य सन्देश लेकर अवतरित है। समस्त प्रवचन मर्मस्पर्शी हैं, युगानुरूप है और विश्व की अनेक समस्याओ पर प्रकाश डालती है, इनमे केवल एक कवि का भावाविष्ट हृदय ही नहीं है, अपितु

तत्त्वदर्शी चिन्तन भी है। इन्हें श्रोताओ ने मन्त्रमुग्ध होकर सुना है और इन्हें जहाँ तक सम्भव हुआ है अपने जीवन मे प्रतिविम्वित भी किया है।

मैंने अनुभव किया है कि मुनिश्री न केवल एक प्रवुद्ध कलाकार है अपितु मोलिक चिन्तक भी है, उन्होंने अपनी काव्यकला से आत्मस्थ सौन्दर्य को जीवन्त शैलियो मे अभिव्यक्त किया है। वे सफल वक्ता हैं और श्रोता के भीतर सुपुप्त अन्तर चेतना को जगाने मे पूरी तरह समर्थ है।

सन्त का जीवनदर्शन मनुष्य को उत्तरोत्तर श्रेष्ठ मनुष्य वनाने की ओर रुचि रखता है। वो अपनी प्रतिभा से सांसारिक व्यक्तियो को माँजता है और एक समत्वपूर्ण जीवन की ओर प्रेरित करता है। जैन धर्म और दर्शन मे गम्भीर विपयो की चर्चा है। अनेक मनीषी आचार्य हुए हैं। जिन्होने आध्यात्मिक तथ्यो का गहराई से मन्थन किया है। ऐसे आचार्यो की सख्या छोटी नही है। इन आचार्यो ने जहाँ एक व्यक्ति की समस्या पर विचार किया है वहीं दूसरी ओर अपने युग के सन्दर्भो का ध्यान रखकर विश्व समस्याओ पर भी अपना स्वस्थ और रचनात्मक चिन्तन प्रस्तुत किया है। उन्होने विगत और वर्तमान दोनो ही पीढियो के वीच न केवल समन्वय स्थापित किया वरन् दिशा ढूंढते तरुणो का नेतृत्व भी किया। उनका विशाल विराट चिन्तन सभी युगो मे भारत के कोटि-कोटि कण्ठों द्वारा न केवल सराहा गया, अपितु उसे मील के पत्थर की तरह भारतीय मनीषा का दर्शन भी किया।

इसी परम्परा मे हम मुनिश्री महेन्द्रकुमार जी 'कमल' का स्मरण करते हैं जिन्होंने अखिल मानवता को एक प्रामाणिक रचनात्मक और युगानुरूप दिशा देने का प्रयत्न किया है। उनके विचारो मे ऐसा आध्यात्मिक चुम्वक है जो धर्म से विमुख युवा पीढ़ी को स्वयमेव आकर्षित करता है। मुनिश्री न केवल एक ओजस्वी वक्ता है, अपितु गायक और सगीत मर्मज्ञ भी है। उनकी वाणी मे ओज व प्रवाह है और अपने श्रोताओ को अपने निष्कपट चिन्तन से प्रभावित करने की अपूर्व ऊर्जा भी है। एक संयमपूर्ण जीवन सूर्य की तरह निरन्तर श्रमनिष्ठा, स्वाध्याय मे गहरी रुचि, समस्याओं के प्रति एक सवेदन, जागरूक भाव, चिन्तन मे उदारता और अनेकान्त की झलक कुछ ऐसे गुण है, जो उन्हे अन्य सन्तो से भिन्न तो करते ही है, विशिष्ट भी वनाते हैं।

—भुवनेश्वरी जी० भंडारी

प्रवचन खण्ड

परिशिष्ट

श्री गजेन्द्रसिह भण्डारी स्मृति-परिशिष्ट

संदेश एवं प्रेरक संस्मरण

श्रद्धांजलियाँ

लेखनी की नोंक से गुदगुदाती स्नेहिल यादें

संस्मरणों के आइने में

●●

1

ज्योतिर्मय दशा

□

ज्योति की खोज है। पर वह ज्योति, परम ज्योति, कही बाहर नही, तुम्हारे भीतर ही छुपी है। अज्ञान, मोह और कषाय के आवरण उसे ढके हुए है। जब ये आवरण हट जायेंगे, तो वह अनन्त प्रकाशपुंज, आलोक की अनन्त-अनन्त किरणें जगर-मगर कर अन्तर्लोक को ज्योतिर्मय बना देगी। आइये, पढ़िये ज्योतिर्मयदशा प्राप्त करने की सरलतम परिभाषा.....................

१

ज्योतिर्मयदशा

□ □

अब विष से छुटकारा पाकर, अमृतमय बन जाओ।
आओ निर्विकार जीवन की, नूतन नींव लगाओ ॥

आत्मा का जो मूल स्वरूप है, उसे आलोकमय माना गया है, जैसे कि कर्म मैल के पूरे तौर पर हट जाने के बाद जब आत्मा सिद्ध स्वरूप का वरण करती है तो वह अपने मूल रूप मे पहुँच कर पूर्ण ज्योतिस्वरूप बन जाती है—मात्र आलोक-मय रह जाती है। आत्मा का यही आलोक साधना के बल पर जितने अंशो में प्रकट होता जाता है, उतने ही अंशो मे उसका विवेक भी जाग्रत बनता जाता है, क्योकि आलोक को विवेक का ही प्रतीक माना जाता है।

जीवन मे जब विवेक दृष्टि जाग्रत एव सतर्क बनती है, तभी वह आत्मा अपने विकास की दिशा खोजने लगती है और सही दिशा पाकर उस ओर गति करने लगती है।

मोक्ष : अन्तिम लक्ष्य

सुप्रसिद्ध आचार्य उमास्वाति ने विवेकदृष्टि का सही दिशाबोध कराने के लिये तत्त्वार्थसूत्र मे अन्तिम लक्ष्य को स्पष्ट किया है—

"सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग ।"

अर्थात्—मोक्ष के अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन एवं सम्यक्चारित्र के मार्ग पर ही चलना पडेगा। इन तीनो तत्वो मे सम्यक् दर्शन है, उसे ही सही विवेकदृष्टि के नाम से जान जा सकता है। आत्मभाव के

आलोक के अन्दर जब कोई प्रविष्ट होता है—तभी उसकी विवेक दृष्टि जाग्रत बनती है उसका दर्शन स्पष्ट बनता है। जहाँ पर सम्यक् दर्शन का भाव है याने कि सही विवेक दृष्टि एवं सही आस्था है, वहाँ सम्यक् ज्ञान का विस्तार सहज बन जाता है और उसके बाद जिस चारित्र्य की आराधना की जाती है, वह सम्यक् होता है। इस प्रकार तीनो तत्त्वो के माध्यम से मोक्ष की मंजिल पर पहुँचा जा सकता है।

किन्तु जब विवेक दृष्टि सजग न बने, जीवन के हित एवं अहित को सोचने वाले मौलिक प्रकाश की रश्मियाँ प्रकट न हो एव आत्म-रमण की दिशा मे गति करने वाला चरित्र क्रियाशील न बने तो यह मोक्ष का मार्ग कैसे सुलभ हो सकता है? आज देखे तो सामान्य जन ने अपनी विवेकदृष्टि को शिथिल या कुठित बना कर इस मुक्ति के मार्ग को भुला दिया है।

मुक्ति के मार्ग को व्यक्ति ने जब से भुलाया है, एक प्रकार से उसने अमृत को भुला दिया है। आप ही बताइये कि अमृत को भुलाने वाला किस पेय को पीएगा? अमृत को भुलाकर वह अपने हाथ में जहर को ले आया है। कहने की आवश्यकता नही कि जहर से प्यार करने पर जिन्दगियो से हाथ धोना ही पडता है। जिस जहर का मैं जिक्र कर रहा हूँ, वह ऐसा विचित्र जहर है, जिसने अनन्त-अनन्त आत्माओ को सम्मोहित एव पीडित बनाकर ससार मे भटकने के लिए छोड दिया है।

स्वाद मधुर, परिणाम कटु

यह जहर खाने मे मधुर होता है, किन्तु उसे खाने के बाद उसका जो फल प्रकट होता है, वह अत्यन्त ही कटु होता है। इस जहर का ही कुप्रभाव देखा गया है कि आत्मा कई बार मोक्ष के सान्निध्य तक पहुँच कर फिर ससार मे भटक गई और अपने मिथ्यात्व को तोड नही सकी। इस जहर की तुलना आगमो मे एक किंपाक-फल के जहर से की गई है। किंपाकफल सम्पूर्णरूप से जहर का पिंड होता है, किन्तु वह जहर ऐसा होता है कि खाने मे बहुत ही मधुर प्रतीत होता है। इस कारण किंपाकफल खाते समय बडा आनन्द देता है, लेकिन जब वह विष फूटता है तो उसका परिणाम बडा ही भयावह होता है। स्वाद मे मधुर और दीखने मे अत्यन्त मनोरम-इस विषैले किंपाकफल के दृष्टान्त से ज्ञानियो ने ससारी आत्माओ को सावधान बनाया है।

जरा आइये, हम भी विचार करें कि इस जहर की वास्तविकता के प्रति क्या हमारी विवेकदृष्टि जाग्रत भी बनी है अथवा मूर्च्छित बने इस जहर को निरन्तर खाते रह कर हम अपने जीवनतत्वो का विनाश कर रहे हैं? आज नागपचमी का दिन जो

है, अत यह भी देखे कि इस तरह के जहर को हम प्रतिदिन अपने जीवन मे फैला रहे है या जीवन मे से उसे निकाल रहे है ? यदि किंपाकफल के समान इस जहर से अविवेकी दृष्टि के कारण प्यार किया जाता है तो उसके कटुपरिणामो को भुगतने की भी तैयारी रखनी होगी। वे परिणाम कैसे होगे—इसका उत्तर कवि की ही भापा मे जानिये—

फल किंपाक मधुर होते है,
किन्तु भक्षक फिर रोते है।
यों विकार क्षण मधुर परन्तु,
जन्म-जन्म में विष वोते है।

अब विष से छुटकारा पाकर,
अमृतमय वन जाओ।
आओ, निर्विकार जीवन की,
नूतन नींव लगाओ॥

किंपाकफल के आकर्षक रग-रूप को देख कर तथा उसके मधुर स्वाद मे मग्न वन कर उसका भक्षक उसे देखते व खाते समय अपनी अन्तिम स्थिति को भूल जाता है और आसक्त होते हुए उस जहर से प्यार कर लेता है, किन्तु वह जहर इस जन्म को डुवोता ही है, लेकिन कई भावी जीवनो को भी विपमय वना कर छोड देता है। किंपाक फल जैसा ही जहर होता है—कपायवृत्ति का जहर—जिसका अविवेक से पान करती रह कर आत्मा अपने आलोक से हीन वनी रह कर अधेरी गलियो मे भटकती रहती है।

दाहक ज्वालाएँ

कपाय का भाव वह विप का वीज है, जो आत्मा के प्रागण को विपैला वनाकर उसमे राग-द्वेप की दाहक ज्वालाएँ भड़का देता है। अनन्त-अनन्त भवो से वीतराग की वाणी उद्घोप करती रही है कि आत्मा मे जव यह विष का वीज पनपता हुआ चला जाता है तो जन्म-जन्मान्तर तक पतन का पीछा नही छूटता। ससारी आत्माओ ने अतीत के अन्दर इस विप से वहुत प्यार किया है—कपायगत भावो मे आनन्द मनाया है और उससे घनघाती कर्मो का वध किया है। ऐसी अवस्था मे उन कर्मो का फल तो भोगना ही पड़ेगा।

यह आपको अटपटा लग रहा होगा कि आप जहर से प्यार कर रहे है। भला जहर को कौन चाहता है ? केवल वही चाह सकता है, जिसको अपनी जिन्दगी

से प्यार न हो। आप यह भी मानने को तैयार नही होगे कि आपको अपनी जिन्दगी से प्यार नही है। किन्तु आप गभीरतापूर्वक विचार कीजिये—महावीर-दर्शन की गहराई मे उतरिये तो आपको प्रतीत होगा कि आप जहर से प्यार कर रहे हैं। मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि क्या आप अपने जीवन मे क्रोध के जहर से लिप्त नही हैं? क्या आप मान के जहरीले पर्वत पर बैठ कर गरूर मे नही ऐंठते? क्या आप माया का कंटीला जहर पी कर दूसरो को कष्टो मे नही उलझाते? क्या आप लोभ के जहर से मदमस्त बन कर अनैतिकता के गर्त मे नही गिरते? क्या आप राग और द्वेष की दाहक ज्वालाओ से दूसरो को उत्पीड़ित नही बनाते?

क्या कपाय का यह सारा जहर आपको महसूस नही होता? हकीकत मे किपाक का फल खाते समय उसके जहर की अनुभूति नही होती—उस समय तो उसके स्वाद का आनन्द आता है। उसी प्रकार रागद्वेप की उत्तेजना मे या क्रोध, मान, माया, लोभ की अविवेकी अवस्था मे आपको परिणाम की अनुभूति नही होती है, लेकिन जब उसका विष आत्मतत्त्व की रग-रग मे व्याप्त होता जायगा और वह अपना दुष्प्रभाव दिखाना शुरू करेगा, तब जीवन के सर्वनाश के सिवाय और कुछ भी दिखाई नही देगा। उस विष के फलभोग से किसी तरह छुटकारा नही मिलेगा। कपाय की ज्वालाओ का दाह कई जन्मो तक जलाता रहता है।

मोह से मुक्ति, जहर से मुक्ति

राग एव द्वेप के इसी मधुर जहर के कारण आत्म-विकास को कितनी क्षति पहुंचती रही है और इसी विचार से मैं जाग्रति के स्वर मे आप से पूछना चाहता हूँ इन्द्रपुरी के निवासियो! जरा बोलिए कि आप इस मधुर जहर को कब तक पीते रहोगे?

अगर यह जहर नही छूटता तो समझिये कि विवेकदृष्टि अभी जागी नही है। विवेकदृष्टि नही है, तो सम्यक्दर्शन कहाँ है? बिना दर्शन के ज्ञान और चारित्र कहाँ से आयगा? फिर सोचिये कि मोक्ष की मजिल कितनी दूर है?

जैनदर्शन स्पष्ट कहता है कि राग-द्वेष आदि कपायो के विषमय भावो को मिटाने के लिये जब तक कठोर साधना का पाँव नही उठता, तब तक मोक्ष का मार्ग भी नही मिलता। द्वेप यदि जटिल है तो राग जटिलतर है। समझने की आवश्यकता है कि द्वेष और राग के भाव कैसे होते है, वे क्यो जागते है तथा क्यो कर्मबन्धन का कारण बनते है?

ससार के विभिन्न पदार्थो मे—विभिन्न तत्त्वो मे अथवा विभिन्न व्यक्तियो मे प्रत्येक प्राणी किन्ही को अपने लिये प्रिय मानता है और अन्य को अप्रिय। अप्रिय

पदार्थों, तत्त्वो तथा व्यक्तियों से वह घृणा करता है—उन्हें चाहता नही। मनोभावो की ऐसी जो अवस्था होती है उसे द्वेप कहते हैं। वह अप्रियों के साथ द्वेप रखता है। जिसके साथ द्वेप होता है—उनके अस्तित्त्व को अपने सामने देख कर उत्तेजना होती है तथा द्वेप उन्हे प्रत्येक प्रकार से हानि पहुँचाने को तत्पर वनाता है।

राग को द्वेप का विपरीत भाव कहा गया है। राग अपने प्रिय पदार्थों, तत्त्वो वा व्यक्तियो के प्रति होता है। जिन्हे चाहा जाता है, उनके प्रति घना ममत्त्व हो जाता है एव उस मोह-भरी स्थिति मे कई प्रकार के पापकार्यो मे प्रवृत्ति होने लगती है। इस प्रकार द्वेपवश एव रागवश जो उत्तेजना होती है, वह चाहे क्रोध की उत्ते-जना हो या मोह की—उनका अन्त सदा हिंसामय ही वनता है। इसी कारण कपाय की वृत्तियो को ज्वालाओ की उपमा दी जाती है। चिकने भावो की दृष्टि से द्वेप की अपेक्षा भी राग को छोडना अतिकठिन होता है क्योंकि इसके प्रतीकात्मक भाव होते हैं मोह व ममता के। राग छोडने का महत्त्व इस शब्द से ही स्पप्ट है कि मोह-ममता को सर्वथा छोड़ देने वाली विभूति को हमने वीतराग कहा हे।

और वीतराग वनने का मार्ग है—कठोरतम साधना का मार्ग—सम्यक् दर्शन, ज्ञान एव चारित्र की आराधना का मार्ग। इसके मूल मे होना चाहिए—कपाय से मुक्ति का संकल्प और यह सकल्प परिपुप्ट होता रहे विवेकदृप्टि के विकास के साथ। मोक्ष के लक्ष्य को प्राप्त करने का यही पाथेय है।

कषाय का दुष्प्रभाव

भगवान् महावीर ने कपाय के जहर के विपय मे कहा था कि रागद्वेप के मनोभाव ही मुख्यरूप मे भवभ्रमण के कारण है। आज इस नागपचमी के दिन नाग की पूजा की जाती है, किन्तु क्या आप जानते हैं कि ऐसा क्यो आरम्भ हुआ? जैनदर्शन से आप परिचित है और आपने चडकौशिक नागराज का नाम व कथानक भी सुना ही होगा। चडकौशिक-सा भयकर विप-धर अपने पूर्वभव मे अमृतनिधि मुनि था। मुनि निर्ग्रंथ होता है और 'तिन्नाण तारयाणं' कहलाता है। किन्तु मुनि भी अगर कषायो के जहर से भभकने लग जाय तो उसका सारा अमृत भी जहर हो जाता है। उस मुनि को इसी जहर के कारण अपने अगले भव मे चडकौशिक सर्प होना पडा, जिसका भयकर विप कराल काल वन कर भभका कि आकाश मे उड़ते पक्षी भी उसकी फुत्कार से मृत्यु को प्राप्त हो जाते। उसके घातक विप का आतक चारो ओर फैल गया।

कपाय-सेवन का कुप्रभाव देखिये कि एक मुनि—एक साधक अपने अमृतमय जीवन से पतित हो कर स्वयं विप का भण्डार वन गया। किन्तु चंडकौशिक सर्प

के जीवन मे इसी तथ्य का दूसरा पहलू भी सामने आता है। इसके ही जीवन मे कषाय-सेवन का कुप्रभाव दिखाई देता है तो कषाय-त्याग का सुप्रभाव भी परिलक्षित होता है।

भगवान् महावीर तो समदृष्टि थे। उनके ज्ञान मे चण्डकौशिक का वर्तमान भव था, तो पूर्वभव भी था और वे जानते थे कि यह जीव कपाय से मुक्त भी होगा। तब उस जहर को फिर से अमृत मे बदलने के लिए महावीर तत्पर हो गये। सारे विषाक्त वातावरण के बावजूद महावीर जब चडकौशिक की बाबी पर ध्यानस्थ खडे हो गये तो उस सर्प को भी कम आश्चर्य नही हुआ। उसे दुस्साहस मान कर चडकौशिक उत्तेजित हो उठा—उसने महावीर के पैर को डस लिया। दूध-सा सफेद खून और मुह पर शान्त मुस्कुराहट—वह सर्प तो ठगा-सा देखता रहा जिस पर कि उसका विप सर्वथा प्रभावहीन सिद्ध हुआ। भगवान् के प्रतिबोध से उसे अपना पूर्वभव याद आया और उसने अपनी आत्मा को समस्त रागद्वेष के भावो से मुक्त बनाने का कठोर सकल्प ले लिया। मुह बाबी मे रखा और बाकी शरीर बाहर। बदले की भावना से कईयो ने उसे यातनाएँ दी तो कई उसकी पूजा करने लगे। सब उसने समभाव से सहन किया। तभी से नागपूजा और नागपंचमी चल पड़ी है।

भगवान् ने चंडकौशिक को प्रतिबोध दिया—'**चडकोशिया! बुज्झह, बुज्झह**' और चंडकौशिक ने अपने जहर को कठोर साधना के बल पर बाहर निकाल दिया—फिर से अपने जीवन को अमृतमय बना लिया। क्या वीतराग-वाणी आपको प्रतिबोधित नही करती है? फिर इस जहर को आप भी तो निकालने का संकल्प कीजिये।

उपासना अमृत की

जहर को जो भी पियेगा—चाहे वह श्रमण हो या श्रावक—उसके कुप्रभाव से उसे पीडित होना ही पडेगा। शरीर मे विप के व्याप्त होने पर क्रन्दन फूट ही पडता है किन्तु वह क्रन्दन भी मुस्कुराहट मे बदल सकता है, यदि कोई उस विष को बाहर निकाल दे। इसी प्रकार रागद्वेषादि कपायो के जहर को अगर बाहर निकाल लिया जाय एवं अमृत की उपासना की जाय तो आत्मा विवेकदृष्टि के आलोक से आलोकित बन सकती है तथा मोक्षमार्ग पर आगे बढ सकती है। एक कवि ने इस सन्दर्भ मे क्या ही अच्छा कहा है—

सम्यक् दर्शन, सम्यक् संयम, सम्यक् होवे ज्ञान
उसी को मिलते है भगवान्

चांद-सा निर्मल, फूल-सा कोमल
उज्ज्वल सूर्य समान
उसी को मिलते हैं भगवान्

डसे न जिसको, क्रोध का काला, करे न मद का पान
माया का भी कर ले अवसान
उसी को मिलते हैं भगवान्

जले न क्रोध की ज्वाला, शान्त धीर हो नम्र महान्
त्यागी निर्लोभी गुणवान्
उसी को मिलते हैं भगवान्

आज जीवन की यात्रा पर आप भी चल रहे है, हम भी चल रहे है। आप भी साधना कर रहे हैं, हम भी साधना कर रहे है। जव कोई इन्सान किसी राह पर चलता है—जीवन के मैदान मे आगे वढता हे तो क्या कारण है कि मंजिल फिर भी नजदीक नही आती ?

चीखे, चिल्लाए, उछले, कूदे और खूब टहले
हिर फिर के हम वही रहे, जहाँ थे पहले।
पर जरा बोलिए कि आखिर ऐसा क्यों ?

वात स्पष्ट है। आज कपाय के वन्धन जिस रूप मे जीवन को कसे हुए हैं, ये कदम उस कारण आगे नही बढ पाते हैं। कदम आगे नही वढेगे तो मजिल नजदीक कैसे आ सकेगी ? कषायो का विप निकले बिना कैसी भी साधना या आराधना सार्थक नही हो पाती है। इसलिए आत्म-विकास की दिशा मे सर्वप्रथम प्रयास यही होना चाहिए कि राग द्वेपादि कपायों के जहर को अपने जीवन की प्रत्येक वृत्ति एव प्रवृत्ति मे से वाहर निकाल फैंके तथा समता रूपी अमृत की निरावाध उपासना करे।

निर्माण की ओर

एक ज्ञानगम्भीर गुरु ने अपने आतुर शिष्य के भीतर से जहर निकालने की किस प्रकार चिकित्सा की—यह कहानी मैं आपको इसलिए वता रहा हूँ कि आप भी इस जहर की गहरी मार को समझ सकें।

एक शिष्य अपने गुरु के आदेश से तपस्या करने लगा—तपस्या को वह निरन्तर वढाता हुआ चला जा रहा था। लम्बी तपस्या के वाद वह गुरु के पास पहुँचा और वोला—गुरुदेव, मैंने इतनी कठिन तपस्या कर ली है। अव वताइए कि मेरे उत्थान की दिशा कव प्रशस्त होगी—कव मेरे अन्दर प्रकाश विखरेगा ? गुरु पहुँचे हुए योगी थे, उन्होने दो मिनट तक शिष्य की अन्तर्वृत्तियो का सूक्ष्म निरीक्षण

किया और स्थिति को समझकर बोले—'अरे शिष्य, तू तपस्या कर रहा है, किन्तु तेरे लिए मेरा सन्देश है कि अभी और पतला कर—और पतला कर।' शिष्य बडा झल्लाया, क्योकि उसने गुरु-सन्देश के रहस्य को अपनाया नही। फिर भी गुरु आज्ञा विचारणीया मान कर वह पुन. तपस्या करने के लिए चला गया।

पहले से भी अधिक समय तक शिष्य ने और तपस्या की एव फिर गुरु के पास लौट आया। उसने फिर पूछा—'मेरा मोक्ष कब होगा, गुरुदेव ?' गुरु ने फिर पैनी नजर डाली और फिर कह दिया—'अभी और पतला करो तथा इसके लिए और तपस्या करो।' लाचार होकर शिष्य फिर तपस्या करने चला गया। कठोर तप से उसका शरीर जर्जर हो गया तो उसने सोचा कि अब तो गुरु उसे मुक्ति का मार्ग अवश्य ही बता देगे। वह गुरु के पास लौट आया—बडी आकुलता से उसने फिर अपने उद्धार की बात पूछी। गुरु ने फिर वही पहले वाला उत्तर दे दिया। तब तो शिष्य तिलमिला उठा—उसका दवा हुआ कपाय का जहर उबल पडा और अपना अगूठा तोड कर गुरु के सामने फेक दिया। उसने तपस्या की थी, किन्तु उस जहर को नष्ट नही कर सका था—इसी कारण गुरु उसे बार-बार वापिस भेज देते थे। उसकी सफल चिकित्सा हो ही नही पा रही थी।

तो समझने की बात यह है कि जीवन के निर्माण का तत्व कपायो को जीतने मे रहा हुआ है। जब तक कपायो की ज्वाला जलती रहेगी, शीतलता का सचार नही हो सकता एव बिना शीतलता के कही फूल खिल सके है ? जीवन के फूल तभी खिल सकेंगे, जब राग-द्वेपादि के कटु मनोभावो को नष्ट कर दिया जाय। जीवन-निर्माण के इस तत्व को गहराई से समझने की आवश्यकता है।

आत्मोन्नयन मे खुले नयन

जीवननिर्माण के इस तत्व का चिन्तन करने मे जैनदर्शन मे उल्लिखित चौदह गुणस्थान बडे सहायक हो सकते है। ये चौदह गुणस्थान एक प्रकार से आत्म-विकास के चौदह सोपान है, जिनसे प्रतीत होता है कि आत्मा किस प्रकार से आत्मीय गुणो को धारण करती हुई ऊपर चढती है, लेकिन कब कपाय के एक झटके से ही ऊपर से नीचे आ गिरती है ? कपायमुक्ति के क्रम मे आत्मा अपनी कठिन सुदृढता के साथ टिकी रहे और ऊपर चढती रहे तो फिर ऊपर ही ऊपर के सोपानो से फिर उसके नीचे गिरने की सम्भावना नही रहती। पूर्ण कषायमुक्ति की अवस्था को ही वीतराग या अरिहन्त कहा गया है।

पहला गुणस्थान मिथ्यात्व का है, जो सर्वथा अज्ञानमय होता है। साधक जब इससे ऊपर चढ़ता है तो उसकी दो श्रेणियाँ हो जाती है—एक उपशमश्रेणी एव

दूसरी क्षपकश्रेणी। उपशमश्रेणी मे कर्मो का सर्वथा नाश नही होता—वे राख के अंगारे की तरह दब जाते हैं तो क्षपकश्रेणी मे कर्मो को सम्पूर्णत नष्ट कर दिया जाता है। उपशमश्रेणी के कर्म इस कारण सयोग मिलने पर फिर से भभक उठने वाले अंगारे की तरह सक्रिय हो उठते है। उपशमश्रेणी वाला साधक भी सहयोगी परिस्थितियो मे दशवे गुणस्थान तक पहुँच जाता है। इतने ऊँचे सोपान तक चढ जाने के बावजूद मूल मे उसकी दुर्वलता समाप्त नही हो सकी—जहर नही निकल सका तो उसकी भभक के अनुसार उसका नीचे पतन हो जाता है। किन्तु इस बीच यदि उपशम-श्रेणी का साधक अपने जहर को क्षय कर डालता है तो वह बारहवे गुणस्थान तक चढ सकता है एव तदनन्तर योगो का निरोध करते हुए अयोगी की सीढी पर भी चढ जाता है।

इस विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि कषाय की सम्पूर्णत समाप्ति न होने पर आत्म-विकास के चौदह सोपानो मे से दशवे सोपान तक चढ आने पर भी वह नीचे के पहले सोपान तक गिर सकता है। आत्मा को गिराने मे इस प्रकार कषाय इतनी शक्तिशालिनी होती है। शिष्य का दृष्टान्त जो मैने ऊपर बताया, इसी सत्य को प्रकट करता है कि कठोर से कठोर तपस्या कर ली तथा और प्रकार से उच्चतर साधना भी सम्पादित की, फिर भी अगर कषाय पर विजय प्राप्त नही की तो उस कषाय का एक ही उवाल उसकी सारी साधना को पलभर मे भ्रष्ट कर सकता है।

मैं भी आपको तप करने के लिये कह रहा हूँ—तेले करने का आग्रह कर रहा हूं, क्योकि मै चाहता हूँ कि पूर्वसचित कर्मो को नष्ट करने एव जीवन मे ज्योति जलाने के लिये हर इन्सान को कुछ तप करना चाहिए और वह तप ऐसा होना चाहिये जिससे उसकी कषाय-वृत्तियाँ पतली पडे।

विश्वासभरे कदम

मैं तो विश्वास के साथ चलता हूँ और मानता हूँ कि विश्वास के आधार पर ही सफलता मिलती है। जिस व्यक्ति का विश्वास सुप्त हो चुका हो, भला उसका भी कोई जीवन है। कवि कहता है—

पखो पर विश्वास नही, वह परिन्दा क्या,
चरणो पर विश्वास नही, वह चरिन्दा क्या।
श्वास लेने का नाम ही कोई जिन्दगी नही,
जिसको अपने पर ही विश्वास नही, वह जिन्दा क्या।

मेरा तो यही कहना है कि आप साधना करो, पुरुषार्थ को जगाओ और विश्वास को सुदृढ बनाओ तो कोई कारण नही कि आप ऊँचे से ऊँचे लक्ष्य को प्राप्त न कर सको। कोई कारण नही कि जीवन मे बहार न आए—चमकती हुई रौनक न आए। मोक्ष का द्वार भले ही जम्बुस्वामी ने बन्द कर दिया होगा, किन्तु उसकी चावी अपने पास है। साधना की चावी—तपस्या की चावी अपने पास है और उससे कभी न कभी वह द्वार अवश्य खुलेगा ही।

इसमे ध्यान मे रखने की मुख्य बात यही है कि किसी भी स्तर पर कषाय के मधुर जहर मे न फसो और जो जहर पहले से अन्दर रमा हुआ है, उसे विवेकी साधना के बल पर बाहर निकालो। किन्तु यह कार्य आत्मविश्वास से ही सफल होगा और तब अमृत अवश्य मिलेगा।

2

बाहर से कुछ दीखे नहीं,
भीतर चमके नूर !

□ □

हाड-मांस-चाम का यह पुतला, यह मृण्मय देह, बाहर से भले ही गोरा या काला, सलोना या सांवला प्रतीत हो, पर भीतर में, सब के भीतर में एक दिव्य ज्योति-पुंज, एक विचित्र विभास्वर तेज विद्यमान है, जिसका दर्शन होते ही आँखें तृप्त हो जाती है, मन विमोहित हो जाता है। यहाँ पढिए उस भीतर के नूर की व्याख्या और कीजिए 'रूहानी-नूर' का दर्शन एक महान् सन्त की छवि में ....

२

बाहर से कुछ दीखे नहीं, भीतर चमके नूर !

□ □

आज हमारा हृदय श्रद्धा एव भक्ति से उछल रहा है, क्योकि आज एक ऐसे आदर्श सन्त की जन्मजयन्ती है, जो हमारे आचार्यदेव हैं। अत उन वन्दनीय महा-महिम सन्तरत्न परमपूज्य आचार्यदेव श्रीआनन्दऋषिजी महाराज के चरणो मे शत शत वन्दन !

आचार्य देव के आत्मिक गुणो के सम्वन्ध मे आप लोगो के सामने अभी-अभी इतनी महिमा गाई गई है। अत मै और क्या कहूँगा ? फिर भी उस विराट् व्यक्तित्व के विषय मे जितना कुछ कहा जायगा, वह भी पूर्ण नही होगा। महापुरुषो के चरित्र को शव्दो के समार मे वाँधने की ताकत न तो मेरे मे है और न मेरे विचार मे, न अन्य किसी मे होती है। उनका चरित्र तो नित्य प्रति महनीय एव वन्दनीय ही होता है।

मेवा में समर्पित

सन्तपुरुष का हम जो गुणगान करते हैं, वह उस सन्तपुरुष के लिए नही, अपितु हमारे स्वय के आन्तरिक आनन्द के लिए होता है। गुणगान जितना मार्मिक होगा—हृदय की गहराइयो को छू लेने वाला होगा, आनन्द का परिमाण भी उन्ही अशो मे अभिवृद्ध होता जायगा। और यदि हम सन्त-सेवा मे अपने आपको सम्पूर्णत. समर्पित कर देते है, तो आन्तरिक आनन्द का ऐसा अवाध प्रवाह फूट पड़ेगा, जो निरन्तर प्रवाहित होता रहेगा एव हृदय को सदा सदा आह्लादित करता रहेगा।

आचार्यदेव के सन्त-व्यक्तित्व मे भी जव हम अपनी श्रद्धा एव भक्ति को समाहित करेंगे तो ऐसी ही आनन्द की धारा प्रवाहित होने लगेगी। फिर आचार्यदेव

का तो नाम ही आनन्द है । इस लक्ष्य से हमारे हृदय की श्रद्धा—हमारे हृदय की भक्ति आज के दिन विशेषरूप से उनके चरणो मे समर्पित है और मुझे लगता है कि आप लोग भी इसी प्रकार की तरल भावना प्रदर्शित कर रहे है । और क्यो न करे ? क्या आपको आनन्द की चाह नही है ? आनन्द को कौन नही चाहता ? सबको आनन्द और सुख अभीप्ट होता है । मन से प्रत्येक प्राणी आनन्द की ही कामना करता है । यह दूसरी वात है कि उसमे उस आनन्द को ग्रहण करने की कैसी और कितनी क्षमता है तथा उसका विवेक सच्चे आनन्द की दिशा मे जाग्रत है अथवा झूठे आनन्द के जंगल मे भटक रहा है ? सन्तसेवा मे समर्पित होने का वास्तविक अभिप्राय यही है कि वाहर से दिखाई देने वाले आनन्द के नकलीपन मे न फँस कर हृदय को निरन्तर आह्लादित करने वाले सच्चे एव स्थायी आनन्द को ग्रहण करने की दिशा मे हम उन्मुख वनें ।

सन्त : सम्प्रदायातीत, वर्गातीत

आज की धर्म-सभा का उल्लास यह तथ्य प्रकट कर रहा है कि छोटे वडे सभी के मन आचार्यदेव के प्रति अपने श्रद्धा सुमन चढाने की उमंग मे आनन्द की लहर से लहरा रहे है । वच्चा-वच्चा इस जयन्ती-समारोह को मनाने के लिए प्रसन्नता से उछल रहा है । आज सुवह प्रार्थना के समय छोटे-छोटे वच्चे भी आये तो मुझे पूछने लगे—महाराज, आज तो आप प्रवचन मे जल्दी पधारेगे न ? आचार्यदेव के लिए आप से वहुत कुछ सुनने के लिए हम लालायित रहेगे । आचार्यश्री के प्रति, आप सोचिये कि छोटे-छोटे वच्चो के मन मे भी कितनी प्रगाढ भक्ति है ? इसे देख कर एक मुक्तक अभी-अभी मेरे मानस मे उभर आया है—

छोटे वड़े सभी के मन
आज आनन्द की लहर से लहराये हैं ।
वच्चे-वच्चे के हृदय के अन्दर
श्रद्धा और भक्ति के दीप जगमगाये हैं ।।

वहुत कुछ सोचने के वाद मुझे तो यों लगता है कि—आचार्यश्री का जन्म-समारोह मनाने देवलोक से ये देवता उतर आये हैं ।

सन्त किसी भी वर्ग, समूह या सम्प्रदाय के नही होते । उनका जीवन तो अतीव विस्तृत एव व्यापक होता है । उनके कल्याण-क्षेत्र की भी कोई सीमा नही होती । उनकी प्रत्येक प्रवृत्ति समग्र प्राणी-समूह के कल्याण हेतु प्रवृत्त होती है । उन्हे कोई वन्दे या कोई निन्दे—इसका भेद भी उनके मन को प्रभावित नही करता । इस दृष्टि से जव भी किसी सन्तजन का गुणगान किया जाता है, तो वह उस व्यक्ति का

गुणगान नही, उसके सन्त-जीवन का गुणगान होता है। गुणी की पूजा उसके गुणो के कारण होती हैं तथा पूजा का उद्देश्य होता है--वन्दना का लक्ष्य होता है गुण-ग्राहकता— कि उन गुणो का हम केवल गान करके ही न रह जाय, बल्कि उनका अनुसरण करने की ओर भी प्रवृत्त वनें।

गुणीजनों को देख.......

सन्तजीवन विश्व मे सदा ही अनुकरणीय माना गया है और इन्ही महान् सन्तो के जीवन की महान् गरिमा से परिपूर्ण यथार्थ की अभिव्यक्ति करते हुए एक मनीषी ने लिखा था—

साध्नोति स्वपरकार्याणि, समुचितरूपेण इति साधु ।

अर्थात् जो साधक निज के और अन्य के कल्याण के कार्यो को समुचितरूप से साधता है, वही साधु है। ऐसे महान् साधुत्व के धारक हमारे आचार्यदेव है, जिनका जीवन एक ओर तो आत्म-साधना के मार्ग पर अवाधगति से अग्रसर हो रहा है तो दूसरी ओर विश्व के महान् मगल की आकांक्षा और तडप ले कर लोक-कल्याण मे प्रवृत्त हो रहा है। यही कारण कि आचार्यदेव इस वृद्धावस्था मे भी सर्वत्र पादविहार करते हुए विचरण कर रहे हैं। वे जन-जन के हृदय मे मानव-धर्म की—जीवन के पावन कर्त्तव्यों की एक ज्योति जला रहे हैं। ऐसे सन्तो के वल पर ही हमारा भारतवर्ष गौरवान्वित होता रहा है।

हमारी गौरवमय सस्कृति की आधारशिला यह रही है कि हम गुणी-जनो के गुणो को सराहते रहे हैं और अपने सामर्थ्य के अनुसार उन गुणो का अनुकरण भी करते रहे हैं। यही कारण है कि गुणग्राहकता की अक्षुण्ण परम्परा वनी रही है और हमारी सस्कृति मूलगुणो से सम्पन्न दिखाई देती रही है। भारतीय सस्कृति की प्राचीनता का यही रहस्य है।

किन्तु इस परम्परा का निर्वाह करने का सभी को अपना उत्तरदायित्त्व मानना चाहिए और वह उत्तरदायित्त्व है—सन्तो के गुणो को अपने जीवन मे भी उतारना। गुणो की सराहना करें—यह अच्छी आदत है, लेकिन सराहना के साथ ही अपने कर्त्तव्य को समाप्त हुआ समझ लें तो फिर उस आदत को वुरी भी कहनी होगी। गुणगान का मूल अभिप्राय यही होता है कि उन गुणो के मार्मिक स्वरूप को समझ कर उन्हे यथासाध्य अपने आचरण मे स्थान देने का प्रयत्न करें। ऐसा प्रयत्न दीखने मे व्यक्तिगत होता है कि प्रयत्नकर्त्ता उन गुणो को ग्रहण करके अपने ही जीवन को विकसित वनायेगा, किन्तु ऐसी वृत्ति का सामूहिक एवं समाजगत प्रभाव भी अवश्य ही होगा—गुणीजन की सुवास अपने आसपास के वातावरण को अवश्य ही सौरभमय

बनायेगी। अतः गुणग्रहण की भावना को आप भी सबल बनाइये, जिससे व्यक्ति एवं समाज दोनों का स्वस्थ निर्माण हो सके।

व्यक्ति के साथ समाज भी

व्यक्ति-व्यक्ति के निर्माण से एक तरफ सामाजिक निर्माण का धरातल तैयार होता है तो दूसरी तरफ वैसे पुष्ट सामाजिक धरातल पर चल कर व्यक्ति भी अपने निर्माण को सहज बना सकता है। जहाँ निर्माण की गति समन्वय की ऐसी सुरीली लय के साथ चलती है, वहाँ चहुँमुखी निर्माण का मार्ग स्वतः ही प्रशस्त होता जाता है। ऐसे चहुँमुखी निर्माण से निकलने वाले रचनात्मक स्वरों से प्रस्फुटित होने वाली संस्कृति न केवल ठोस आधारशिला पर खड़ी होती है, अपितु चिरस्थायी भी रहती है। विश्व की विभिन्न सस्कृतियों मे ऐसी ही गौरवपूर्ण हमारी भारतीय संस्कृति है।

भारतीय सस्कृति की तुलना यदि आप अन्य देशो की संस्कृतियों से करें तो यह तथ्य और अधिक स्पष्ट हो जायेगा। जहाँ अन्य देशो की सस्कृतियो मे भौतिकवाद को बढावा दिया गया है, केवल धनप्राप्ति की लालसा दिखाई देती है, वहाँ हमारी संस्कृति व्यक्ति एव समाज के नैतिक स्तर को ऊपर उठाने की प्रेरणा देती है—मानवीय गुणो को विकसित करने हेतु प्रोत्साहित करती है। आत्म-तत्त्व की मान्यता तथा लोक-कल्याण की भावना हमारी सस्कृति की ऐसी विशेषता है जिसके सामने अन्य देशों की संस्कृतियाँ थोथी-सी लगने लगती हैं। हम जब आत्म-शान्ति, आत्म-विकास एव आत्म-साधना के साथ प्राणी-मात्र के हितचिन्तन की बात कहते है तो विदेशी लोग उसे आश्चर्य से देखते हैं, क्योंकि वे तो इसी तथ्य को सबसे ऊँचा मानते हैं कि चाहे कैसे भी हो—ज्यादा से ज्यादा धन कमाओ, वैभव जुटाओ और भोग-विलास मे लग जाओ। इन सस्कृतियो के कुफल भी अब सामने आने लगे है। अमेरिका मे सम्पन्नता की कमी नही—अधिकाश नागरिको को अधिकतम भौतिक सुविधाएँ प्राप्त हैं, फिर भी आज वहाँ के नागरिक अशान्त है—अपने चित्त को उद्वेलित एव दु खित मानते है। वे कुछ क्षणो के लिए भी शान्ति प्राप्त करना चाहते है जो उन्हे प्राप्त नही है। इसीलिये एक ओर वहाँ मादक द्रव्यो का प्रचार हो रहा है तो दूसरी ओर भारतीय कीर्तन एव योगपद्धति के पीछे आकर्षित हो रहे है।

कहने का अभिप्राय यह है कि जहाँ अन्य भौतिकवादी सस्कृतियो की देन अशान्ति है तो हमारी सस्कृति ने सदा ही आत्मिक शान्ति का सन्देश गु जाया है और यह आध्यात्मिक शान्ति हमारी शानदार सन्त-परम्परा की देन है। सन्तो का साधक एव परोपकारी जीवन हमारा प्रेरणा-केन्द्र है कि हम अपने जीवन को भी त्याग की ओर ले जाएँ तथा एक गुणसम्पन्न समाज की रचना करें। यही कारण है

कि भारतीय संस्कृति मे भी श्रमणसस्कृति का अतिविशिष्ट महत्त्व माना गया है। श्रमण अर्थात् सन्त हमारे समग्र जीवन का केन्द्र रहा है। श्रमण के ही आदर्श त्यागी जीवन का समाज मे सदा प्रभाव रहा कि हम व्यक्ति के आध्यात्मिक निर्माण के साथ-साथ स्वस्थ, सम्पन्न किन्तु नैतिक समाज का निर्माण करते रहे।

श्रमण संस्कृति के दीपाधार

हमारा दर्शन, हमारी सस्कृति एवं हमारी सभ्यता सन्तो की भव्य महिमा से सदैव ही मण्डित रही है। श्रमण सस्कृति के उदात्त प्रभाव के कारण हम हमेशा सन्तो की प्रगाढ भक्ति करते रहे हैं। सन्तों का गुणगान हमारे जीवन का अंग वना हुआ है। सन्त के दर्शन, सन्त की सेवा, सन्त का गुणानुवाद एवं सन्त का अनुकरण—यह गृहस्थ के लिए नैतिक कर्त्तव्य माना गया है। वही व्यक्ति ममाज मे सम्मान का पात्र माना गया, जो सच्चे हृदय से सन्तो की भव्य महिमा को स्वीकार करता है तथा उनका अनुसरण करता है। सन्तो के लिए आज भी भक्तो के श्रद्धासिक्त हृदय से अनायास ही इस प्रकार के विनम्र स्वर फूट पड़ते है—

मन मारा, तन वश किया किया, भरम सव दूर।
वाहर से कुछ दीखे नहीं भीतर चमके नूर ॥

इन चार पंक्तियो मे सन्तजीवन की अपार महिमा व्यक्त हुई हैं। सन्तो का सम्मान क्यो किया जाता है—इसका स्पष्ट उत्तर इस दोहे मे मिलता है। सन्त का सम्मान, व्यक्ति का सम्मान नही है, वह तो उसके भव्य गुणों का—कठोर साधना का सम्मान है, जो किसी भौतिक स्वार्थ के लिये नही, आत्मशान्ति एवं लोकोपकार के लिये साधी जाती है। इस दोहे मे एक मच्चे सन्त का चित्र खीचा गया है कि वह अपने मन को मारता है, यानी मन को अपने वश मे कर लेता है। उसका मन अपने स्वार्थ, अपने भौतिक सुख एवं अपने भोगविलास को तिलांजलि दे देता है और नियंत्रित वन कर साधना मे जुट जाता है। उसने मन ही नही, अपने तन को भी वश मे किया है—अपने शरीर से भी अपनी ममता हटा ली है, ताकि वह अपने शरीर को कठोरतापूर्वक साधना मे जुटा सके। कठोरक्रिया की पृष्ठभूमि मे वह ज्ञान भी निर्द्वन्द्व साधना करता है—उसने अपने मन के सभी भ्रमो को दूर कर लिया है—दर्शन की स्पष्ट भूमिका पर वह ज्ञान एव क्रिया की आराधना करता है। ऐसा होता है हमारी श्रमणसस्कृति का सन्तजीवन! इसीलिये कहा है कि सन्त वाहर से तो कृशकाय व विनम्र मुख लिये सामान्य-सा लगता है, किन्तु उसके भीतर एक अनुपम तेज चमकता है—उसकी रूह का नूर दमकता है। ऐसे सच्चे सन्त की सेवा भाग्य से ही प्राप्त हो सकती है, क्योकि ऐसी दृष्टि समुन्नत संस्कृति की देन के विना मिलती

नही है। सन्तों की भव्य महिमा एव भक्तों की गुणग्राहक दृष्टि—दोनो मिल जाय तो फिर भला श्रेष्ठ से श्रेष्ठ संस्कृति के निर्माण को कौन-सी शक्ति अवरुद्ध बना सकती है? श्रमण सस्कृति के ये ही आधार-स्तभ उसे आज भी देदीप्यमान वनाये हुए हैं।

सन्त : सामाजिक जीवन का सिरमौर

जिस सन्तजीवन के अन्दर किसी भी प्रकार का दिखावा नही, किसी भी प्रकार का आडम्बर नही, किसी भी प्रकार को विकृति नही—वाहर के किसी प्रदर्शन मे जो विश्वास नही रखता, किन्तु जिसका साधना-सम्पन्न हृदय हमेशा आन्तरिक तेज से जगमगाता रहता है—ऐसे समुन्नत सन्तजीवन के प्रति वरवस ही विना किसी औपचारिकता के हमारा हृदय श्रद्धा के साथ समर्पित होने लगता है। यह सन्तजीवन की अद्‌भुत प्रेरणा होती है।

और मैं सोचता हूँ कि आज के विशृंखल वातावरण मे सन्तजीवन की कितनी महती आवश्यकता है? जव जव भी विश्व के क्षितिज पर दुःखो के वादल आये हैं—कष्टो की घटाएँ छाई हैं और भयानक युद्धो की परिस्थितियाँ वनी है, हमारे यहाँ इन्ही सन्तो ने अपने तेजोमय जीवन से उन घटाओ को छाटा है और उन परिस्थितियो को पाटा है। हिंसा से जलते हुए दृश्यो को उन्होने अहिंसा के अमृत से शान्त बनाया है तथा साधनात्मक दृष्टि से एक नये मगलमय वातावरण की रचना की है। इन तथ्यो की गहराई मे उतर कर आप विचार करे तो समझ में यही आएगा कि सन्त हमारे सामाजिक जीवन के सिरमौर रहे है, क्योकि गृहस्थजीवन को नैतिक वनाये रखने तथा साधकजीवन का वीजमत्र देने का पुनीत कार्य सन्त ही करते रहे हैं। इस प्रकार के सन्तो के लिये कुछ विचार काव्यभाषा मे हृदय से इस प्रकार निकलना चाहते है—

> **अगर ये सत्य संयम का हृदय मे बीज ना वोते**
> **सभी संसार-सागर मे यहाँ खाते रहे गोते**
> **न पावन आत्मा होती, न जीवित मंत्र ये होते**
> **कभी का देश मिट जाता, जो ऐसे सन्त ना होते।**

सच पूछो तो सन्त-परम्परा की आवश्यकता शाश्वत है। कल यह आवश्यकता थी, आज इसकी महती आवश्यकता है और आने वाले कल को भी इस परम्परा की उतनी ही आवश्यकता वनी रहेगी। जव तक संसार है और जीवन है, तव तक इनके कलुष को धोने के लिये सन्तजीवन के आदर्श की आवश्यकता वनी ही रहेगी।

वाहर सन्त, भीतर असन्त

यह निर्विवाद सत्य है कि अगर सच्चे सन्त हमारे यहाँ नही होते तो यह देश मिट जाता—अपनी सास्कृतिक सम्पन्नता को खो वैठता। किन्तु इस तथ्य को दुर्भाग्य का विषय ही समझिये कि जहा विशुद्ध सन्त-परम्परा का सम्मान होता रहा है, वही सन्त के परिधान मे सन्त-जीवन को लज्जित करने वाले वहुत से इस प्रकार के विषैले तत्त्व भी यत्र-तत्र उभरने लगे है, जो कई वार भीतर ही भीतर वातावरण को विषैला वनाते रहते हैं। किन्तु ऐसे लोगो को हम सन्त-सस्कृति के अनुरूप कभी नही कह सकते है। सन्तजीवन में घुस आने वाले ऐसे तत्त्वो के प्रति पूरी सजगता की जरूरत है। जहाँ भी ऐसे तत्त्व उभर कर आते हो, उन्हे वही प्रकट कर देना चाहिये, ताकि वे भक्तजनो की श्रद्धा का दुरुपयोग करने का साहस न कर सके।

एक छोटा-सा दृष्टान्त इस सन्दर्भ मे मुझे याद आ गया है। है यह दृष्टान्त कुछ हसी आने लायक, लेकिन विचार करने लायक भी है। एक वार कुछ मित्र मिलकर वन-प्रान्तर में घूमने के लिये पहुँचे। अन्दर जाने पर उन्हे एक आलीशान महल दिखाई दिया, जिसके वाहर एक व्यक्ति खड़ा हुआ था। एक मित्र ने उस व्यक्ति से पूछा—'यह महल किसका है? इस महल का निर्माण किसने करवाया?' उस व्यक्ति ने गर्व के साथ उत्तर दिया—'तुम इस महल के सम्बन्ध मे पूछना चाहते हो तो सुनो कि यह महल तो सन्यासियो का है।' सभी मित्रो को यह उत्तर अटपटा-सा लगा कि सन्यासी भी वन गये और ऐसे महल पर अपना एकाधिकार वनाये हुए है। यह कैसी विरोधी स्थिति है? मित्रमण्डली कुछ और आगे वढी तो उन्हे दिखाई दिया कि कही हाथी झूम रहे है तो कही घोड़ो की कतार वधी हुई है। उसे देख कर उस व्यक्ति से मित्रो ने एक और प्रश्न किया—'महल तो सन्यासियो का है, किन्तु ये हाथी-घोडे किस के है?' उसने फिर उत्तर दिया—'यदि आप सुनना ही चाहते है तो ये हाथी घोड़े उदासियो के है।' कुछ दूर आगे पहुँचे तो देखा कि छोटे-वड़े कई वच्चे खेल रहे है। मित्रो की जिज्ञासा फिर वढ़ी और उन्होने पूछा—'यह भी वताइये कि ये वाल-वच्चे किसके है?' हसी आए ऐसा उत्तर उन्हे मिला—इसमे पूछने की क्या वात है—'ये वाल-वच्चे ब्रह्मचारियो के हैं।' वात सुन कर हँसी आ सकती है, किन्तु यह सन्त के परिधान मे सन्तजीवन को लज्जित करने वाले तत्त्वो का एक कटु सत्य है।

खरे वनें, प्रखर वनें

आज जीवन के अन्तर की गहराइयो मे उतर उन्हे स्पर्श करने की आवश्यकता है, क्योकि यही प्रवृत्ति हमको आत्मोन्मुख वना सकती है। जो व्यक्ति आत्मोन्मुखी वन जाता है, वह अपने समग्र जीवन को खरा वना लेता है। सोने को आग मे डालते है, तव उसकी खोट जलती है और वह खरा वनता है। इसी प्रकार सन्त-

जीवन भी साधना से तप कर निखरता है, खरा बनता है। जो स्वयं खरा बनता है, वह खरेपन को पहचानने भी लगता है। यह खरे बनने एव खरेपन को परखने की क्षमता जीवन की गहराइयो मे उतरने से ही उत्पन्न हो सकती है। ऐसी क्षमता प्राप्त करने की जडे हमारी श्रमण सस्कृति मे रही हुई है।

हमारी श्रमणसस्कृति एक गौरवपूर्ण एवं प्रेरक सस्कृति है और उसके प्रतीक श्रद्धेय आचार्यप्रवर के महान् जीवन के सम्बन्ध मे मै और क्या कहूँ? उस महान् आत्मा के सान्निध्य मे जब मेरी दीक्षा हुई तो मेरी आयु केवल बारह वर्ष की थी। आचार्यश्री के चरणो मे आठ महीने तक रहने का मुझे सौभाग्य मिला और मेरा प्रथम केशलुचन भी आचार्यश्री के करकमलो द्वारा अजमेर साधु-सम्मेलन के समय हुआ। दशवैकालि आदि सूत्रो का अध्ययन भी मुझे आचार्यश्री ने कराया। इस निकटतम सान्निध्य मे मैने अनुभव किया कि आचार्यजी के हृदय मे ज्ञान की अभिवृद्धि एव क्रियाओ की शुद्धि की कितनी तड़प व लगन है? हमारा सगठन शानदार रूप से चलता रहे। इसके लिए भी उनकी कितनी प्रेरणा है? पदलिप्सा से दूर आचार्यश्री कई बार कहा करते हैं कि श्रावको ने यह भार उनके कधो पर डाल दिया है, वरना वे तो एक सामान्य साधु के रूप मे ही शासन की सेवा करना चाहते है। कितना त्यागपूर्ण सकल्प है उनका? आचार्य जैसे महामहिम पद पर आसीन होने के बाद भी उनमे उसके प्रति कोई आसक्तिभाव नही—यह कितनी बड़ी बात है?

आचार्यश्री का सघ के जीवन-निर्माण मे बहुत बडा योगदान रहा है। स्थान-स्थान पर आचार्यजी ने मानवता को प्रोत्साहित करने वाली कई रचनात्मक प्रवृत्तियो को सचालित करने मे अपनी वाणी एव संयम साधना की मर्यादा मे रह कर काम किया है। आचार्यश्री ऐसे महान् विभूति है, जिन्होने जीवन की गहराइयो को स्पर्श किया है तथा अपने जीवन को सोने की तरह खरा बनाया है। वे खरेपन को परखते है तथा खरेपन को प्रोत्साहित करते हैं।

प्रेरक आचार्यप्रवर

आचार्यश्री के महान् व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे उनकी गुणगरिमा को प्रकट करने हेतु मे एक राजस्थानी कवि की स्वर-लहरी का सहारा ले रहा हूँ—

> **आपा मार जगत में बैठे, नहीं किसी से काम।**
> **उनमे तो कुछ अन्तर नही, सन्त कहो या राम॥**

हमारी सस्कृति मे तो गुरु को गोविन्द से बड़ा माना गया है। क्योकि गुरु की प्रेरणा से ही गोविन्द को पाया जा सकता है—फिर सन्त और राम मे कैसा अन्तर? विश्व मे सब ओर मगल की अभिवृद्धि हो—इस दृष्टि से सन्तो के हृदय मे

कितनी व्यथा होती है—कितनी पीड़ा होती है—आचार्यश्री के सान्निध्य मे रह कर कोई भी इसका सजीव अनुभव ले सकता है। जो सर्वप्रकार से सन्त के गुण होने चाहिये, वे श्रमणसंघ के आचार्य मे हैं और श्रमणसघ मे है—यह मैं कोई प्रशस्ति नही कर रहा हूँ, वल्कि यथार्थ का ही चित्रण कर रहा हूँ।

आचार्यप्रवर ने जिस प्रकार की साधना की है, उनकी जयन्ती मनाने के पीछे हमारा यही सकल्प होना चाहिये कि हम उनकी साधना के आदर्शों को समझे तथा ग्रहण करे। ससार को त्याग कर मुनिधर्म अपनाने की क्षमता न भी हो, तव भी श्रावक के व्रतो को ग्रहण करके आप आचार्यश्री के जीवन से आदर्शों की प्रेरणा ले सकते है। यदि बारह व्रतो की भी एक साथ प्रतिपालना नही कर सकते तो एक व्रत ग्रहण कर के भी उसको पालने की चेष्टा करे। ससार के अनावश्यक प्रपचो से दूर होते हुए जीवन को साधना के पथ पर आगे वढाएँ—यही उनकी जन्मजयन्ती पर आचार्यश्री को अपनी ओर से सच्ची श्रद्धाजलि होगी।

महापुरुषो की जयन्तियाँ मना कर भी यदि हम रिक्त-से रह जाते है तो कहना चाहिये कि हम वास्तविक जागृति से वहुत दूर हैं। यही कहा जायेगा कि जयन्ती मना कर भी हम नीद मे ही सोये हुए है। ऐसी अवस्था मे जयन्ती मनाने का कोई महत्व नही रह जाता है। जयन्तियो के समारोह का महत्व तभी हमारे सामने उभर-कर आयगा, और हमारा हृदय पुलक उठेगा, जब हम आचार्यप्रवर जैसे महिमामय सन्त के जीवन के अनुरूप—उनके दिव्यसन्देश के अनुरूप अपने जीवन मे एक चमकती हुई रोशनी को आमन्त्रण देगे तथा उस सन्देश को अपने जीवन मे व्यवहारिक रूप से ढालेगे।

सन्त हृदय नवनीत-सम

सन्त को हमारे यहाँ 'तिन्नाण तारयाण' कहा गया है अर्थात् वे स्वय तिरते है और अपने आदर्श जीवन की प्रेरणा से सबको तारते हैं—सबके जीवन विकास का मार्ग प्रशस्त बनाते है। सन्तो की व्याख्या, सन्तो की गरिमा, सन्तो की महिमा और सन्तों के जीवन का आदर्श त्याग—ये सव ऐसे विपय हैं, जिन पर जितना गहरा विचार किया जायेगा, प्रकाश की नित्य नवीन किरणें प्रकट होती जायेगी। गोस्वामी तुलसीदासजी ने सन्तजीवन की महिमा का वखान करते हुए कहा है कि—

सन्त-हृदय नवनीत समाना।
कहा कवि पर कह नही जाना॥

अर्थात् सन्तो का हृदय मक्खन के समान अति सुकोमल होता है, जो विश्व की वेदना को देख कर इस प्रकार द्रवित होता रहता है कि उस हृदय मे से लोक-कल्याण

के सिवाय अन्य किसी प्रकार का भाव उपजता ही नही है। वह सुकोमलता भी ऐसी अद्भुत एव अवर्णनीय होती है कि कवि स्वय अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं। कवि की कल्पना को देख कर कल्पना नही, यथार्थ को सुन कर आप भी आत्म-विभोर हो जायेंगे कि कवि आगे क्या कहते हैं—

निजदु.ख-ताप द्रवहि नवनीता।
परदुःख द्रवहि सो सन्त पुनीता॥

क्या सुन्दर विश्लेषण दिया है कि मक्खन तो अपनी ही पीडा से—अपना ही ताप सहन करके पिघलता है, किन्तु सन्त तो दूसरो के दु.खो को स्वय ग्रहण करते हैं, अर्थात् दूसरो के दु खो से कातर बन कर लोककल्याण का मार्ग दिखाते है। जो ऐसा करते है, उन्हे ही पवित्र सन्त कहा जाता है।

बैठें सन्त-जहाज

परदु खकातर, पवित्र सन्त ही दु.खो से भरे विश्व मे जहाज के समान होते है। ससार-समुद्र के खतरो से अपने जीवन को बचाना है और मानवता को सफल रूप देना है तो ऐसे जहाज मे आपको बैठना ही होगा। सन्तो के जहाज मे बैठ कर आप आसानी से इस ससारसमुद्र के पार उतर सकेंगे।

महान सन्तो को वन्दना करने, उनकी गुण-गरिमा गाने तथा उनकी जयन्तियाँ मनाने का स्पष्ट लक्ष्य यही है कि आप भी कुछ न कुछ त्याग करके उनके आदर्श पर चलने के लिए सकल्पबद्ध हो जाइये। आज भी आप कोई न कोई व्रत ग्रहण करे तथा इस वृत्ति को भविष्य मे विस्तृत बनाने मे प्रयासरत हो। इस मगल अवसर पर यह प्रतिज्ञा करें कि जीवन को कर्मबन्धनो से मुक्त करने के लिए हम सन्तो के महान् सन्देशों को निष्ठापूर्वक स्वीकारेंगे तथा आस्थापूर्वक उन पर आचरण करेंगे।

□

जैसे अन्धड निर्मल आकाश को धूलि-धूसरित कर देता है, वैसे ही माया का वात्याचक्र भी विभिन्न रूपो मे आ कर आत्मा को मलिन और अज्ञानान्धकार से आच्छादित कर देता है। सरलता ही उस मलिनता को दूर करने की एकमात्र प्रक्रिया है। जीवन मे सरलता के आते ही माया के तमाम वात्याचक्र शान्त हो जाते है। आइए, सत की सशक्त भाषा मे पढिये माया के वात्याचक्रो को पहचान कर उन्हे दूर करने के सरस सरल उपाय।

३

माया के वात्याचक्र

□ □

चदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा
सागरवरगंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु !!

भगवान् हमे वह बल देना.
हम अपने मन का ध्यान, धरें…………
है क्रोध, अहं मन मे भारी,
हम कैसे हैं समकित-धारी
मिट जाए मन की बीमारी,
हम अपनेपन का ध्यान धरें…………
हम शुद्ध शान्त बन जाएँ जी,
अरिहन्तदेव को ध्याएँ जी,
गुण आत्मधर्म के गाएँ जी,
हम अपनेपन का ध्यान करें…………

उपस्थित धर्मप्रिय आत्मबन्धुओ !

माताओ एवं बहिनो !

असीम आस्था के साथ महाप्रभु भगवान् महावीर स्वामी एव पूज्य गुरुदेव के चरणो मे अनन्त वन्दन !

अभी जी के द्वारा शास्त्र का श्रवण कर रहे थे ।

समग्र जीवन-दर्शन

प्रकृति के शत-सहस्र रूप आप प्रतिदिन देखते है और जो भावुक-हृदय व्यक्ति होते है, वे उन विविध रूपो की गहराई मे उतरते है ! क्योकि उन्हे उन रूपो मे अपने ही जीवन के विविध रूपो की प्रतिच्छाया दिखाई देती है । प्रकृति के विविध रूप और पुरुप के विविध रूप एक दूसरे मे घुल-मिल कर समूचे जीवन-चित्र का अकन करते है । प्रकृति का एक-एक रूप जैसे जीवन का एक-एक पट उघाड़ता है और वे पट सत्य के ही एक-एक पटखण्ड होते है, जिन खण्डो को यदि विवेक एव विधिपूर्वक जोड़ा जाय तो एक पूरा जीवन-दर्शन समुपस्थित हो जाता है ।

एक ऐसे ही प्रकृति के रूप को आज मै आपके सामने चित्रित कर रहा हूं, जिसमे आप को जीवन के एक ठोस सत्य की झलक मिल सकेगी !

साफ-सुथरा आकाश

कल्पना कीजिये कि साफ-धुला आकाश आपके सामने हो—दूर क्षितिज तक नीला आकाश ! कितना सुहावना दृश्य होता है ? साफ आकाश अपने आप मे एक मनोरम आकर्षण होता है; क्योकि उसके नीचे जल की निर्मलता, धरती की हरीतिमा एव वृक्ष-लताओ की पुष्पित सुन्दरता अधिकतम रूप मे मनमोहक वन जाती है । निस्पन्द एव स्थिर सारा दृश्य चित्रलिखित-सा दिखाई देता है ।

तो मै यहाँ आपसे कहना चाहता हूँ कि दो क्षण के लिए जरा आप सभी इस दृश्य को दृष्टि मे रखते हुए दूसरी कल्पना कीजिए कि किसी एक कोने से उठती हुई आधी धीरे-धीरे फैल कर सारे आकाश को ढक लेती है—सारा वातावरण धूलि-धूसरित हो जाता है एव वात्याचक्रो का भीपण स्वर दिल को कंपाने लगता है । ऐसा प्रतीत होता है, जैसे प्रकृति का वह मनमोहक, निर्मल एव शान्त स्वरूप समाप्त हो गया है और न जाने क्यो उसका रौद्ररूप चारो ओर छा गया है ?

आप इन दोनो दृश्य की तुलना करे और दोनो के बीच सही अन्तर आके ।

निश्छल-निश्चल चित्त

मन का नील गगन भी अधिक आकर्पक रूप से निर्मल होता है, किन्तु तभी जब वह निश्छल बन जाय । निश्छल मन निर्मल होता है, जिसकी निर्मलता मे समूचा जीवन सुखद अनुभूतियो का भण्डार बन जाता है । परन्तु छलो की आधियाँ जब तक मन के दायरो को धूलि-धुसरित बनाती रहती है, वह मन कभी शान्त और स्थिर नही वन पाता—अधेरे मे डूबा वह मन माया के वात्याचक्रो की भयानक ध्वनि से सदा आतकित वना रहता है । माया के वात्याचक्र मन के नील गगन को तमसावृत वनाये रखते हैं ।

"मन एव मनुष्याणां कारणं बंध-मोक्षयोः—अर्थात् मनुष्यो के बन्धन का कारण उनका अपना ही मन होता है तथा मुक्ति भी उसी मन के कारण होती है। मन छल-कपट से—माया से जितना दूर हटता है—एक तरह से उतना ही वह मैल से दूर हटता है। उसका मैला रूप छलरहित बन कर उजला होता जाता है। जितनी निश्छलता बढ़ती है, उतनी ही निर्मलता भी निखरती जाती है। जो मन जितना निर्मल होगा, उतना ही वह सुस्थिर एव शान्त बनेगा। शान्ति भयमुक्ति से प्राप्त होती है। अत· निर्भय मन ही शान्त बन सकता है। मन जब इस मार्ग पर चलता है तो वह मोक्ष की ओर अग्रसर होता है।

परन्तु बन्धन का कारण भी यह मन ही होता है। माया के मैल में लिपट कर यह मन जब अपनी निर्मलता को खो देता है—छलो की आंधियो के थपेडो मे प्रकाशहीन बन जाता है, तब वह अस्थिर भी हो जाता है एवं अशान्त भी। क्योंकि वह मन अंधेरे की परतो मे अपने मूल स्वरूप को भूल कर भ्रम और शका के दलदल मे फँस जाता है एव निज के कर्त्तव्याकर्त्तव्य का भान खो देता है। ऐसी भ्रमित स्थिति मन को भय एवं आतक से भीरु बना देती है। ऐसी मन स्थिति मनुष्य को हर तरह मे पतन की राह पर धकेल देती है।

इस हेतु मन का सन्तुलन, संयमन एव नियमन एक आवश्यक पुरुपार्थ माना गया है। जो मन को छलो की आधियो मे भटकने मे रोक देता है और उसे मोड कर संयम की सपाट सडक पर चलाने लगता है, वही अपने मन को निच्छलता की पृष्ठ-भूमि पर निर्मल बनाता हुआ मुक्ति के अखूट आनन्द को हृदयगम कर सकता है।

माया छोड़ें, सरलता लायें

महान् पुरुपो की वाणी सदा यथार्थ का उद्घोष करती रही है। मन की निर्मलता के सदर्भ मे भगवान् महावीर ने आत्मशुद्धि के गूढ रहस्य का प्रतिपादन करते हुए अपना आप्त वचन कहा है—

सोही उज्जूयभूयस्स धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई

अर्थात् जिसका हृदय सरल है, जिसके मन के कण-कण मे धार्मिकता, विद्वत्ता एव पवित्रता का निवास है, वही धर्म की उच्चता को प्राप्त करता है। जिस हृदय के अन्दर किसी प्रकार का छल नही, टेढापन या बर्बरता का भाव नहीं, वही हृदय सरल कहलाता है। आगम की भापा मे इस टेढेपन का नाम माया है, जिसे व्यवहार मे कपट या छल कहा जाता है। आप माया का मतलब दौलत से लेते है। उसे बाह्य सम्पत्ति कहते हैं, किन्तु वास्तव मे छद्म, छल या दंभ को ही माया कहा गया है। सम्पत्ति को माया इसलिये माना जाता है कि वह भी अधिकाशतः माया की शक्ति से

उपजती है। आप अपने अनुभव से ही जानते होगे कि बिना माया के सम्पत्ति कहाँ सचित होती है ?

सरलता की विरोधी शक्ति इस प्रकार माया होती है। माया है, वहाँ वक्रता है, दभ है, आडम्बर है, थोथा प्रदर्शन तथा असत्य का आवरण है और जहाँ यह सब कुछ है, वहाँ सरलता का निवास नही होता। इसीलिये भगवान् महावीर का कथन है कि धर्म का निवास उसी हृदय मे रहता है, जिस हृदय मे सरलता का निवास रहता है। जहाँ सरलता रहती है, वहाँ निर्मलता रहती है—भव्यता रहती है।

जीवन को वास्तविक विकास के मार्ग पर आगे ले जाना है तो उसका मूल उपाय यही है कि माया को त्यागिये और सरलता को लाइये। अन्धकार की शक्ति को क्षीण बनाने पर ही प्रकाश की रेखाएँ चमक सकती है।

मै कौन हूँ ? कौन हूँ मै ?

आइये, जरा हम विचार करे कि इस माया के वात्याचक्रो ने हमारे जीवन को कितना क्षत-विक्षत बनाया है ? अनेक जन्म बीत गये, पर भवभ्रमण का चक्र फिर भी घूम रहा है—ससार के गह्वर मे डूबी हुई आत्माएँ कीडो की तरह कुलबुला रही है और आश्चर्य की वस्तुस्थिति तो यह है कि वे उसी गटर मे झूठे आनन्द मनाती हुई अपने सही स्वरूप की पहिचान से भी परे हो गई है। मैं पूछूँ कि क्या यह आत्मा की अपनी मूल अवस्था है ? क्या यह आत्मा का स्वभाव है कि वह तृष्णाजन्य दु:खो के सैलाब मे सदा डूबती उतराती रहे, माया की टेढी-मेढी घाटियो मे भटकती रहे और छल-छद्मो के गहन अधकार मे ठोकरे खाती रहे ? नही, यह उसका कतई स्वभाव नही हैं। यह आत्मा की अपने स्वभाव से विपरीत स्थिति है, जिसे विभाव कहते हैं। स्वभाव का अर्थ है निजी भाव और विभाव कहते है विपरीत भाव को। सांसारिक आसक्ति विभाव को बढावा देती है, जिसे समाप्त करने पर ही स्वभाव की स्थिति मे आना सम्भव हो सकता है।

आत्मा का मूल स्वभाव है कि वह माया आदि की विकृतियो मे डूबे नही, उनसे ऊपर उठे और सद्गुणो को ग्रहण करती हुई—अपने मैल को साधना से धोती हुई विकास की उन ऊँचाइयो को छू ले, जहाँ पहुँच कर वह पूर्णत अपने स्वभाव मे स्थित हो जाती हे।

ऐसी शानदार जीवन-प्रक्रिया का हमें निर्माण करता है, जहाँ माया के विभिन्न रूपो का कुप्रभाव आत्मा एव मन को मलिन न बना सके। माया को परास्त करने के लिए स्वार्थ को परास्त करना होगा। स्वार्थ ही होता है जो मनुष्य को छल, कपट, दभ, आडम्बर आदि माया के विविध रूपो मे उलझाता है, राग एव द्वेष की ज्वालाएँ

भड़काता है। इस प्रकार समस्त जीवन मे विकास के अवसरो को क्षीण बना देता है। स्वार्थ की साधिका होती है माया। अत· स्वार्थ छोडिये, जिससे माया भी छूटेगी और माया छूटेगी तो आत्मा का मूल स्वभाव प्रकाशित होने लगेगा। इस वातावरण मे 'मैं कौन हूँ, मै कौन हूँ' की अन्तर्ध्वनि को बलवती बनाइये, फिर देखिये कि आपके भीतरी पट एक-एक करके किस तरह खुल जाते हैं और किस तरह सारा जीवन प्रकाश से ओत-प्रोत बन जाता है ?

सरलता की सीढ़ियां

माया के कुटिल पंजो मे पड़ कर मनुष्य अपने यथार्थ जीवन का गला घोटने लगता है— अन्दर और बाहर का मायावी भेद उसके मन को टूक-टूक कर देता है। अन्दर क्या है और बाहर क्या है—इसका भेद बढता जाता है। धर्मस्थान के प्रागण मे देखेंगे तो जिस व्यक्ति का धार्मिक स्वरूप दिखाई देगा, उसी व्यक्ति को जब अपने मकान मे, अपनी दुकान मे या ऐसे अन्यत्र स्थानो पर कार्यरत देखेगे तो शायद वह आपको माया और पाखण्ड की घिनौनी प्रवृत्तियो मे घिरा हुआ दिखाई देगा।

ऐसा रूप कैसे बन जाता है, एक ही व्यक्ति का और क्यो ? माया क्या है ? जो जैसा है, उसे उससे दूसरे रूप मे देखना, दिखाना और समझाना। मायावी भेद का अर्थ है—सत्य को छिपाना। सत्य को छिपाने का सदा ही कोई न कोई दुर्लक्ष्य होता है। जिस जीवन मे दुर्लक्ष्यो की प्रबलता हो, वह भला उन्नति की राह पर कैसे चल सकता है ? माया दूर होती है, तभी वस्तु को उसके यथावत् रूप मे देखने की प्रवृत्ति पनपती है। जो जैसा है—वैसा ही देखा जाय और वैसा ही दिखाया व समझाया जाय, यानी सत्य का सम्मान किया जाय—सत्य को अपने विचार एव आचार मे प्रतिष्ठित किया जाय। सत्य जब प्रतिष्ठित होता है तो सरलता की शीतलता फैलती है।

अन्दर-बाहर के मायावी भेदो मे भ्रमित बन कर मनुष्य अपने जीवन मे कैसे-कैसे घिनौने तथ्यो को उभारता है —वह स्थिति उसकी दयनीयता की ही परिचायक है। किन्तु हँसी तो तब आती है, जब व्यक्ति मायावी भेदो की वास्तविकता को जान कर भी उन्हे अपने जीवन से लिपटा कर आनन्द प्राप्त करने का स्वप्न देखता है। आनन्द क्या यो ही मिल जायेगा ? आगमो के पृष्ठो पर अकित है कि निरन्तर सरलता के सोपानो पर चढते जाइये और उन ऊँचाइयो के अन्तराल से ही सच्चे आनन्द की अनुभूति हो सकेगी। मैं इसी भाव को अपनी कविता में रखता हूँ—

हुआ हजारों सत्य का, एक कपट से नाश।
'कमल' न आने दीजिये, छल को अपने पास॥

यह एक कठोर वास्तविकता है कि माया का कुप्रभाव सत्य की हत्या कर देना है। माया हृदय की सरलता का नाश करती है और सरलता एवं सत्य सहगामी होते हैं।

प्रकाश सत्य का : पुष्टि सत्य की

जीवन के महान् सत्य का—जीवन की महान् अवस्था का इसी मायाजाल में फँस कर विनाश किया जाता है। जब सत्य का विनाश कर दिया तो प्रकाश का ही विनाश हो गया क्योंकि सत्य स्वयं प्रकाश होता है। आत्मा के मूल स्वभाव की दृष्टि से देखा जाय तो इसकी सत्य से परिपूर्ण अवस्था थी—यह आत्मा सरलता से भी सम्पन्न थी तो पवित्रता के आनन्द से ओत-प्रोत भी। परन्तु माया के जाल में गिर कर इस आत्मा ने अपने रूप-स्वरूप को कैसे विकृत बना डाला—उसका विश्लेषण कवि के स्वरों में ही समझिये—

सत्य सरल था, किन्तु उसे परिभाषाओं ने जटिल कर दिया,
हृदय विमल था, किन्तु उसे अभिलाषाओं ने कुटिल कर दिया।
वस्त्र धवल था, किन्तु उसे प्रत्याशाओं ने कपिल कर दिया,
नर निर्मल था, किन्तु उसे तृष्णाओं ने तरल कर दिया।
मन अविचल था, किन्तु उसे भ्रमणाओं ने चचल कर दिया,
तर्क सरल था, किन्तु उसे कुण्ठाओं ने जटिल कर दिया।

जीवन के मौलिक स्वरूप में किसी भी प्रकार का व्यवधान नहीं था, किसी भी प्रकार का असत्यभरा विकल्प नहीं था, एवं अशान्ति भी व्याप्त नहीं थी, किन्तु व्यक्ति के अनावश्यक विकल्पों एवं स्वार्थी दृष्टिकोणों ने माया का मकड़ी-जाल रचा और वह अपने ही जाल में खुद फंसता चला गया। ऐसे व्यक्तियों में से जिसका विवेक कभी जाग्रत होता है, वह अपनी इस दयनीय अवस्था पर पश्चात्ताप करता है और उस जाल से निकलने का सकल्प ले कर सघर्ष में जुट जाता है। परन्तु ऐसे अनेक व्यक्ति होते हैं जो अपनी इस हीनावस्था को समझने में भी अक्षम बने हुए हैं और उस जाल के झूठे सुख को सच्चा सुख मान कर चलते हैं। किन्तु इन सभी प्रकार के व्यक्तियों को भगवान् महावीर का उदघोष सुनाना है कि वे चेतें, जागें और माया के जाल को तोड कर सरलता के सुखद स्पर्श से अपने को आल्हादित बनाएँ।

महावीर ने लक्ष्य को स्पष्ट करते हुए कहा है कि माया-कपट को आधार बना कर व्यक्ति न केवल व्यवहार के क्षेत्र में ही अविश्वास का पात्र बनता है, बल्कि आध्यात्मिक क्षेत्र में तो माया-कपट को आधार बना कर वह भयकर रूप में विश्वास-घातक कहलाता है। भगवान् मल्लिनाथ का पूर्वभव इस तथ्य का प्रमाण है। पूर्वभव

में वे एक साधु थे तथा अपने साथी साधुओ के साथ साधक-जीवन व्यतीत कर रहे थे। उनकी साधना मे तपस्या का सर्वोपरि स्थान था। तपस्या का लक्ष्य था—कर्म-मल से मुक्ति तथा जीवनशुद्धि। इस दृष्टि से सभी साथ-साथ तपस्या कर रहे थे, किन्तु मल्लिनाथजी के जीव ने तपस्या करने मे भी कपट का आचरण शुरू कर दिया—इस विपमभाव से कि वे अपने साथियो से बढकर फल प्राप्त कर सकें। इस कपटाचरण का उन्हे ही फल भोगना पड़ा कि उन्हे स्त्रीलिंग प्राप्त हुआ। उत्कृष्ट भावनाओ एवं विशुद्ध क्रियाओ के परिणामस्वरूप उन्हे तीर्थंकर नामकर्म का वंध तो हुआ, परन्तु एक कपट ने उन्हे नारीरूप मे परिवर्तित कर दिया।

तात्पर्य यह है कि आत्मविकास के हेतु सरलता सदा ही ग्राह्य एव साध्य समझी जानी चाहिए। क्या सासारिक व्यवहार में और क्या आध्यात्मिक क्षेत्र मे सर्वत्र, सरलता रहे। माया दुराचरण है और वह कही भी आचरण मे लाई जाय—दुराचरण के रूप मे ही रहेगी। सरलता ही ऐसी वृत्ति है जो एक ओर इसके साधक को निर्मल, निर्भय तथा निर्द्वन्द्व वनाती है तो दूसरी ओर वही सत्य को पुप्ट एव प्रकाशित करती है।

आत्मालोचना के तट पर

प्रायश्चित्त एवं आलोचना आत्म-शुद्धि की क्रियाएँ मानी गई हैं, जिनका अभिप्राय यह है कि अपने पूर्व-मायाचार को दुर्गुण के रूप मे समझें तथा उसे दुर्गुण मान कर उसके लिए प्रायश्चित्त करें और आत्मालोचना करें कि वह ऐसे आचरण की पुनरावृत्ति नही करेगा। अव ऐसी शुद्ध त्रियाओ मे भी अगर कोई कपट का व्यवहार करे तो अत्यन्त जघन्यदृष्टि से देखा गया है। कवि ने ऐसी कुटिल वृत्ति पर अपना अभिमत इस रूप मे प्रकट किया है—

जो माया करे, उसे रोना पड़ेगा
रोना पड़ेगा, दुःख ढोना पड़ेगा, नारी होना पड़ेगा।
पापों का प्रेमी माया करेगा
प्रपंचो से वह तो जरा न डरेगा
कहेगा सही, किन्तु करेगा नहीं
उसको पाखड ढोना पड़ेगा...... . . .रोना पड़ेगा।

व्यवहार के क्षेत्र मे भी मायाचार का फल वहुत कड़वा माना गया है। किन्तु प्रायश्चित्त एव आलोचना के संदर्भ मे, यानी आध्यात्मिक क्षेत्र मे यदि किसी भी प्रकार से माया का आचरण किया जायगा, उसे वास्तव मे वहुत रोना पड़ेगा और जन्म-जन्मान्तर तक रोना पड़ेगा।

भगवान् महावीर ने व्यवहारसूत्र मे एक बहुत ही गभीर बात कही है। कल्पना कीजिये कि एक साधक है, छद्मस्थ है और साधना के मार्ग पर चल रहा है। इस प्रक्रिया मे जाने-अनजाने कोई दोप लग सकते है और उनके निवारण के लिये महावीर ने प्रायश्चित्त एव आलोचना के उपाय बताये है। ये उपाय रोजाना दिन-रात के, अष्टमी-चतुर्दशी के या सवत्सरी के प्रतिक्रमण के समय आज भी प्रयोग मे लाये जाते है—उनके साथ वास्तविक भावना का कितना अंश होता है, यह तो सम्बन्धित व्यक्ति ही जाने—किन्तु सच्ची आलोचना वही होती है, जिसमें निश्छल रूप से अपने पापो व दुष्कृत्यो को सार्वजनिक रूप से प्रकाशित कर दिया जाय। यह व्यवहार-सूत्र की बात है। होती है ऐसी विशुद्ध आलोचना या उसमे भी माया मिली रहती है? पाप का प्रकाशन न्यूनाधिक भी होता है या नही? इस पर भी विचार करना पड़ेगा। उस गाथा का निम्न हिन्दी रूपान्तर इस दृष्टि से पठनीय है—

कपट-सहित आलोचना, जो करता इन्सान।
उसको दुगुने दण्ड का करता शास्त्र विधान॥

प्रायश्चित्त एव आलोचना के सन्दर्भ में किसी भी प्रकार से माया का कपट के आचरण को पाखण्ड की सज्ञा दी गई है। सरलता के जीवन में भी सरलता नही आयेगी तो फिर वह कब आयेगी!

रामायण का एक जीवन्त पृष्ठ

सरलता कितनी और माया कितनी है? इसकी तुला पर, यदि वर्तमान को रखें तो आज के जीवन को देख कर सम्भवत. बडी निराशा होगी, तितिक्षा जागेगी और ग्लानि पैदा होगी।

वर्तमान की स्थिति वास्तव में गम्भीरतापूर्वक विचारणीय है कि एक ओर तो लम्बी-लम्बी बाते की जाती है भगवान् से मिलने की, सत्य से साक्षात्कार करने की और आदर्श आचरण को स्थापित करने की, किन्तु दूसरी ओर आन्तरिक विकृतियो का दृश्य बडा ही भयावह होता है। यह ऊपर का जो झूठा प्रदर्शन है—वही माया है, कपट है, दम्भ है, आडम्बर है और पाखण्ड है। अधिकाश अंशों में वर्तमान को पाखण्ड-युग कहा जा सकता है। बाहरी सफाई और सजावट का तो पूरा ध्यान रखा जाता है, लेकिन अन्तरग में कितना दम्भ और पाखण्ड फैल रहा है—इसका भी क्या कभी सच्चा आकडा निकाला है?

वर्तमान की गुत्थियाँ उलझ-उलझ कर इस तरह चारो ओर फैली हुई है कि एक बार तो कठोर साधक का मन भी डगमगा जाय, उनको सुलझा पाने की सम्भावना से। ससार मे गृहस्थ दंभी है तो आध्यात्मिक क्षेत्र मे साधक भी दभ की साधना कर रहा

है। फिर भी ऐसा साधक विकास की ऊँचाइयों को छू लेना चाहता है। ऐसी मायावी मन.स्थिति की उपमा पगडी मे दी जाती है कि पगड़ी के एक-एक पेच मे जितने आटे (टेढापन) होते है, यदि वैसी कुटिलाई कोई व्यक्ति अपने जीवन के विचार एवं व्यवहार मे समा ले तो क्या उसका उद्धार आसान रह जायगा ?

इस सन्दर्भ में मैं रामायण का एक ज्योतिर्मय पृष्ठ प्रस्तुत कर रहा हूँ। वनवास के लिए गमन के वाद राम, लक्ष्मण और सीता वन मे घूम रहे थे। यह उस समय का चित्र है, जव वन मे आगे वढ़ते हुए सवसे आगे राम चल रहे थे, सवसे पीछे चल रहे थे लक्ष्मण तथा दोनो के वीच मे सीता चल रही थी। इस चित्र का अकन महाकवि तुलसी ने अपनी पैनी दृष्टि से यो किया कि

सीता की गति लागै ऐसे।
जीव ब्रह्म विच माया जैसे ॥

सन्त तुलसीदासजी ने तीनो की गति को किस रूप मे आध्यात्मिक दृष्टि दी है ? राम ब्रह्म है और लक्ष्मण जीव और दोनो के वीच चलने वाली सीता को उन्होने माया के रूप मे देखा—कितना गहरा तथ्य उन्होंने इस प्रकार अकित किया है।

जैन दर्शन ने मूल रूप मे आत्मा और परमात्मा की शक्ति एक-सी मानी है। इस ससार में जो कर्ममल से युक्त है, वह आत्मा है और जिस आत्मा ने उस मैल को सम्पूर्णतया धो कर परमपद प्राप्त कर लिया, उसे परमात्मा कहा गया। आत्मा और परमात्मा के वीच का अन्तर है माया का—कर्मो की माया की। कर्मो की माया है तो आत्मा ससार में भटक रही है और इस माया के हटते ही आत्मा परमात्मा वन जायेगी। माया को हटाइये और अपने आपको परमात्मा मे रूपान्तरित कर लीजिए, जैसा कि कवि कह रहा है—

लक्ष्मण आत्मा, राम परमात्मा,
वीच माया-सम सीता जान।
तेरा तू ही खुद भगवान्।
वन्धनों को तोड़ दे, जीवन-किश्ती मोड़ दे,
जाग जाग अरे नादान।
तेरा तू ही खुद भगवान् ॥

वर्तमान की जितनी गुत्थियाँ सर्वक्षेत्रो मे आपको दिखाई देती है, उन सव के मूल मे इसी सत्यसंहारिणी, सरलता-नाशिनी माया की ही माया मिलेगी। इसके घातक रूपो पर गहरा विचार करें और इसके कुटिल वात्याचक्रों से अपनी प्रगति-रेखा को मुक्त वनायें।

मन बने, दर्पण दुनिया का

जब अपने मन को आप माया के वात्याचक्रो से मुक्त करने की दिशा में कठिन साधना करेंगे तो दुर्लक्ष्यों, दुर्गुणों एवं स्वार्थान्धता की धूल छंटने लगेगी—समग्र वातावरण मे निर्मलता का एक नया निखार आने लगेगा। व्यक्ति अपने हृदय की वक्रता का जितना अधिक प्रतिकार करेगा, उतनी ही अधिक सरलता का सचार उसके विचार, वचन एवं कर्म मे होने लगेगा।

सिद्धान्तरूप मे यह प्रक्रिया एक सत्य है और हम इसे सत्य के रूप में जानते व मानते भी हैं, किन्तु क्या इतने मात्र से हमारे मन की भीतरी तहों मे समाई हुई माया नष्ट हो जायगी और उसके स्थान पर क्या सरलता व्याप्त हो जायगी ? इस पर एक मेवाड़ी भाषा के कवि का विचार जानिये—

सांच कांई है, पतो ही नी चाले,
दीखे वो तो सगलो कपट ही कपट है।
केवाने तो घणी घणी वातां केवे घणा घणा मनख,
पण चारुं मेर छल नै पाखंड री झपट ही झपट है।
सुखां रो वगीचों खिले भी तो क्यान खिले,
आज तो सब दूर आग की लपट ही लपट है।

सरलता और सत्य की आराधना मे इन लपटो से न सिर्फ अपने आपको ही बचाना होगा, बल्कि स्वय बच कर दुनिया को भी बचाना होगा। आपका मन निर्मल हो कर ऐसा नील गगन हो जाय कि वह दुनिया को दर्पण का काम दे। दुनिया आपके मन मे झांके और उसे उसमे अपने आगे बढने की कामयाव रात दिखाई दे। एक शायर ने कहा—

दिल के दरपन में छिपी है यार की तस्वीर वो,
जब जरा गर्दन झुकाई, देख ली तस्वीर को।

वह तस्वीर है परमात्मा की—जिसके रग अपनी यह आत्मा ही भरेगी। माया आदि विकृतियो की कालिख को धो-पौंछ कर सरलता, निर्मलता और सत्य के रग भरे जायेंगे कि वह सुरगी तस्वीर परमात्मा की बन जायेगी—आत्मा ही तब परमात्मा हो जायेगी—आवश्यकता है केवल अपनी दृष्टि को मोडने की। □

4

विपन्नता से दूर : सम्पन्नता से भरपूर

□ □

आत्मा पारमार्थिक भावो के अभाव मे पद-पद पर आध्यात्मिक सम्पन्नता की रिक्तता का अनुभव करके निरन्तर पीडित होती रहती है । रिक्तता की स्थिति मे आत्मा चन्द्रमा की निर्मलता, सूर्य की उज्ज्वलता और समुद्र की गम्भीरता नही प्राप्त कर पाती, जबकि स्वरूपरमणता मे पुरुपार्थ करने पर वह चन्द्र से भी निर्मल, सूर्य से बढकर उज्ज्वल और समुद्र से भी बढकर गभीर बन सकती है । परन्तु आत्मा ऐसी पूर्णसम्पन्नता की स्थिति तभी प्राप्त कर सकेगी, जब उसमे स्पष्ट प्रतीति होगी और वह भौतिकता के बीहड मे भटकते हुए मन को वहाँ से हटा कर आध्यात्मिक उद्यान मे लगा देगी ।

आत्मा को विपन्नता से दूर करने और सम्पन्नता से भरपूर बनाने के लिए प्रस्तुत प्रवचन को ध्यान से पढिए····

४

विपन्नता से दूर : सम्पन्नता से भरपूर

□ □

उपलब्धि; पारमार्थिकता की

अभी-अभी महामहिम गुरुदेव आप सबको शास्त्र का श्रवण करा रहे थे और मैं सोचता हूँ कि यह शास्त्र का श्रवण जीवन मे बहुत बड़ी शक्ति एव ज्योति प्रदान करता है। शास्त्रो के श्रवण, अध्ययन तथा चिन्तन का मूल अभिप्राय यह है कि आत्मा पारमार्थिक भाव की उपलब्धि करे। पारमार्थिक भाव की उपलब्धि के बिना आत्मा की विचारणा मे गूढ विश्वास नही जागता तो उसके आचरण मे सुदृढ आस्था जन्म नही लेती। इस भाव के अभाव मे कदम-कदम पर जीवन मे एक रिक्तता का अनुभव होता रहता है। पारमार्थिक भाव से दूर रहने वाले व्यक्ति के अपने जीवन मे सदा ही वितृष्णा, वेदना एव पीडा का क्रन्दन मचा रहता है।

वास्तविक सपन्नता

आप कल्पना कीजिये कि एक व्यक्ति विश्व की भौतिक शक्तियो से समृद्ध तो है, किन्तु उसके हृदय मे पारमार्थिक भाव का अभाव है तो क्या उसके जीवन मे वास्तविक सम्पन्नता आ सकेगी ? उसे तो रिक्तता का ही कटु अनुभव होता रहेगा। वह उस अभाव से ग्रस्त एव त्रस्त-सा ही दिखाई देगा। हमारे विचारको का मानना है कि अभाव जीवन की वास्तविक अवस्था नही है—रिक्तता उसमे कभी सच्चा सुख

पैदा नही होने देती। एक विकासशील जीवन मे अभाव और रिक्तता का कोई औचित्य नही माना जा सकता है।

जीवन की वास्तविक सम्पन्नता पारमार्थिक भाव के विकास से ही सभव हो सकती है, जिसकी दिशा है आध्यात्मिकता की दिशा। आध्यात्मिक दर्शन का जो सागर है, उसमे आत्मा जितने गहरे गोते लगायगी—उतने ही मूल्यवान मोती वह वाहर निकाल सकेगी और ऐसे मोती ही भव्य आत्मा का सच्चा शृङ्गार वन सकते है। आत्मीय गुणो के ऐसे मूल्यवान मोतियों से ही जीवन की वास्तविक सम्पन्नता प्रकट होती है। यही सम्पन्नता उस समय परिपूर्ण अवस्था को प्राप्त होती है, जव सुसम्पन्न आत्मा अपने क्रमिक विकास से परमात्मपद का वरण कर लेती है।

रिक्तता भरें

इस सम्पन्नता की खोज में जव आप निकलेंगे तो जरूरी है कि पहले आप अपनी वर्तमान विपन्नता के कारणो को जान लें, क्योंकि वर्तमान विपन्नता को मिटाये विना—वर्तमान रिक्तता को भरे विना सम्पन्नता प्राप्त करने का मार्ग मिल नही सकेगा। वर्तमान विपन्नता का मूल कारण यही है कि ससारी आत्माएँ कपाय, विभाव एव अभाव से परिपूर्ण है—तो अविवेक व अज्ञान से भी ओतप्रोत हैं। इस कारण उनकी मौलिक शक्तियाँ दवी हुई हैं। अपने मूल रूप मे जो आत्मा शुद्ध, बुद्ध और अविनाशी है एव अनन्त शक्ति की धारिणी है, वही विकारो के मैल से लिप्त वन कर शक्तिहीन एव निष्क्रिय वनी हुई है, अभावग्रस्तता से दयनीय दिखाई दे रही है—यही इसकी घोर विपन्नता का मूल कारण है। इस विपन्नता को दूर करने का जव ज्ञानदृष्टि से सत्य प्रयास किया जायगा, तभी आध्यात्मिक सम्पन्नता का उद्गम प्रारम्भ हो सकेगा।

अधिक निर्मल, अधिक उज्ज्वल, अधिक गम्भीर

आत्मिक सम्पन्नता के कुछ शिखर मै आपको गिनाऊँ। आप लोगो का ध्यान रहता है या नही, किन्तु प्रतिदिन प्रवचन के प्रारम्भ मे 'लोगस्स' के पाठ से तीर्थंकर-देव की जो स्तुति की जाती है, जिसमे उपर्युक्त भाव की एक गाथा है और उस गाथा का मै प्रतिदिन उच्चारण करता हूँ। वह गाथा वहुत महत्वपूर्ण है, जो इस प्रकार है—

चंदेसु निम्मलयरा !,
आइच्चेसु अहिय पयासयरा।
सागरवर— गंभीरा,
सिद्धा सिद्धि मम दिसतु॥

अर्थात्—जो चन्द्र से भी अधिक निर्मल हो गये है, सूर्य से भी अधिक प्रकाश-पुज बन गये हैं, तथा सागर से भी अधिक गम्भीर रूप जिनका ढल गया है—ऐसे सिद्ध भगवान् मुझे भी सिद्धि प्रदान करे। सिद्धस्वरूप आत्मा का सर्वोच्च विकास माना गया है—आत्मिक सम्पन्नता का यह चरम पद है।

चरम पद तो सर्वोच्च लक्ष्य होता है, किन्तु यह नही होता कि चरम लक्ष्य की प्राप्ति एक साथ ही हो जाय। लक्ष्य तक पहुँचने के लिये तो लम्बी यात्रा पूरी करनी होती है, लेकिन यात्रा तभी पूरी होगी, जब वह कही से भी शुरू तो कर दी जाय। वह यात्रा अपने जीवन मे शुरू भी हुई है या कि नही—यह प्रत्येक व्यक्ति के लिये अपने अन्दर झांकने एव अन्दर का लेखा-जोखा करने का विषय है। अन्तरावलोकन के बाद ज्यो ही आत्मविश्वास के साथ यह यात्रा प्रारम्भ कर दी जायगी—फिर गति कैसी भी हो—लक्ष्य की ओर उन्मुख होते जाने की स्थिति तो उत्पन्न हो ही जायगी। उत्साह जितना अधिक होगा, विवेक जितना सतर्क रहेगा एव कर्मठता जितनी क्रियाशील बनेगी— उतनी ही गति अधिक शीघ्र—अधिक उग्र बनती जायगी। ऐसी गति से प्रगति त्वरित बन जायगी और त्वरित प्रगति लक्ष्य के निकटतर पहुँचाती जायगी।

प्रश्न यही है कि ऐसी निर्मलता, तेजस्विता एव गंभीरता के लक्ष्य के प्रति लौ लगा कर वर्तमान विपन्नता से सघर्ष करने के लिये कमर कस ली जाय। विपन्नता ज्यो ज्यो कटती जायगी, सम्पन्नता का प्रादुर्भाव होता जायगा।

अन्तस् अंगड़ाई ले

चन्द्र से भी अधिक निर्मल, सूर्य से भी अधिक तेजस्वी और सागर से भी अधिक गभीर बनना अंतश्चेतना की जागृति पर निर्भर करता है। कभी विभाव मे—अज्ञान की असज्ञा मे कोई आत्मा अपने आपको ऐसी निर्मल, तेजस्वी या गंभीर समझने लग जाती है अथवा वैसा अपने आपको बताने लगती है—यह उसका मिथ्याभास होता है। हमारा दर्शन आध्यात्मवाद मे विश्वास रखता है—आत्मा की पवित्रता एव सौम्य शक्तियो मे विश्वास रखता है। जिसका अर्थ है कि आन्तरिक चेतना ज्यो ज्यो अधिकाधिक जागृत होती जाती है त्यो-त्यो आत्मा का स्वरूप भी निखरता जाता है तथा वह अपने निज स्वभाव मे प्रतिष्ठित होती जाती है। यह प्रतिष्ठा जब परिपक्व बनती है, तभी कहा जाता है कि इस भव्य आत्मा ने इस प्रकार की उच्च निर्मलता, तेजस्विता एवं गंभीरता प्राप्त कर ली है। अत. हमारा यह दर्शन उस विभाव के पर्दे को दूर हटाने के लिये प्रेरणा का सन्देश देता है, ताकि आत्मा स्वभाव मे स्थित हो।

उसे चन्द्र से अधिक निर्मलता प्राप्त हो, उसके लिये कवि के शब्दो में चन्द्रमा की प्रेरणा को सुनिये—

सौम्य शशि को देखता नर,
किन्तु शशि की प्रेरणा है।
मुझसे तो निर्मल, तुम्हारी,
ऐ मनुज निज चेतना है।
देख आत्म-सुधाश से,
सम सौम्य रस की धार झरती।
प्रकृति की अनुपम प्रेरणाएँ,
सुन तेरा आह्वान करती।
सुप्त मानव की समझ में,
जागृति का ज्ञान भरती ।

व्यक्ति यदि जागृति की दृष्टि से देखे तो उगे शशि से भी फूटती हुई प्रेरणाएँ समझ मे आ जायेगी। दूज का चाँद बढता हुआ चाँद माना जाता है और दुनियाँ चाव से उसके दर्शन करती है। ऐसा क्यो ? उसका अर्थ है प्रगति की पूजा। जो आगे बढता है। उसका सम्मान किया जाता है। दूज के चाँद का यही मूक सन्देश है कि मेरी तरह प्रगति-पथ के यात्री बनोगे तो ससार तुम्हारे भी दर्शन कर हर्ष मनायेगा। अध्यात्म की जिन महान् शक्तियो को हमने नकार दिया है, उन्ही शक्तियो को समझने के लिये जैसे चाँद सकेत करता है--ऐ मनुष्य ! मुझसे तो अधिक निर्मल तेरी अपनी चेतना है। क्या समझा आपने ? चाँद से भी अधिक निर्मल, पवित्र एव सौम्य आपकी अपनी स्वय की अन्तश्चेतना है। आप सोचते होगे कि हमे तो ऐसा प्रतीत नही होता, किन्तु ऐसा प्रतीत होना स्वय प्रतीति का प्रश्न है कि वह कितनी समुन्नत है ?

पुलक-प्रतीति

यही प्रतीति —यही चेतना-यही अन्तरतम को देख लेने वाली दृष्टि जब पुष्ट बन कर पुलकित हो उठती है तो वैसी प्रतीति सूर्य के प्रकाश से भी अधिक प्रकाशित हो उठती है। सच पूछे तो सूर्य के प्रकाश से चैतन्यतत्त्व के प्रकाश का महत्त्व अधिकाधिक होता है। आत्मा का स्वरूप सूर्य से अधिक तेजस्वी होता है, जो परमात्मा के स्वरूप मे ढलता है। यह स्वरूप कर्मो से बधी हुई—कषाय से रगी हुई आत्मा का नही होता। कर्मबद्ध आत्मा का मूलस्वरूप कर्म-मल से ढक जाने के कारण उसकी निर्मलता, तेजस्विता एव गभीरता अस्तित्वहीन हो जाती है—ऊपर का मैल ही मुख्य बन जाता है। कर्मबद्ध आत्मा मलिनस्वरूपी हो जाती है—इसी कारण वैसी आत्मा को सूर्य अधिक तेजस्वी दिखाई देता है, वरना मूल रूप मे आत्मा का प्रकाश

तो सूर्य से भी अधिक तेजस्वी होता है। कर्ममुक्त आत्मा का ऐसा ही दिव्य स्वरूप निखर उठता है।

अपने तेजोमय स्वरूप से विस्मृत बनी हुई आत्मा सूर्य की तेजस्विता को अधिक मान कर सूर्य की पूजा करती है—उस पर जल चढाती है, किन्तु एक कवि की भाषा मे जैसे सूर्य पूजा करने वाले से कहता है—"अयि आत्मा, तू मेरे तेज को महान् मान कर मेरी पूजा-अर्चना कर रही है, किन्तु यदि तू निज स्वरूप को पहिचान ले और प्राप्त कर ले तो तुझे प्रतीति हो जायगी कि तेरा अपना स्वरूप मुझसे भी अधिक प्रकाशमान है। काव्य की पक्तिया इस तरह है—

कह रहा है मूक रवि, क्यो,
तू मेरा पूजन करे रे।
पुष्पकलियाँ जल चढ़ा कर,
क्यों मेरा अर्चन करे रे?
तू स्वयं है ज्योतिमय,
वह ज्योति सारा तमस हरती—
सुप्त मानव की समझ मे,
जागृति का ज्ञान भरती।

कवि की प्रेरणा कितनी सुन्दर है, जो कहना चाहता है कि वाहर का सूर्य क्या है—असली सूर्य तो तू स्वय है। कर्ममुक्त आत्मा के तेज के सामने सूर्य का तेज क्या महत्व रखता है? कर्ममुक्त आत्मा की प्रतीति अत्यन्त वास्तविक होने से पूर्णतया पुलकित होती है और प्रकाश की तरलता मे चार चाँद लगाती है।

प्रतीति की परख

प्रतीति, चेतना या कि अन्तर्दृष्टि की परख यदि परिपक्व न हो तो आत्म-वचना की स्थिति पैदा हो जाती है। हम पश्चिम दिशा मे जा रहे है और प्रतीति बैठ जाय कि पूर्व दिशा मे जा रहे है तो यह विपरीत प्रतीति पूरी आत्मविकास की दिशा को ही गलत मोड दे देती है। इस कारण इस प्रतीति की सही परख वहुत आवश्यक होती हे।

कसौटी स्वभाव की, विभाव की

इस परख के लिए कसौटी वनाई जानी चाहिये स्वभाव एव विभाव की स्थितियो को। आत्मा जव स्वभाव मे रमण करे—अपने मूल स्वरूप को प्राप्त करने मे यत्नशील वने, तव उस धरातल पर किसी विषय मे जो प्रतीति होगी—चेतना

जिस तरह का मोड लेगी, उसका सम्बन्ध स्वभाव से होगा । विभाव स्वभाव की विपरीत स्थिति का नाम है । विभाव की अवस्था तब होती है, जब आत्मा पर-द्रव्यो मे रमण करती है, किन्तु मिथ्यात्व या भ्रान्ति के कारण ऐसा समझती है कि वह अपने अन्तर्भाव पर चल रही है। यह विपरीत प्रतीति आत्म-वचना की अवस्था होती है।

ऐसी भ्रान्तिपूर्ण एव अनिश्चित स्थिति मे आत्मा न इधर की रहती है, न उधर की। दिशा-स्पष्टता के अभाव मे आत्मा की प्रगति ही अवरुद्ध नही बनती, बल्कि वह अपनी हानि भी कर बैठती है। इस प्रसंग की एक छोटी सी कहानी याद आ गई है। एक दामाद अपने ससुराल पहुचे। बड़े दिनो बाद दामाद आये थे, सो उनके आतिथ्य मे खूब घी डाल कर दाल का हलुआ बनाया गया। घी इतना था कि दामाद ने कौर उठाया तो घी हथेली से रिस कर कोहनी तक पहुंच गया। दामाद ने सोचा कि हाथ का कौर तो फिर खा लूंगा—पहले इस रिसते हुए घी को चाट लूं। अत कौर समेत हथेली को ऊपर उठा कर कोहनी के घी को वे चाटने लगे। ऊपर बैठा कौआ भला इस सुअवसर को कैसे चूक सकता था? उसने झपट कर हथेली पर चोच मारी और हाथ का कौर छीन कर ले गया। अफसोस से दामादजी ऊपर देखने लगे। तब तक दूर खडा कुत्ता तेजी से झपटा और थाली का हलुआ साफ कर गया। दामादजी की इस अटपटी हालत पर एक शेर भी याद आ गया है—

न इधर के रहे, न उधर के रहे
न खुदा ही मिला, न विसाले सनम।

अभिप्राय यह है कि अस्पष्ट प्रतीति अथवा आत्मवंचना की स्थिति बड़ी भ्रान्तिमूलक होती है। और यह भ्रान्ति पैदा होती अथवा पनपती है स्वभाव एव विभाव की कसौटी को ठीक से न समझने के कारण। निजभाव कौन-सा है और परभाव कौन-सा है—इसे आत्मा को भलीभाँति पहिचानना सीखना चाहिए। यह कसौटी अगर सही बन गई तो प्रतीति की परख भी सही ही होगी।

कर्ममुक्त आत्मा

सही प्रतीति अर्थात् जागृत-चेतना आत्मा को सही मार्ग पर चलाती है और गति सम्यक् होने पर आत्मा अपने लक्ष्य तक पहुँच जाती है। कर्ममुक्त आत्मा की निर्मलता एव तेजस्विता ही अनुपम नही होती, बल्कि उसकी गम्भीरता भी इतनी गहरी होती है कि सागर की गहराई भी उस आत्मा के समक्ष उथली हो जाती है।

'सागर-वर-गम्भीरा'—यह एक शुद्ध, बुद्ध, पारमार्थिक भाव से ओतप्रोत स्थिति का चित्रण है कि आत्मा अपने विशुद्ध, उत्कृष्ट, अविकारी एव अविनाशी स्वरूप

को प्राप्त कर परमात्मा का स्वरूप ग्रहण कर लेती है। उसके सामने चन्द्रमा मैला दीखता है, सूर्य का तेज फीका पड़ जाता है तो सागर भी उथला वन जाता है। चन्द्र एव मूर्य की तरह सागर का सन्देश भी कवि की भाषा मे सुनिये—

लहराता सिन्धु कहे रे,
क्यो तेरा आश्चर्य मुझ पे ?
मुझसे तो लाखो गुना अविचल,
अतल गाम्भीर्य तुझ में।
गुण-मोक्तिको से भृत अरे क्यों,
दीनता तुझ में उभरती ?
प्रकृति की प्रेरणाएँ,
सुन तेरा आह्वान करती।
सुज्ञ मानव की समझ मे,
जागृति का ज्ञान भरती।

सागर की आत्मा को जागृति का सन्देश देता है कि वाहर की गहराइयो को देखने की अपेक्षा अपने ही अन्तर्मन की गहराइयो मे डूब और तव पता चलेगा कि तेरी अपनी गहराई कितनी गूढ और कितनी मार्मिक है ? तव आत्म-शक्तियो की गहराई मे गाभीर्य का अतल केन्द्र दिखाई देगा। इसलिए बाहर दृष्टि दौड़ाने और भटकने के वजाय अगर आत्मा अपने ही भीतर देखे, गहराइयो की परतें खोलती हुई गहरी से गहरी उतरती चली जाय, सम्यक्ज्ञान, दर्शन एव चारित्र के क्षेत्र मे और अपनी अनन्त-अनन्त शक्तियो को उद्घाटित करे तो भला वाहर की निर्मलता, तेजस्विता या गम्भीरता का कितना मूल्य रह जायगा ?

मैं कहना चाहूँगा कि इस प्रकार व्यक्ति अपने ही घर के आँगन के भीतर महान् शक्तियो को प्राप्त कर सकता है। इसी जीवन के अन्दर वह वहुत कुछ कर सकता है। आज के इन्सान के मानस का यदि सवसे उलझा हुआ कोई पृष्ठ है तो वह यही कि भगवान् कहाँ है ? ईश्वर कहाँ है ? उस पवित्र स्वरूप के गीत हम सदा सुनते रहे है, परन्तु भगवान् आज तक मिला नही। इसके उत्तर मे मै आपसे कहूँगा निश्चयपूर्वक कि जो इस आत्मा का पवित्रतम स्वरूप बनता है, वही परमात्मा का स्वरूप है। भगवान् कही वाहर मिलते नही, भीतर ही प्रकट होते हैं। एव आत्मा अपनी परमात्म-अवस्था मे चन्द्र से भी अधिक निर्मल, सूर्य से भी अधिक तेजस्वी तथा सागर से भी अधिक गम्भीर बन जाती है।

संधान, आत्मा का

मैं पूछता हूँ आपसे कि ऐसी उच्चतम परमात्म-अवस्था के लिये आपकी भी ललक है, क्या ? वेशक इसके लिये आप सब एकदम 'हाँ' मे जवाब देंगे। परमात्मा कौन नही वनना चाहता ? किन्तु क्या परमात्मा यो ही वन जायेंगे ? परमात्मा वनने के लिये अपार पुरुषार्थ की आवश्यकता होगी, संयम एव तप के क्षेत्र में अद्‌भुत पराक्रम दिखाना होगा तथा चन्द्र, सूर्य एव सागर को एक साथ मन मे मिला लेना होगा। जिस दिन यह आत्मा निर्मलता, तेजस्विता एव गम्भीरता के श्रेष्ठतम रूप का सर्वांगत. वरण कर लेगी, उसी दिन वह आत्मा से परमात्मा वन जायगी।

इस आत्म-साक्षात्कार के लिये अन्तर की गहराइयों मे निरन्तर डुवकियाँ लगाते रहना होगा। एक शायर ने कहा है—

अपने मन में डूब कर
पा जा सुराखे जिन्दगी।

इन्द्रपुरी (इन्दौर) के धर्मप्रेमी भाई-वहनो ! मै आपसे पूछता हूँ कि क्या आप भगवान् से मिलना चाहते है ? आप झिझकेंगे कि अभी मैं तप के लिये कहूँगा या किसी त्याग के लिये। किन्तु मै आपको आश्वस्त करता हूँ कि मे तप के लिए भी नही कहूँगा, न परिवार छोडने के लिये और न धन का दान करने के लिये—फिर तो वताइये कि आप भगवान् से मिलने के लिये तैयार हो जायेंगे न ? यह राजस्थानी कहावत तो आप को पसन्द आयगी न कि **'माल भी खाना, वैकुण्ठ भी जाना'** ? ऐसे सीधे रास्ते से भगवान् मिलें, तव तो आप मिल लेंगे न ?

एक साधक ऐसे ही सीधे रास्ते से भगवान् को पाना चाहता था। वह एक फकीर के पास पहुँचा। फकीर का नाम था फरीदा। सन्त फरीदा पजाव के एक मुसलमान सन्त हो गये है। साधक ने उनसे कहा – 'भगवान् से मिलने का कोई आसान रास्ता वता दीजिये।' फरीदा ने आसान रास्ता वताना मजूर कर लिया। सन्त उस साधक को अपने साथ ले कर एक खेत पर पहुँच गया। वहाँ पहुँच कर सन्त ने कहा—'मैने तुम्हे भगवान् से मिलने का रास्ता वता दिया है, अव भगवान् से अच्छी तरह मिल लेना।' साधक आश्चर्य करने लगा कि "कैसा रास्ता और कहाँ भगवान् ?" सन्त कैसा मजाक कर रहे है ? उसने यही वात सन्त से कही। सन्त ने फिर यही कहा—'रास्ता वता तो दिया है।' साधक ने घवरा कर कहा—'पहेलियाँ क्यो वुझाते है ? मुझे साफ और सीधे शब्दो मे कुछ वताइये।'

तव सन्त ने साधक से कहा 'जरा देखो, इस खेत के अदर तुम किसे देख रहे हो ?'

'महाराज, मुझे एक किसान काम करता हुआ दिखाई दे रहा है'---साधक ने उत्तर दिया।

'क्या काम कर रहा है वह किसान ?'—सन्त ने फिर पूछा।

साधक ने कहा—'वह पौधो को एक तरफ से उखाड रहा है तथा दूसरी तरफ रोप रहा है।'

सन्त ने वताया—"क्या तुमने इस काम के रहस्य को समझा ? यही तो भगवान् से मिलने का आसान रास्ता है।" साधक कुछ समझा नही, तव सन्त ने पजावी भाषा मे कहा—

फरीदा रव दा कि पावणा, इत्थे पटके उत्थे लावणा।

अर्थात्—फरीदा की दृष्टि मे ईश्वर का क्या पाना है ? इधर से उखाड़ो, उधर लगा दो—यही ईश्वर को पाने का आसान रास्ता है।

विकार से, विचार की ओर

फरीदा सन्त की वात आप समझे या नही ? जव आप तप नही करना चाहते—त्याग नही करना चाहते तो इतना तो कर लेंगे कि इधर से उखाडो, उधर लगा दो। यह वात मन पर लागू की गई है। जैसे किसान पौधो को एक ओर से उखाड़ कर दूसरी ओर लगा रहा था, उसी प्रकार इस मन को कषाय, मोह, माया, रागद्वेष आदि विकारो से उखाड़ो और उसे धर्म, सयम, तप आदि सत्प्रवृत्तियों मे लगा दो तो मन की स्थिति ज्यो ज्यो उच्चता को प्राप्त होती जायेगी, आपको भगवान् क्या मिलेंगे, आप स्वय भगवान् वन जायेंगे।

मन का नियोजन प्रमुख होता है। यदि मन विभाव के क्षेत्र से निकल कर स्वभाव मे रमण करने का अभ्यस्त हो जाय तो आत्म-विकास की गुत्थी स्वय ही सुलझ जायेगी। इस कविता मे दी गई है—

चन्द्र, सूर्य और सागर को—मिला लें मन में एक साथ।

इसका अर्थ है कि मन मे पूर्ण निर्मलता, तेजस्विता एव गम्भीरता को पा लेने की उग्र ललक पैदा कर दे, जो मन की सुदृढता के साथ साध्य को प्राप्त करने हेतु कटिवद्ध वन जाय। फिर ज्ञान-दर्शन-चारित्र की कठिन आराधना का क्रम चलेगा और कठोर सकल्प के साथ उग्रगामी गति वनेगी। वैसी ही उग्रगति एक दिन चन्द्र, सूर्य और सागर मे भी आगे पहुंचा देगी।

तो मूल समस्या है मन को साधने की। मन का नियत्रण एव सुनियोजन ही आत्मोन्नति का मूल मंत्र है।

एके साधे, सब सधे

कोई अपने को महावीर का भक्त तो कोई राम का उपासक या कृष्ण का पुजारी बताता है, किन्तु इन महापुरुषो ने मन को मोडने की जो बात कही है, क्या उसको मानने की सच्ची भक्ति कोई दिखाता है ? इधर भटके हुए मन को उधर लगा दीजिये—भौतिकवादी दलदल से निकाल कर आध्यात्मिक उद्यान मे उसे रमण करा दीजिये—फिर देखिये कि आपको परमात्म-पद कितनी शीघ्रता से प्राप्त हो जाता है ?

रामायण मे भी इसी प्रकार की पवित्र भावना का प्रतिविम्ब दिखाई देता है। तुलसीदास जी ने कहा है—

जाकी रही भावना जैसी।
प्रभु-मूरत देखी तिन तैसी॥

जीवन मे भावना का सर्वाधिक महत्व होता है, जो मन के द्वारा भायी जाती है। मन सधा हुआ हो तो भावना श्रेष्ठ एव उत्कृष्ट होगी तथा मन भटका हुआ हो तो भावना भी निकृष्ट श्रेणी की उत्पन्न होगी। वस्तुत. अपना निर्माण अपने ही हाथो मे है। भगवान् महावीर का दर्शन तो इस सत्य को गुजाता रहा है—

'अज्झत्थ बधमोक्खो य'

आपका बन्धन और आपका मोक्ष आपके ही हाथो मे है। आप स्वय ही अपने भाग्य के विधाता है। आप भौतिक दृष्टि से अपने मन को उखाड़ कर धीरे-धीरे भी अध्यात्म की ओर लगाते रहे तो फिर सब कुछ साध सकते है। तव न तो भगवान् को वन-वन मे खोजने की जरूरत है, न मन्दिर-मस्जिद मे पुकार लगाने की। मन को साध लेने पर भगवान् तो भीतर ही भीतर प्रकट हो जायेंगे।

भगवान् तो हमारे पास मे ही है, लेकिन लोग अपने पास मे कहाँ ढूंढते हैं ? वे तो उसे सभी ओर वाहर के केन्द्रो पर खोज रहे है और इस खोज को ज्ञानीजन मूर्खतापूर्ण कार्य के अलावा और क्या कह सकते हैं ?

उठ खड़ा हो, भव्य ! तू स्वयं भगवान् है—

ज्ञानियो ने भव्य आत्माओ का मार्गदर्शन करते हुए सदा आत्म-दर्शन, आत्म-चिन्तन एव आत्म-साक्षात्कार पर वल दिया है। जागरूक आत्मा को उन्होने ललकारा है और कहा है—'उठो, जागो, भव्य ! तुम स्वय भगवान् हो। भगवान् को वाहर ही वाहर कहाँ खोजता हुआ भटकता फिर रहा है, वह तो तेरे ही भीतर है। भीतर को निर्मल कर, प्रकाशमान वना, धीरता-गभीरता के गुण से सजा—फिर देख और

अनुभव कर तो तेरी अपनी अनुभूति होगी कि "मैं स्वय भगवान् हूँ ।" सभी दर्शनो ने इस आधारगत सत्य को स्वीकार किया है—

चिदानन्दरूपो शिवोऽहम् शिवोऽहम् ।

वह आनन्द एवं कल्याणरूप जो भगवान् है, वह तो मै ही हूँ । जव आप मे ही भगवान् हैं और आप ही भगवान् हैं, तव उसे खोजने के लिये मन्दिर-मस्जिद मे और दर-दर भटकते रहो तो क्या यह मेवाड़ी कहावत सत्य सिद्ध नही होगी कि 'काख मे छोरो ने गाँव में ढिढोरो' ? सन्त कवीर ने भी ऐसी वृत्ति की भर्त्सना की है और कहा है—

पानी में मीन पियासी ।
मोहे सुन सुन आवे हाँसी ॥

वास्तव मे पानी मे रह कर भी मछली प्यासी रह जाय तो यह हंसी की ही वात होगी । वैसे ही भगवान् अपने ही भीतर और हम कहे कि हमे भगवान् से मिला दो । भगवान् से आप को खुद मिलना पडेगा—अपने मन को उधर से उखाड़ कर और इधर लगा कर । मन जव मोक्ष का कारण वन कर ज्ञान-दर्शन-चारित्र की उच्च श्रेणियो मे विचरण करने लगेगा तो वह निर्मलता, तेजस्विता एव गभीरता से इतना ओतप्रोत वन जायगा कि उस आत्मा का मूलस्वरूप कई कई चन्द्रो, सूर्यो और सागरो से भी उच्चतर वन जायगा । एक वार भव्य आत्मा इस पुरुषार्थ मे उठ खडी हो तो उसके भगवान् वनने मे अधिक विलम्व नही लगेगा । □

मोह रख कर उसे खिलाते-पिलाते और पुष्ट बनाते है, उसे नाना द्रव्यो से सजाते और संवारते है, वह भी एक दिन मिट्टी के खिलौने की तरह टूट जाता है। जब यह जीवित शरीर निष्प्राण हो जाता है तो आप ही लोग उसे घर मे तक नही रखना चाहते और श्मशान मे जा कर उसे फूंक देते है। जिस शरीर को जीवित अवस्था में एक खरौंच भी पहुँचने देना नही चाहते थे, उसे ही आप जलती हुई ज्वालाओं में भस्मीभूत कर देते है। इतना करने पर भी आश्चर्य है कि आप शरीर की अनित्यता को समझते क्यों नही है ?

शरीर में ममत्व

इसी क्षणभगुर शरीर के मोह मे पड़ कर व्यक्ति इस संसार मे लाख-लाख अन्याय और अत्याचार करने पर उतारू हो जाता है। इसी शरीर के पोषण हेतु नीति या अनीति से हजारो-हजार पदार्थों का संग्रह करता है और इसी शरीर की रक्षा के लिए हजारो शस्त्रो का निर्माण करता है। शरीर के ही ममत्व मे इस अमूल्य जीवन को नष्ट कर देता है।

शाश्वत है क्या ?

एक प्रश्न आपके मन मे खड़ा हो सकता है कि जब संसार नश्वर है और शरीर क्षणभगुर है तो फिर यहाँ शाश्वत है क्या ? और यह प्रश्न स्वाभाविक है। मैंने आपको ऊपर बताया है कि शरीर जब प्राणवान रहता है, तब तो उसको सहेजा और संवारा जाता है, किन्तु उसमे से ज्यो ही प्राण निकले, कि उसे जला दिया जाता है या नष्ट कर दिया जाता है। शरीर की इन दोनों अवस्थाओ में क्या अन्तर है ? आप कहेगे कि पहले जीवन था, फिर जीवन नही रहा। यह जीवन क्या है ? इस जीवन को ही भारतीय दर्शन मे आत्मा कहा है। यह शरीर आत्मा का चोला है। शरीर नष्ट होता है, नश्वर है, किन्तु आत्मा अमर है, अनश्वर है और शाश्वत है। वह कभी नष्ट नही होती। आत्मा केवल चोला बदल लेती है—अपने कर्मों के अनुसार एक शरीर से दूसरे शरीर मे चली जाती है और यही आत्मा अपने कठिन पुरुषार्थ से सारे कर्मों को क्षय करके सिद्ध, बुद्ध और विमुक्त भी बन जाती है, किन्तु आत्मा का अस्तित्व कभी भी समाप्त नही होता।

अमर ज्योति

तो यह आत्मा ही इस नश्वर संसार के बीच शाश्वतता की अमर ज्योति है। और आप लोग भी अपने भीतर गहरे उतर कर सोचें कि यह जो शरीर दिखाई दे रहा है, वह आप नही है, बल्कि इस शरीर की जो स्वामिनी आत्मा है, आप वह हैं। इसी

कारण कहते हैं कि आप आत्म-स्वरूप को पहिचानो, अपनेपन का ही ज्ञान करो—तव आपको समझ मे आएगा कि वास्तव मे यह आपका शरीर भी आपका नही है।

आत्मोन्नति का अवसर

संसार मे चौरासी लाख योनियाँ वताई गई है, जिनमें शरीर के अपने-अपने आकार और उनमे रहने वाली आत्माओ की विकास-अविकास के आधार पर अपनी अपनी संज्ञाएँ होती हैं। इन सारे शरीरो मे मानव-शरीर ही सर्वथा समुन्नत, सर्वथा सक्षम वताया गया है। मानव-जीवन को दुर्लभ कहने का यही तात्पर्य्य है। मानव-शरीर विकसित आत्मा की देन होता है और इसी शरीर में आत्मा विकास की ऊँची से ऊँची मंजिलें तय करने के लायक होती है, वशर्ते कि इस शरीर और इस जीवन का सदुपयोग किया जाय। इस अमूल्य जीवन मे यह सामर्थ्य प्राप्त होता है कि विवेक एवं ज्ञान को विस्तृत वनाया जाय एवं कठिन आचरण से पवित्रता प्राप्त की जाय। आप्तवाणी ने तो यहाँ तक कहा है कि मोक्ष के लक्ष्य की तरफ गति करने एवं वहाँ तक पहुँचने मे यह मानव-जीवन ही सशक्त साधन का काम देता है। इसी दृष्टि से इस मानवजीवन को ऐसा मान कर चलना चाहिये तथा इसके सदुपयोग को कार्यान्वित करना चाहिये कि आत्म-विकास का यह ऐसा स्वर्णावसर है, जिसे अज्ञान, मोह, तृष्णा और कपाय के विकारो मे पड़ कर गंवा दिया तो शुद्ध, वुद्ध एवं विमुक्त होने का सुअवसर भी गवा दिया।

न जाने कव....

इसलिये एक ओर तो इस शरीर को क्षणभगुर मान कर चलें कि यह न जाने कव नष्ट हो जाय, अत इस शरीर पर ममत्व न रखें—इसके लिये ही इस मूल्यवान जीवन का दुरुपयोग न करें तो दूसरी ओर इसी शरीर पर तटस्थभाव रखते हुए इसको धर्म-साधना करने एव आत्मा को निखारने का वलवान साधन समझें और इससे पूरा पूरा काम ले। शरीर पर मोह नही रहेगा तो शरीर का उपयोग करने मे नरमी नही वरती जायेगी। आत्मा पर लक्ष्य केन्द्रित होगा, तव आत्म-विकास के मार्ग पर शरीर का कठोर से कठोर उपयोग करने में साधक कभी हिचकिचायेगा नही। यदि आप अपनी भावनाओ को इस दिशा मे मोड़ेंगे तो आपको नश्वर और शाश्वत का भेद भी स्पष्ट हो जायगा तथा आत्मा एवं शरीर के वीच का अन्तर भी अनुभव मे आ जायगा। वैसी मन.स्थिति मे इस मानव-जीवन को कैसे सार्थक वनाया जा सकता है—इसका रहस्य एवं पाथेय भी हस्तामलकवत् हो जायगा।

□ □

सभी यह जानते हैं कि शरीर, जीवन, संसार, वैभव तथा जगत् के सभी पदार्थ अनित्य है, नाशवान हैं, किन्तु जानते हुए भी अनजाने-से वने रहते हैं और समय आने पर इस तथ्य से आँखें मूंद लेते हैं कि यह जीवन मिट्टी के ढेले की तरह एक दिन समाप्त हो जायगा और इस शरीर को फूंक दिया जाएगा! प्रवचनकार ने वहुत ही मजी हुई भाषा मे युक्तिपूर्वक मिट्टी के-से नश्वर जीवन का मार्मिक चित्र खीचा है और इस जीवन को अप्रमत्त हो कर आत्म-साधना एवं धर्माचरण मे लगाने की प्रेरणा दी है। ध्यानपूर्वक पृष्ठ खोल कर पढिए...............

५

मिट्टी के जीवन की नपी-तुली परिभाषा !

□ □

मृत्यु का अभिनन्दन

हमारे भारतीय दर्शन एवं हमारी भारतीय संस्कृति के स्वर बरावर गूंजते रहे हैं कि यह संसार नश्वर है, यह जीवन भी क्षणभंगुर है तथा यह अपना शरीर भी अनित्य है। मृत्यु इस दृश्यमान जगत् को एक बार तो एक झटके में ही मिटा देती है और यही कारण है कि सभी लोग मृत्यु से भयभीत रहते हैं। किन्तु इन सभी लोगों में उन लोगों का समावेश न करे, जो सहजभाव से मृत्यु का वरण करते हैं। कारण, वे संसार के स्वरूप को एवं उसके जड़-पदार्थों के स्वरूप को भलीभांति जानते हैं। वे अपनी चैतन्यशक्ति को पहिचानते हैं एवं उस चैतन्यशक्ति के सम्पूर्ण विकास मे रत रहते है।

शरीर : कितना अनित्य !

एक मनीषी ने इस अनित्यता के सन्दर्भ में एक बड़ी ही मार्मिक, अपितु यथार्थ बात लिख दी थी, व्यक्ति की तन्द्रा को तोड़ने के लिए—

अनित्यानि शरीराणि, विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः, कर्तव्यो धर्मसंग्रहः॥

उस मनीषी की वाणी है कि और तो और, यह स्वय शरीर भी तुम्हारा नही है। यह शरीर भी अनित्य, नश्वर और क्षणभगुर है। जिस शरीर पर अपार

□ □

आप अवगुणों को रहने दो, गुण लेने की आदत डालो !

आप अवगुणो को रहने दो, गुण लेने की आदत डालो।
फूल नही ऐसा कोई भी, जिसके पीछे शूल नही हो।
पुरुप नही ऐसा कोई भी, जिसके हाथो भूल नही हो।
शूल भूल को भूल-भुला कर
सौरभ सद्‌गुण जो मिल पाता, क्यों न प्रेम-सहित अपना लो !

संगृहीत धान्यो मे क्या कुछ, नही चुगाव निकलता देखो।
हार हुआ करती वोटो मे, यही चुनाव विकलता देखो।
तत्त्व अभाव कहा जाएगा
नही स्वभाव सुधारा जाता, प्यार विना यदि पशु को पालो !

गुण भी अवगुण, अवगुण भी गुण कभी-कभी दिखलाई देता।
सिद्ध उसे ही करने मे नर, ला कर लाख गवाही देता।
पूर्वाग्रह का फलित यही है
यथार्थता के पास पहुंच कर, दृष्टिदोप को दूर हटा लो !

मुनि महेन्द्र 'कमल' गुणग्राही वन करके गुणवान वनोगे।
घाटे का सौदा न समझना, नीतिमान, मतिमान वनोगे।
गुण पहचानो, ग्रहण करो गुण
जहाँ मिले, जिस कद्र मिले वस, मूल्यवान मणि आप उठा लो।

5

मिट्टी के जीवन की नपी-तुली परिभाषा !

प्रमाद मत करो !

भगवान् महावीर ने अपने पट्टशिष्य गौतमस्वामीजी को जागरण-मंत्र दिया कि—

समयं, गोयम ! मा पमायए !

अर्थात् हे गौतम, समयमात्र का भी प्रमाद मत करो। प्रमाद का अर्थ होता है—आलस्य और आलस्य न करने का तात्पर्य्य है कि कर्मठ बनो—निष्क्रिय न रहो। समय कालचक्र का सबसे छोटा घटक माना गया है तो समयमात्र के लिये भी निष्क्रियता धारण मत करो। फिर प्रश्न उठता है कि क्रियाशीलता किस दिशा मे हो—क्या हो ?

चरैवेति चरैवेति

मजिल जब सुनिश्चित हो—मार्ग जब देख लिया हो तो एक ही क्रिया-शीलता होती है कि मंजिल तक पहुँचाने वाले मार्ग पर पांव चल पड़ें। गति को रोकी तो वह प्रमाद हो जायगा और प्रमाद समय-मात्र के लिये भी नही करना है। अर्थात्—पांव निरन्तर चलते रहे--कही किसी बाधा से भी रुकें नही और तब तक चलते रहे—जब तब कि मजिल न मिल जाय। यह मजिल क्या है—आप जानते हैं। शाश्वतता की अमर-ज्योति को ज्योति स्वरूप बना लेना—यही हमारी मंजिल है—हमारा मोक्ष है।

तब आप पूछ सकते हैं कि क्रिया-शीलता क्यो और अभी ही क्यो ? मैंने बताया है कि शरीर क्षणभंगुर है और उसके साथ ही बीता हुआ समय कभी वापिस लौटता नही। क्रियाशीलता को इसी समय प्रारम्भ न करें तो कौन जाने अगले ही क्षण इस शरीर का क्या हो जाय और क्रियाशीलता का अवसर ही न आए। शरीर रहे, तब भी समय तो चला ही जायगा। इसीलिये भगवान् महावीर ने यह भी सन्देश दिया—हे देवानुप्रिय, तुम्हे सुख हो, वह करो, परन्तु जो करना है, उसे करने मे कतई देर मत करो। आपने जब मंजिल की तरफ बढने का निश्चय कर लिया तो फिर पाव उठाने मे देरी क्यो ? जागरण--सन्देश को हृदयंगम कर लेने के बाद प्रमाद कैसा ?

प्रमाद ही उसे कहते हैं, जब आप इस शरीर और समय के सदुपयोग करने से वंचित रहे तथा उन्हे अनावश्यक प्रपंचो मे लगाये रखें। व्यर्थ की परिस्थितियो मे यदि आप फँसे रहते हैं तो यह आपकी सुअवस्था होगी। नीद मे सोये रह कर न मानव-जीवन सार्थक होगा और न ही समय का सदुपयोग सम्भव हो सकेगा।

मृत्यु को सामने रखो

यह सत्य है कि मृत्यु प्रतिक्षण हमारे समीप आ रही है। जो क्षण बीतता है, वह जीवन के निश्चित क्षणों की निधि में से समाप्त होता है। जो क्षण बीता है, वह जीवन का क्षण बीता है तो मृत्यु उतनी ही समीप चली आई है—यह निश्चित रूप से मानना चाहिए।

किन्तु आज अधिकांश व्यक्ति क्या इस सत्य को अपने सामने रखते हैं ? वे तो संसार के झूठे आनन्द में इस प्रकार निमग्न दिखाई देते हैं, जैसे उन्हे कभी मरना ही नही है—अमरता का पट्टा ले कर आये है। इसलिए सतत जागृति का उपाय है कि मृत्यु को सदा अपने सामने रखो। आप काम करते रहे और जैसे आपके सामने चित्र टगा हुआ हो कि एक मृत शरीर को अर्थी पर ले जाया जा रहा है और श्मशान मे जलाया जा रहा है, ताकि आप और तेज गति से काम करते रहे कि न जाने कब हमारी भी अर्थी उठ जाय और फिर हाथ का काम अधूरा ही छूट जाय। जीवन के अन्दर सिद्धार्थ-नन्दन महावीर ने एक छोटा-सा निमित्त देखा अनित्यता का और उनके जीवन मे एक यथार्थपूर्ण जागृति उभर आई। कहने की आवश्यकता नही कि अनित्यता के उस स्वरूप के प्रति जब अन्तश्चिन्तन गम्भीर रूप ले लेता है तो फिर वहाँ सारे तत्वों को परीक्षण की कसौटी पर कसने की प्रवृत्ति जाग उठती है।

मैं आप लोगो से पूछना चाहता हूँ कि जब आपकी आँखों के सामने अनेक प्रकार के प्रसंग आते हैं—अनित्यता के महत्व को उभारने वाली परिस्थितियाँ पुन-पुनः उठती है, तब भी क्या आपके हृदय मे नवीन भावनाओ का संचार नही होता ? और तो और, आप तो अपने पारिवारिक सदस्यो, सम्बन्धियो और मित्रो को भी मरघट तक पहुँचा आते है, फिर भी क्या इस संसार के प्रति—इस शरीर के प्रति आपको विराग नही होता ? अनित्यता को समझ कर क्या जीवन को सार्थक बना लेने का सकल्प नही जागता ? श्मशान मे बैठे-बैठे कुछ वैराग्य तो जागता है, लेकिन वह कुछ ही देर रह कर वहाँ से लौटने के बाद समाप्त हो जाता है, जिसे आप हँसी हँसी मे "मसाणिया वैराग" कहा करते हैं। यह "मसाणिया वैराग" आपके लिए "जीवणिया वैराग" क्यो नही बन जाता कि आप मानव-जीवन को मोक्ष के साध्य को प्राप्त करने का कर्मठ साधन बना डाले। किन्तु मानस की ऐसी धारणा तब ही बनेगी और तब ही स्थायी रूप ग्रहण करेगी, जब आप प्रतिक्षण "नित्य सन्निहितो मृत्यु" का ध्यान करते रहेगे।

फिर ममता कैसी, क्यों ?

जब इस संसार मे सिवाय आत्मा के सब कुछ नश्वर है—शरीर भी क्षणभंगुर है तो इस सारी अनित्यता से मोह कैसा, ममता कैसी ? किन्तु हकीकत कुछ और ही

काल के प्रवाह में सभी समा जाते है, किन्तु संसार में याद रहता है एकमात्र सत्कार्य। अच्छे कार्य को ही मृत्यु के बाद भुलाया नही जाता। कहा जाता है कि बच्चा रोता हुआ आता है, किन्तु सभी को हँसाता है। इसी प्रकार श्रेष्ठ पुरुष वह माना गया है, जो हँसता हुआ मरे, किन्तु सबको रोता हुआ छोड जाय। अनित्य के प्रति अभिमान से जो दूर रहता है, वही अपना जीवन यथार्थत साध सकता है।

कहीं खड़े न रह जायें

इस नश्वर ससार मे यह नश्वर मानव-शरीर कब विनष्ट हो जायगा—इसका कोई ज्ञान नही। गहराई से देखे तो आत्मसिद्धि का काम इस मानव-तन से सम्पन्न करा लेना चाहिए, जो कठिनाई से प्राप्त हुआ है। समय कम है और आत्मसिद्धि का कठिन काम सामने है। इसलिए समयमात्र का भी प्रमाद किये बिना मुक्ति की लम्बी यात्रा के लिए प्रस्थान कर देना चाहिए। यह न हो कि अनिश्चय की स्थिति में खडे-खडे देखते रहे और जिन्दगी का कारवा निकल जाय। मृत्यु आयेगी—यह संसार की रीति है, किन्तु अपनी यह नीति होनी चाहिए कि इस अमूल्य मानव-जीवन की सीमाओ मे ही हम अपने कठिन पुरुषार्थ से उच्चतम विकास के महत्तम कार्य को सम्पन्न कर ले।

वृक्ष से पक कर एक पत्ता जब नीचे खिरने लगा तो वेदना के साथ वह वृक्ष से बोला—

पान खिरंता यूँ कहे, सुन तरुवर वनराय।
अबके बिछुड़े कब मिलै, दूर पड़ेंगे जाय॥

वृक्ष ने तुरन्त निरपेक्ष उत्तर दिया—

तब तरुवर उत्तर दियो, सुनो पत्र मम बात।
इस घर या ही रीत है, इक आवे इक जात॥

ऐसी ही निरपेक्ष भावना मनुष्य की अपने तन के प्रति एवं सारे पौद्गलिक पदार्थों के प्रति होनी चाहिये, ताकि ममत्व से दूर रह कर मृत्यु से निर्भय बन कर वह मुक्ति की साधना मे निमग्न बन सके। मिट्टी के जीवन की यही नपी तुली परिभाषा माननी चाहिए। □

6

पुरुषार्थ की स्पष्ट दिशा

उसमे भी असंज्ञी-संज्ञी की सीमाएं पार करके आत्मा को यह मानव-तन मिलता है। देव-जन्म में सुख-सुविधाओं का पार नही है, लेकिन साधना-पथ वहाँ सुलभ नही होता। मोक्ष-पथ पर चलने की क्षमता केवल मानव-तन में है। अतः ऐसा अलभ्य तन आत्मा को महान् बनाने के उपयोग मे आए, तभी उसकी सार्थकता होगी। मिट्टी के इस तन को महान् बनाने का सकल्प ले लें तो समूचे जीवन में एक अद्भुत परिवर्तन आ जायेगा। एक समर्थ कवि ने कहा है—

फूलों पर आंसू के मोती और अश्रु में आशा।
मिट्टी के जीवन की छोटी, नपी-तुली परिभाषा॥

मानवतन की क्षणभंगुरता का चिन्तन करते हुए ही मनुष्य आत्म-विकास की राह पर मुड सकता है, क्योकि नश्वरता का विचार ही सासारिक लिप्तता मे कमी लाता है। नश्वरता ही सतत जागृति की उद्बोधक बन सकती है। इसी नश्वरता के मर्म को भलीभाति हृदयंगम कर लिया जाय तो मिट्टी के जीवन को महान् बनाने का संकल्प भी पूर्णत. सफल बन सकता है।

एक दृष्टान्त

ससार के नाशवान पौद्गलिक पदार्थों के प्रति आसक्ति-भाव का परिणाम यह आता है कि व्यक्ति उन्हे पा जाने पर अभिमान करने लगता है। वह यह भूल जाता है कि अनित्य के प्रति किया जाने वाला अभिमान भला कितने दिनो तक टिक सकेगा ?

इस तथ्य को स्पष्ट रूप से समझने के लिए एक दृष्टान्त लीजिए—एक सेठ ने एक नई हवेली बनाई और उसमे निवास शुरू किया। एक दिन दुकान से सेठजी भोजन करने के लिये हवेली आये। उस दिन सेठानी ने खिचडी बनाई थी। अतः सेठ की थाली मे उसने गरम-गरम खिचड़ी परोस दी। नई हवेली मे एक तरफ छत का काम बाकी था, सो उधर कारीगर काम कर रहे थे। सेठजी खाना खाने बैठे ही थे कि कारीगर ने आवाज दी—"सेठ साहब ! जरा बता दीजिये कि इस छत का काम कैसे पूरा करना है ?" सेठजी थाली से उठ कर पहले उधर गये, जिधर कारीगर ऊपर छत पर काम कर रहा था। ऊपर कारीगर के हाथ मे हथौड़ा था और सेठजी ठीक नीचे खड़े उसकी बात सुनने लगे। दुर्योग की बात, बात करते-करते कारीगर के हाथ से हथौड़ा छूट गया और वह सीधा सेठजी के कपाल पर आ गिरा। वह इस बुरी तरह गिरा कि खून की धारा निकल पड़ी और सेठजी अचेत हो गये।

नई हवेली की सारी कल्पनाएँ मन की मन में ही रह गई। और थोड़ी देर मे ही उनके प्राण-पखेरू उड़ गये। एक कवि ने इसका चित्र यों खींचा है—

हथोड़ो छूटो हाथ सूँ पड़्यो आई कपाल।
झरोखो झिलतो ही रह्यो बीच में आ गयो काल॥

झरोखा इन्तजार करता ही रहा कि सेठजी उसका निर्माण किस रूप में कराएँगे और उधर खिचड़ी भी इन्तजार करती रह गई कि कब सेठजी फिर से थाली पर आ कर बैठेंगे—

खाई न सकिया खीचड़ी, पूर न सकियो आस।
सोई न सकियो सेज में, यूँ ही गयो निराश॥

थाली का कौर हाथ मे आ कर मुँह मे नहीं जा सका—ऐसी अनित्य अवस्था है संसार की। फिर भी मोह-ममता नहीं घटे और समभाव का संचार न हो—यह आश्चर्यपूर्ण स्थिति ही कही जायेगी। इस नश्वरता की स्थिति पर गम्भीर चिन्तन किया जाना चाहिये और मन में एक उद्बोधन जगाना चाहिये कि विचार, वचन एवं आचार का समस्त प्रयास आत्म-विकास की दिशा मे एकजुट बन सके। कवि की मार्मिक वाणी विचारणीय है—

यह नश्वर काया माया है,
भज वीर प्रभु, भज वीर प्रभु !
यह दुनिया एक कहानी है,
सरिता का वहता पानी है,
दो दिन की यह जिन्दगानी है,
भज वीर प्रभु, भज वीर प्रभु !
जो आता है, वह जाता है,
हर फूल 'कमल' मुरझाता है,
यहाँ कोई न रहने पाता है,
भज वीर प्रभु, भज वीर प्रभु !

वास्तव मे सम्पूर्ण वस्तुस्थिति को समझ कर व्यक्ति को अच्छी प्रवृत्ति की ओर ढलने की आवश्यकता है, अन्यथा बात तो साफ है। कितना ही कह दो कि—

कितने मुफलिस हो गये, कितने तवंगर हो गये,
खाक में जब मिल गये, दोनों बराबर हो गये।

है। आप मकान मे होते हैं तो अपने परिवारजनों के प्रति मोह—धन-सम्पत्ति, ऐश्वर्य एव विलास-सामग्री से ममता और दूकान में जाते हैं तो अधिक से अधिक उपार्जित करने की लालसा और सबसे बढ़कर अपने शरीर का ममत्व। ममता के इसी जाल मे फँस कर सारा जीवन व्यतीत हो जाता है, फिर भी जागरण की वेला विरलों के ही जीवन मे उपस्थित होती है।

मैं कहना यह चाहता हूँ कि जीवन के अन्दर जो भी जाग रहा है, उसने अपनी मोह-ममता को क्षीण बनाया होगा—अनित्यता एवं क्षणभंगुरता के बारे मे चिन्तन किया होगा। मौत से वेडर बनने पर ही कोई सच्चे माने मे जाग सकता है। उर्दू शायर ने यही बात बताई है—

दारे फानी में हो, गाफिल ! मौत से एक पल नहीं।
क्या भरोसा जिन्दगी का, आज है और कल नहीं॥

जाल से बाहर आ

इस नश्वरता के सत्य के सम्बन्ध मे ज्ञान हो, किन्तु विचार इस तथ्य पर आता है कि यह जान कर भी बराबर भूल की जाती रहती है—मोह-ममता के जाल से बाहर निकल आने का कोई सार्थक प्रयास ही नही किया जाता। यह शिथिलता धीरे धीरे अज्ञान मे बदल जाती है। जब यह समझ शुरू हो जाती है कि जिस वातावरण के बीच जी रहे हैं, वही सही है, तब अनित्य को भी नित्य के रूप मे देखा जाने लगता है। मिटने वाले पदार्थों के स्वामित्व पर गर्व करते हुए तब सत्य को धूमिल बनाने की कुचेष्टा भी की जाती है। महत्ता की स्थापना सांसारिक उपलब्धियों के आधार पर की जाती है। मोह और ममता की भावना मे लिप्त ऐसा व्यक्ति अपनी भौतिक ऋद्धि के बल पर घमंड करने लगता है और सत्य को सत्य मानने से पीछे हट जाता है। एक मेवाड़ी भाषा का पद सुनिये—

धन नै दौलत और भैंस बाखड़ी
सारा अठे ही रह जासी ने उठ जासी हाटड़ी
कांच का महल सब ढस जासी
थारी प्यारी काया आग मांय जल जासी
मिट जासी चार दिन रो चाँदणो
माया, दुनिया में थोड़ो है जीवणो ।

आप इस पद के मर्म को गले उतारिये। यह सत्य है कि मृत्यु का कुछ भी पता नही और यह पक्का पता है कि मृत्यु आयेगी ही। मृत्यु आएगी तो संसार छूट

जायगा—अपना शरीर तक छूट जायगा। फिर मोह-ममता को छोड़ना ही श्रेयस्कर है।

मौत डरती है

सच्चे अर्थों मे जो मौत से डरता है, उसे पहले ही मरा हुआ समझा जा सकता है। मौत का डर भी उसे ही डराता है, जो रात दिन मौत से डरता रहता है। लेकिन जो मौत से डरता नही, किसी भी पल उसकी अगवानी करने को तैयार रहता है, वास्तव में मौत उससे डरती है। एक शूर-वीर या सैनिक या एक निर्भय साधक अपने-अपने क्षेत्र मे कार्य करते है, लेकिन मौत से एक पल के लिए भी नही डरते। मौत के सामने भी जो मुस्कराना सीख जाता है, वही वास्तव मे साहसी होता है। जीवन का सच्चा आनन्द भी उसी को प्राप्त होता है। मृत्यु को समक्ष पा कर भी एक राजस्थानी चिन्तक स्पष्ट शव्दो मे कहता है—

जिस मरने से जग डरे, मुझ मन है आनन्द।
जह मरस्यां तंह भेंटस्यां, पूरण परमानन्द॥

सोने और जागने का यही अन्तर है कि सासारिक विषयो मे मूर्छित वना व्यक्ति हर समय मौत से डरता रहता है, इसलिए कि उसका सव-कुछ उससे छूट जाएगा। इस मोहग्रस्त स्थिति को ज्ञानी-जन सोने की स्थिति मानते है। उनके अनुसार जागने की स्थिति तो यह होती है कि व्यक्ति वाहर के मोह से निकल कर अन्तश्चेतना मे डूवे-अपनी आन्तरिक शक्तियो को उद्घाटित करे। ऐसा सदा जागृत व्यक्ति अपनी शाश्वत आत्मशक्ति के ध्यान मे निरत रहता है, इसलिये वह मृत्यु का हँस कर स्वागत करता है, क्योकि वह जानता है कि आत्मा अमर है तथा मृत्यु उससे उसका कुछ भी नही छीन सकती। यह अभय-स्थिति ही विकसित जीवन का महत्वपूर्ण अंग मानी गई है।

महान् वनाने का सकल्प

इस नश्वरं तन को मिट्टी का जीवन मान सकते हैं। किन्तु यदि सकल्प ले लें तो इसे महान् भी वनाया जा सकता है। भारत के सभी दर्शनशास्त्र मानते हैं कि यह मानवतन वड़े पुण्य से प्राप्त होता है। महाकवि तुलसी ने भी इस मान्यता की पुष्टि की है—

वड़े भाग मानुष-तन पावा।
सुरदुर्लभ सब ग्रंथहि गावा॥

जनदर्शन के अनुसार भी मानव-तन दुर्लभ माना गया है, क्योकि एकेन्द्रिय से वेइन्द्रिय, वेइन्द्रिय से तेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय से चौइन्द्रिय, चौइन्द्रिय से पचेन्द्रिय और

□ □

पुरुषार्थ जीवन का अमृत है, जबकि आलस्य जीवन को मृत बना देता है । ससार के समस्त महत्त्वपूर्ण कार्य मानव के पुरुषार्थ से ही सम्पन्न हुए है । यदि मनुष्य पुरुषार्थहीन हो कर बैठ जाता तो आज जितना वह भौतिक क्षेत्र मे विकास कर सका है, उतना शायद ही कर पाता । किन्तु साथ ही पुरुषार्थ की दिशा स्पष्ट न हो, तो वह पुरुषार्थ मानवजाति के लिए घातक एव आत्म-विनाशक सिद्ध होगा । इस कारण पुरुषार्थ तो हो, लेकिन केवल देहदृष्टि से न हो, आत्मदृष्टि से पुरुषार्थ की मुख्यता हो । दोनो दृष्टियो से पुरुषार्थ का सन्तुलन जीवन मे क्या चमत्कार ला सकता है ? इस रहस्य को पाने के लिए मुनिश्री का यह प्रवचन पढिए ....

६

पुरुषार्थ की स्पष्ट दिशा

□ □
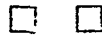
पुरुपार्थ का अमर सन्देश

श्रमणसंस्कृति के अमर देवता, पुरुपार्थ के प्रखर प्रतिपादक तीर्थकर देव के चरणो मे मेरा अनन्त-अनन्त वन्दन !

अभी परमपूज्य गुरुदेव के श्रीमुख से सुखविपाक-सूत्र का श्रवण कर रहे थे। उसमे गुरुदेव ने भगवान् महावीर का एक दिव्य सन्देश फरमाया था—

जहासुह देवाणुप्पिया,
मा पडिवन्धं करेह ।

अर्थात्—'हे दवानुप्रिय, तुम्हे जैसा सुख हो, वैसा करो, किन्तु उसके करने में तनिक भी विलम्व मत करो।' यह उनका पुरुपार्थ का अमर सन्देश है कि जीवन मे क्रियाशील वनो—काम करते रहो। पुरुपार्थ से एक पल भी दूर मत रहो। उनके सन्देश को इन शव्दो मे हम कह सकते हैं कि—

'चलने का नाम जिन्दगी, ठहरे तो मौत है।'

स्व-स्थ सगीत

पुरुपार्थ को स्वस्थ जीवन का संगीत माना गया है। क्रियाशीलता ही जीवन को जीवन का रूप देती है। निष्क्रिय जीवन को मृत्यु का ही दूसरा रूप कहा जा

सकता है। पुरुषार्थ-हीन जीता हुआ भी मरा हुआ ही होता है। पुरुषार्थ की शक्ति ज्यों-ज्यो बढती है, जीवन में आनन्द का सचार होता जाता है और पुरुषार्थ की अधिकाधिक सक्रियता के साथ जीवन संगीतमय बनता जाता है। प्रतिक्षण पुरुषार्थी गति से ऐसा मधुर एव प्रेरक संगीत फूटता है, जो अपने आसपास के वातावरण मे और फिर व्यापक रूप से जागृति की लहर फैला देता है।

सम्यक् पुरुषार्थ

महावीर का पुरुषार्थ—उद्घोष आज भी गुजायमान हो रहा है—'हे साधक, एक क्षण के लिये भी निष्क्रिय बैठने की आवश्यकता नही—जीवन की श्रेष्ठ प्रवृत्तियो के लिए प्रमाद एव विलम्ब नही किया जाना चाहिये।' 'प्रमाद नही' करने का अभिप्राय है कि जीवन मे बराबर सक्रियता बनी रहे और वह सम्यक् पुरुषार्थ में सगठित रूप से सचालित होती रहे।

तूती चली नहीं

प्रत्येक युग मे कर्मवीर पुरुषो ने पुरुषार्थ का शख फूंका है तो उस समय ऐसे भी व्यक्ति रहे हैं, जिन्होने पुरुषार्थ का विरोध किया। महावीर के समय मे ही गोशालक ऐसे व्यक्तियो मे से एक था। किन्तु कर्मयोगियो की शंखध्वनि के सामने ऐसे लोगो की तूती चली नही। महावीर ने कहा कि यदि व्यक्ति जीवन मे पुरुषार्थ नही करता है—श्रम नही करता है और जीवन-निर्माण के लिये जो आवश्यक प्रवृत्तियाँ हैं, उनमे नही जुटता है तो वह मोक्षमार्ग पर गति नही कर सकता है। याद रखिये कि पुरुषार्थ से दूर जो गति है—वह विगति है। पुरुषार्थ के अभाव मे व्यक्ति कभी प्रगति नही कर सकता। पूरे भारतीय वातावरण मे सदा पुरुषार्थ के गीत गूंजते रहे हैं और जीवन-निर्माण के लिये ये स्वर झंकृत होते रहे है। कुछ कर गुजरने की प्रेरणाएँ सदा जन-मानस को मिलती रही हैं। फिर भी दास मलूका जैसे लोगो ने प्रमाद के प्रचार में कह दिया—

> अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।
> दास मलूका कह गये, सबके दाता राम॥

इसके बावजूद पुरुषार्थ का मूल्य कभी भी कम नही माना गया और उससे स्वस्थ जीवन मे सदा ही प्रधानता मिली है। समाज में बैठे ठाले लोग सदा ही लाछना के पात्र बनते हैं। वास्तविकता यही है कि कोई भी प्रवृत्ति हो—पुरुषार्थ के बिना न सचालित हो सकती है और न सफल।

पुरुषार्थ : क्या, कैसे- किधर ?

पुरुषार्थ है क्रियाशीलता या श्रम और किसी भी दिशा मे कोई भी कार्य किया जाय, पुरुषार्थ या श्रम के बिना उसमे गति नही हो सकेगी । इस क्रियाशीलता को दो विभागो मे विभाजित कर सकते है—(१) क्रियाशीलता देहदृष्टि से, और (२) क्रियाशीलता आत्मदृष्टि से । अपने-अपने स्थान पर दोनो प्रकार की क्रियाशीलता को सन्तुलित बनाते हुए संगठित करने की आवश्यकता है ।

प्रश्न यह है कि …

देहदृष्टि की क्रियाशीलता मनुष्य के जन्म से ले कर मृत्यु तक बनी रहती है । गृहस्थ-जीवन मे तो यह दृष्टि कभी-कभी प्रमुख भी बन जाती है । साधु-जीवन मे देह-दृष्टि गौण होती है; किन्तु धर्मसाधन के रूप मे देह को चलाने की प्रवृत्ति तो की ही जाती है । प्रश्न यह है कि देहदृष्टि किस सीमा तक रखी जाय ? गृहस्थ को भी एक सीमा तक अपनी देह का पोषण भी करना होता है तो अपने परिवारजनों की देह का ध्यान भी—बल्कि इसी क्षेत्र मे व्यापक दृष्टिकोण के अनुसार ग्राम, नगर, राष्ट्र एव समाज के प्रति अपने स्वस्थ कर्तव्यो का भी पालन करना होता है—एक प्रकार से देह-दृष्टि के अनुसार ही सबके सुनियोजन की समस्याओ का निराकरण करना होता है । सामाजिक सुव्यवस्था एव लोकहित की दृष्टि से देह-रक्षा एव पोषण के क्षेत्र मे भी गृहस्थ पर काफी काम करने का भार रहता है ।

किन्तु नीति एव साधना की सीमाओ से आगे बढने पर देह-दृष्टि जीवन-निर्माण के लिए घातक बन जाती है । नैतिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र मे सीमाओ मे तो देहदृष्टि से प्रवृत्ति का पालन तटस्थ या निरपेक्षभाव से किया जाता है और वैसी देहदृष्टि समाज-सचालन तथा धर्म-साधन के लिए आवश्यक भी होती है । जहाँ देह के प्रति तटस्थभाव टूटा और ममत्वभाव आया, वही समझना चाहिए कि देह-दृष्टि मे विकार आ गया है । ममत्वपूर्ण ऐसी देह-दृष्टि तब आत्मिक गुणो का घात करने वाली बन जाती है । इसी के अनुसार वैसी विकृत देह-दृष्टि के लिए किया जाने वाला पुरुषार्थ भी सच्चे अर्थो मे पुरुषार्थ नही रहता है ।

देह-दृष्टि + आत्मदृष्टि

जब केवल देह तक ही दृष्टि केन्द्रित हो जाती है, तो वैसा व्यक्ति मोह-ग्रस्त हो जाता है और विविध प्रकार का श्रम केवल देह-दृष्टि से ही करने लगता है । जहाँ मोह आता है, वहाँ स्वार्थ प्रवेश करता है और जहाँ स्वार्थ है, वहाँ न नैतिकता रहती है, न सामाजिकता । ऐसा मोहग्रस्त स्वार्थ नैतिक तथा स्वस्थ समाज की जड़ो मे घुन

लगाता है तो आत्म-विकास के मार्ग को पूर्णतया अवरुद्ध बना देता है। ऐसा व्यक्ति आत्मा पर आने वाले मैल को हटाने मे तो असमर्थ बन ही जाता है, बल्कि अपनी स्वार्थपूर्ण एव अज्ञानपूर्ण विचार-दशा मे अपनी आत्मा को अधिकाधिक मलिन बनाता हुआ चला जाता है। आत्मा के लिए उसका पुरुषार्थ शून्य बन जाता है। क्योकि जहाँ विकृत देहदृष्टि पनप जाती है, वहाँ पर आत्मदृष्टि शिथिल बन जाती है। उसके जीवन मे आत्मार्थी पुरुषार्थ को लकवा मार जाता है—उसके मन का मथन और चित्तवृत्तियो का ग्रथन भी बन्द हो जाता है।

यहाँ हम पुरुषार्थ की इन दोनो प्रकार की दृष्टियों पर कुछ विशद विवेचन करेंगे।

श्रम की पूजा

कवीन्द्र रवीन्द्र ने अपने एक गीत मे कहा है कि अगर तुझे ईश्वर के दर्शन करने है तो मन्दिर और मस्जिद मे ईश्वर नही मिलेगा। ईश्वर का रूप वहाँ दिखाई देगा, जहा जेठ की दुपहरी मे अपने खेत मे किसान हल चला रहा है, या एक मजदूर अपने भारी घन पर लोहा कूट रहा है। उस किसान या मजदूर के पसीने की बूंदों मे ईश्वर की प्रतिमा दिखाई देगी। इस प्रकार उन्होने श्रम को ही ईश्वर माना।

श्रम को इतना महत्त्व देने की भावना के पीछे क्या पृष्ठभूमि है? इसमे कोई सन्देह नही कि इस मानव-देह के प्रति घृणा या विनाश की दृष्टि नही है, बल्कि इस देह को दुर्लभ बताया गया है और दुर्लभ वस्तु की रक्षा स्वयं मे एक कर्तव्य बन जाता है। एक-एक मानव की देह की समुचित रक्षा का विचार करते है तभी गृहस्थधर्म और उसमे ग्रामधर्म नगरधर्म राष्ट्रधर्म, समाजधर्म तथा विश्वधर्म के प्रश्न पैदा होते है। अपने अपने स्तर पर इन धर्मों का सम्यक् निर्वाह ही स्वस्थ समाज, समुन्नत राष्ट्र एवं एक विश्व की स्थिति को जन्म दे सकता है। जहाँ समाज, राष्ट्र और विश्व का वातावरण व्यक्ति की चहुंमुखी प्रगति मे सहायक बनेगा, वहाँ व्यक्ति एव समाज का सन्तुलन ठीक रहेगा तथा सर्वांगीण विकास के सुअवसर भी सदा उपस्थित रहेगे।

इस दृष्टि से जीवन मे श्रम की पूजा करते हुए देह दृष्टि का जो सत्पुरुषार्थ किया जायगा, वह प्रत्येक प्रकार से आत्मिक दृष्टि के पुरुषार्थ के लिये प्रोत्साहन एवं प्रेरणा का कारण ही बनेगा। देह-दृष्टि का पुरुषार्थ स्वस्थ रहा तो वही पुरुषार्थ आत्मदृष्टि के पुरुषार्थ मे एकीकृत बन कर समाज मे समूचे रूप मे एक नैतिक धरातल का निर्माण करेगा तो व्यक्ति के लिए भी उच्चतम आत्मिक विकास की साधना हो जायेगी।

श्रमनिष्ठा : आत्मनिष्ठा

समाज की दृष्टि से श्रम उसको ही माना है, जो सामूहिक आधार पर उपयोगी हो। व्यक्ति का अपना निर्वाह भी ऐसे ही समाजनिष्ठ श्रम के द्वारा होना चाहिये। समाज मे एक नियम होना चाहिये कि प्रत्येक व्यक्ति अपने श्रम से उपार्जित धन पर ही अपना निर्वाह चलाए। जिसका तात्पर्य यह होगा कि समाज मे प्रत्येक व्यक्ति श्रम करे ही—उनका जीविकोपार्जन किसी भी रूप मे दूसरे के श्रम पर टिका हुआ नही होना चाहिये। दूसरे के श्रम पर टिकने का अर्थ होता है—श्रम का शोषण या श्रम की चोरी। यह शोषण और चोरी की प्रवृत्ति जहाँ प्रचलित रहती है, वहाँ समाज मे वातावरण विषम बन जाता है एव अन्याय की परिस्थितियाँ फैल जाती है।

समाज सबके श्रम पर कैसे आधारित हो? इसकी परिपाटी को जरा गहराई से समझना होगा। समाज मे सबका जीवन-यापन विभिन्न उत्पादनो की सहायता से होता है, चाहे वह अन्न का उत्पादन हो या अन्य प्रकार के औद्योगिक उत्पादन हो। और उत्पादन का मूल आधार श्रम होता है। चाहे किसान श्रम करे या मजदूर—विना व्यक्ति के श्रम लगे, कोई भी वस्तु बनती या पैदा होती नही है। यह पट्टा आपको दिखाई देता है, क्या यह विना मानव-श्रम के तैयार हो सका है? लकड़ी वृक्ष से मिली, किन्तु खडे वृक्ष को चीरने मे और पट्टा बनाने मे मानव-श्रम ही तो लगा है। आप किसी भी उपयोगी पदार्थ पर दृष्टि दौड़ा लीजिये—आपको शायद एक भी पदार्थ ऐसा नही मिलेगा, जिसका उपयोग तो हो, किन्तु जिसमे मानव-श्रम न लगा हो।

श्रम-पूँजी-कौशल

आपके मन मे एक शका खड़ी होगी कि क्या अकेले श्रम से ही वस्तु का उत्पादन हो जायगा? क्या उसमे पूँजी और कुशलता का योग नही होता? उत्पादन मे पूँजी व कुशलता का भी अपना योग होता है, किन्तु सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान श्रम का ही रहता है। सोचें कि एक मजदूर एक कपड़ा मिल मे एक कर्घे पर बैठ कर दिन भर मे एक रुपये की रूई को एक मलमल के थान मे बदलता है, जिसका मूल्य चालीस रुपया हो सकता है तो उसे श्रमोपार्जित वस्तु के सारे मूल्य का आधा हिस्सा तो मिलना ही चाहिए। किन्तु एक मजदूर को बीस के स्थान पर आठ-दस रुपया मिलता है तो इसका अर्थ यह है कि श्रम का पूरा मूल्य चुकाया नही जाता। इसे श्रम का शोषण या श्रम की चोरी कह सकते है। एक श्रमिक का शोषण जब हजारो श्रमिकों के शोषण मे बदलता है तो एक मिल-मालिक बड़े शोषक के रूप मे दिखाई देता है। क्योकि श्रम-चोरी से उसके पास लाखो रुपयो का संचय हो जाता है। इस

सचय से एक वर्ग तो भारी विलासिता का जीवन विताने लगता है तो दूसरी ओर बहुसंख्यक श्रमिकवर्ग दीनता और हीनता के चक्र मे पिसने लगता है। तव समाज में विपमता का वातावरण व्याप्त हो जाता है।

विषमता के वातावरण मे दोनो वर्गो मे अनैतिकता का फैलाव होता है—एक के पास अधिक धन से और दूसरे के पास सामान्य निर्वाहयोग्य भी धन के नही होने से। ऐसी धन-लिप्सा की स्थिति मे जव नैतिकना गिरती है तो स्वार्थ भी वुरी तरह फैलता है। ऐसी अवस्था मे देह-दृष्टि का अतिविकृतस्वरूप हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। इसके विपरीत जव सारा समाज श्रमनिष्ठ वन सके तो धन-सम्पदा का न्यायपूर्ण वितरण होगा, क्योकि विपम-सचय के वहाँ अवसर ही नही रहेगे। समान वितरण से सबकी समान-सी स्थिति होगी और उसमे सव के वीच सहयोग, सम्मान एवं सौहार्द का वातावरण वनेगा। इसमे आत्म-दृष्टि का वरावर विकास होता रहेगा।

ऐसा होने से समाज मे विकृत देह-दृष्टि समाप्त हो जायगी एवं श्रमनिष्ठा फैल जायगी तो उस वातावरण के फलस्वरूप आत्मनिष्ठ व्यक्तित्व उभरेंगे; कारण कि वैसे समाज में आत्मदृष्टि की ही सर्वोपरि महत्ता होगी।

जीवन-कला

देहदृष्टि जव स्वस्थ एव सतुलित होगी तथा उसका सामूहिक एव समाजगत स्वरूप विकसित वन जाएगा तो उससे अवश्य ही आत्मदृष्टि का विकास हो सकेगा। समता, बन्धुता एव स्वतत्रता के वातावरण मे विचरण करने वाले समाज मे नैतिकता एव आध्यात्मिकता के सुखद प्रभाव का प्रसार होने मे फिर कोई वाधा नही रहेगी। वाह्य वातावरण सुमधुर होगा और तव सभी ओर से आन्तरिक वातावरण को निर्मल बनाने की चेष्टाए होगी।

दर्पण की तरह स्वच्छ आत्मा पर मैल

जैनदर्शन स्पष्ट कहता है कि आन्तरिक वातावरण को निर्मल वनाने का अर्थ है—आत्मा पर लगे कर्म-मैल को धोना और आत्मा को उसके मूल स्वरूप मे चमकाना। एक दर्पण के उदाहरण से इसको समझिए। एक दर्पण मूल मे साफ होता है और उसमे किसी व्यक्ति या वस्तु का प्रतिबिम्व एकदम साफ दिखाई देता है। किन्तु मान लीजिए कि उस पर धूल, मैल, चिकनाई; वगैरह चढती गई, जिससे उसकी दर्शनीयता धुधली होती गई। एक दिन ऐसा भी आया कि दर्पण पूरी तरह मैल से ढक गया और उसमे प्रतिच्छाया की झलक तक दीखना बन्द हो गई। किन्तु इससे

क्या दर्पण का मूलस्वरूप एवं मूलगुण नष्ट हो गया ? नही, वह दव जरूर गया और चेष्टापूर्वक यदि उस मैल को पूरे तौर पर साफ कर दिया जाय तो दर्पण पुनः अपने मूल रूप तथा गुण मे पहुँच जाएगा तथा सामने आने वाले प्रत्येक व्यक्ति एवं वस्तु को पहले ही की तरह प्रतिविम्वित करने लग जाएगा। यही स्थिति आत्मा के मूल स्वरूप एव मैल की है तथा आत्मदृष्टि की समुन्नति के वारे मे जितना जो कुछ कहा जाता है, उसका एकमात्र तात्पर्य यही है कि आत्मा के कर्म-मल को भी अपनी ज्ञान-दर्शन-चारित्र की कठिन साधना द्वारा धो कर उसे इतनी निर्मल वना दे कि वह अपने मूल स्वरूप एवं मूल गुण मे पहुँच जाय।

आत्मा अपने मुलस्वरूप एव मूलगुण में निर्मल थी, किन्तु कर्ममल से सयुक्त हो कर ससार के भवचक्र मे भ्रमण करने लगी और जब तक पुन पूर्ववत् निर्मल नही वना दी जाएगी, तव तक वह भवभ्रमण करती ही रहेगी। कर्ममुक्त होने पर ही वह सिद्ध हो कर अपने मूलस्वरूप को प्राप्त कर सकेगी।

इसलिए जीवन-निर्माण की सच्ची कला यही है कि आत्मदृष्टि से पुरुषार्थ को सवल वना कर आत्मा को विकास के लिये अपने चरम लक्ष्य तक पहुँचा दे। समस्त पुरुषार्थ की भावना का यही लक्ष्य है और क्रियाशीलता की यही दिशा है।

अन्तिम लक्ष्य

महावीर-दर्शन की स्पष्ट मान्यता है कि यह आत्मा स्वय ही कर्त्ता, हर्त्ता एव भाग्यनियन्ता है। आत्मा पर कोई अन्य शक्ति शासन करती हो, ऐसा नही है। अपने भाग्य के निर्माण का अधिकार स्वयं आत्मा को है। ये सचित कर्म क्या होते है ? ये कर्म आत्मा को मलिन क्यो वनाते है ? इस सारी प्रक्रिया को कर्मसिद्धान्त के नाम से पुकारा गया है।

आत्मा सक्रिय होती है—उसकी सक्रियता की दिशा शुभ भी हो सकती है और अशुभ भी हो सकती है। शुभ कार्य से जो कर्मवंध होगा, वह पुण्यकर्म का वध होगा तथा अशुभ कार्य से पापकर्म का वध होगा। पुण्य से अच्छा जीवन तथा अधिक सुविधाएँ प्राप्त होगी—यह उसका फल होगा। पापकर्म का फल दु खो और वाधाओं के रूप मे प्राप्त होगा। तात्पर्य्य यह है कि जैसा भी कार्य आत्मा अपने प्राप्त जीवन मे करेगी, उसका वैसा फल उस या अगले जीवनो मे उसे भुगतना पड़ेगा और इस कार्य एव फलयोग का जो माध्यम है, उसे कर्म कहते है। सत्कार्य करने से पुण्यकर्म का वंध होता है व पापकर्म कटता है, जिससे अधिक सत्कार्य कर सकने वाली परिस्थितियाँ उपलव्ध होती हैं, किन्तु मोक्षप्राप्ति के लिये शुभ या अशुभ सारे कर्मसमूह का क्षय करना होता है। इस क्षय की प्रक्रिया को निर्जरा कहते हैं।

कर्म आठ प्रकार के बताये गये हैं—१. ज्ञानावरणीय, २. दर्शनावरणीय, ३. वेदनीय, ४. मोहनीय, ५. आयुष्य, ६. नाम, ७. गोत्र एव ८. अन्तराय। यह एक प्रकार से समस्त प्रवृत्तियो का आठ भागो मे विभागीकरण है, जिनका स्वरूप शुभ व अशुभ दोनो प्रकार का हो सकता है। इन आठ कर्मों मे चार कर्म घनघाती कर्म माने गये हैं, जिनके क्षय करने मे अपार आत्मिक पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है। इन चार घनघाती कर्मों मे भी मोहनीय को परमबली कर्म माना गया है, जो बहुत ही चिकना होता है। ममत्व की जंजीरें तोड़ देने के बाद अन्य कोई बाधा समत्व की भावना के प्रसारित होने के मार्ग मे बचती नही है।

इस कारण पुरुषार्थ का सर्वोपरि एवं अन्तिम लक्ष्य यही है कि नये कर्मों के बध को रोका जाय तथा सचित कर्मों का क्षय किया जाय। पुरुषार्थ चाहे देह-दृष्टि से हो—उसमे भी यही लक्ष्य सामने रहना चाहिये, कारण पुरुषार्थ की प्रधान-दृष्टि आत्म-दृष्टि ही मानी गई है। देहदृष्टि का पुरुषार्थ जहाँ तक आत्मदृष्टि मे सहायक बनता है, वह आवश्यक है; किन्तु आत्मदृष्टि को आंखो से ओझल करके जो देह-दृष्टि का पुरुषार्थ है, वह विकृत पुरुषार्थ की श्रेणी मे आयेगा। पुरुषार्थ का अन्तिम लक्ष्य पुरुषार्थ आरम्भ करने से ले कर निरन्तर ध्यान मे रहना चाहिये।

सदा जागृत रहो !!

जागृति से ही पुरुषार्थ की सही प्रक्रिया प्रारम्भ होती है तथा पुरुषार्थ की सक्रियता से जागृति की गंभीरता बढती जाती है। भगवान् महावीर ने मुनि उनको ही माना है, जो सदा जागृत रहते हैं—

मुणिणो सया जागरंति।

पुरुषार्थवादी व्यक्ति कभी सोता नही है, हमेशा जागता रहता है। वह इस तथ्य से सावचेत रहता है कि पुरुषार्थ से ही भाग्य का निर्माण होगा। आज कोई कष्ट भोग रहा है तो वह उसके गलत पुरुषार्थ का कुफल है तथा आज वह अच्छा काम कर रहा है—सत्पुरुषार्थ कर रहा है तो उसका सुफल भी उसको अवश्य ही मिलेगा। जो सोता है और पुरुषार्थ की प्रक्रिया को नियन्त्रित नही कर पाता—वह स्वयं ही अपने दुर्भाग्य की रचना करता है, किन्तु सदा जागने वाला अपने सत्पुरुषार्थ से अपने सौभाग्य का निर्माण करता है। जो सदा पुरुषार्थ करता रहेगा—सदा जागृत रहेगा, वह मुनि धर्म का भी सम्यक् पालन कर सकेगा एव मोक्षमार्ग की सच्ची आराधना भी कर सकेगा। कवि ने क्या ही अच्छा कहा है—

पुरुषार्थ सिद्धि का दाता है
पुरुषार्थ ही भाग्य-विधाता है

पुरुषार्थ मोक्ष पहुँचायेगा
मंगल ही मंगल छायेगा
जब निज पुरुषार्थ जगायेगा
मंगल ही मंगल छायेगा।

सही दृष्टि से देखें तो भाग्य एवं पुरुषार्थ में कोई परस्पर विरोध नही है, क्योकि स्वयं भाग्य का निर्माण पुरुषार्थ के बल से ही होता है। फिर कर्त्ता और कृति मे विरोध किस बात का? पुरुषार्थ की जो जमा निधि है, वही तो भाग्य बनता है, किन्तु कभी-कभी विरोधाभास इस कारण दिखाई देता है कि पहले के अशुभ कर्मो का फलभोग चल रहा हो और इसलिए वर्तमान पुरुषार्थ विफल बन रहा हो, तब भाग्य की विशेषता समझ मे आती है। वास्तव मे भाग्य और पुरुषार्थ एक हैं—पहले का पुरुषार्थ आज का भाग्य है तो आज का पुरुषार्थ भविष्य का भाग्य बन जायगा।

अत: वास्तविकता यह है कि सबकी सच्चे पुरुषार्थ मे निष्ठा जागनी चाहिए। भाग्य के नाम पर निराशा लाने की कोई आवश्यकता नही है। अपनी सक्रियता शुभ मार्ग पर बनाये रखिये—वह सदा शुभत्त्व को ही प्राप्त होगी। कहा है—

रोने से दुःख दूर नहीं होने का
आंसू से पत्थर चूर नहीं होने का
जीवनभर चाहे कुकुम से पूजो
काला काजल सिन्दूर नहीं होने का

पुरुषार्थ की प्रशंसा में सभी के एक-से स्वर !

पुरुषार्थ या उद्यम की प्रशंसा सभी ने एक स्वर से की है और यह प्रमाण है कि जीवन को उन्नति के उच्चतम शिखर पर पहुँचाने का प्रधान साधन एकमात्र पुरुषार्थ ही हो सकता है। पुरुषार्थ के विषय मे संस्कृत की यह उक्ति सुनिये, जो बताती है कि सारे कार्यो की सफलता का रहस्य उद्यम ही होता है—

उद्यमेन ही सिध्यन्ति, कार्याणि न मनोरथैः।
नहि सुप्तस्य सिंहस्य, प्रविशन्ति मुखे मृगा॥

एक राजस्थानी कवि के विचार भी जानिये—

उंडो विचार करो आपरो जीवन एक खिलतो फूल है
गाढ़ी धार लेवो तो इ सगला पर तभी धूल है
अचभो है कि यूं रात दिन आप कांई रोता रेवो
भाग रे भरोसे बैठो रेवणो तो भाया भारी भूल है।

जीवन के अन्दर जो अकर्मण्य हो कर बैठ जाते है, वे स्वयं अपनी प्रगति का द्वार ही बन्द कर लेते है, किन्तु जो पुरुषार्थ की सीढ़ी पर पाव रखता है, वह एक-एक सीढी चढता हुआ ऊपर और ऊपर पहुँचता ही जाता है। पुरुषार्थियो के साहस को क्या कोई तोड सका है? किसी ने लिखा है—

तूफानों के भय से जिसके साहस में बाधा आई है
ऐसे कम-हिम्मत राही ने, अपनी मंजिल कब पाई है
कर्मवीर के आगे पथ का हर पत्थर साधक बनता है
दीवार भी दिशा बताती, जब मानव आगे बढ़ता है।

कर्मवीर व्यक्तियो के जीवन मे अनेक प्रकार के अवरोध आते हैं, किन्तु वे अवरोध उनके पुरुषार्थ के आगे टिकते नही है, बल्कि उनके प्रबल पुरुषार्थ के आगे सभी सहयोगी बन जाते हैं—पत्थर भी साधक बनता है तथा दीवार भी दिशा बताती है। सम्यक् पुरुषार्थ तो वास्तव मे सभी को प्रेरणा देता है और इसी कारण सत्पुरुषार्थी के साथ सभी की सद्भावना—सभी का सहयोग जुड़ जाता है। एक कवि ने इसे सरलता से स्पष्ट किया है—

जलाने से चिराग जला करते हैं
खिलाने से फूल खिला करते हैं
नहीं वक्त है किस्मत के भरोसे जीने का
किस्मत के महल भी बनाने से बना करते हैं।

पुरुषार्थ की प्रशसा में एक अन्य कवि ने अपनी काव्य-लड़ियां यो पिरोई हैं—

गैरो का क्या करें भरोसा, तू खुद ही निर्माता है
तू खुद ही है शक्तिपुंज, तू खुद ही भाग्यविधाता है
नही शोभा देती कायरता वीर को
हिम्मत से ले काम, बना ले साथी तू तदबीर को
तज करके पुरुषार्थ अगर तू, आंसू यूं ही बहायेगा
समय सुनहरा बीत गया तो फिर पीछे पछतायेगा
व्यर्थ बहाता क्यो नैनों के नीर को
हिम्मत से ले काम, बना ले साथी तू तदबीर को।

उपनिषदो मे भी यह सन्देश पढने को मिलता है कि चरैवेति, चरैवेति; अर्थात चलते रहो—चलते रहो। इसको हम अपने शीर्षक मे यो कह सकते है कि—

चलने का काम जिन्दगी है, ठहरें तो मौत है।

सदा चलते रहो, क्योकि चलने वाले को जीवन का मधु प्राप्त होता ही है। जो ठहरता है, वह एक प्रकार से अपनी मौत को आमन्त्रण देता है। विना पुरुषार्थ के कोई मजिल नही मिलती। एक उर्दू शायर ने कहा है—

इरादे तो हैं मंजिल के, सफर करना आता नही
हमें कहना तो आता है, मगर करना आता नहीं।

प्रमाद त्यागें, पुरुषार्थी वनें, प्रेम और आनन्द की गंगा वह चलेगी।

साररूप मे यह कथन है कि जीवन मे प्रमाद और आलस्य को कही भी स्थान न दें तथा पुरुषार्थ को अपना कर्ममन्त्र मान लें। यदि आपने अपने जीवन मे ऐसा अभ्यास वनाया तथा अपने साथियो को भी ऐसा अभ्यास वनाने की प्रेरणा दी तो सत्य जानिये कि आपके और आपके निकटवर्ती वातावरण मे प्रेम एव आनन्द की गगा वह चलेगी।

प्रमाद जव तक जीवन मे छाया हुआ रहेगा, जीवन मलिन और निष्क्रिय वना रहेगा। 'मेरी छाती पर आम पड़ा हुआ है, जरा भैया इसे मेरे मुंह मे डाल जाना'—वाले आलसी की कहानी आपने सुनी होगी। ऐसे आलसी भला अपने जीवन मे क्या कर सकते है? प्रमादवश ऐसे अमूल्य मानवजीवन को जो वरवाद करता है, क्या उसका अपराध क्षम्य कहला सकता है? ध्यान से अन्तरावलोकन करें कि कही आप भी इस श्रेणी मे तो नही आते हैं?

जीवन मे प्राप्त शक्तियो के सदुपयोग का नाम ही पुरुपार्थ है। हम शास्त्र सुनाते रहें और आप लोग शास्त्र सुनते रहे, किन्तु सत्पुरुषार्थ की ओर आप प्रवृत्ति नही करें—अपने जीवन मे जागृति नही लाएँ तो वताइये कि क्या हम एक और अपराध नही कर रहे है? पुरुपार्थ से जागृति आयेगी, जागृति से निष्ठा तथा उनके संयोग से जीवन मे प्रेम एव आनन्द की वर्षा होगी। चार पक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

क्या करे तकदीर, जहाँ तदवीर नहीं है
क्या करे फूल कमल जहाँ नीर नहीं है
क्या होवेगी विजय जहां पर वीर नहीं हैं
क्या ठहरेगा प्रेम जहाँ पर पीर नहीं है।

पुरुषार्थ का प्रोत्साहन अद्‌भुत होता है क्योकि निराशाओं की काली घटाओ को पुरुपार्थ पल मे छिन्न-भिन्न कर देता है। एक मुक्तक और—

मुसीवतों के जमाने निकल ही जाते हैं,
जो आज गिरते हैं, वे कल संभल ही जाते है।

पुरुषार्थ का भविष्य सदा उज्ज्वल रहता है। पुरुपार्थ से भाग्य को वनाइये तथा आत्मा को मजिल पर पहुंचाइये। □

□ □

मानव-जीवन में आ जाये
सिर्फ सादगी और सचाई !

मानव-जीवन मे आ जाये, सिर्फ सादगी और सचाई।
मिल सकती है इनके द्वारा, मन शान्ति कुछ बची-बचाई।

झूठ और फैशन ने कितनी, धूम मचाई है जोरो से।
इसीलिए नर पास न हो तो, पैसे लेता है औरो से।
आज नही कल दे दूगा जी
कल ही देदेगा फिर ऐसे, दे देता नर अन्य गवाही ··

आय और व्यय विषम बना कर, घोल लिया विष निज हाथो से।
रूखी-सूखी रोटी ने भी, झगड़ा बढा दिया दातो से।
नीति हराम नही क्यो होगी ?
सुना जा रहा उसने ऐसे, अमुक सेठ की रकम पचाई····

सादा जीवन जीने वाला, सदा सत्य आचरण करेगा।
लिए सत्य के हसता-हसता प्राप्त मृत्यु का वरण करेगा।
निभता नही सत्य इस युग मे
खड़ा सत्य सेनानी ऐसे दिखला सकता नही कचाई····

मोटा पहनो, मोटा खाओ, शान्ति मानसिक मिल जायेगी।
झूठ और फैशन की नींवें, पड़ी हुई भी हिल जायेगी।
पहचानेगी दुनिया सारी
मुनि महेन्द्र 'कमल' जीने की, विधियाँ जाती नही छिपाई····

□

7

धर्म की वैज्ञानिकता : विज्ञान की धार्मिकता

□ □

पिछली सदी तक विज्ञान और धर्म दोनो के बीच जम कर संघर्ष रहा। रोम का रोगटे खडे कर देने वाला इतिहास इसका साक्षी है। विज्ञान से लाभ भी है तो हानियाँ भी हैं। सामान्य जनजीवन पर आज विज्ञान हावी हो गया है, उधर रूढिगत धर्म अवैज्ञानिक वन जाने के कारण नई पीढी का श्रद्धाभाजन नही रहा, किन्तु कुछ विचारको के प्रयत्न से धर्म मे वैज्ञानिकता का प्रवेश होने पर धर्म का वास्तविक कल्याणकारी रूप उभर आया, उधर विज्ञान राजनीतिज्ञो के हाथ की कठपुतली वन जाने से निरकुश और जनकल्याण-कारी के वदले संहारक वन गया। अव आवश्यकता इस वात की है कि धर्म मे जो वैज्ञानिकता प्रविष्ट हुई है, वह वनी रहे और विज्ञानरूपी अश्व पर धर्मरूपी लगाम रहे। ताकि विज्ञान धर्ममय वने और धर्म वैज्ञानिकता से परिपूर्ण ! इसी तथ्य को भलीभाँति समझाने के लिए यह प्रवचन प्रस्तुत है····················

७

धर्म की वैज्ञानिकता : विज्ञान की धार्मिकता

□ □

आज का विज्ञानबल, आधार ही संग्राम का है।
विश्व आतंकित रहे वह ज्ञान ही किस काम का है॥

एक पक्षी होता है, उसके दोनों वाजू पख होते है। यदि उसका एक पख काट दिया जाय तो क्या वह एक ही पख से उडान भरके गगन मे उन्मुक्त विहार कर सकेगा ? बिजली के भी दो तार होते है—एक पोजिटिव, दूसरा नेगेटिव। दोनो ही तार अलग-अलग हो तो कितना ही बटन दवाइये, कमरे मे प्रकाश नही हो सकेगा, न पखे से हवा फैल सकेगी। बिजली को प्रभावकारी वनाने के लिये दोनो तारो को जोडना होगा।

ठीक इसी तरह जीवन की क्रियाशीलता के लिए धर्म एव विज्ञान दोनो आवश्यक हैं, किन्तु दोनो मे सामजस्य उससे भी अधिक आवश्यक है।

दैनंदिन जीवन मे धर्म और विज्ञान

सामान्य रूप से वर्तमान युग मे एक सामान्य व्यक्ति की प्रतिदिन की चर्या पर इस प्रयोजन से दृष्टिपात करे कि वहाँ धर्म और विज्ञान की क्या और कैसी भूमिका है ? इसमे नागरिक एव ग्रामीण जन की दृष्टि से अन्तर पड़ेगा।

बम्बई जैसे नगर में सुबह उठने से लेकर रात में सोने तक उसके लगभग प्रत्येक कार्य में विज्ञान का योगदान दिखाई देगा—घर के कामो मे, सुखसुविधाओं मे, आने-जाने मे, दफ्तर के काम-काजो मे एवं मनोरंजन के साधनों मे विज्ञान का उपयोग समझ मे आयेगा। वैज्ञानिक साधन एवं उपकरण नगर के जनजीवन में तो ऐसे छा गये हैं, कि वे यदि ठप्प हो जायें तो सारा जन-जीवन ही खतरे मे पड़ जाय। यदि बिजली फेल हो जाय या पानी के नल बन्द हो जाय तो लोगो की जान पर बन आए। एक तरह से उनकी समूची दिनचर्या विज्ञान पर आधारित है। धर्म शहरी लोगों के जीवन मे क्रियाकलाप की दृष्टि से कितना स्थान रखता है—यह व्यक्तिगत या सम्प्रदायगत दृष्टि मे तो देखा जा सकता है; किन्तु समूहगत स्थान का अनुमान लगाना आसान नही है। भावनात्मक दृष्टि से भी धर्म का फैलाव उतना उल्लेखनीय नही रह गया है। फिर भी शहरों मे धर्म का आडम्बर अवश्य दिखाई देगा और सामान्य समय मे धर्म-सम्बन्धी विवाद या संघर्ष भी कई बार उभरते दिखाई देगे।

इसके विपरीत भारत का ग्रामीण-समाज अभी भी महानगरो की स्थिति से बहुत कुछ अलग है। पहली बात तो वहाँ इक्के-दुक्के वैज्ञानिक सुख-सुविधा के साधन ही पहुँचे है तथा उनके पूरे दैनिक जीवन पर विज्ञान का आधिपत्य नहीं है। यह अवश्य है कि धीरे-धीरे ग्रामीण क्षेत्रो मे भी वैज्ञानिक उपकरणो व सुख सुविधाओं के साधनो का विस्तार किया जा रहा है। कृषि का मशीनीकरण भी हो रहा है, फिर भी महानगरों वाली स्थिति ग्रामों से काफी दूर है। धर्म का सभी प्रकार से अधिक प्रभाव ग्रामीण क्षेत्र मे अवश्य ही परिलक्षित होगा, चाहे उसका भावात्मक रूप हो—क्रियाकाडी ढग हो या अन्ध-विश्वास का मामला हो। सामान्यतया ग्रामीणजन धर्म भीरु भी पाये जाते हैं।

इस विश्लेषण से यह परिणाम निकाला जा सकता है कि सामान्यतया लोगों के मन-मस्तिष्क पर विज्ञान का प्रभाव गहरा होता जा रहा है और जिस रूप मे भी समझें, धर्म का प्रभाव घट रहा है। इस परिणाम के कारणो की मीमासा की जाय, उससे पहले धर्म की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, धर्म की सच्ची व्याख्या एव विज्ञान के इतिहास पर एक दृष्टि डालनी समुचित रहेगी।

धर्म की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत के दार्शनिक एवं सास्कृतिक इतिहास की तह मे जायेगे तो विदित होगा कि धर्म की आधारशिला पर ही राज्यो का जन्म हुआ, राज्यव्यवस्था का जन्म हुआ। वर्णव्यवस्था मे भी एक वर्ण पर ज्ञान-प्रसार एवं धार्मिक क्रियाकाड का

दायित्व सौंपा गया। राजा ऋषि को प्रणाम करता था और ऋषि राजा का सम्मान करता था। दोनों वर्गों के इस सम्बन्ध की पृष्ठभूमि यह थी कि सत्ता के मद में राजा अन्यायी न बने और धर्म की सलाह से काम करे। इस प्रकार धर्म राजनीति को उद्दंड बनने से रोकने में प्रयुक्त होता था।

वैसे धर्म की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एक बृहद् विषय है तथा मानव समाज धर्म की शक्ति से किस प्रकार सचालित हुआ—इसका विश्लेषण भी संक्षेप मे करना कठिन होगा। यहाँ तो धर्म की व्यापक मान्यता के विकास के बारे मे विज्ञान के संदर्भ मात्र से सोचना है।

विद्वानो की व्याख्या के अलावा देश का सामान्य जन धर्म को विभिन्न प्रवर्तको द्वारा चलाये गये विभिन्न मत-मतान्तरो के रूप में ही समझता है। यद्यपि सभी प्रवर्तको ने मानवीय जीवन के श्रेष्ठ गुणो को अपने विचारो मे स्थान दिया है, फिर भी सूक्ष्म दार्शनिक भेद तो उनमें मिलेगा ही। विभिन्न प्रवर्तको मे और उनके बाद अलग-अलग आचार्यो मे निष्ठा रखने के कारण जन-समुदाय नाम से अलग-अलग धर्मो, सम्प्रदायो या उप-सम्प्रदायो में बंट गया। ऐसी अवस्था मे अनुयायियो के लिये धार्मिक सिद्धान्तो के प्रतिपादन की अपेक्षा अपने सम्प्रदाय की कट्टरता अधिक महत्त्वपूर्ण बन गई, क्योंकि सम्प्रदाय के अस्तित्त्व की रक्षा का प्रश्न सर्वोपरि हो गया।

इस प्रवृत्ति में धार्मिक क्षेत्र में सिद्धान्तो एवं विचारो को महत्त्वहीन बनाना शुरु कर दिया तथा सम्प्रदाय की प्रतीक-रक्षा और उसके प्रति कट्टरता अधिक महत्त्वपूर्ण हो गई। समग्र प्राणी-समाज या मानव-समाज के साथ प्रवर्तको द्वारा उपदिष्ट विचारो का व्यवहार मे अभाव-सा दिखाई देने लगा तथा साम्प्रदायिक उत्तेजना ने लोगों को लगातार संघर्ष मे झौंक दिया।

एक ओर इस प्रकार हिंसा और उत्तेजना बढ़ी तो दूसरी ओर कट्टरता को पुष्ट करने के लिए अंधविश्वासों की श्रृंखलाएं घड़ी गई, ताकि सामान्य जन के दिमागो पर ताले लगा कर उनको अपने-अपने बाड़ो से बाहर निकल कर दूसरो के बाड़ो मे जाने से रोका जाय। अथवा भावनात्मक महत्व शिथिल बना कर जब धार्मिक परम्पराओ का ऐसा रूप ढलने लगा तो वह युवकवर्ग के लिए पहले उपेक्षा और फिर घृणा का कारण बन गया। धार्मिक क्षेत्र की ऐसी क्षत-विक्षत अवस्था के समय विज्ञान के विकास का युग आरम्भ हुआ।

व्यापक दृष्टि

इसमे कोई सदेह नही कि विभिन्न विचारो एव दर्शनो के प्रवर्तको ने लोक कल्याण को समक्ष रख कर सम्पूर्ण प्राणी-समाज के हित एवं मानवता के उद्धार के

लिए ही अपने उपदेश दिए। चाहे राम-कृष्ण हो या महावीर-बुद्ध अथवा मोहम्मद-ईसा या वाद के प्रवर्तक हो—उनकी दृष्टि व्यापक एवं यथार्थ थी तथा उन्होंने मानवता को टुकडो टुकड़ों मे कमी देखना पसन्द नही किया, किन्तु प्रवर्तकों के शिष्यों ने उनके लाभ को समेटना शुरू किया तो भेद-विभेद की दृष्टियां पैदा हो गई।

धर्म की सार्वजनीन एवं सच्ची व्याख्या की जाय तो उसका सम्बन्ध सार विश्व से, सम्पूर्ण मानवता से जुडेगा। धर्म की विभिन्न व्याख्याएं की गई हैं। एक व्याख्या है—धारयति इति धर्म.। जो धारण करता है, वह धर्म है। किसी ने धर्म को कर्त्तव्यो के पुज में देखा तो अधिकांश ने वाह्य क्रियाकाडो मे। किन्तु इन सारी व्याख्याओ के बीच भगवान् महावीर ने जो धर्म की व्याख्या की है, वह इतनी सार्वजनीन एव सत्य भूमिका पर आधारित है कि वैसी सारपूर्ण व्याख्या अन्यत्र नही मिलती।

भगवान् महावीर ने अपने दर्शन मे धर्म की छोटी-सी किन्तु अत्यन्त ही सारगर्भित व्याख्या की है—

वत्थुसहावो धम्मो

अर्थात् वस्तु का जो स्वभाव है, वही उसका धर्म है। न क्रियाकांड का उल्लेख, न उपदेशो की भनक—यह एकदम वास्तविक व्याख्या है।

वस्तु का स्वभाव क्या—इसे पहले समझ लें। एक दृष्टान्त दे दूं। एक लकडी का टुकडा है—उसका स्वभाव है पानी मे तैरना। आप उसे पानी के तले से भी छोडेंगे, तब भी वह पानी की सतह पर आ जाएगा। स्व+भाव का अर्थ है—निज का भाव या मूल स्थिति। किन्तु उसी लकड़ी के टुकडे को एक लोहे की डिब्बी मे बन्द करके पानी की सतह पर छोडेंगे, तो वह पानी के तले तक दब जाएगा। आप पूछेंगे कि फिर यह लकडी के टुकडे का कौन-सा भाव हुआ ? उसका अपना भाव तो तैरना है, किन्तु वह जब किसी दूसरे के भाव से दबा दिया गया तो पर-भाव मे—पर-प्रभाव में चला गया तो यह उसका विभाव कहलाएगा। विभाव का अर्थ है—स्वभाव से विपरीत स्थिति।

अब पुन धर्म की व्याख्या पर आइये। वस्तु का जो मूल स्वभाव है, वही उसका धर्म है तथा प्रत्येक वस्तु अपने धर्म मे प्रतिष्ठित रहे—यह सहज स्थिति मानी जानी चाहिये। धर्म की कसौटी पर हम अपनी आत्मा को ले। आत्मा का स्वभाव क्या और, उसका विभाव क्या ? इसे अपनी अन्तरात्मा से पूछो कि कैसा काम करने पर आन्तरिक आनन्द होता है और वैसे आनन्द की अवस्था मे आत्मा कैसा अनुभव

करती है ? शायद इसे कोई भी विवाद का विषय नही मानता कि लोकोपकारी कार्य करने पर आन्तरिक आनन्द मिलता है तथा उससे आत्मा को हलकेपन की अनुभूति होती है। तो यह स्थिति आत्मा का स्वभाव कहलाएगी। इससे विपरीत अन्याय, अपराध करने में या भोगविलास मे रत रहने मे जो आनन्द का अनुभव किया जाता है, वह आनन्द न स्थायी होता है, न प्रफुल्लतादायक। अत. वैसी स्थिति आत्मा के विभाव की होती है, जिसमे वह कर्मो के भार के नीचे दव कर तदनुसार क्रिया करती है।

अत: आत्मा को विभाव से हटा कर स्वभाव मे प्रतिष्ठित करना ही धर्म है तथा इस दिशा मे की जाने वाली प्रत्येक क्रिया को धार्मिक क्रिया की सज्ञा देनी होगी।

धारणाओं में क्रान्ति

वि+ज्ञान को विशेप ज्ञान के नाम से जाना जाने लगा। विज्ञान विशेप ज्ञान क्यो कहलाया, जवकि धर्म का भी मूलाधार ज्ञान ही था। धर्म का पहला मर्म भी ज्ञान के ही आधार पर जाना जा सकता है। धर्म का ज्ञान यदि आपके सामने नही आता है तो धर्म के प्रति श्रद्धा नही होगी यानी दर्शन की प्राप्ति नही होगी। ज्ञान और दर्शन की सशक्त भूमिका पर ही चारित्र के चरण क्रियान्वित हो सकते है। यही कारण है कि ज्ञान, दर्शन एव चारित्र को मोक्ष का मार्ग वताया गया। मोक्ष धर्म के उच्चतम विकास का ही तो नाम है। जव धर्म का आधार भी ज्ञान है और विज्ञान का आधार भी ज्ञान है तो फिर विशेप ज्ञान का क्या अर्थ हुआ ?

विज्ञान और धर्म मे ज्ञान के प्रयोग का कुछ अन्तर दिखाई देता है। धर्म मे विचक्षण पुरुपो द्वारा प्रदत्त ज्ञान के आधार पर आचरण का प्रयोग किया जाता है, वहाँ पर विज्ञान मे प्रयोग पहले किया जाता है और प्रयोग की कसौटी पर प्रत्यक्ष खरे उतरने वाले ज्ञान को स्वीकार किया जाता है। ऑक्सीजन और हाइड्रोजन गैसों का मिश्रण किया और वे दोनो गैसें मिल कर अपनी आँखो के सामने पानी वन गई, तव यह सिद्धान्त स्वीकार किया गया कि इन दोनो गैसो को मिलाने से पानी वन जाता है। चूंकि प्रत्यक्ष प्रयोग के आधार पर ऐसा सिद्धान्त वना ऐसा ज्ञान मिला, अत ऐसे ज्ञान को विज्ञान कहा गया।

क्या विज्ञान की यह प्रणाली सर्वत्र काम मे लाई जा सकती है ? निश्चय ही नही। धार्मिक विचारो का आचरण कुछ ऐसा है, जिसकी साधना जीवनभर की जाती है और जीवनभर की साधना का निर्णय निकाल कर फिर उस पथ पर चलने का समय नही रहता। वैसे महान् त्यागियों ने प्रयोग करके ही अपने जीवन का सार

निकाला और उसे धार्मिक सिद्धान्तो के रूप मे जगत् के सामने रखा। धर्म का जगत् सूक्ष्म विचारो एवं भावनाओं का जगत् होता है, जबकि विज्ञान का जगत् स्थूल प्रयोगों का जगत् होता है, किन्तु यदि समन्वय की नीति से दोनो जगत् पर दृष्टि दौडाई जाय व आलोचना की जाय तो दोनो में परस्पर विरोध के कही चिह्न दिखाई नही पडते।

किन्तु विज्ञान के विकास के क्रम को देखते है तो यह निर्णय निकलता है कि ज्यो-ज्यो विज्ञान का विकास होता गया, प्रचलित धार्मिक धारणाओं पर कुठाराघात होता गया। इसका कारण है कि प्रचलित धार्मिक धारणाएँ अधिकाशतः अन्धविश्वास एव रूढ परम्पराओ पर आधारित हो गई थी तथा विज्ञान प्रयोग एवं तर्क पर आधारित था। इस स्थिति ने युवा-मस्तिष्को मे हलचल मचा दी एव वे वैज्ञानिक विचारों तथा निष्कर्षों की तरफ आकर्षित होने लगे। उस समय उस परिवर्तन को धर्मगुरु समझ न सके तथा अपनी उपदेश-शैली में तदनुकूल परिवर्तन भी न ला सके।

धर्म और विज्ञान आमने-सामने

परिणामस्वरूप धर्म और विज्ञान आमने सामने हो गये। धर्मोपदेशक विज्ञान के प्रत्येक विचार एव अन्वेपण का विरोध करने लगे तो वैज्ञानिको ने धर्म को अफीम कह कर समाज के लिए अनुपयोगी बता दिया। इस संघर्ष मे धर्म की वास्तविकता की ओर किसी पक्ष का पूरा ध्यान नही था। यह एक प्रकार से धर्म की प्रचलित रूढ परम्पराओ तथा विज्ञान के प्रयुक्त एवं अनुभूत निर्णयो के बीच युद्ध हो गया। परिणाम स्वाभाविक था कि नई पीढी अन्ध एवं ज्ञानशून्य मान्यताओ के चंगुल से मुक्त हो कर विज्ञान की शरण मे जाने लगी। यह एक प्रकार से नई पीढी का अपनी दकियानूस पुरानी पीढी के विरुद्ध विद्रोह भी था।

विज्ञान का जीवन के साथ सीधा सम्बन्ध एवं वैचारिकता का प्रसार

ज्यो-ज्यो विज्ञान के क्षेत्र मे नई-नई खोजें होती गई, नये-नये साधनो का आविष्कार होने लगा और मैंने बताया कि वे साधन प्रतिदिन के जीवन के साथ भी इस तरह जुड गये कि उनके बिना मामूली काम भी नही चल सके, ऐसी स्थिति मे विज्ञान का जीवन के साथ सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया—धार्मिक धारणाएँ जैसे कुछ दूर पड गई, क्योंकि उनमे यथासमय वाछित परिवर्तन नही लाया जा सका।

विज्ञान का प्रत्येक चरण चूंकि ठोस सत्य पर आधारित होता था, जो नई पीढ़ी के मस्तिष्क मे जम जाता था। नई पीढी के लोग जब इस कसौटी पर दोनो प्रकार की धारणाओ की तुलना करने लगे तो निश्चय ही धीरे-धीरे यह प्रवृत्ति घटने लगी कि जो कुछ कहा गया है, उसे बिना तर्क के श्रद्धापूर्वक स्वीकार कर लो, क्योंकि

विज्ञान ने वैचारिकता के प्रसार को भलीभाँति प्रोत्साहित कर दिया था। नई पीढ़ी तब प्रत्येक धार्मिक धारणा पर स्वयं विचार करने लगी और तर्क संगत तथ्य न होने पर उसे अस्वीकार करने लगी। धर्मोपदेशक तो उस समय उनकी वैचारिक माँग को भी नास्तिकता का जामा पहिनाने लगे और इस प्रकार प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से दोनों पक्षों के प्रयासों से धार्मिक वातावरण को आघात ही पहुँचा। धर्म की सेवा करना चाहने वालो से भी वास्तव मे धर्म की सेवा नही हो सकी, कारण वैचारिकता की लड़ाई वैचारिकता के स्तर पर ही लडी जानी चाहिए थी।

इधर विज्ञान का विकास दिनोदिन चमत्कारिक बनता गया। ऐसी-ऐसी खोजें दुनिया के सामने आईं कि जैसे पुराने विचारो का पूरा का पूरा ढाचा ही हिल उठा।

विज्ञान पर राजनीति हावी

वैज्ञानिक तो निर्लिप्त रह कर ठोस सत्य की खोज करता है और अपने निष्कर्ष दुनिया के सामने रख देता है, किन्तु वैज्ञानिक भी वर्तमान युग मे स्वतन्त्र नही रहा। ज्यो-ज्यो विज्ञान का चमत्कार बढ़ता गया, राजनीति उस पर हावी होती गई। विज्ञान के आविष्कारों का सत्ता के लिए दुष्प्रयोग किया जाने लगा। जापान के नागासाकी एवं हिरोशिमा नगरो पर जब पहले अणुबम फैंके गये तो उनसे ये नगर ही ध्वस्त नही हुए, बल्कि ये अणुबम एक प्रकार से उन सभी स्वस्थ एवं निष्पक्ष विचारको के मस्तिष्क पर भी गिरे, जो विज्ञान का उपयोग समस्त मानवजाति के कल्याण के हेतु करने के पक्षपाती थे। धीरे-धीरे राजनीति ने विज्ञान का भयंकर दुरुपयोग प्रारम्भ कर दिया। सारी दुनिया विभिन्न सत्ता-गुटो मे बँट गई और प्रत्येक गुट ने अपने पास घोरतम भयकर वैज्ञानिक शस्त्रास्त्रो का अम्बार जुटा लिया और आज भी दो-दो महायुद्धो के विनाश के बाद भी ससार हर समय महाभीषण महायुद्ध के आतंक से भयभीत बना हुआ है।

वास्तव मे वैज्ञानिक खोज—अणुशक्ति का प्रयोग ससार के भौतिक कल्याण के लिए किया जा सकता है और उससे भूख व गरीबी से तड़पती हुई सामान्य जनता को राहत पहुँचाई जा सकती है, किन्तु सत्तालोलुप राजनेताओ के रहते विज्ञान के श्रेष्ठ-तम आविष्कार भी मानवता का कोई उपकार कर सकेंगे, यह एकदम शंका का विषय बन गया है।

विज्ञान के इस सहारक पक्ष ने सारी दुनिया को हिला दिया है और स्तब्ध बना दिया है कि यदि यही क्रम जारी रहा तो कम्प्यूटरो एव राकेटों के नियन्त्रण में मानवता तो पिस ही जायगी तथा मानव एक शुद्ध मशीन बन कर रह जायगा, जिसे

सत्तालोलुप राजनेता अपनी मर्जी के मुताबिक चलायेगा और स्वतन्त्र चिन्तन का समय मानो समाप्त ही हो जायगा।

विज्ञान के इस अप्राकृतिक आतंक ने पुनः विचारदृष्टि में परिवर्तन ला दिया है और अब चिन्तन की दिशाएँ मुड़ गई है।

धर्म की वैज्ञानिकता

दूसरी ओर धार्मिक क्षेत्र में भी क्रान्ति ने प्रवेश किया और अंध व रूढ़ परम्पराओं से हट कर धर्म की वास्तविकता पर चिन्तन किया जाने लगा, जिसके फलस्वरूप धार्मिक सिद्धान्तों की वैज्ञानिकता पर प्रकाश पड़ने लगा है। साम्प्रदायिक विवाद कम होने लगे तथा खंडन-मडन का क्रम भी वन्द हो गया। जव वैचारिकता के साथ धार्मिक सिद्धान्तो पर स्पष्ट दृष्टि डाली जाने लगी तो उन सिद्धान्तो का मूल वैज्ञानिक स्वरूप भी सामान्य जन के समक्ष आने लगा।

यहाँ विभिन्न धार्मिक सिद्धान्तो की वैज्ञानिकता पर विस्तार से चर्चा करने का अवसर नही है, किन्तु भारत के विभिन्न दर्शनो मे उन दार्शनिक सिद्धान्तो का विशेष महत्व प्रकट होने लगा, जिनका स्वरूप अधिक वैज्ञानिक एव अधिक सर्वजनहितकारी था। जैनदर्शन के सिद्धान्त इस दृष्टि से विचारो की श्रेष्ठतम कृतियाँ है। अहिंसा का सिद्धान्त हो या अनेकान्तवाद का सिद्धान्त—इनमे कोई पक्षधरता नही है—सम्पूर्ण मानव-जाति एवं प्राणी-समूह के लिए इनका समान उपयोग है, वल्कि इनका प्रत्येक पहलू तर्कसंगत तथा वैज्ञानिक है। इनका ठोस सत्य भी हस्तामलकवत् है कि ये दोनो सिद्धान्त यदि सही निष्ठा से व्यक्तिगत एवं समूहगत जीवन मे उतारे जायँ तो सारे विश्व की विचारगत एव आचारगत दिशा मे कल्याणकारी नया मोड ला सकते है। जैनदर्शन का अपरिग्रहवाद का सिद्धान्त तो आधुनिक साम्यवाद से भी अग्रगामी है, जिसका उद्देश्य शान्ति से, इच्छा से एवं त्याग से समाज में आर्थिक वितरण को समान एवं स्वस्थ वनाना है।

आज हम ऐसे युग की देहरी पर खडे है, जहाँ दृष्टि की दिशाएँ वदल गई है। धार्मिक विवादो एव उसकी रूढ परम्पराओं का एक तरफ खात्मा-सा हो गया है तथा धार्मिक सद्भाव व धार्मिक वैज्ञानिकता का वातावरण वना है, तो दूसरी तरफ इस नई धारणा ने जन्म लिया है कि विज्ञान के दैत्य से यदि मानवता के कल्याण का कार्य सम्पन्न कराना है तो उसे शुद्ध धार्मिकता के नियन्त्रण मे लिये विना काम नही चल सकेगा। यदि विज्ञान का दैत्य इस तरह राजनेताओ की नकेल मे चलता रहा तो महाविनाश एवं महादासता का युग दूर नही है।

विज्ञानमय ही धर्म है, हो धर्ममय विज्ञान !

अब मानव-मस्तिष्को मे यह धारणा करीब-करीब जमने लगी है कि यदि बिना किसी पक्षधरता के सामान्य रूप से धार्मिक सिद्धान्तो का विश्लेषण किया जाय एव उन्हें मानव-कल्याण की कसौटी पर कस कर प्रचारित किया जाय तो स्वत. ही उन सिद्धान्तो की वैज्ञानिकता उभर कर ऊपर आ जायगी। ज्यों-ज्यों धर्म की वैज्ञानिकता पर अधिक प्रकाश पड़ने लगेगा, सामान्यजन भी उस ओर प्रभावित होने लगेगा।

धर्म के सार्वजनीन एवं वैज्ञानिक स्वरूप पर अधिकाधिक प्रकाश डालना आज के धार्मिक पुरुषों का प्रधान कर्त्तव्य हो जाना चाहिए, क्योकि वैज्ञानिक साधनों ने धन-लिप्सा, सत्ता-लिप्सा एवं भोग-लिप्सा की ऐसी आँधी पैदा कर दी है, जिससे घिर कर समूची मानवता कराह रही है। इस कराह को आज धर्मोपदेशक सुनें एव मानव-मस्तिष्को को सच्ची शान्ति प्रदान करें, यह उनका परम आवश्यक धर्म हो गया है। धार्मिक पक्ष को आज सामान्यजन के मानस में सुदृढता से स्थापित करने की महती आवश्यकता है।

एक नया दिशाबोध

धार्मिक पक्ष के प्रबल बनने के साथ एक ओर चिन्तन की दिशा स्पष्टतर होने लगेगी तो दूसरी ओर उसके परिणामस्वरूप सदाचरण का क्षेत्र पनपने लगेगा। समाज में आज जिस रूप मे अनैतिकता का प्रसार हो रहा है तथा स्वार्थ का नंगा नाच मचा हुआ है—उस पर रोक लगेगी। नैतिकता के एक सामान्य स्तर की स्थापना हो सकेगी। विचार और आचार की दृष्टि से यह शुभ परिवर्तन एक नया दिशा-बोध देगा।

वह दिशाबोध यह होगा कि विज्ञान को धर्ममय बनाने की चेष्टा की जाने लगेगी। वर्तमान विज्ञान के संहारक-रूप में तब अपने आप परिवर्तन आने लगेगा और इसके कल्याणकारी रूप पर अधिक बल दिया जाने लगेगा। यह माग भी पुरजोर बनेगी कि विज्ञान शक्तिशालियों के अधिकार में नही रहे, बल्कि शक्तिहीनो को सशक्त बनाने के लोकोपकारक कार्य में लगे। ऐसा तभी हो सकता है, जब विज्ञान को धर्म के सुनियन्त्रण में लाया जाय। विज्ञान की शक्ति पीड़ितो का उपकार करे और धार्मिक निष्ठा को अभिवृद्ध बनाए—ऐसी प्रणाली का विकास करना होगा।

लोक-कल्याण का मार्ग

'विज्ञानमय ही धर्म है एवं धर्ममय हो विज्ञान'; इसका स्पष्ट अभिप्राय

यही है कि विज्ञान पर धर्म की नकेल डाली जाय, ताकि उससे लोककल्याण का मार्ग प्रशस्त हो सके।

हम धर्म को आध्यात्मिकता का मार्ग-दर्शक मान सकते हैं तो विज्ञान को भौतिकता का प्रतीक। तो प्रश्न उठेगा कि क्या आध्यात्मिकता एवं भौतिकता परस्पर विरोधी है तथा क्या दोनों का समन्वय सम्भव नही है? आत्मा की ओर सम्मुख कराने वाली वृत्ति का नाम ही तो आध्यात्मिकता है। यह वृत्ति सूक्ष्म होती है, वहाँ भौतिकता स्थूलवृत्ति है। सांसारिक आवश्यकताओ से सम्बन्धित वृत्ति भौतिकता है। मोटे तौर पर सोचें तो धार्मिक क्रियाओ एवं धारणाओं का आधार आध्यात्मिकता है तो वैज्ञानिक प्रयोगो एव निष्कर्षों का आधार भौतिकता। मेरा मानना है कि इन दोनो वृत्तियो मे या धर्म एवं विज्ञान के बीच कोई परस्पर विरोध नही है, बल्कि समन्वय की दृष्टि से दोनो की सही जांच-पड़ताल की जाय तो दोनो शक्तिया एक दूसरे की पूरक एव सहायक बन सकती हैं।

घोड़ा विज्ञान का : लगाम धर्म की

मैं इस मान्यता को एक दृष्टान्त से स्पष्ट करना चाहूँगा। विज्ञान को आप एक चपल अश्व मान लीजिए, जो चलने मे इतना तेज है कि उस पर काबू रखना कठिन है। विज्ञान यानी बिना लगाम का घोड़ा। दूसरी ओर धर्म को नियन्त्रण की दृष्टि से लगाम मान ले। विज्ञान के घोड़े पर अगर धर्म की लगाम लग जाय, इसका अर्थ हुआ उच्छृंखल भौतिकता पर अगर आध्यात्मिकता का सु-नियन्त्रण हो जाय तो फिर घोडे को काबू मे करना और उसका हर समय सवारी मे उपयोग लेना सरल हो जाएगा। घोडा भी नही बिगडेगा और सवार का सिर भी नही फूटेगा। लगाम वाले घोडे पर बैठ कर सवार निश्चित लक्ष्य तक तेज गति से पहुँच जायेगा। धर्म और विज्ञान का समन्वय इस रूप मे समाज के लिए वरदान बन जाएगा, बल्कि व्यक्ति भी वैसे सामाजिक धरातल पर दृढता से अपने पैर उठा सकेगा तथा गृहस्थ एवं साधु अपने-अपने धर्मों का सम्यक् रीति से पालन करते हुए मोक्षमार्ग की साधना कर सकेंगे।

कर्म में शूर : धर्म में शूर

आगम-वाणी मे कहा गया है—

जे कम्मे सूरा, ते धम्मे सूरा।

अर्थात् जो कर्म मे शूर होते हैं, वे धर्म मे भी शूर हो सकते हैं, क्योकि मुख्य तत्व है—शौर्य्य का होना। संसार मे रह कर जो अपने शौर्य्यपूर्ण कार्यों से लोककल्याण

का मार्ग प्रशस्त करता है, वह शूरवीर कहलाता है तो ऐसा शूरवीर धर्म के क्षेत्र में प्रवेश करके भी आत्मा का वह पराक्रम दिखाता है कि वहाँ भी वह स्व-पर कल्याण का मार्गदर्शक वन जाता है।

विज्ञान एवं धर्म के क्षेत्रो मे समानरूप से शूरता दिखाने का आज अवसर है, ताकि दोनो को समन्वय के सूत्र मे वांध कर मानव-जाति तो क्या, समस्त प्राणी-समूह का भौतिक एव आध्यात्मिक हित सम्पादन किया जा सके। विज्ञानमय धर्म को अव धर्ममय विज्ञान के साथ जोडना ही होगा। □

□ □

कुप्रथाओं के अनल में मनुज जलता जा रहा है

कुप्रथाओ के अनल मे मनुज जलता जा रहा है···

हेज क्या होगा सुता पर, पल रहा है जब दहेज।
व्याहने पर भी सुताएँ, देखती है शून्य सेज।
यह न लाई वह न लाई
माल लाने के क्षितिज पर, सूर्य ढलता जा रहा है···

मौत से भी बढ यहाँ पर, मारता है मृत्यु-भोज।
भोज के आयोजनो की, मौज क्या मिलती है रोज।
वेच करके भी स्वय को
आप की ही पीढियो को, आप छलता जा रहा····

लाज पर्दे से न रहती, लाज आखो से रही है।
कल कंवारी खेलती जो, आज भी लड़की वही है।
पाप से पर्दा नही, पर
बाप[1] से पर्दा रखो यह, खेल चलता आ रहा है····

युग बदलता साथ मे ही, रीतिया भी बदल जाती।
उम्र ढलते ही मनुज की, नीतियाँ भी बदल जाती।
सीखिये कुछ बदल जाना
फल बदल करके युगो तक, आम फलता जा रहा है··

---

१ ससुर,

8

अनेकान्तवाद का अमृतघट

□ □

अनेकान्तवाद वैचारिक विरोधो, संघर्षों और मनभेदों को शान्त करने का सुन्दरतम उपाय है। संसार के सभी क्षेत्रो के विरोध इसका सम्यक् प्रयोग करने पर समाहित हो सकते हैं। तभी परिपूर्ण सत्य प्राप्त हो सकता है। परन्तु मानव अनेकान्त का पुजारी तभी हो सकता है, जब उसमे धैर्य, सहिष्णुता, दूसरो की बात सुनने की क्षमता तथा सन्दर्भों की समझ हो। तत्व एक होता है, उसके पहलू अनेक होते हैं। सत्य-दर्शन के लिए अनेकान्त की आँख का होना अत्यन्त आवश्यक है। इसी से असीम सत्य का आकलन किया जा सकता है, पकड़ मे तो उसका कुछ ही अश आएगा। अनेकान्त के प्रयोग से विभिन्न धर्मसम्प्रदायों, राजनीतिक वादों, सामाजिक झगड़ो एव विश्व के सभी संघर्षों का अन्त आ सकता है। अनेकान्तरस से पूर्ण अमृतघट कैसे ससार मे शान्ति और अमरता को स्थापित कर सकता है, यह जानने के लिए प्रस्तुत है—सजीव भाषा मे यह प्रवचन…………

८

अनेकान्तवाद का अमृतघट

□ □

सवका सम्मान, खुला दिल रखो, हठवादिता छोड़ो ।
पूर्ण सत्य के दर्शन हेतु खंड-खंड सत्य को जोड़ो ॥

जैनदर्शन का अनेकान्तवाद अथवा स्याद्वाद-सिद्धान्त भगवान् महावीर की अनुपम देन है। इस अमूल्य सिद्धान्त को जितनी गहराई मे उतर कर समझने की चेष्टा की जायेगी, उतना ही इसका व्यापक महत्व प्रकाशित होता जायेगा। आज की जटिलतम विचार-स्थिति मे ऐसा लगता है कि स्याद्वाद के सिद्धान्त को अपनाए विना कही कोई त्राण नही दिखाई देता है। यदि स्याद्वाद के सिद्धान्त को हम लोग और ससार के प्रवुद्ध लोग नकार देते है या ठुकरा देते है तो वास्तव मे यह विचारशील जीवन की वहुत वड़ी उपेक्षा होगी।

वैचारिक वितंडावाद एवं मतभेदो का आधुनिक युग

जिस समाज मे विचारशील लोगो का वाहुल्य होता है एव विचार की स्वतन्त्रता होती है, वहाँ मतभेद स्वाभाविक है। किन्तु जव इस मतभेद के साथ मनभेद भी जुड़ जाता है तो वैचारिक वितडावाद हो जाता है।

सत्य की खोज, संदर्भों की समझ

स्याद्वाद दो शब्दो से बना है—स्यात्+वाद। स्यात् का अर्थ होता है—कदाचित्, यानी यह भी हो सकता है और वह भी हो सकता है। वह व्यक्ति अपने पुत्र की अपेक्षा से पिता भी हो सकता है तो अपने पिता की अपेक्षा से पुत्र भी हो सकता है। इसे यो कह सकते हैं कि कथचित् वह पिता है, कथचित् वह पुत्र है। केवल पिता ही है या केवल पुत्र ही है—यह कथन सत्य होते हुए भी एकान्त हठ के कारण असत्य कहलायेगा। यह भी हो सकता है और वह भी हो सकता है—इसे ढिलमिलवाद या अनिश्चय की स्थिति न मानें। यह है तो एक अपेक्षा से और वह है तो दूसरी अपेक्षा से। अपेक्षाएँ विविध होती हैं और उन सवके सदर्भ मे ही वस्तु-स्वरूप का निर्णय पूर्णरूपेण हो पाता है। अपेक्षाओ की दृष्टि से ही स्याद्वाद का नाम अनेकान्तवाद के अलावा सापेक्षवाद भी है। अनेकान्तवाद नाम इसलिये है कि अलग अलग अपेक्षाओं के कारण वस्तुस्वरूप का अन्त अनेक स्थानो पर होता है। एक ही स्थान पर अन्त मानने की शैली को एकान्तवाद कहा गया है, जो असत्य का पोपक होता है।

'भी' और 'ही' का भेद

मोटे रूप मे अनेकान्तवाद का प्रतीक है—'भी' और 'ही' एकान्तवाद का प्रतीक है। जहाँ वस्तुस्वरूप का निर्णय लेते समय हम 'भी' का प्रयोग करते है तो हम उस स्वरूप की सभी अपेक्षाओ को स्वीकार करते है—सभी पहलुओ पर अपनी दृष्टि दौड़ाते है। हमने जव यह कहा कि अमुक व्यक्ति पिता भी है तो हमने सत्य ही कहा—चाहे वह पूर्ण सत्य नही है, क्योकि हमने उसकी अन्य अपेक्षाओ का कथन नही किया है। किन्तु इसके विपरीत इसी कथन को यदि यो कहा जाय कि अमुक व्यक्ति पिता ही है, तो इस एकान्त कथन के कारण इस कथन मे सत्याश होते हुए भी वह यथार्थ रूप मे असत्य बन जायगा।

सत्यांशों का आकलन

गम्भीरतापूर्वक विचार करेंगे तो यह कथनभेद साधारण नही लगेगा। हमारा व्यक्ति का तो स्थूल उदाहरण है, किन्तु सूक्ष्म चिन्तन की दृष्टि से 'भी' समन्वय का प्रतीक है तो 'ही' सघर्ष का। 'भी' के प्रयोग से हम अपने कथन को भी सत्य मानते हैं तथा दूसरे के कथन मे भी सत्य को खोजते है। इस तरह सत्याशो को मिला कर या जोड कर पूर्ण सत्य का दर्शन करने की हमारी प्रवृत्ति वनती है। इस प्रवृत्ति का सीधा लाभ यह होता है कि हम न तो अपने ही विचार की सत्यता के प्रति हठाग्रह या दुराग्रह का भाव रखते है और न ही पहली दृष्टि पर दूसरे के विचारो को असत्य

घोपित करने की धृष्टता करते हैं। हम स्वयं का दिमाग खुला रखते हैं कि कोई हमे भी हमारे विचार की असत्यता समझा दे तो हम उसे मान लेगे और अपनी मान्यता मे से उस असत्य अंश को निकाल देंगे। इसके साथ ही हम अपना धैर्य भी अखूट रखते हैं कि जो हमे अपने विचार वतायेगा तो हम उन्हे सम्मानपूर्वक सुनेंगे, उसके साथ सरलता से चर्चा करेंगे तथा उसकी बात मे सत्याश नजर आया तो उसे उस अपेक्षा के साथ ग्रहण करेगे अथवा उसकी वात मे असत्य नजर आया तो वड़ी विनम्रतापूर्वक उसे सत्य समझाना चाहेंगे। यह 'भी' का रास्ता है—समन्वय की भावना है, विचार-सघर्ष को दूर रखने का नम्र उपाय है।

हठ : अर्थात् असत्य

अव 'ही' की गति को देखिये। मैंने एक विचार किया और उसकी सत्यता की कसौटी भी अपने ही को मान लिया। इस कारण मैंने जो कुछ कहा, उसको एकान्त रूप से सत्य घोपित कर दिया और हठपूर्वक सबको कहा कि 'मेरा ही कथन सत्य है—जो मेरे कथन के विरुद्ध जाता है, वह असत्य कहता है।' 'ही' के हठाग्रह मे दिमाग पर ताला लग जाता है और वह धैर्य-शून्य वन जाता है। परिणामस्वरूप अपने विचार की परीक्षाबुद्धि समाप्त हो जाती है, विरोध को सह सकने की क्षमता नही रहती तथा हर कदम पर उत्तेजना एवं हिंसा की उच्छृखल वृत्तियाँ अपना घिनौना सिर उठाती रहती है। 'ही' विचार-सघर्ष की आग मे घी का काम देता है। हठ से कभी सत्य नही निकलता, वल्कि सत्याश भी असत्य का रूप ले लेता है। एकान्तवाद या हठाग्रह से सदा असत्य की ही ध्वनि निकलती है। हठवाद पर आधारित विचार-संघर्ष कार्यरूप मे उतर कर साम्प्रदायिक दगे करवाता है, विभिन्न वर्गो के वीच घृणा की भावना फैलाता है तो दो राष्ट्रों या राष्ट्रसमूहो के बीच युद्ध के नगाड़े बजवाता है।

अन्धे और हाथी

एकान्तवाद किस प्रकार सत्याशो को भी असत्य में वदल देता है और किस प्रकार अनेकान्तवाद सत्यांशो को जोड़ कर उन्हे पूर्ण सत्य का रूप दे देता है—इसका स्पष्टीकरण एक कहानी से समझिये।

एक वार कुछ अन्धे व्यक्ति एक हाथी के पास पहुँच गये। हाथी के स्वरूप का उन्हे ज्ञान नही था, न ही उन्होंने उससे पहले कभी हाथी का स्पर्श किया था। अव प्रत्येक अन्धे ने अपनी-अपनी पहुंच के अनुसार हाथी के एक-एक अग पर अपना हाथ रख दिया और स्पर्श से उसके स्वरूप का अनुभव करने लगे। जिस अन्धे का हाथ

हाथी के पैर पर पडा था, वह जोरों से चिल्लाया—"मैंने हाथी का स्वरूप जान लिया है, वह खम्भे के समान ही है।" दूसरे अन्धे का हाथ हाथी की पीठ पर था और वह बोला—"तुम एकदम गलत हो। हाथी तो दीवाल के समान ही है।" जिसने हाथी की पूँछ पकडी, उसने दोनो को झूठा बताते हुए हाथी को रस्सी ही के समान माना। कान पर हाथ रखने वाले अन्धे ने अपने ही अनुभव को सत्य घोषित किया कि हाथी सूप के ही समान है। इसी तरह अन्य अन्धो ने भी हठपूर्वक अपने ही मत को सही बताया। कोई किसी से सहमत नही हो रहा था और सब आपस मे बुरी तरह लड़ने लगे। सब हाथापाई पर भी आ गये, लेकिन एक ने भी अपना दुराग्रह नही छोड़ा।

इस विवाद को देख कर एक दोनों आखो वाला विवेकी पुरुष सामने आया, उसने एक-एक अन्धे की बात धैर्यपूर्वक सुनी तथा सारी स्थिति का सही अनुमान लगाया। फिर उसने सभी अन्धो को सम्बोधित करके कहा —

"भाइयो ! हाथी के स्वरूप के सम्बन्ध मे आप लोगो मे से प्रत्येक का कथन सही है किन्तु किसी का भी कथन पूरे तौर पर सही नही है।"

सभी एक साथ चिल्लाये—"यह कैसे हो सकता है?"

विवेकी पुरुष, जिसे स्याद्वादी कह लीजिये, सभी को शांतिपूर्वक समझाता हुआ बोला—"हाथी का शरीर बहुत बडा है, आप मे से प्रत्येक का हाथ उसके किसी न किसी एक अग पर पडा है। इसलिये आप स्वयं को भी और दूसरो को भी सही मान कर सभी के मतो को एक रूप बना लो तो पूरे हाथी का स्वरूप सामने आ जायगा। किन्तु आप मे से हरेक ने अगर अपने ही को सही माना और दूसरो को झूठ तो आपका अपना सही भी झूठ बन जायगा। कारण, कोई भी इसको नही मानेगा कि हाथी खभे के ही समान है या दीवार के ही समान है। परन्तु सब मिल कर जब यह कहेगे कि हाथी खभे के भी समान है, हाथी दीवार के भी समान है, हाथी रस्सी के भी समान है आदि—तो पूरा हाथी खडा हो जायगा।

इसी कहानी को वस्तुस्वरूप पर घटाइये—प्रत्येक विचार के साथ लागू कीजिये, फिर आपको समझ मे आ जायगा कि स्याद्वाद का यह सिद्धान्त कितना समर्थ सिद्धान्त है, जिसमे ससार के विचार-सघर्षो एवं वाद-विवादो को समन्वित करने की अदभुत क्षमता है। यह सिद्धान्त सचमुच मे पूर्ण सत्य का अन्वेपक सिद्धान्त है।

सत्य का साक्षात्कार

जीवन का महान् उद्देश्य माना गया है—सत्य का साक्षात्कार—सत्य का दर्शन। जिन महापुरुषो ने सत्य को खोजा, उन्होंने वास्तव मे ससार का महत्तम कार्य किया ।

किन्तु सत्य के शत्रु भी ससार मे कम नही है । एकान्तवाद के ऐसे पुजारियो ने सदा ही असत्य एव वितण्डावाद का पक्ष लिया । इस एकांतवाद के कारण जन-जीवन आक्रान्त हो जाता है—क्लेशमय वन जाता है । किधर भी दृष्टि डालिये—परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व और यहाँ तक कि धार्मिक क्षेत्र मे भी दुराग्रहो के कारण विविध प्रकार की समस्याएँ पैदा होती रहती हैं । सत्य सुप्त-सा दिखाई देता है और दानवता मानवता को दवोचती रहती है । एकात्वादी विचार-प्रणाली के कारण ही युद्धो की विभीपिकाएँ जन्म लेती है तथा सघर्षो के काले वादल मडराते है । हम दुराग्रही वनते है, हठवाद का आश्रय लेते है और एकातभाव से अपने ही विचारो को थोपना चाहते है तो मै मानता हूँ कि इस अवस्था मे सत्य का अस्तित्त्व नही रहता । आप कहेगे कि सत्य तव कहाँ चला जाता है ? तव सत्य एकान्त आचरण मे डूव जाता है । एक मुक्तक प्रस्तुत है—

> सवका सम्मान, खुला दिल रखो, हठवादिता को छोडो ।
> पूर्ण सत्य के दर्शनहेतु खण्ड-खण्ड सत्य को जोड़ो ।।

सत्य का दर्शन करना है तो सवके विचारो का सम्मान करो और अपने दिल को खुला रखो । इसके साथ ही हठवादिता का पूर्ण-रूपेण त्याग कर दो । पूर्ण सत्य के दर्शन करने का लक्ष्य है तो सत्य की खोज करो और जहाँ जो भी सत्याश मिले, उसे ग्रहण करो तथा सत्याशो को जोड़ कर पूर्ण सत्य के साक्षात्कार का यत्न करो ।

सम्प्रदायवाद या एकान्त आग्रह के अन्दर जो सत्य को ढूंढ रहा है, वह स्वार्थ-दर्शन भले ही करले—सत्य का दर्शन उसे सम्भव नही है । सत्य चैतन्यस्वरूप होता है, उसे जड़ता मे कैसे खोजा जा सकता है ?

सत्य एक . दृष्टियां विभिन्न

सत्य एक होता है एव अविभाज्य होता है । सत्य के अन्दर कभी भी भेद नही होते । विद्वान् लोग उसे विविध प्रकार से व्यक्त कर सकते है, किन्तु उसका यह अभि-प्राय नही कि सत्य के अनेकानेक भेद हो । सत्य चन्द्रमा की तरह एक है, उसकी

कलाएँ भले ही विविध दिखाई देती हों। यानी दृष्टियाँ भले भिन्न-भिन्न हो। एक कवि ने वर्तमान समय में सत्य के स्वरूप के सम्बन्ध मे लिखा है—

सत्य की सुषमा अलौकिक, आज सारी जल गई है।
चांदनी उस पूर्णिमा की, आज सारी ढल गई है॥

सत्य के प्रति यथार्थ चिन्तन किया जाय तो मैं सोचता हूँ कि उस स्थिति मे स्याद्वाद का स्पष्ट स्वरूप समझ मे आ जाएगा कि—

यत् सत्यं तन्मम

अर्थात् ससार में जो भी सत्य है, वह मेरा है। सत्य जहा भी मिलता हो, वहा से भी ग्राह्य है। सत्य भले ही गिरजाघर मे मिलता हो। मस्जिद या मदिर में मिलता हो अथवा इस महावीरभवन मे मिलता हो, आप नि.सकोच उसे ग्रहण कीजिए। स्याद्वाद के सिद्धान्त मे परम उदारता समाई हुई है। वहाँ किसी के लिए भेद नही है। दरकार सत्य की है और वह जहा भी मिले-जिसमे भी मिले—सहर्ष उसके दर्शन कर लो। स्याद्वाद हृदय मे रम जाय, तब सत्य-दर्शन की लालसा लग जाती है और वैसी अवस्था मे किसी के प्रति राग-द्वेष नही रहता—विग्रह और विरोध नही टिकता। तब सत्य का सही स्वरूप भी समझ मे आ जाता है, जिसका स्वरूप-वर्णन उपनिषदो मे इस प्रकार किया गया है—

एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति

सत्य एक ही है, उसके व्याख्याता कई हो सकते हैं। कबीरदासजी ने भी यही बात बहुत ही सुन्दर शैली मे व्यक्त की है—

कबीरा कुआ एक है, पनिहारियाँ अनेक।
भेदभाव बर्तन बसे, पर नीर एक का एक॥

सत्य की व्याख्या कबीर ने कितनी सरल शैली मे की है? कुआ तो एक ही है, किन्तु उससे पानी भरने वालियां बहुत है। उन पनिहारियों ने कुए से पानी निकाल कर अपने-अपने बर्तनो मे भर लिया है तो बर्तनो की अपेक्षा से पानी मे भेद-भाव बन गया है, वरना पानी तो एक का एक ही है। वही हुआ कि सत्य तो एक ही है—उसको देखने वाली दृष्टियाँ भले ही भिन्न-भिन्न एव विविध हो।

सत्य-दर्शन

हमारे गुरुदेव सत्य की पूजा के सम्बन्ध मे एक मेवाड़ी उक्ति फरमाया करते है—

कोई ध्यावै प्रभुजी, कोई ध्यावै अल्ला ।
सच की करो सेवा या ई बताई सल्ला ।।

कोई किसी महापुरुष को पूजो या किसी गुरु की भक्ति करो, किन्तु मूल बात यह है कि वहाँ सत्य का दर्शन होना चाहिये । सलाह यही है कि सत्य की सेवा करो। परम्पराओ पर झगड़ने की जरूरत नही है । यह बहुत बड़ी भ्रान्ति है कि इस युग मे कट्टरता का आश्रय लिया जाय । यह विडम्बना भी होगी, यदि सत्य को चहारदीवारी के दायरे मे ही खोजने का हठाग्रह किया जाय । सत्य के लिये सदा विस्तृत खोज की जानी चाहिये तथा जहाँ भी उसका साक्षात्कार हो, बिना किसी भेदभाव के वहाँ पहुँच जाना चाहिये ।

सत्य का आलोक हृदय मे प्रकाशित होता है । कोई कितना ही पढ लो या ज्ञान प्राप्त कर लो, किन्तु यह व्यक्ति की बुद्धि एवं भावना के विकास पर निर्भर है कि उसमे सत्य की खोज करने का कितना सामर्थ्य है ? वीतरागदेव ने बताया है कि एक शब्द के अनन्त आशय होते है और भिन्न-भिन्न परिस्थितियो मे शब्द के प्रयोग के अनुसार उसका आशय ढूंढना पड़ता है । किन्तु ऐसे आशय का सही ज्ञान तभी हो सकता है, जब निष्ठा सत्य को खोजने की हो और स्याद्वाद के सिद्धान्त को समझने की हो ।

केवल शब्दो के लेवल पर हम लोग लड़ने लग जाते है, किन्तु जो कुछ भी हम सही दिशा मे भी सोचते है, वह पूर्ण सत्य नही, अपितु सत्य का एक अश ही सोच पाते है, क्योकि पूर्ण सत्य की साधना एवं पूर्ण सत्य का साक्षात्कार एक महत् कार्य है, जो अटूट निष्ठा के बल पर ही सम्पन्न किया जा सकता है। भगवान् महावीर ने सत्य की व्याख्या करते हुए बताया है कि—

सच्चं खु भगवं ।

अर्थात्--सत्य ही भगवान् है। अत सत्य की पूजा वास्तव मे भगवान् की पूजा है ।

सत्य, असीम है, अनन्त है

महात्मा बुद्ध के प्रधान शिष्य आनन्द थे । एक बार आनन्द ने बुद्ध से पूछा— "मै सत्य को पाना चाहता हूँ, कृपा करके मुझे सत्य के दर्शन कराइये । बुद्ध ने मन मे सोचा कि सत्य इतना विराट्, इतना असीम है कि यह आनन्द उसे सीमा मे बाँध कर पा लेना चाहता है—यह कैसे होगा ? बुद्ध तो बडी पैनी दृष्टि के महात्मा थे । वे आनन्द से कहने लगे—"आनन्द ! सामने वह वृक्ष देखते हो और उसके नीचे चारो ओर

फैली हुई सूखी पत्तियाँ भी देखते हो, जरा उन सूखी पत्तियो को ले आओ। आनन्द उसी समय उठ खडे हुए और उस वृक्ष की तरफ चले गये। अपने दोनो हाथो मे जितनी पत्तिया भर कर ला सकते थे, उतनी पत्तियाँ ले कर वे बुद्ध के समक्ष वापिस लौट आए। बुद्ध ने प्रश्न किया—"तुम इतनी ही पत्तिया लाये, क्या वृक्ष के नीचे इतनी ही पत्तियाँ थी ?"

आनन्द ने उत्तर दिया—'भगवन्, पत्तियाँ तो बहुत थी, किन्तु मैं अपने हाथों मे इतनी ही पत्तियाँ ला सका।' तब बुद्ध ने समझाते हुए कहा—"आनन्द ! सत्य तो असीम होता है, किन्तु जो कुछ भी हम देख रहे है—अनुभव कर रहे हैं, वह हमारी अपनी क्षमता के अनुरूप ही है। सत्य के कई सिरो मे से एक सिरा किसी व्यक्ति के पास या किसी सम्प्रदाय के पास हो सकता है, किन्तु उसे पूर्ण सत्य नही मान सकते। अगर वह व्यक्ति या सम्प्रदाय उस सत्याश को पूर्ण सत्य मानने का दुराग्रह करे तो वह सत्याश भी असत्य मे बदल जायगा।"

सत्य के विषय मे किसी का इस प्रकार से सोचना उचित नही है कि राम एव कृष्ण ने जो कहा है, वह सत्य ही है तथा किसी और ने कहा है, तो वह असत्य ही होगा। ध्यान रखिये कि एकान्तवाद तो सत्य का शत्रु होता है। सत्य की मजिल तक सुरक्षित पहुँचाने वाला कोई सिद्धान्त है तो वह स्याद्वाद और अनेकान्तवाद का सिद्धान्त ही है। एक मुक्तक प्रस्तुत कर रहा हूँ—

हम सोचते है कि हम जैन हैं, हिन्दू है और मुसलमान है,
अपनी-अपनी कौम और वतन का, सबके दिल में अभिमान है,
मै हैरान हूँ आज के लोग अनेकान्तवाद को कैसे भूल जाते है—
कि हम सबसे पहले एक है, क्योंकि हम सब इन्सान हैं ॥

सत्य की शोध मानवता के सवर्धन हेतु की जाती है। अत सत्य की शोध में सारे भेदभाव भुला कर सबको कन्धे से कन्धा मिला कर साथ-साथ में चलना चाहिये, वल्कि नारा यह होना चाहिये—

संगच्छध्वं, संवदध्वम्

सव साथ-साथ चलें और सगत वात कहे। यदि सव साथ-साथ चले, संघर्ष न हो तो हमारी सारी गुत्थियाँ स्वय ही सुलझ जायेंगी। किन्तु ऐसा होना केवल स्याद्वाद के प्रति निष्ठा रखने से ही सभव होगा।

अनेकान्तवाद का अमृत

अनेकान्तवाद के इस विश्लेषण से इतना तो स्पष्ट हो गया होगा कि सत्य की वेदी तक पहुँचाने वाला इससे अधिक सशक्त सिद्धान्त अन्य कोई नही दिखाई देता है।

एक प्रकार से यह अनेकान्तवाद का सिद्धान्त अमृत का रूप है, जिसे विधिपूर्वक पी लेने से सत्य के दर्शन होते हैं । जिस आत्मा को सत्य के दर्शन हो—उसकी भव्यता एव महानता अवर्णनीय ही होगी। किन्तु इस अमृत के महत्व को सामान्यरूप से सारा जगत् समझे और अपने वाद-विवादो का समाधान इस सिद्धान्त की छाया मे ढूढे तो इसमे कोई सन्देह नही कि सत्य-दृष्टि, शान्ति-लाभ एव सामूहिक व सामाजिक सदाशयता के सन्दर्भ मे एक प्रकार से धरती पर स्वर्ग ही उतर आयगा।

मेरी हार्दिक मनोकामना है कि जागृति की आखें खुले और संसार भगवान् महावीर के इस आलोक को आत्मसात् कर सके। प्रत्येक प्रवुद्ध आत्मा को इस दिशा मे अपना सत्प्रयास करना चाहिये, क्योकि यदि ऐसा हो सका, यानी ऐसा होने की दिशा मे चरण भी वढ़ सके तो यह लोक-कल्याण का महान् कार्य होगा। फिर ससार मे सत्य का ही शासन होगा, सत्य ही सवका मार्गदर्शक वनेगा और अनेकान्त के अमृतघट से चारो ओर मगल ही मंगल परिलक्षित होगा।

□

□ □

देवता अब इस धरा पर जन्म ले कर क्या करेंगे ?

देवता अब इस धरा पर जन्म लेकर क्या करेंगे ?
देखकर कठिनाइयों को, वे नही कैसे डरेंगे ?····

जानते है देवता यू, है मनुज उपकारकर्त्ता।
गुणानुरागी, स्वार्थ त्यागी, दु खियो का भारहर्त्ता।
जन्म हमको भी मिले यह
सयमी बन कर स्वय हम, भीम भवसागर तरेंगे····

रहा नही सयम, उपेक्षा हो रही कर्त्तव्य की भी।
शेष भी स्मृतियाँ नही है, पूज्यपद स्मर्त्तव्य की भी।
नीति केवल बन गई यह
चुने गये इस क्षेत्र से तो, हम हमारा घर भरेंगे····

दुग्ध, घृत-मक्खन-दही पर, जो चलाना व्यर्थ होगा।
चाय का प्याला मिलेगा, अर्थ का यह अर्थ होगा।
देवस्थानो के निकट।
मत्त हो कर मद्यपायी रात क्या दिन में फिरेंगे····

देवताओ! हो जहाँ पर, आपको रहना वही है।
आपके लायक अभी इस स्थान को समझा नही है।
हम मिलेंगे जब 'कमल' तब
आपके प्रस्ताव पर फिर चर्चणा विस्तृत करेंगे····

□ □

९

आँखें जब खुल जाती हैं

□ □

जब आलोक भरपूर हो, आँखे खुली हों, तभी पैरो की गति सक्रिय और लक्ष्य की ओर होती है। आत्मा का नेत्र सम्यग्ज्ञान है, उसका प्रकाश जब आत्मा मे व्याप्त हो जाता है, या यो कहिये कि आत्मा का अपना बुझा हुआ मोहावृत प्रकाश जब प्रगट हो जाता है, तब जो कुछ भी क्रिया होती है, वह उत्तम होती है, बन्धन को काटने वाली होती है। आत्मा के भ्रमण की प्रक्रिया को तत्वज्ञान के इसी आलोक के प्रकाश मे कैसे देखा जा सकता है और ज्ञान पर आया हुआ आवरण कैसे दूर किया जा सकता है? इन सब जिज्ञासाओ का सही समाधान प्रस्तुत प्रवचन मे पढिए…………

६

आँखें जब खुल जाती हैं !

□ □
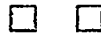
यदि ज्ञान की ज्योति नही है, अंधकार अति-अंधकार है।
उग्र उग्रतम क्रियाकांड भी, बुझे दीप-से सब असार हैं॥

यह सारा संसार—इसके सारे दृश्य उसी के लिये दर्शनीय है, जिसके आँखें हैं। इसीलिये तो कहा है कि 'आँख है तो जहान है।' उसके वाद आँखे भी हो, मगर अधकार ऐमा हो, जिसको आँखे न वेध सके, तव भी वात वही की वही हो गई, दृश्य फिर भी दर्शनीय नही होते। अतः आवश्यक है कि आँखें भी खुली हुई हो तथा आलोक भी फैला हुआ हो और यह आलोक जितना प्रखर होगा, उतना ही प्रत्येक दृश्य एवं प्रत्येक स्वरूप अधिक निखर कर दीखेगा।

जव आलोक भरपूर होगा व आँखें खुली होगी तो दृष्टिगत सारे दृश्य का दर्शन सुलभ होगा और तव आंखो के संरक्षण मे पैरो की गति भी सक्रिय वन जायेगी। इसी दृष्टि से आलोक के ज्ञान का महत्व सर्वोपरि माना गया है।

ज्ञान ही आत्मा : आत्मा ही ज्ञान

श्रमण भगवान् महावीर ने ज्ञान के विशिष्ट महत्व का उल्लेख करते हुए फरमाया कि—

नाणे पुण णियमं आया।

अर्थात् ज्ञान आत्मा का निज गुण है, जिसे हम यो कह सकते है कि ज्ञान ही आत्मा है तथा जो आत्मा है, वही ज्ञाता है। आगे कहा है—

जे आया से विण्णाया ।
जे विण्णाया से आया ॥

व्यवहारनय से ज्ञान और आत्मा मे भेद है, किन्तु निश्चयनय से ज्ञान और आत्मा मे कोई भेद नही माना गया है। इसीलिये कहा गया है कि जो आत्मा है, वही ज्ञान है एव जो ज्ञान है, वही आत्मा है।

स्वरूप का निखार

आत्मा का मूल स्वरूप ज्ञानमय कहा गया है और इसी दृष्टि से ज्ञान आत्मा का निज गुण है। इस मूल स्वरूप पर ज्यो ज्यो मैल चढता जाता है—ज्ञानगुण नीचे दबता जाता है एव धूमिल बनता जाता है। कभी कभी ज्ञानगुण इतना दब जाता है कि आत्मा पूर्णतया अज्ञान मे ही भटकती हुई-सी दिखाई देती है। किन्तु जब इस मैल को—जो कर्म-बध के माध्यम से लिप्त होता है—धोने का प्रयास प्रारम्भ किया जाता है तो आत्मा का स्वरूप निखरने लगता है। जिनका अर्थ है कि आत्मा की आन्तरिकता मे ज्ञान का आलोक प्रसारित हो जाता है। यही ज्ञान आत्मा को सिद्ध स्थिति मे पूर्णतया ज्योतिस्वरूप बना देता है।

ज्ञान तो है, किन्तु उसका ज्ञाता यह आत्मा ही मानी गई है तो आत्मा के स्वरूप पर एक दृष्टिपात कर लिया जाना चाहिये।

अन्धकार कब, आलोक कैसे ?

समस्त आत्माओ को दो भागो मे विभाजित कर सकते है—एक तो ससारी आत्माएँ तथा दूसरी सिद्ध आत्माएँ। सिद्ध आत्माएँ वे हैं, जो अपनी आत्मा के स्वरूप को पूर्णतया निर्मल बना कर जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो चुकी है एव मोक्ष मे ज्योति मे ज्योति के समान एकाकार ,होकर विराज रही है। उनका गमनागमन समाप्त हो चुका है तथा उनका स्वरूप अब सदा एक-सा आलोकमय-ज्ञानमय बना रहेगा।

ससार के ये सारे दृश्य ससारी आत्माओ के कारण है। वे आत्माएँ, जो अब तक सिद्ध नही हो सकी हे और भव-भ्रमण करती हुई संसार के जन्म-मरण के चक्र मे चल रही है—वे ससार मे परिभ्रमण करने के कारण संसारी आत्माएँ कहलाती है। सिद्ध-आत्माएँ पूर्णतया ज्ञानालोअ से आलोकिक होती है तो ससारी आत्माएँ अपूर्ण होने से अलग-अलग स्थितियो मे दिखाई देती हैं। कही ज्ञान का अधिक प्रकाश है, तो कही सामान्य, अथवा अधिकाशत अज्ञान का अन्धकार फैला हुआ दिखाई देता है। ससारी आत्माओ मे भी भव्य आत्माएँ साधना के पथ पर आगे चलती हुई ज्ञान के अधिका-

धिक आलोक मे रमण करती है तथा पूर्णालोक की दिव्य-स्थिति मे पहुँचने की अभिलाषा रखती है।

जब किरणें फूटती हैं

जब तक आत्मा अपने निज के स्वरूप को नही पहिचानती है, वह अज्ञान के अधकार मे भटकती रहती है—कभी-कभी किसी प्रकाशरेखा से आत्मा मे जागृति का अश आता है तो वह ध्यान लगाती है और अपनी अन्धकारमय स्थिति के कारणो को खोजती है। इस निष्ठापूर्ण चिन्तन मे ज्ञान की जब किरणें फूटती हैं तो आत्मा ज्यो-ज्यो निजगुण को परख कर ग्रहण करती है, उसके अन्तस् मे ज्ञान का आलोक व्याप्त होता जाता है। मूल सत्य यह है कि आत्मा मे सावधानी आए तो आत्मा स्वयं ही ज्ञाता है। यह सावधानी कब आती है? असावधानी क्यो बनी रहती है? इस गतिचक्र को समझने के लिए हमे कर्मसिद्धान्त के सन्दर्भ मे नौ तत्वों पर सामान्य रूप से दृष्टिपात करना होगा, जिससे यह ज्ञात हो सके कि आत्मा का अन्धकार क्या है? उसमे आलोक कैसे फैल सकता है? तथा आत्म-जागृति के सभी बिन्दुओ मे ज्ञान का सर्वोपरि महत्व क्यो माना गया है?

नौ तत्त्व

यह दृश्यमान जगत् दो तत्त्वों के मेल से निर्मित हुआ है। ये दो तत्त्व हैं—जीव एव अजीव अथवा चेतन एव जड। जीव या चेतन-शक्ति आत्मा है तथा उसके सिवाय सारी चीजें अजीव या जड़ हैं। आत्मा अमर, अनिश्वर एव अरूपी होती है। अत: चर्मचक्षुओ से दिखाई नही देती। जो कुछ ससार दिखाई देता है, वह सब जड़ है। जड को पौद्गलिक भी कहा गया है, यानी यह सारा ससार पुद्गलो की माया है, जिसका स्वरूप रूपी होता है तथा स्वभाव नाशवान। पुद्गल नष्ट-विनष्ट होता रहता है और नये-नये रूपो मे ढलता रहता है। ये सारे शरीर भी पौद्गलिक एव जड हैं, जिनमे आत्माओ के निवास के कारण प्राणो की हलचल दिखाई देती है। यह हलचल चेतन और जड़ के मेल से बनती है। चूंकि शरीर मे आत्मा है—जीवन का सक्रिय रूप दिखाई देता है और आत्मायुक्त शरीर भी अपनी चैतन्यशक्ति के आधार पर नई-नई वस्तुओ एव शक्तियो की रचना करता है। इस प्रकार जीव तथा अजीव के सयोग से यह सारा ससार है तथा उसका सारा गतिशील ढाचा है।

ससार के ससरण के भीतरी रहस्य को जानने के लिये जब आगे बढ़ते हैं तो इन दो तत्त्वो के आगे नौ तत्त्वो तक चलना होगा। कुल नौ तत्त्व इस प्रकार हैं—१. जीवतत्व, २. अजीवतत्व, ३. पुण्यतत्व, ४. पापतत्व, ५. आश्रवतत्व, ६. संवर

तत्व, ७. निर्जरातत्व, ८. बधतत्व एव ९. मोक्षतत्व । अब इन सभी तत्वो के प्रसंग से ससार के ससरण तथा आत्मा के परिभ्रमण को समझना होगा । नौ तत्व एक प्रकार से ज्ञान की प्रथम प्रकाशकिरण है, जिसके आलोक मे आत्मा का निजस्वरूप एव निजगुण पहिचाना जाता है ।

आत्मा और शरीर के सयोग से क्रियाशीलता स्वाभाविक है और ससार की किसी भी शुभ अथवा अशुभ क्रिया से आत्मा के साथ कर्मो का वध होता है—यह बधतत्व का ज्ञान है । जैसे तैल मालिश किये हुए बदन पर रेत के कण अपने आप चिपक जाते है, उसी प्रकार अमुक क्रिया करने पर अमुक प्रकार के कर्म आत्मा से चिपक जाते है, जो समय पर अपना तदनुसार फल दे कर ही छूटते है ।

आत्मा के साथ बधे हुए कर्म यो तो आठ माने गये है, किन्तु मोटे तौर पर उन्हे दो श्रेणियो मे बाँट सकते है और उसके अनुसार पुण्यतत्व एव पापतत्व का निरूपण किया गया है । शुभकार्यो के करने पर पुण्यकर्मो का वध होता है तो अशुभ कार्यो से पापकर्म का वंध । मुख्यरूप से ९ प्रकार के कार्यो से पुण्य तथा १८ प्रकार के कार्यो से पापकर्म का वध होना बताया गया है । पुण्य ९ है—अन्न, पान, स्थान, शय्या व वस्त्र का दान, मन, वचन एव काया का शुभत्व तथा नमस्कार । १८ पाप है—जीवहिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, कलक लगाना, चुगली करना, रति-अरति, कपटपूर्ण मिथ्या तथा मिथ्या दर्शन । पुण्यकर्मो का फल शुभ होगा—अच्छा जीवन, अच्छे साधन और अच्छे सयोग मिलेगे । इसके विरुद्ध बुरा जीवन, बुरे साधन तथा बुरे सयोग के रूप में पाप-कर्मो का अशुभ फल भुगतना होगा । जैसा भी फल हो, फल को भोगे विना कर्मवध से छुटकारा नही मिलता है ।

कर्मो की प्रक्रिया का ज्ञान आश्रव, सवर एवं निर्जरातत्त्वो से होता है। कर्मो के आने को आश्रवतत्त्व कहा है। जैसे एक हौज मे नाली मे पानी आता है, और हौज भरता है । उसी प्रकार अमुक-अमुक क्रिया के फलस्वरूप आत्मा के साथ कर्मो का वध होता है, जिसका स्रोत आश्रव होता है । आश्रव को रोको, यानी आत्मा के साथ कर्मबध न होने दो, अपने विवेक से एव अपने ज्ञान से—तो उसे सवरतत्त्व कहते है । हौज मे नाली से आने वाले पानी को रोक देना सवर है और उसके बाद हौज मे पडे हुए गन्दे पानी को बाहर उलीच कर फैक देना निर्जरा है । निर्जरा के बाद वध का सिलसिला समाप्त हो जाने से मोक्ष प्राप्त हो जाता है—वध से मोक्ष, जिस परम अवस्था मे आत्मा अपने समस्त कर्म-मल से मुक्त हो कर शुद्ध, बुद्ध एव सिद्ध आत्मा बन जाती है । इस प्रकार आत्मा का ससार मे परिभ्रमण का गतिचक्र नौ तत्त्वो के ज्ञानमय प्रकाश मे स्पष्ट होता है ।

सम्यग्ज्ञान : साधना क्षेत्र

ज्ञान का अर्थ है—जानना। जानना अच्छा भी हो सकता है बुरा भी हो सकता है सच्चे स्वरूप को जानना भी जानना है और झूठे स्वरूप को भी जानना ही होता है। इसलिए ज्ञान के पहले सम्यक् शब्द जोड़ा गया है तथा मोक्षप्राप्ति के तीन रत्नो मे पहला रत्न सम्यक्ज्ञान को बताया गया है। ज्ञान वही सच्चा होता है जो सत्य की कसौटी पर खरा उतरता हो।

जैन-आगमो मे ज्ञान के पाँच भेद बताये गये हैं—१ मतिज्ञान, २. श्रुतज्ञान, ३ अवधिज्ञान, ४. मन पर्यायज्ञान तथा ५. केवलज्ञान। पहला क्रम मतिज्ञान का है कि अपनी बुद्धि का श्रेष्ठ विकास हो और वह अपनी प्रेरणा से ज्ञान का संचय करे—अध्ययन एव मनन द्वारा। फिर उस ज्ञान को अधिक ज्ञानियो से सुन कर या आप्तपुरुषो के वचनो को पढ-जान कर अभिवृद्ध बनाया जाय—वह श्रुतज्ञान का अर्थ हुआ। अवधि का अर्थ समय से है तो इस जन्म से पहले के जन्म की अवधि का ज्ञान प्राप्त हो—वह अवधिज्ञान कहलाता हैं। यह पूर्वजन्म का ज्ञान होता है। दूसरो के मन के विचारो को बिना उसके द्वारा प्रकट किये ही जान लेना मन.पर्यायज्ञान की शक्ति से सम्भव होता है। अपना आत्मस्वरूप—अपना मन इतना निर्मल बन जाय—पारदर्शी हो जाय कि उसके सामने जो भी आए, वह प्रतिबिम्बित होने लगे—वैसी अवस्था मन.पर्यायज्ञानी की होती है। सामने वाले का मन अपने मन मे प्रतिबिम्बित हो जाता है और उसके मन का सब कुछ अपने ज्ञानपथ मे आ जाता है। अन्तिम एवं सर्वोच्च ज्ञान है—केवलज्ञान। ज्ञान की परमोत्कृष्ट अवस्था मे केवलमात्र ज्ञान ही रह जाता है, यानी आत्मा का जो कुछ स्वरूप होता है वह सम्पूर्णतया ज्ञानमय हो जाता है। आत्मा का निजगुण ज्ञान अपनी परम विकसित अवस्था को प्राप्त होता है, तब वह आत्मा केवलज्ञानी कहलाती है। केवलज्ञान और मोक्ष मे अधिक अन्तर नही रहता।

इस रूप मे आत्मा की साधना का प्रधान एवं पहला क्षेत्र है—ज्ञान का क्षेत्र। इस क्षेत्र मे वह निरन्तर साधना करती रहे तथा मति, श्रुत आदि ज्ञानो के सोपानो पर चढती हुई केवलज्ञान के सर्वोच्च शिखर पर आरुढ हो—यह साधना का सर्वोच्च परिणाम होगा।

ज्ञान जब सम्यक् का आलोक खो देता है और अधकारमय बन जाता है, तब वह अज्ञान कहलाता है। इससे अज्ञान के तीन भेद माने गये है—१. मति-अज्ञान,

२. श्रुत-अज्ञान एवं, ३. विभंगज्ञान। बुद्धि और श्रवणशक्ति जब अज्ञान के अँधेरे में भटकने लगे तो उसका निश्चित परिणाम ज्ञान का विभग ही होगा। इस कारण इस तत्त्व को हृदय मे धारण कर लीजिये कि ज्ञान की सार्थकता सम्यकत्व एव सत्य से जुडने पर ही प्रकाशित होती है।

आत्मा की तीसरी आँख

सम्यग्ज्ञान को आत्मा का तीसरा नेत्र मान लीजिये। क्योंकि तीसरा नेत्र खुले बिना शिवत्त्व कैसे प्राप्त हो सकता है? ज्ञान के तीसरे नेत्र के खुलने से अज्ञान जल जाता है और आत्मा ज्ञान से परिपूर्ण बन कर शिव यानी कल्याण के पथ पर अग्रसर बन जाती है।

आत्मज्ञान परमज्ञान

ज्ञान के स्वरूप को सभी दार्शनिको तथा विचारको ने आत्मोत्थान-कारक बताया है। महाकवि शेक्सपियर के शब्दो मे 'ज्ञान वह पख है, जिसकी सहायता से हम स्वर्ग मे उड सकते है।' कन्फ्यूशस ने ज्ञान को आनन्ददाता बताया है। वैदिक दार्शनिकों ने भी सम्यग्ज्ञान को सर्वोच्च महत्त्व दिया है तथा उसे ब्रह्मज्ञान की सज्ञा दी है। मुण्डकोपनिषद् मे कहा गया है—

ब्रह्मविद्या सर्वविद्या-प्रतिष्ठाम्।

महाभारत ने भी इस मत को पुष्ट किया है—

आत्मज्ञान परमज्ञानम्।

ज्ञान की खोज मे महावीर-दर्शन बहुत गहरे में उतरा है तथा भेद-विज्ञान इसकी बहुत बडी विशेषता है। आज हम देखते है कि सैंकड़ो मत-मतान्तर केवल क्रियाकाडो के आधार पर ही पनप रहे है—अन्ध-श्रद्धा पर चल रहे है। वहाँ भगवान् महावीर का दर्शन ज्ञानोपयोग को प्रधानता दे कर चला और चल रहा है। महावीर ने कहा—

नाणं पयासयं।

अर्थात् ज्ञान प्रकाशक है और यदि ज्ञान का प्रकाश नही है और आँखें उसमे खुली हुई नही है तो पाँवो के चलने का क्या सार निकलेगा? पैरो से पहले नेत्रो की आवश्यकता होती है और ये नेत्र होते है—ज्ञान के नेत्र। सत्यमय ज्ञान के आलोक मे जीवन का एक-एक अग—एक-एक क्रम पूर्ण स्पष्ट हो जाता है।

ज्ञान पहले और क्रिया बाद में

जीवन के स्वस्थ विकास की दिशा में ज्ञान को प्राथमिक महत्व दिया गया है। यदि नेत्र प्रकाश मे खुले नही हैं तो पाँव कहाँ चलेगे—कैसे चलेंगे ? अधकार में उठे हुए पांव भटक ही सकते हे—काटो और पत्थरो मे उलझ ही सकते है। इसी उद्देश्य से कि क्रिया की कर्मठता के पहले ज्ञान का आलोक आँखो मे समाना आवश्यक है। महावीर प्रभु ने फरमाया है—

भेदविज्ञान

ज्ञान के इस प्राथमिक महत्व को हृदयंगम करने की आवश्यकता है। जिस भेदविज्ञान के विना श्रावकत्व तो क्या, सच्चा सम्यक्त्व भी नही आ सकता है, उसका ज्ञान आज विस्मृत-सा होता जा रहा है। वर्तमान जीवन की पद्धति इतनी उलझन-पूर्ण एवं जटिल हो गई है कि इसमे आप लोगों को नियमित स्वाध्याय का समय ही नही मिल पाता है। तब नये ज्ञान की प्राप्ति एव पुराने ज्ञान की स्मृति का आपको अवसर ही कहाँ मिलता है ? ऐसे भी कुछ कारण हैं, जिनसे समाज मे आँखो के पहले पाँवों का निर्माण करने को वल मिलता है, किन्तु ऐसी स्थिति श्रेयस्कर नही मानी जा सकती है। यह क्रियाओ का खण्डन नही है, क्योकि सम्यक्ज्ञान को पहले प्राप्त किये विना सम्यक् क्रियाओ की आराधना कैसे की जा सकेगी ?

ज्ञान, दर्शन, क्रिया

वीतराग-दर्शन की प्रमुख विशेषता यह है कि वह केवल श्रद्धा पर ही आधारित नही है। यहाँ श्रद्धा को दूसरे क्रम पर स्थान प्राप्त हुआ है तथा ज्ञान का क्रम पहले रखा गया है। सम्यक्ज्ञान-दर्शन-चारित्र का यही अर्थ है कि पहले सही जानो, उसे सही मानो और तव सही जानने और मानने को अपने करने मे उतारो। कई लोगो द्वारा दर्शन का ज्ञान से पहले निरूपण एकागी कहा जायगा। वास्तव मे सम्यक्दर्शन भी ज्ञानरहित अवस्था नही है। दर्शन ज्ञानपूर्वक ही होता है तथा होना चाहिए। सम्यक् ज्ञान के प्रकाश मे सच्ची श्रद्धा जन्म लेती है और श्रद्धा से भरा ज्ञान सुदृढता से आचरण के क्षेत्र मे चरण वढाता है। तत्वार्थसूत्र (उमास्वाति) तथा अनन्त-चतुष्टय (आचार्य हेमचन्द्र) मे भी ज्ञान के वाद ही दर्शन का क्रम रखा गया है। सर्वप्रथम वीतराग के अनन्त ज्ञान-विज्ञान को ही महत्व दिया गया है। कहा है—

अनन्तविज्ञानमतीतदोषम् !

ऐसे अनेक उदाहरण है जिनमे सवसे पहले ज्ञान की गरिमा का वर्णन है। किन्तु खेद का विषय है कि हम सवसे अधिक इस ज्ञान से ही अपना मुख मोड़ते चले

जा रहे है। आज जो थोथा वादविवाद होता है—उसमें सही तत्वज्ञान का अभाव ही तो दिखाई देता है।

ज्ञानरहित क्रिया : अवरोध

जैन आचार्यों ने "ज्ञान क्रियाभ्या मोक्ष" कहा है, किन्तु यहाँ भी ज्ञान का क्रम पहले इसी दृष्टि से है कि ज्ञानपूर्ण क्रिया की आराधना की जायगी, तभी मोक्ष की प्राप्ति हो सकेगी। ज्ञानहीन क्रिया जीवन-विकासक नही होगी। राष्ट्रसन्त उपाध्याय श्रीअमरमुनि के शब्दो मे स्पष्ट उल्लेख है कि उग्र से उग्र क्रियाओ की भी आराधना की जा रही है, किन्तु यदि वे ज्ञानशून्य है तो उनका जीवन के विकास की दृष्टि से कोई अर्थ नही। सुनिये—

यदि विवेक की ज्योति नहीं है
अंधकार, अति अंधकार है।
उग्र, उग्रतम क्रियाकांड भी
बुझे दीप-सा सब असार है॥

इस सन्दर्भ मे एक कथा याद आ गई है। एक बार कैलाशपर्वत पर पन्द्रह सौ तीन तापस तपस्या कर रहे थे। कोई औंधे वृक्ष से लटके हुए थे, तो कोई काटो की शय्या पर सो रहे थे। कोई भीषण अग्नि का ताप सहन कर रहे थे, तो कोई अन्य प्रकार से भयकर शरीर-कष्ट झेल रहे थे। कई महीने-महीने तक भूखे रहते और सुई की नोक पर आये उतने-से अन्न से पारणा करते थे। इतनी कठोर तपस्या के बावजूद उनमे से किसी की मुक्ति नही हो रही थी। गौतम गणधर जब उधर निकले तो उन तापसो के रोमांचपूर्ण तपाराधन को देख कर बोल उठे—

"अहो कष्टं, अहो कष्टं, पुनस्तत्व न ज्ञायते।"

इतना भीषण कष्ट उठा रहे है, किन्तु इन्हे सत्य तत्व का कोई ज्ञान नही है। भगवान् ने कहा—"क्रिया है, किन्तु विवेक एव तत्वबोध के अभाव मे वह निष्प्राण तथा निष्प्रभाव है।"

आप लोग भी सामायिक-प्रतिक्रमण-पौषध आदि क्रियाएँ करते है तथा उपकरणो की रक्षा करते है, किन्तु क्या आपकी भी दशा उस पठान जैसी नही है? इसके लिए पठान का किस्सा सुनिये। एक बैंक मे एक पठान चौकीदार था। बैंक मैनेजर जब शाम को अपने घर जाने लगे तो उन्होने पठान को कहा—मैने बैंक के दरवाजे पर ताला लगा दिया है तथा ऊपर चिट भी चिपका दिया है, तुम बराबर चौकसी रखना। यह कह कर मैनेजर चले गये। पठान चौकीदारी करने लगा। रात

को चोर बैंक के पीछे की दीवार तोड कर भीतर घुस गये, पठान देखता रहा। फिर उन्होने तिजोरियाँ तोड़ी—सारे नोट निकाले, मगर पठान देखता हुआ भी कुछ बोला नही। सुबह जब मैनेजर ने बैंक की यह हालत देखी तो वे पठान पर चिढे—'तुम चौकीदारी कर रहे थे या नीद निकाल रहे थे ?', पठान ने सीधा-सा उत्तर दिया—"मैंने एक मिनिट के लिए भी नीद नही निकाली, मैं तो चोरो की सारी हरकतें देख रहा था।" मैनेजर बिगडे—'फिर तुमने उन्हे रोका क्यो नही या चिल्लाये क्यो नही ?' पठान बोला—"मैं क्यो चिल्लाता ? आप तो दरवाजे का ताला और उसका चिट देख लीजिए—वैसे के वैसे लग रहे है, बस मेरी यही जिम्मेदारी थी।" यह सुन कर मैनेजर ने सिर पीट लिया।

क्या आपके क्रियाकाड भी कही पठान की तरह तो नही चल रहे हैं—इसके लिए अपने भीतर झाकें, असलियत देखें और अपने आपको सुधारे। बिना ज्ञान की थोथी क्रियाएँ जीवन मे कोई सुधार नही ला सकती है। क्रियाओ के इस अन्धेपन को दूर करिए, तभी क्रिया का भीतरी मर्म भी समझ मे आयेगा तथा आत्मसुधार भी होगा।

अनन्त आलोक

ज्ञानालोक अनन्त और असीम होता है और आत्मा जब इस ज्ञानालोक में मे चिररमण करती हुई इसकी अनन्तता मे अन्तिम रूप से विलीन हो जाती है, तो वही इसका मोक्ष हो जाता है। सिद्धशिला पर सभी सिद्धआत्माएँ ज्योति मे ज्योति की तरह घुल-मिल कर ज्ञानरूप बनी हुई है तथा नई सिद्ध होने वाली आत्माएँ बनती रहेगी।

क्या हम और आप भी सिद्धि की अभिलाषा रखते हैं ? कहते तो यही हैं और यत्किंचित् साधना करते हुए यही सोचते हैं कि **"सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु"**। किन्तु हमारी आज की दशा या दुर्दशा कैसी है—उसकी तरफ गौर किये बिना और उसे सुधारे बिना क्या हमे सिद्धि मिल सकेगी ? सोचिए—

आज सम्यग्ज्ञान बिन, बादल दुःखों के छा रहे हैं।
श्रेष्ठ मानव आज दुर्दम दानवी कहला रहे हैं॥

हृदय मे ज्ञान की ज्योति जगाइये और अपने अन्तर को सम्यक् ज्ञान से प्रकाशमान बनाइये—उसके बाद आत्मविकास हेतु चारित्र की आराधना का मार्ग स्वतः ही प्रशस्त हो जायेगा। □

शपथ न लो, पर सत्पथ ले लो, युवकों; अभी बहुत चलना है....

शपथ न लो, पर सत्पथ ले लो, युवको ! अभी बहुत चलना है।
भारतीय सस्कृति में जन्मे, हमे इसी मे ही पलना है !!

सत्य-हमारा जीवन साथी, धर्म अहिंसा प्राण हमारा।
सन्त लोग हमको सिखलाते, नहीं परिग्रह त्राण हमारा।
क्या लाएँ है क्या ले जाना ?
तुच्छ स्वार्थ के लिए झगडना, अडना बहुत बडी स्खलना है....

आदर करो बडो का, सीखो, जो कुछ उनसे सीखा जाये,
यह न जानते, वह न जानते, केवल कैसे सीखा जाये ?
और नया अभ्यास बढ़ाओ
जलती हुई मसाले बन कर, जन्म अनेको तक जलना है....

एक दूसरे को समझोगे, तो सहयोग स्वत पाओगे।
जब भी आप खडे हो ओगे, विजयी बना दिए जाओगे।
जीओ, मरो, जनहित करने को
मुनि महेन्द्र बडे परमार्थी--ढाचे मे हमको ढलना है ...

□

10

आचार की ऊँचाइयाँ

□ □

आचार के अभाव मे निष्क्रिय ज्ञान और कोरी श्रद्धा का कोई मूल्य नही है, आचरण मे ही इन दोनो की सार्थकता है । आचरण (चारित्र) ही मनुष्य को आध्यात्मिक उच्चता के शिखर पर पहुँचा सकता है। संसार के समस्त धर्मधुरन्धरो का यही एकमात्र स्वर रहा है कि आचारहीन मनुष्य, चाहे ज्ञान मे कितना ही आगे वढा हुआ हो, चाहे श्रद्धा मे सुदृढ़ हो, अपनी आत्मा और पवित्रता की रक्षा नही कर सकता। वह आचार क्या और कौन-सा है ? उसकी कितनी सीढियाँ हैं ? आचारहीन ज्ञान के क्या दुष्परिणाम आते हैं ? विविध अटपटी घाटियो को पार करके मानव आचार की ऊँचाइयो पर कैसे पहुँच जाता है ? पढिए, इन सव गहराइयो को छूने वाला हृदयस्पर्शी प्रवचन और अपनी आत्मा मे गोते लगाइए.................... ....

१०

आचार की ऊँचाइयाँ

□ □
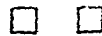
चमन में आज वह बहार क्यों नहीं है ?
मानवमन में आज आनन्द की सुधाधार क्यों नहीं है ?
इस 'क्यों' का कारण समझ मे यों आता है कि,
क्योंकि वर्तमान जीवन मे विचार तो है, पर आचार नहीं है ॥

कोतल घोड़ों की तरह

'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्ग:, सूत्र का महत्वपूर्ण अन्तिम तथा ठोस पहलू है—चारित्र अर्थात् आचार या आचरण। ज्ञान और श्रद्धा का उपयोग ही आचरण मे होता है। आचरण की सार्थकता के बिना गहरा ज्ञान और गहरी श्रद्धा कोतल घोड़ों के समान ही माने जायेंगे। जो जाने और माने सही रूप मे—उसको करने मे सही तौर पर उतारेंगे, तभी सुपरिणाम सामने आ सकेगा। इस दृष्टि से व्यवहाररूप मे आचरण मोक्ष का मूलाधार बन जाता है।

निष्क्रिय ज्ञान एवं ज्ञानहीन क्रिया—दोनों ही जीवन मे अलग-अलग निरर्थक हैं। ज्ञान और क्रिया के सम्यक् संयोग से ही आत्म-विकास का मार्ग प्रशस्त बनता है।

चन्दन सी बोझ

एक बार एक जिज्ञासु ने भगवान महावीर से प्रश्न किया—भगवन् ! समस्त आगम-शास्त्रों का क्या सार है ? 'अंगाणं किं सारो ?'

महाप्रभु ने समाधान दिया और वह समाधान सामयिक समाधान मात्र नही था, उसका शाश्वत महत्व है। उन्होने कहा—"अंगाणं सारो आयारो।" अर्थात् सारे आगमशास्त्रो का सार आचार है। आचार की इस बुनियादी महत्ता को कोई अस्वीकार नही कर सकता कि कर्मठता का प्रतीक आचार ही होगा। यह सही है कि सम्यक् ज्ञान एव सम्यक् दर्शन के पहलू सुगठित हो, किन्तु आचरण ही ज्ञान और दर्शन की सक्रियता का स्पष्ट प्रमाण हो सकता है। आचार्य भद्रबाहु स्वामी ने कहा था—

जहा खरो चन्दण-भारवाही,
भारस्स भागी न तु चंदणस्स।
एवं हु किरियाविहीण नाणी,
नाणस्स भागी न तु वंदणस्स॥

अर्थात् जैसे गधे पर बावना (सर्वाधिक मूल्यवान) चन्दन का बोझ लाद दिया तो वह चन्दन के मूल्य या महत्व से अनभिज्ञ केवल उसका बोझ ढोता है, उसी प्रकार क्रियाहीन ज्ञानी केवल ज्ञान का भार ढोता है—ज्ञान का सक्रिय हिस्सेदार नही बनता।

कार्य सफल, कारण सफल

अभिप्राय यह है कि आचार की बुनियादी महत्ता को सभी दार्शनिको एव विचारको ने स्वीकार किया है। कारण और कार्य के सम्बन्ध को देखे तो कारण चाहे जितना महत्त्वपूर्ण रहा हो, किन्तु वह अगर कार्य मे नही ढल पाया तो व्यर्थ रहता है। कार्य की सफलता मे ही कारण की सफलता होती है। यदि आचार सफल है तो ज्ञान और श्रद्धा मिल कर आचार मे परिणत नही होते तो वे स्वतः ही असफल सिद्ध हो जाते है।

आचार अर्थात् मर्यादा भी

आचार का अर्थ आचरण तो होता ही है, किन्तु मर्यादा भी होता है। वैसे भी आचरण सदा संयमपूर्ण एव नियमबद्ध ही होता है। इस दृष्टि से मर्यादा का भी आचरण मे ही समावेश हो जाता है। फिर भी मर्यादा को लक्ष्मण-रेखा मान ले कि जिसको आचरण-संहिता मे लाघा न जा सके।

आचरण की मर्यादाएँ जीवन को अनुशासनमय बनाती है। एक नियम का आप वैसे ही पालन करते रहे और नियम का व्रत ले कर फिर उसका पालन करे—इन दोनो स्थितियो मे भी भारी अन्तर है। पहली स्थिति मे आप नियम का पालन

कर रहे है—यह अच्छी वात है, किन्तु आपका मन कमजोर हो जाय और आप उसका पालन छोड़ दें तो आप पर कोई प्रतिवन्ध नही है। दूसरी स्थिति मे व्रत लेने पर उसकी पावन्दी करना नैतिक कर्त्तव्य हो जाता है और ले कर जब व्रत को तोडते हैं तो मन में एक ग्लानि पैदा होती है। अत मर्यादाएँ आचरण को संपुष्ट वनाती है तथा जीवन मे अनुशासन को प्रतिष्ठित कर देती है।

दायित्व : जीभ का कम, पैर का अधिक

हिमालय की ऊँचाई नाप मे इतनी है या कि इस-इस मार्ग से व इस-इस विधि से उस पर सफल चढाई की जा सकती है—इस सबका विवरण जिह्वा द्वारा कहने मे कोई विशेष समय नही लगेगा, किन्तु कल्पना कीजिए कि यदि पैर हिमालय पर चढने का इरादा करें तो पहले कितनी तैयारी करनी होगी? कितने साहस से चढाई आरम्भ करनी होगी? तथा कितनी कठिनाइयो को झेलते हुए चढाई को सफल वनाने की चेष्टा करनी होगी? यह सव एक दीर्घकालीन महायात्रा का विषय वन जाएगा। जिह्वा को अपेक्षा पैरो का उत्तरदायित्व कई गुना अधिक व्यावहारिक, अधिक कठिन तथा अधिक श्रम एव साहस-साध्य होता है। यह अवश्य है कि पाँवो का काम वहुत विचारविमर्श एवं वहुत आत्म-विश्वास के साथ होना चाहिए, किन्तु जव पाँवो का काम शुरू हो जाता है तो वही काम सारी शक्तियो का केन्द्रविन्दु वन जाता है। आचार का महत्व इसी कारण आधारगत होने के कारण विशिष्ट होता है। एक कवि ने कहा है—

पिंजरा तो खुल गया, मगर पाँखें नहीं खुली तो क्या?
दिया तो जल गया मगर, आँखें नहीं खुली तो क्या?
करने की वातें तो वहुत की, पर कर्मठता जगी नहीं,
पांव तो उठाये वहुत, उनकी गति नहीं चली तो क्या?

कहने और करने मे वड़ा अन्तर है। कोई भी कथन तभी वजनदार वनता है, जव इसके अनुसार करने मे सफलता प्राप्त कर ली जाय।

आप जानते हैं कि आटे से रोटियाँ कैसे वनती हैं? आपको भूख भी जोरो की लगी हुई है, किन्तु कोरे ज्ञान से तो पेट भरेगा नही। जव श्रम करके रोटियाँ वनायेंगे, तभी पेट भर सकेगा। यदि क्रिया के इस महत्त्व को आप नही समझेंगे तो हर जगह हानि ही उठानी पडेगी। एक शायर का शेर है—

हमको नई रविश के, हलके जकड़ रहे हैं।
वातें तो वन रही हैं पर घर विगड़ रहे हैं॥

जीवनोदय · मर्यादाएँ, प्रतिक्रियाएँ

आचार के अनुपालन के प्रति दृढता एवं कठोरता की जैसी मर्यादा जैनदर्शन मे उल्लिखित की गई है, शायद ही वैसी मर्यादाएँ किसी अन्य दर्शन में हो और हो हो भी तो उनका वैसा अनुपालन दृष्टिगत नही होगा। आचारगत इस दृढता के पीछे एक गम्भीर दृष्टिकोण रहा हुआ है। मनुष्य का मन वडी ऊँची-नीची कुलाचे भरता रहता है। अत यदि उसे बाधने की सुव्यवस्था न की जाय तो बड़ा अनर्थ हो जाने की आशका बनी रहती है।

किन्ही नियमो का ऐच्छिक अनुपालन यो वड़ा अच्छा लगता है कि भावना दृढ रहेगी तो अनुपालन होगा ही, फिर किसी प्रतिवन्ध की क्या आवश्यकता है? किन्तु मन की कमजोरियो को ध्यान मे लेते है तो यही समझ मे आता है कि भावना का प्रवाह कभी कम ज्यादा भी हो, लेकिन कर्मठता की गति कभी रुके नही, इसके लिए जरूरी है कि स्वैच्छिक प्रतिवन्ध स्वीकार किये जायँ। दूसरे, मन की कमजोरी से कभी एक कदम ही फिसले और उस समय नियम का कोई प्रतिवन्ध नही हुआ तो फिर फिसलने की कोई हद नही रहेगी।

जव कोई जलाशय वनाया जाता है तो उसमे पानी को रोके रखने के लिये मजबूत पाल या बाध बनाई जाती है कि कही पानी का वेग उसे तोड न दे और बांध नष्ट न हो जाय। फिर इस बाध या पाल की देख-भाल भी बडी सतर्कता से की जाती है। अगर पाल के बीच मे से कही एक जर्रा भी निकल जाय और बूंद-बूंद पानी भी रिसने लगे, तभी चौंक कर उसकी मरम्मत की जाती है। कारण साफ है कि रिसने वाली एक-एक बूंद कल बड़ी धारा बन जायेगी। और परसो बाध की पाल फूट जायगी। इसी रूप मे जीवन को लिया गया है, जिसे सयमपूर्ण आचार की पाल से बाधा जाता है। वह पाल आचार के प्रत्येक स्तर पर साधक की रक्षा करती है और मन को भी नियन्त्रित बनाये रखती है।

जीवन मे सदाचरणपूर्ण उत्थान लाना है तो आचार की मर्यादाओ का निर्वाह आवश्यक है, क्योकि ये मर्यादाएँ मन की प्रत्येक प्रकार की अवस्था मे एक ओर मन को ही भटकने नही देगी तो दूसरी ओर संयम एव नियम के अनुपालन में शिथिलता को नही आने देगी। इसी प्रकार आचार की प्रक्रियाएँ भी जीवन के उत्थान में उतनी ही महत्त्वपूर्ण मानी गई है।

आचार की सीढ़ियाँ

भगवान् महावीर ने आचार रूपी पाल की वडी मजबूत चुनाई की है। कोई आचार-भ्रष्ट भले ही जो जाय, किन्तु अपने को आचार की मर्यादाओ मे चलता हुआ मान कर या कह कर आचार की लीक से हट नही सकेगा।

मुख्यतया आचार के दो सोपान बताये गये हैं—(१) सम्यकत्वी व व्रती से ले कर श्रावक धर्म का अनुपालन एव (२) साधुधर्म का अनुपालन। आत्मा मिथ्यात्व को छोड़े और सम्यक्त्व को ग्रहण करे—यह प्राथमिक रूप से आवश्यक है। आचार का प्रारम्भ होता है—उसके द्वारा छोटा वडा कोई न कोई व्रत ग्रहण करने के साथ कि उसने कुछ न कुछ करने का समारभ कर दिया है। व्रत ग्रहण करने की दृष्टि से गृहस्थ-धर्म मे रहते हुए श्रावक के वारह व्रतो के पालन तक अपनी व्रत-निष्ठा का दायरा बढाया जा सकता है। यथाशक्ति वारहो व्रतो का या उनमे से अमुक व्रतो का पालन प्रारम्भ किया जा सकता है और धीरे-धीरे सभी अणुव्रतो के दृढ पालन तक आगे वढा जा सकता है।

श्रावक के वारह व्रत इस प्रकार होते है—

१. अहिंसा-व्रत—त्रसजीवो की हिंसा का त्याग दो करण तीन योग स।

२. सत्यव्रत—स्थूल झूठ का त्याग।

३. अचौर्यव्रत—स्थूल चोरी का त्याग।

४. ब्रह्मचर्यव्रत—परदारविवर्जन एव स्वदारसन्तोप का व्रत।

५. परिग्रह-परिमाण-व्रत—परिग्रह की मर्यादा।

६. दिशापरिमाण-व्रत—छहो दिशाओ मे गमनागमन की मर्यादा।

७. उपभोग-परिभोग-परिमाण-व्रत—उपभोग्य एवं परिभोग्य वस्तुओ की मर्यादा तथा पन्द्रह कर्मादानो का त्याग।

८. अनर्थदण्ड-विरमण-व्रत—अनर्थदण्ड का त्याग।

९. सामायिक-व्रत—प्रतिदिन शुद्ध सामायिको का व्रत।

१०. देशावकाशिक-व्रत—देशावकाशिक पौपध करने का व्रत।

११ पौपधोपवास-व्रत—प्रतिपूर्ण पौषध का व्रत।

१२. अतिथि-संविभाग-व्रत—चौदह प्रकार की वस्तुओ मे से अतिथि को निर्दोप दान देने का व्रत।

श्रावक ससार मे वैठ कर चूँकि गृहस्थी का सचालन करता है, उसके व्रतों मे स्थूल पाप का त्याग कराया जाता है तथा साधुधर्म के अभ्यासरूप सामायिक-पौपध आदि का व्रत ग्रहण कराया जाता है, क्योकि श्रावक से ऊपर का स्तर साधु का होता है। श्रावक यदि अपने इन वारह व्रतो का सम्यक् प्रकार से पालन करता रहे तो उसके व्यापार-व्यवसाय मे अनीति प्रवेश नही करेगी। तभी उसका पारिवारिक एवं सामाजिक

जीवन भी सन्तुलित वना रहेगा। व्रतो एव त्याग का प्रभाव यदि उसके आचार में वढता रहा तो उसके जीवन मे ऊपर के सोपान पर चढने की क्षमता का भी प्रभावोत्पादक विकास हो सकेगा। रत्नत्रय (ज्ञान-दर्शन-चारित्र) की उच्च साधना का श्रावक-धर्म पहला और पृष्ठभूमि का सोपान है तो साधुधर्म अन्तिम एव लक्ष्य तक पहुँचाने वाला सोपान। कारण, साधु ही उपाध्याय होता है तो साधु ही आचार्यपद प्राप्त करता है। नवकार मन्त्र के पहले दोनो पदो पर भी साधु-धर्म मे से ही पहुँचा जाता है। पहले अरिहन्त और फिर सिद्ध पद पर पहुँच कर आत्मा परमात्मा वन जाती है।

साधुधर्म . खाडे की धार

भगवान् महावीर ने आचाराग-सूत्र मे साधु (अनगार) धर्म का प्रतिपादन किया है तो दशवैकालिक सूत्र मे भी साधु (निर्ग्रन्थ) धर्म के आचार का ही विधान किया गया है। उन्होने साधुधर्म के लिये विवेक को महत्त्वपूर्ण वताया है। दशवै-कालिक सूत्र (अध्ययन ४ गाथा ८) मे विवेक के विपय मे कहा गया है—

जयं चरे जयं चिट्ठं, जयमासे जयं सए।
जयं भुंजंतो भासन्तो, पावकम्मं न वंधई॥

साधु सदा यतनापूर्वक-विवेकपूर्वक चले, वैठे, अंग सचालन करे व सोये एवं यतनापूर्वक ही भोजन करे तथा वोले। विवेक का सदा ध्यान रखने वाले ऐसे साधक के पापकर्मो का वन्ध नही होता है।

श्रावक के व्रत जहा अणु (छोटे) व्रत कहलाते है, वहाँ साधु के व्रत महाव्रत कहलाते है। ये महाव्रत पाँच निर्धारित किये हुए है—

१ **अहिंसा-महाव्रत**—सम्पूर्ण प्रकार की जीवहिंसा का त्याग तीन करण तीन योग से।

२. **सत्य-महाव्रत**—झूठ का सर्वथा प्रकार से त्याग।

३. **अचौर्य महाव्रत**—चोरी का सर्वथा प्रकार से त्याग।

४. **ब्रह्मचर्य-महाव्रत**—मैथुनसेवन का सर्वथा प्रकार से त्याग।

५. **अपरिग्रह-महाव्रत**—परिग्रह का सर्वथा प्रकार से त्याग।

(**नोट**—तीन करण तीन योग का अर्थ है कि वैसा पापकार्य करे नही, करावे नही और करते हुए का अनुमोदन करे नही, मन से, वचन से और काया से।)

साधु-धर्म का आचार एक प्रकार से पूर्णतया ससार एव सासारिक प्रवृत्तियो का त्याग है, इसीलिये इसे निवृत्तिमार्ग कहा गया है। सासारिक प्रवृत्तियो से निवृत्ति ले कर आत्म-साधना करना तथा सद्‌गुणो को प्रोत्साहित एव प्रसारित करने के लक्ष्य से उपदेश देना—यह साधु-धर्म का आचार है। साधुधर्म का जितनी निष्ठा से, शुद्धता से एव दृढता से पालन किया जायगा, उतने ही वेग मे मोक्ष-लक्ष्य की ओर आत्मा की गतिशीलता वन सकेगी।

कथनी नहीं, कृतित्व भी

एक पश्चिमी दार्शनिक म्विनाक ने लिखा है कि आचार या चारित्र के विना ज्ञान शीशे की आख की तरह है, सिर्फ दूसरो को दिखलाने के लिये तथा एकदम उपयोग-रहित। आप भी इस कथन को हृदय मे उतारे। इसका अभिप्राय यह है कि आप और हम भी आचार का कथन करके ही न रह जाय, वल्कि निर्दिष्ट आचार को जीवन के प्रत्येक पल मे उतारे तथा उस पर डटे रहे।

आचार के अभाव मे तीर्थंकरो के सान्निध्य मे पँहुच कर भी आत्मा कोरी की कोरी रह जाती है—उसकी रिक्तता का अन्त नही आता है। आज का इन्सान ज्ञान की लम्वी चौडी वाते तो करता है, किन्तु उन बातो को जीवन के आचरण मे स्थान नही देता। जब भी वात चलेगी, वह कह देगा कि यह तो मैं जानता हूँ। हिंसा बुरी है—यह तो मैं जानता हूँ—कह देगा, किन्तु आचरण मे हिंसा का त्याग करने की चेष्टा नही करता। प्रत्येक वात जान कर उसे आचरण मे नही उतारें तो वह उपहासास्पद भी वनता है तथा निन्दनीय भी। इसी प्रसंग का एक दृष्टान्त सुनिये—

एक गॉव मे एक सेठ-सेठानी रहते थे। एक रात उनकी हवेली मे चोर घुस आया। आहट से सेठानी जाग गई। उसने तुरन्त सेठ को जगाया और बोली—"घर मे चोर घुस आया है।" "सेठजी ने कहा—'मैं जानता हूँ।' और वे सोये रहे। फिर सेठानी ने कहा—"चोर ने तिजोरी तोड दी है और गहने व रुपये निकाल रहा है।" तव भी सेठजी सोये-सोये ही बोले—"मैं जानता हूँ।" सेठानी ने कहा "चोर गठरी वॉध कर वाहर जा रहा है।" तव भी सेठजी ने वही जवाव दिया। तो आप ही वताइये कि ऐसी जानकारी किस काम की? निष्क्रिय ज्ञान का भी भला कोई महत्त्व होता है! ज्ञान वही—जो आचरण के चरण मे उतर कर पुरुपार्थमय आलोक का स्वरूप धारण करे।

दोहरा चरित्र लांछन-पात्र

ज्ञान—कहने का अलग और आचरण-करने का अलग—कभी शोभास्पद नही वन सकता। जो कहे, वह करके दिखावे, तव—दुनिया शावासी देती है।

दोहरा चरित्र तो व्यक्ति को अन्ततोगत्वा लांछित ही करता है। एक कवि ने कहा है—

दरवाजे आने के और है—जाने के और है
ऊपर की टीमटाम, वाकी सब राम नाम
अजी, आप देखते क्या हैं
हाथी के दांत खाने के और हैं, दिखाने के और हैं।

इस दृष्टि से आपसे यही अनुरोध करूंगा कि आप आचार का कथन करके ही न रहें, वल्कि उस आचार को अपने जीवन के प्रत्येक पल मे उतारने का सक्रिय प्रयास करें। वास्तविकता की तह मे जाएँ तो यही दिखाई देगा कि कहने वाले तो वहुत मिलते है, परन्तु करने वाले विरले ही मिलते है। आचरण के क्षेत्र मे दृढतापूर्वक चलने वालो की भारी कमी है। इस काव्यधारा से भी प्रेरणा लीजिये—

कहने वाले यहां वहुत मिले, करने वालों का टोटा है
हर ओर देखिये उपदेशो की कैसी झड़ियां लगती है
हर वात-वात में पुरखाओं की साक्षी यहां निकलती है
गीता रामायण सूत्र ग्रंथ, हर ओर पढ़ाये जाते हैं
मन्दिर मस्जिद स्थानक मे कई वार रटाये जाते हैं
पर परिणाम जो देखोगे तो पोलमपोल पलोटा है।
कहने वाले यहां वहुत मिले, करने वालो का टोटा है॥
हर ओर नये आन्दोलन, जन्म यहाँ पर पाते हैं
कुछ दिन मानव का पीछा कर वे स्वयं यहां मर जाते हैं
आदर्श यहाँ पर चटनी है वतौर जायका लेने की
है आदत दिन मे एक आध भाषण की चुस्की लेने की
नही पचता इनको अधिक कहें क्या, इनका कोठा छोटा है।
कहने वाले यहां वहुत मिले, करने वालों का टोटा है॥

इस मेवाडी कहावत की तरह अपना आचरण नही वनना चाहिये—इसका ध्यान रहे। कहावत है—

सुणता सुणतां फूट्या कान।
पण नहीं आयो हिवड़े ज्ञान॥

लगातार प्रवचन सुनते रहे—ज्ञान भी तत्त्वों व व्रतों का कर लें, किन्तु वह ज्ञान हृदय मे नही उतरे-आचरण मे नही आये तो उस ज्ञान का जीवन-विकास की दृष्टि से क्या और कितना महत्त्व माना जायगा ?

दरिद्र : कैसे, क्यों ?

स्वामी विवेकानन्द एक बार जब विदेश मे भ्रमण कर रहे थे तो एक विदेशी ने उनसे पूछा—स्वामीजी, भारत मे सूत्र, पिटक, गीता, रामायण, वेद आदि अपूर्व धर्म-शास्त्रो के होते हुए भी वहाँ दरिद्रता क्यो है ? ज्ञान के इतने खजाने जहाँ निकले हों, उस देश मे भला दीनता-हीनता कैसे बनी रही ?

स्वामीजी ने उत्तर दिया—"बन्धु, किसी के पास बडी अच्छी बन्दूक हो—बारूद भी हो, मगर यदि उस बन्दूक को चलाने की कला उसके पास न हो तो क्या वह बन्दूक किसी काम आयेगी ?

इस उत्तर का स्पष्ट सकेत यह था कि देश की दीनता-हीनता का रहस्य देश-वासियो की आचरणहीनता मे छिपा हुआ है। ज्ञान की दृष्टि से भारत के पास इतनी सम्पन्नता होते हुए भी आचार की दरिद्रता है और इस कारण चहुँमुखी दरिद्रता है।

कहाँ गया, वह ज्ञान ?

क्या हमारे देशवासी और हम इस सकेत को समझने की चेष्टा करेंगे ? आध्यात्मिक एव धार्मिक क्षेत्र की चर्चा बाद मे करूँगा, पहले आपको यही बताऊँगा कि भौतिक ज्ञान मे भी आचरणहीनता के कारण भारत कितना पिछड़ गया है ? यहाँ पहले कला-कौशल का कितना उत्कृष्ट स्तर था—ढाके की मलमल तो ससार-प्रसिद्ध रही है—वह कला-कौशल देश से क्यो लुप्त हो गया ? आयुर्वेद मे ऐसे-ऐसे रसायन व जड़ीबूटियो का ज्ञान था, जिससे लोहा छुआने से सोना बन जाता, मरता हुआ भी जी उठता, अर्थात् असाध्य रोग भी क्षणो मे समाप्त हो जाते। पचासो शक्तिशाली मन्त्रो के बल पर कई कठिन कार्य भी सम्पन्न किये जा सकते थे या नई-नई रचनाएँ प्रस्तुत कर दी जाती थी। आज वह सब ज्ञान कहाँ चला गया ? अभ्यास या आचरण के अभाव में स्वय ज्ञान भी टिकता नही है। ज्ञान और आचरण के पग क्रम से उठते रहे तो कार्य भी सफल होता है तथा ज्ञान भी विस्मृति के गर्त मे नही डूबता है।

विभूतियो का देश

आध्यात्मिक एव धार्मिक क्षेत्र की चर्चा तो उससे भी अधिक दुखद है। अपने ज्ञान गाभीर्य्य के कारण ही जो देश विश्व-गुरु कहलाया, वही भारत आचरण से दूर हट कर न केवल दासता की जजीरो मे बधा, बल्कि ज्ञान

को उन गहराइयों को पा बैठा। इस मान्यता में कोई विवाद नहीं है कि भारतीय दर्शन विश्व का गूढ़तम दर्शन है तथा भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता प्राचीनतम है। भारत और उसके बाद ग्रीक सभ्यता ने सारे संसार को ज्ञानदान दिया। यही नहीं, आध्यात्मिक क्षेत्र मे भारत की महान विभूतियों ने संयम साधना, तपस्या एव त्याग की दिशा मे स्वय जो आदर्श संस्थापित किया, उस आदर्श को ही क्या हम भूल नहीं गये हैं? प्राचीन काल में कितना तेजस्वी जीवन था? वे आध्यात्मिक क्षेत्र मे अपनी आत्मशक्तियों के विकास के साथ जितने सम्पन्न थे उतने ही अपनी सांसारिक ऋद्धि-सिद्धियो मे भी समृद्ध थे। आज देशवासी आध्यात्मिकता तो क्या, नैतिकता से भी कई अंशो मे दूर हो गये हैं तो सांसारिक उपलब्धियो मे भी वे दरिद्र हो रहे हैं—गरीबी ने जैसे सारे जन-जीवन को जकड रखा है।

इस सारी दुर्दशा मे यदि उबरना चाहते हैं तो आपको आचरण के महत्त्व को पुनरुज्जीवित करना होगा। आचरण ही वह आग होती है, जिसमे ज्ञान के सोने को तपाया जाता है। शरीर आग मे तपता है और सम्यक् ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र का तेज आत्मा मे फूटता है। आत्मा का तेज सभी क्षेत्रो की दरिद्रता को नष्ट कर देता है।

ऊँचाइयाँ स्वय झुक जाएँगी

आचरण की प्रभावकारी महत्ता को इससे अधिक किन स्पष्ट शब्दों मे प्रकट करूं कि आचरण की दृढता के साथ आपको हिमालय पर नहीं चढना पडेगा, बल्कि हिमालय की ऊँचाइयां स्वय आपके सामने झुक जाएँगी, ताकि आप उसके शिखर पर आरूढ दिखाई दें। कहने का तात्पर्य यह है कि सम्यग्ज्ञान एव सम्यग्दर्शन के साथ जब आप सम्यक्चारित्र की आराधना मे निमग्न बनेंगे एवं आचरण की उच्चतम श्रेणियो मे विचरण करेंगे तो मोक्ष ही आपके द्वार पर चला आयगा—फिर अन्य उपलब्धियो की तो बात ही क्या?

जो कुछ ज्ञान आपने साधु-संगति एव प्रवचन-श्रवण के माध्यम से सम्पादित किया है, उस पर मननपूर्ण दृष्टि डालें और उस पर आचरण का श्रीगणेश कर दें। मैं सोचता हूँ, आप सभी श्रावक के बारहों व्रतो का पालन नहीं करते होंगे। श्रावक-धर्म तो आपका कर्त्तव्य है। आज से ही संकल्प लीजिये कि एक-एक व्रत के पालन मे क्रमशः आगे बढते हुए जल्दी से जल्दी बारह व्रतो की मर्यादाओ मे तो अपने जीवन को बांध लेंगे।

जीवन क्षणभंगुर है और साधना का पथ लम्बा है। अपने ज्ञान को मांजिये, श्रद्धा को गाढी बनाइये तथा उस ज्ञान और उस श्रद्धा के साथ कठिन आचरण आरम्भ कर दीजिये—आपकी गति लक्ष्य की ओर ही होगी। □

11

मिलावट

☐ ☐

मिलावट चाहे धर्म-क्षेत्र मे हो, चाहे व्यावसायिक क्षेत्र मे सर्वत्र खतरनाक है। मिलावट के कारण इन्सान इस देवोपम धरती पर दानव बन गया है। लोग परलोक को बनाने की बात सोचते है, किन्तु जब तक इस धरती को स्वर्ग नही बनाया जायगा, तब तक परलोक मे कोई स्वर्ग नही मिलेगा। इस तथ्य को उजागर करते हुए शुद्ध जीवन और स्वर्गोपम मर्त्यलोक बनाने की प्रेरणा के लिए पढ़िये सुन्दर विवेचनयुक्त प्रस्तुत प्रवचन····

☐

११

मिलावट

□ □

निश्चित लक्ष्य

जीवन के उत्कर्ष की एक पद्धति है। वह कोई अन्धाधुन्ध विकास नहीं है, उसका एक क्रम है, एक निश्चित लक्ष्य है। जिन महात्माओ ने स्वरूप-बोध के साक्षात्कार द्वारा इसका विकास किया है, उन्होंने भव-भ्रमण के कारणो का क्षय किया है। हम उन्ही महात्माओ की जीवनकथाओ को आज सुन रहे हैं। इन महान् आत्माओ के जीवन का समीचीन प्रस्तुतीकरण और फिर उनका निजी जीवन मे व्यवहार बहुत महत्व रखता है। जैन-दर्शन वीतराग-दर्शन है। वह सर्वप्रथम जीवन-निर्माण की बात करता है। उसका स्पष्ट प्रतिपादन है कि जब तक हम इस लोक को निर्मल नही बनाते, तब तक परलोक मगलमय और निष्कलंक नही हो सकता। जब तक आगम-सिन्धु मे हम पूरी तरह निमज्जित नही होते, अपने चारो ओर के वातावरण को स्वच्छ और वरेण्य नही बनाते, तब तक अपने लक्ष्य तक नही पहुँच सकते।

सूत्रपात स्वयं से

अच्छा वातावरण बनाने का मतलब क्या है, क्या है इसका अभिप्राय ? मैं कहूँगा, इसका स्पष्ट आशय व्यक्ति के जीवन का सस्कार है, उसकी चित्तवृत्तियो का परिष्कार है। इस तरह यह व्यक्ति के माध्यम से एक पूरे युग का सस्कार है। एक

जमाने की तब्दीली है। मै मानता हूँ कि यदि एक इन्सान के जीवन में कोई शुभ परिवर्तन घटित होता है तो उससे समूचे संसार के मगलमय बनने की अगणित सभावनाएँ जन्म लेती है। इसलिए मगल का आरम्भ, आनन्द का सूत्रपात स्वय से होना चाहिए, किसी विकृति का प्रतीकार निज के अंतस् से होना चाहिए।

वीतराग-दर्शन

कुछ लोग है जो जैन-दर्शन पर आरोप लगाते है कि वह परलोक की बात करता है। उसका ध्यान जीवन की या समाज की वर्तमान स्थितियो या समस्याओं पर नही है। वह उनके निराकरण मे कोई दिलचस्पी नही रखता, किन्तु यह तथ्य सही नही है। वीतराग-दर्शन कभी इस तरह की औंधी बात नही कर सकता। वह निश्छलता, निष्कपटता और आर्जव का पथ है। उसने स्पष्ट घोषणा की है कि जब तक लोक नही सुधरेगा, परलोक नही सुधरेगा। परलोक इस लोक का ही प्रतिबिम्ब होगा, अर्थात् जब तक हम प्रस्तुत ससार को पवित्र और मगलमय नही बना लेंगे, एक साधनापूर्ण जीवन जीने का सकल्प नही कर लेंगे, तो यह मान कर चलिए कि परलोक मगलमय होगा, इसकी कल्पना भी नही कर सकेगे।

पलायन · कायरता

यह तो हुआ जैन-दर्शन का प्रतिपाद्य, किन्तु वर्तमान मे हम जिस तरह का जीवन जी रहे है उसकी अनदेखी भी नही की जा सकती। आज हम वर्तमान की विकृतियो और बुराइयो के प्रति आँख मूद कर चलना चाहते हैं, उनसे भागना चाहते हैं। याद रखिये, कोई पलायनवादी सुखी नही हो सकता। पलायन कायरता है, सघर्ष ही सही मार्ग है इसलिए बुराइयो को आँख मूँद कर पनपने का अवसर मत दीजिये, उनसे जूझिये और पराजित कीजिये, इससे अतीत उज्ज्वल बनेगा और भावी मगलमय होगा। छुपे हुए दुश्मन निष्क्रिय होगे और कर्मो की निर्जरा होगी।

धरती ही स्वर्ग

आज पर्युषण का चौथा दिन है। इसका सदेश है कि हम स्वय को समझे, अपनी स्वाभाविक शक्तियो को पहिचानें, परखें, जीवन की दुर्बलताओं का प्रतीकार करें। इससे जड़मूल से क्रान्ति होगी और आपके जीवन मे आया परिवर्तन समूचे राष्ट्र के लिए एक मगलमय आधार बनेगा। जब मर्यादा-पुरुषोत्तम राम के सामने

यह प्रश्न उठा, तव उन्होने भी व्यक्ति के शुद्धीकरण की पहल की। साकेत मे मैथिलीशरण गुप्त ने इस वात को वडे सरल शब्दो मे कहा है—

सन्देश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया।
इस धरती को ही स्वर्ग बनाने आया॥

अर्थात्—राम कहने लगे कि मैं इस धरती पर स्वर्ग का कोई सन्देश ले कर अवतरित नही हुआ हूँ; अपितु इस धरती को ही स्वर्ग की शक्ल देने के संकल्प से यहाँ आया हूँ। आज हम यथार्थ से टूट कर कल्पना और स्वप्न से जुड़ गये हे। स्वर्ग की कहानियाँ सुनने मे हमे रस आता है। स्वर्ग कैसा है, वहाँ कितना सुख है, देवता किस तरह चुहल करते है, उनके जीवन की विलास-कथा कितनी सुहावनी है, इन वातो मे ही हमारी रुचि अधिक है। किन्तु यह शेखचिल्ली की कल्पना है। यथार्थ पर हमे आना चाहिए, जैन-दर्शन यथार्थवादी दर्शन है। वह तथ्यो को अगीकार करके चलने वाला दर्शन है। उसमे व्यर्थ की उधेडवुन के लिए कोई स्थान नही है, इसलिए यदि हम अपने इर्द-गिर्द की जाँच-पडताल कर वहाँ की विकृतियो को दूर करते है, आत्मपरिष्कार करते है, तो स्वर्ग की ही रचना करते हैं, किन्तु आज हमारा वातावरण अन्तर्विरोधो से भरा हुआ है। कभी हमारे यहाँ नैतिकता के गीतो से आकाश गूजा करता था, किन्तु आज हम नैतिक दृष्टि से वहुत गिर चुके है। हमारी आध्यात्मिकता एक कपोल-कल्पना रह गयी है। हमने उसे दूपित कर दिया है।

रोटी शुद्ध, पकवान अशुद्ध

एक कहानी है। गुरुनानक के दर्शनो के लिए एक जागीरदार पहुँचा। उसने नानक के चरणो मे छप्पन पकवान अर्पित किये और प्रार्थना की कि गुरुदेव उन्हे स्वीकार करे। गुरुनानक पहुँचे हुए सत थे। वे समौन सव कुछ देखते रहे। एक ओर जागीरदार के पकवानो का थाल सजा था, दूसरी ओर एक गरीव किसान सूखी रोटियाँ लिए निश्छल निवेदन की मुद्रा मे खड़ा था। उसका यही सर्वस्व था। सूखी रोटी ही उसका पकवान था। उसने श्रद्धापूर्वक, विना किसी औपचारिकता के गुरुदेव को अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया। गुरुनानक उसकी निश्छल भक्ति, निष्काम समर्पण के सम्मुख स्तब्ध रह गये। उन्होने जागीरदार के पकवान एक तरफ किये और वडे स्वाद से किसान की रूखी-सूखी रोटी खाने लगे। सव कुछ भाग्य की वात है। मेवाड़ की एक कहावत है—

भाग्य बिना नही पाइये, भली वस्तु का योग।
जव दाखां पाकन लगे, तव होय काग गलरोग॥

अर्थात—भाग्य के बिना कुछ नही मिलता। देखें न, जब दाखें पकने लगती हैं तो कौए के कण्ठ मे रोग हो जाता है। जागीरदार सोचने लगा—"गुरुदेव के भाग्य मे पकवान नही है" किन्तु जब गुरुदेव ने रहस्य खोल कर समझाया, तब उसकी भ्रान्ति दूर हुई।" वे बोले—"अरे भक्त! तुम्हारे इन पकवानों में बहुत गहरी दुर्गन्ध भरी हुई है। उनके इस कथन से जब जागीरदार को सन्तोष नही हुआ तब गुरुनानक ने मेवा-मिष्टान्न उठाये और वे उन्हे एक के बाद एक टूक-टूक करने लगे और कहने लगे—"देखो तुम्हारे मिष्टान्न में खून की धाराएँ हैं, रोटी मे नही है। वह शुद्ध है, उसमे शोषण नही है, उसमे श्रम है, आलस्य नही है, उसमे पवित्रता है, पाप नही है।" जागीरदार दग रह गया। उसकी समझ में बात आने लगी। हो सकता है, इस कथा मे अतिशयोक्ति हो; किन्तु सचाई भी है। कहानियाँ, विशेषतः भारतीय कहानिया कोरी कल्पनाएँ नही होती है, उनके पीछे कोई न कोई जीवन-दर्शन या सीख होती हैं। स्पष्टत गुरुनानक के कथन मे शोषक और शोषित के रिश्तों का बहुत अच्छा विश्लेषण हुआ है। उसमे भीतर से अपवित्र, किन्तु बाहर से पवित्रता का आडम्बर करने वाले की धज्जियाँ बिखेरी गयी है, और एक भक्तिविह्वल साधनहीन व्यक्ति के मन की निर्मलताओ को उजागर किया गया है।

नैतिकता का मुखौटा

इस दृष्टि से आज का यह समाज बड़ी अजीबोगरीब लगता है। चारो ओर लूटखसोट चल रही है। सबने नैतिकता के प्रति अपनी आखें मूंद ली हैं। एक कवि ने इस स्थिति का चित्रण करते हुए राजस्थानी मे लिखा है—

"भरा बाजार लूट मचाई, सेठ पैठ गँवाई रे
धान बेचता रण्या उड़ावे, लाज न आई रे
हाँ रे हवेल्या बनवा दो, सेठान्यां ने सोना सूँ लदवा दो
आज तो अन्याय चाले, पापी मौजा माणे हो
चौड़े धाड़े रिश्वत खावे, शंक न आवे हो
हां साचा रोवे रे, ये जुलमखोर तो सूख सूँ सोवे रे।"

असल बात यह है कि आज इन्सान नैतिकता का मुखौटा पहिने नगा नाच कर रहा है। वह जमाने को दोष देता है, स्वयं को नही टटोलता है, अपने कुकृत्यो पर उसका ध्यान नही है, किन्तु ऊँची-ऊँची बातें करता है। पाचवें आरे की बात

कह कर वह अपने कुकर्मों पर पर्दा डाल रहा है। मैं पूछता हूँ, यह कलियुग, यह पाँचवा आरा कहां से आया है? सच पूछे तो हमारी अनैतिकता के कारण हमारे भीतर पाचवां आरा या कलियुग आ गया है—

"इन्सान ही कमाता है, इन्सान ही खाता है,
इन्सान ही इन्सान के खून से नहाता है।
लोगों ने शैतान को यूँ ही बदनाम किया
उसका तो नम्बर ही नही आता है।

धरती का ध्यान

आज कितनी अनैतिकताएँ हैं हमारे इर्द-गिर्द? है कोई हिसाब? हर क्षेत्र मे स्वार्थान्धता के कारण नैतिकता का गला घोटा जा रहा है। स्वर्ग-मोक्ष मात्र मनोरंजक कहानियाँ बन गयी है, इसलिए बहुत ऊँची-ऊँची उडाने भरने के बजाय हमे अपनी धरती पर ही ध्यान देना चाहिये। अपने चतुर्दिक वातावरण को ही निर्मल और सुखद बनाना चाहिये।

सबमें मिलावट

एक बार मैं अखबार की सुर्खियो से गुजर रहा था। दवाइयो की कोई कम्पनी थी। दिल्ली के आसपास जब सरकार ने छापा डाला, तब एक दुकान से ७५ हजार नकली कैप्सूल निकले। दवा के स्थान पर उसमे हल्दी थी। अब हम सोचे कि क्या कोई मरीज इस नकली कैप्सूल से ठीक हो सकता था? आज दवाइयो मे मिलावट है। यह हमारी नैतिकता का सबसे जघन्यरूप है। इससे अधिक निकृष्ट और क्या हो सकता है? यह मनुष्य के वेश मे दानवीयता का नग्न ताण्डव है? मिलावट की हद हो गयी है। मजन-अंजन सबमे मिलावट है। यदि आज हम इस मिलावट का त्याग कर दें तो हमारा पर्युषण सफल हो सकता है। हमारे इस सास्कृतिक पतन से मुझे गहरी पीड़ा होती है, क्योकि आज के मनुष्य ने क्या नही किया है? उसने जहर को भी खालिस नही रहने दिया है। वहाँ भी उसने मिलावट की है। एक किस्सा है। एक आदमी ने आत्महत्या का विचार किया। यह कोई अच्छा विचार नही था। दुनिया से जूझना जरूरी है, पलायन किसी समस्या का समाधान नही है, किन्तु कई बार ऐसा असमजस आ खड़ा होता है कि आदमी खुदकशी की ओर भागता है। वह आदमी उसी ओर चला। उसने जहर पी लिया

और ससार से विदा होने का इन्तजार करने लगा। वह सो गया, कभी न जागने के लिए, किन्तु पूरा दिन बीत गया, जहर का कोई असर ही नही हुआ। जहर मे मिलावट थी। यह है हमारी नैतिकता, आदमी ने जीवन का कोई क्षेत्र मिलावट से खाली नही रखा। हर चीज मे मिलावट है। अनाज मे, मसालो मे, तेल मे। इसीलिए सुना जाता है पूरी पगत जो भोजन करने बैठी थी, बीमार पड़ गयी, इतने लोगो को लकवा मार गया, इतनों को उलटियाँ हुई, इतने खुदा के प्यारे हो गये, इत्यादि। यह सब उदाहरण हमारी अनैतिकता और बदनीयती के है। मेवाड़ी का एक मुक्तक है—

> "देखा हाँ आज मिनख-मिनख की शक्ल सूं ही डरै है
> देखा हाँ आज मिनख-मिनख ने लूट ने घर भरे है
> बात सोलह आना खरी है कि आज रा मिनख में मिनखवारो ही कोने
> आज रा नैतिकता रा गला घोटवा वाला मिनख की
> हालत देखने मारी तो अकल ही काम करे कोनी
> कि आज का मिनख यूं कांही करे है।"

अर्थात् अपनी बुद्धि काम नही करती यह जानने मे कि आज का इन्सान क्या कर रहा है? वह कदम-कदम पर काटे बिछा रहा है, ज्वालाएँ धधका रहा है, बेईमानिया कर रहा है। एक ओर हम तरक्की की तजबीजे कर रहे हैं, नये-नये प्रस्ताव कर रहे हैं, सम्मेलन और अधिवेशन कर रहे है किन्तु दूसरी ओर—

> "योजनाएँ तरक्की की यहाँ बनतीं, पर हल नहीं है
> वजह यह साफ जाहिर है, विचारों में मिलावट है
> जमाना है मिलावट का कि चीजो में मिलावट है
> रहा कुछ भी नही खाली कि बीजों में मिलावट है।

विचारों में भी मिलावट

योजनाएँ हैं, समाज के उत्थान और अभ्युदय के लिए प्रस्ताव है, किन्तु प्रश्न यह है कि ये सब सफल क्यो नही होती। एक कवि ने साफ कहा है—"वजह साफ जाहिर है कि विचारो मे मिलावट है।" आज विचार भी साफ-सुथरे नही है। उनमे भी मिलावट आ गयी है। भीतर कुछ, बाहर कुछ है। राम, कृष्ण, महावीर

किसी ने कभी मानवता के खिलाफ काम करने का उपदेश नहीं दिया; उन्होंने रागद्वेष का विरोध किया, परस्पर शत्रुताओं का विरोध किया, स्नेह और विश्वास, मैत्री और सौहार्द का प्रतिपादन किया, किन्तु हम हैं कि उनकी उस अखण्डता को सुरक्षित नहीं रख सके। हम किसी के विचार तक ठीक से सुनने को तैयार नहीं हैं, क्योंकि हमारे दिमाग मे भेद-विभेद बने हुए हैं। वहां कोई दिगम्बर है, कोई श्वेताम्बर है, कोई मूर्तिपूजक है, कोई स्थानकवासी है और कोई तेरापन्थी है। पता नही कौन-कौन पन्थ यहाँ आ खडे हुए है। कितनी मिलावट है, कितनी परेशानी है और किस कदर रास्ते का भटकाव है, दिशाविभ्रम है ?

विषचक्र से बाहर

सत्य एक है। वह न हिन्दू होता है, न मुसलमान, न जैन होता है वह, न जैनेतर। वह सत्य होता है, इतना काफी है। यदि हम गहराई मे जाएँ और बाहरी फर्क छोड़ कर भीतर पैठें तो वहाँ कोई भेद ही नहीं है। आत्मा की शाश्वत अवस्था में कौन-सा भेद है, कौन-सी मिलावट है ? जब से सकीर्णता खड़ी हुई है, कई विग्रह खडे हो गये है, कई अच्छे साथी बिछुड़ गये हैं, कई रचनात्मक सकल्प टूट गये है। इन्हे जोड़ना होगा और मिलावट के विषचक्र से बाहर हमे कदम रखने होंगे।

बाहर भेद, भीतर अभेद

एक कथा है। एक बार अकबर बादशाह ने बीरबल के सामने हिन्दूधर्म मे दीक्षित होने का प्रस्ताव रखा। उसने कहा—"बीरबल, मैं हिन्दूधर्म और संस्कृति को स्वीकार करना चाहता हूँ, उमे आत्मसात् करना चाहता हूँ।" बीरबल यो बड़ा निश्छल व्यक्ति था, किन्तु अकबर के प्रस्ताव पर उसके मन मे मिलावट आ गयी। वह सोचने लगा—"बादशाह अकबर मुसलमान है, मैं हिन्दू हूँ। क्या कोई मुसलमान हिन्दूधर्म को अगीकार कर सकता है ? बीरबल नटखट था, चुहलबाज था। उसने तुरन्त कोई उत्तर नही दिया, किन्तु एक दिन वह यमुना के तट पर एक गधे को साबुन से मल-मल कर नहलाने लगा। संयोग से अकबर बादशाह भी वहाँ आ निकले। देखते ही अकबर तैश मे बोले—"बीरबल, यह क्या करते हो ? गधे को साबुन से नहलाने से क्या लाभ होगा ? बीरबल ने विनोद मे कहा—"महाराज ! आज तय कर लिया है, इसे जमुना के जल मे साबुन से मल-मल कर नहलाऊँगा और घोड़ा बना कर रहूँगा।" "कही गधा भी घोडा बन सकता है ?" अकबर ने कहा। बीरबल ने अपना पुराना सूत्र पकड़ते हुए कहा—"जब गधा घोड़ा नही बन सकता, तब

कोई दूसरा धर्मावलम्बी हिन्दू कैसे बन सकता है ?'' यह विचारो की मिलावट का उदाहरण है। बीरबल ने उपहास अच्छा किया, किन्तु बात कुत्सित कही। भारतीय संस्कृति उदार है, धर्म उसका एक अवयव है। अत. धर्म भी उदार है। उसके द्वार सबके लिए उन्मुक्त हैं। आत्मसाधना और आराधना मे कोई पूर्वग्रह या पक्षपात के लिए गुजाइश नही है। हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, पारसी ये सब बाहरी भेद है। भीतर कोई भेद नही है। स्याद्वाद विचारो की मिलावट को दूर करने का उत्कृष्ट साधन है। यह ओठ पर रखे उस दीपक की तरह है जो अन्दर भी उजाला देता है और बाहर भी। □

12

ध्यान : दो त्याज्य, दो ग्राह्य

□ □

वडे-वड़े उच्च साधक कठोर और संकटपूर्ण परिस्थितियो मे भी अपने साधना-पथ से विचलित नही हुए। वडे से वड़े भय भी उन्हे डरा न सके, मौत भी उन्हे डिगा न सकी, इसके पीछे कौन-से कारण थे ? जैनदर्शन की भाषा मे वे दो, शुभध्यान ही कारण थे—धर्मध्यान और शुक्लध्यान ! इन दोनो ध्यानो का अवलम्बन ही साधना मे दृढता और अविचलता लाता है। परन्तु साधारण मानव जरा-सा कष्ट, आफत या संकट आते ही तुरंन्त आर्त और रौद्र ध्यान का शिकार हो जाता है। अतः धर्म और शुक्ल ध्यान कैसे आएँ ? उनके पाने का आसान तरीका क्या है ? इन सब तथ्यो पर मार्गदर्शन पाने के लिए पढिए मुनिश्री का युक्तियो और विश्लेषण से परिपूर्ण प्रवचन..................

१२

ध्यान : दो त्याज्य, दो ग्राह्य

□ □

जैनसाधना में ध्यान

अभी-अभी आप लोगो के सामने अन्तकृद्दशाग-सूत्र के माध्यम से राजकुमार गजसुकुमाल के जीवन-प्रसंग प्रस्तुत किये गये है। गजसुकुमाल की साधना दुर्द्धर और महान् थी। उसके कण-कण मे जैनदर्शन की गहराइया समायी हुई थी। वे सम्यक्त्व के ज्वलन्त उदाहरण थे। जैन-साधना मे ध्यानो का गहन विश्लेषण हुआ है। इस साधना मे जिन चार ध्यानो की चर्चा हुई है उनमे से दो हेय और दो आदेय है। प्रारम्भ के दो ध्यानो के नाम मे आप सब परिचित ही है। वे है—आर्त और रौद्र। दोनो छोडने योग्य है, त्याज्य है। धर्म और शुक्ल ध्यान ही ऐसे हैं, जिन्हे ग्रहण किया जाना चाहिये। ये उपकारक है, अभिनन्दनीय है। इन्ही से राजकुमार गजसुकुमाल का सम्बन्ध है।

गजसुकुमाल एक निर्मल ज्योति

राजकुमार गजसुकुमाल का समग्र जीवन मर्मस्पर्शी प्रसंगो से पूर्ण है। जो राजकुमार कल तक खेल रहा था, भिन्न-भिन्न क्रीडाएँ कर रहा था। समय आया और उसका अन्तर जागा। उसका समूचा जीवन पलक मारते ही बदल गया। उसने भगवान् नेमिनाथ के चरणो मे स्वय को अर्पित कर दिया और प्रव्रजित हो कर अखण्ड आध्यात्मिक साधना मे लीन हो गया। उसने हिमालय से भी गहन अविचल मुद्रा धारण कर ली। इसी समय एक निमित्त मिलता है। सोमिल ब्राह्मण का जन्म जन्मान्तर से पलता आया वैर उत्तेजित होता है। वैर कभी छूटता नही, कषायो की, कर्मो की परम्परा बिना भोगे कभी टूट नही पाती। सोमिल ब्राह्मण मे प्रतिशोध करवट

लेती है और वह ध्यान में अविचल खडे गजसुकुमाल मुनि के मस्तक पर मिट्टी की पाल वाधता है, और वडी क्रूरता से उसमे श्मशान के धधकते अंगारे डाल देता है। एक लोमहर्षक घटना उपस्थित होती है। यह एक ऐसा मर्मान्तक प्रसग है कि कोई भी कठोरतम, निर्दय व्यक्ति भी दहल सकता है, किन्तु गजसुकुमाल धर्मध्यान मे अविचल निमग्न रहे और एक अकम्प लौ की तरह दुनिया को अपनी साधना का आलोक देते रहे। क्षण-भर भी उनका मन नही डिगा। उन्होंने अपनी अटूट साधना से आर्त्त और रौद्र ध्यानो का विसर्जन कर दिया। एक निर्मल ज्योति उनके मुखमण्डल पर फैल गयी और वीतरागता की उस जीवन्त मूर्ति को देख कर दिगदिगन्त हर्षविह्वल हो उठे। आचार्य श्रीजयमलजी महाराज ने गजसुकुमालमुनि की इस ध्यानावस्था के लिए दो स्मरणीय पंक्तिया लिखी है—

> मुनि नजर न खंडी, मेटी मन की झाल।
> सब कर्म खपाए मोक्ष गया तत्काल॥

अर्थात्—गजसुकुमालमुनि की एक नजर भी खण्डित नही हुई। वे अपनी साधना मे अखण्ड बने रहे। उन्होने भव-भ्रमण के हेतु आर्त-रौद्रध्यानो को ठुकरा दिया। उनकी आराधना अद्वितीय थी। उनमे धर्म और शुक्लध्यान की ज्योति प्रज्ज्वलित थी। क्षमा और सहिष्णुता ने उनकी उत्कृष्ट साधना को अलकृत किया था। उनकी उस क्षण की शोभा पर एक कवि ने लिखा है—

> "क्षमा शोभती उस भुजंग को जिसके पास गरल है।"

अर्थात् क्षमा उसी शूरवीर को विभूषित करती है, जिसके पास विप जैसा सशक्त पुरुपार्थ है, किन्तु जो उसका कभी प्रयोग नही करता। गजसुकुमालमुनि मे अध्यात्म की उत्कृष्ट शूरता थी, परम पुरुपार्थ था, किन्तु वे उसका उपयोग आत्मोत्थान मे कर रहे थे। पुरुषार्थ का सम्यक् प्रयोग आत्मा की स्वाभाविक शक्तियो के अनावरण मे ही होना चाहिए। गजसुकुमाल इसके सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है।

वह ध्यान, वह साधना

गजसुकुमालमुनि का जीवन महान् था। वह साधना और तपश्चर्या का जीवन था, क्षमा और सहिष्णुता का जीवन था, आर्जव और अहिंसा का जीवन था। उनके जीवन के कई पहलू हो सकते है, किन्तु सवमे शक्तिशाली और प्रेरक पक्ष है—ध्यान। वे ध्यान की उज्ज्वलताओ के परम प्रतीक है।

मैं अविदग्ध हूँ, अखण्ड हूँ

ध्यान के चार भेद हुए हैं—आर्त, रौद्र, धर्म, और शुक्ल। इन पर हम अपनी जीवयात्रा के सदर्भ मे विचार करेंगे। हम चारो ओर जीवन के सभी क्षेत्रो मे लगातार बढ़ रहे हैं, किन्तु हमारी इस प्रगति का आध्यात्मिक पक्ष निर्मल नही है। हम चारो ओर से आर्त और रौद्रध्यान से घिरे हुए हैं। सब ओर हाहाकार और क्रन्दन है, हिंसा और वैर का नग्न ताण्डव है। इस जहरीले वातावरण मे चीखने-चिल्लाने का कोई महत्व नही है। पलायन का भी कोई महत्व नही है। महत्व है—आर्त और रौद्र की विषम स्थितियो से जूझने का। ये दोनो भव-भ्रमण के कारण हैं। हमे सयम और संतुलन से इन्हे अपने वश मे करना होगा। मिथिलापति नमि का नाम आपने सुना होगा। इन्द्र ने उनका इम्तहान लिया। उसने सम्राट् नमि को विचलित करने के हजार-हजार उपाय किये, कहा—"तुम्हारी मिथिला जल रही है, वैभव जल रहा है, सपदा भस्म हुई जा रही है, कुटुम्बीजन जल रहे हैं" किन्तु नमि धर्म और शुक्ल ध्यानो मे इतने गहरे जा चुके थे कि उन्हें इन्द्र के बोल सुनाई ही नही दिये। वे कहने लगे—"इन्द्र, तुम कौन-सी बातें कर रहे हो ? कहाँ, कौन-सी मिथिला जल रही है ? यदि मिथिला जलती है तो उसे जलने दीजिये। उसके जलने से मेरा कुछ नही जलता है ? मैं अविदग्ध हूँ, सपूर्ण हूँ, अक्षत और अखण्ड हूँ, मेरा कही कुछ खण्डित नही है ?" ' मिथिलेश यहाँ आत्मा की अतल गहराइयो मे से बोल रहे हैं। पर्वराज पर्युषण हमे उन्ही गहराइयो मे उतरने और जीने का मगल सदेश देता है। कहाँ मिथिला के राजा नमि और कहाँ हम ?

सूरज मार्ग नहीं बदलता

हम अपने भीतर धर्म और शुक्ल ध्यानो की ज्योतियो को पहिचान नही पाते है। जरा-सा संघर्ष, या तूफान आ जाता है, तो हम विचलित हो जाते है। हमारी दृढताएँ टूट जाती हैं, हम विकल हो उठते हैं। इस संदर्भ मे एक कवि प्रकृति की ओर ध्यान खीचते हुए कहता है—

> काले बादल घिर आये तो क्या सूरज भी पथ बदलेगा ?
> स्यारो का हो झुंड सामने, क्या केशरी बच निकलेगा ?
> सौ-सौ सूरज गर्मी फेंकें, क्या सागर खाली हो जाएँ ?
> प्रबल आँधियों से डर-डर के ऊँचे पर्वत भी हिल जाएँ ?
> ऐसा कभी हुआ, नहीं होगा, तो फिर मानव ही क्यों हारे ?
> बोल मनुज ! क्यो विवश बना है, क्यों आंसू टपकाये खारे ?

अर्थात् हजारो-हजार सूरज गर्मी उगलते हैं, किन्तु क्या सागर रीतते हैं, खाली होते हैं। सूरज रास्ता नही बदलता, शेर रास्ता नही बदलता, सागर रास्ता नहीं बदलते, सब अपने स्वभाव मे रहते है, अपने व्यक्तित्व के अनुरूप चलते हैं; फिर हम क्यो वैसा नही कर पाते ? हमारा ध्यान अपनी स्वाभाविकता पर क्यो नही जाता ? हम तनिक-से अवरोधो मे कांप उठते हैं, जरा से संकटो मे विचलित हो उठते हैं, रोने लगते हैं, दैव-दैव पुकार उठते है। इस कायरता से जीवन का कभी निर्माण नही होगा। हमे अपने वास्तविक पुरुषार्थ की खोज करनी होगी, उसे अपने भीतर तलाशना होगा, यदि एक बार हम उसे उपलब्ध कर पाये तो हमे ससार की कोई ताकत, कोई विपदा, कोई संकट विचलित नही कर सकेगा। किसी विचारक ने लिखा है—

तुमको रोते हुए देख कर हमको बहुत गम होता है,
क्या रोने के लिए ही हमारा जन्म होता है ?
मायूस रहने से कोई गम दूर नही होता
हम जितना हँसेगें, दर्द उतना ही कम होता है॥

संकटों में मुस्कराओ

मायूसी या विपन्नता से कोई काम सफल नही हो सकता, जिन्दगी के दुःख और उसकी विपदाएँ—विपमताएँ भी शोक-संतप्त होने से दूर नही हो सकती; असली हल है—सकटो मे मुस्कराना, हँसते-हँसते विपदाओ को झेलना, विपत्तियो को शुभाशीष मानना। अर्थात् हम जितने प्रसन्न रहेंगे, व्यथाएँ उतनी ही कम होंगी, किन्तु आज स्थिति कुछ और ही है। हमारे भीतर होलियाँ धधक रही हैं और बाहर हम दीवा-लियो का दिखावा कर रहे है, तभी मै प्रायः कहा करता हूँ—

"काम थोड़ा, शोर ज्यादा हो रहा है,
होठ हँसते, मन बेचारा रो रहा है।
जिन्दगी में नकल इतनी आ गई है—
कि असलियत को आदमी खुद रो रहा है॥"

सम्यक्त्व-बोध जरूरी

आज वस्तु-स्थिति से हम बहुत दूर निकल आये है। आर्त और रौद्र मे हम इतने डूब गये है कि हमे सम्यक्त्व का कोई भान ही नही रहा है। असल मे हमारे

जीवन मे न कोई तूफान है, न कोई सघर्ष । कभी आपने राम के जीवन को पढ़ा-सुना है ? रामायण को देखे, वहाँ कितने संघर्प है । राज्याभिषेक होने को था और राम को अविलम्ब वन की ओर चल देना पडा । वे रोये नही, हँसते रहे और वन की कटीली-ककरीली राहे उनके लिए गलीचा बन गयी । आज का इन्सान राम की जगह होता, तो सिंहासन छोड़ने मे उसे तकलीफ होती, सत्ता छोड़ते समय उसके मन मे कांटा चुभता । वह गालियाँ बकता, चीखता-चिल्लाता, खिन्न होता, विपन्न होता, किन्तु राम अपनी विपन्नताओ मे भी सपन्न बने रहे, सकटो मे भी मुस्कराते रहे। कृष्ण को देखिये, उनके जीवन मे भी कष्ट हैं, किन्तु आँसू कही नही है, जहाँ है वहाँ मुस्कराहट है । हरिश्चन्द्र का जीवन लें । सीता का जीवन ले । इनके जीवन के आगे श्रद्धा से मेरा मन झुक जाता है । महासती सीता के जीवन मे कितने संघर्ष आए ? किन्तु वे विचलित नही हुई। इसीलिए अगारे शीतल जल बन गये, सघर्प सुख बन गये । सकट शुभाशीष सिद्ध हुए। वे जीवन के मैदान मे कभी रोई नही। उन्होने आर्त्त और रौद्रध्यान से व्यथित हो कर धर्म और शुक्लध्यानो को विस्मृत नही किया था । विवाह हुए अधिक समय नही हुआ था। वे अयोध्या पहुँची, पहुँची ही थी कि उन्हें सदेश मिला "राम वनवास जा रहे हैं । वे भी हसती-मुस्कराती तैयार हो गई । सहेलियों और समृद्धियो को तिलाजलि दे कर वे काटो और नुकीले कंकरो की राह चलती रही । पचवटी मे तो उनके कष्टो का कोई अन्त ही न रहा । रावण ने कपट किया, अपहरण किया । स्वर्णमृग विपघट साबित हुआ, किन्तु वे विचलित नही हुई । लका से उनका लौटना हुआ । अयोध्या आई, किन्तु लोकमानस ने उनका साथ नही दिया और वे फिर संकट मे पड गयी । राम का उन्हे आदेश मिला, वन लौटना होगा । राम विवश थे । लोकशक्ति और लोकसस्कार के प्रति उनका दायित्व था। सीता ने इस महाविपदा को भी हँसते हुए झेला । उनके मुख पर कही कोई शिकन नही आयी । वे वन की ओर प्रस्थान कर गयी । सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति सीता का नाम लेते ही हम रोमाचित हो उठते है। किन्तु उनका सारा जीवन अगारो पर मुस्काते बीता है । सीता याने अगारो को जल की शीतल फुहार की तरह झेलनेवाली भारतीय ललना ! इसीलिए एक कवि ने लिखा है--

'राम गया वन में एक वार, पण सीता गयी वन दो वार ।
विधाता थारी कलम रुकी क्यों नी ऐ···· · ······· · ····
सीताजी दुखड़ो भोगीयो, ऐसो कोई नहीं भोग्यो जग रे
मांही'······ विधाता थारी कलम रुकी क्यों नहीं रे·······

सीता का दुख नोधते-नोधते कवि की कलम परेशान हो गयी और वह कहने लगा--'विधाता ! तेरी कलम परेशान नही हुई ? कितने अन्तहीन थे सकट उस सीता

जब याद करूं हल्दीघाटी, नैना में रक्त उतर आवे
सुख-दुख रो साथी चेतकडो, सूती-सी हूक जगा जावे।
पण आज बिलखतो देखूं हूँ, कुंवर ने सूखी रोटी ने
हूँ क्षत्रिय-धरम ने भूलूँ हूँ, भूलूँ हिन्दवानी चोटी ने ॥

प्रसंग बहुत बड़ा है और मन को मथ डालनेवाला है। महाराणा का हृदय विचलित हो गया। सोचने लगे—चेतक नही रहा। इकलौता बेटा रोटी के लिए तरस रहा है। परेशान हो रहा है, क्रन्दन कर रहा है ; मैं अब और सहन करने को तैयार नही हूँ। अकबर को आज ही पत्र लिखूँगा कि मैं तुम्हारी दासता स्वीकार करने को तैयार हूँ। मेवाड के महाराणा ने पत्र लिख दिया। पत्र अकबर के पास पहुँचा. किन्तु उसे विश्वास नही हुआ। उसकी आँखे बार-बार पत्र पढ रही थीं और वह सोच रहा था कि क्या मेवाड़ का महाराणा इस प्रकार की कोई दासता मान सकता है ? किन्तु अन्तत उसे विश्वास हो गया कि पत्र महाराणा का है और उसमे अधीनता स्वीकार की गयी है। अकबर ने पृथ्वीराज चौहान को बुलाया और कहने लगा—"तू बडे गर्व के साथ कहता था कि मेवाड का राणा महान् है। वह कभी झुक नही सकता, लेकिन देख यह है पत्र उसी राणा का, जिसमे उसने मेरी दासता स्वीकार की है। अब मैं संपूर्ण भारत का सम्राट् हूँ। मैंने जंगली शेर को पिंजड़े मे कैद कर लिया है।" पित्थल ने जब पत्र पढा, तब वह स्तब्ध रह गया सोचने लगा-"ऐसा कौन-सा संघर्ष है महाराणा के सामने कि उससे विचलित हो कर उसने यह पत्र लिख दिया ?... " अन्त मे पशोपेश मे पड़े पृथ्वीराज ने कह ही दिया—"पत्र झूठा है। बनावटी है। मेवाड़ की पाग हमेशा ऊँची रही है, हमेशा ऊँची रहेगी। अकबर ने उत्तर दिया—"पृथ्वीराज यदि ! तुझे विश्वास नही है, तो तू पत्र लिख कर पूछ ले कि वास्तविकता क्या है ?" यह सुनते ही पित्थल ने एक मर्मस्पर्शी पत्र लिखा, जिसकी कुछ पंक्तियां ये हैं—

"मैं आज सुनी है नाहरियो श्यालां रे सागे सोवेला
मै आज सुनी है, सूरजडो बादल री ओटां रहवेला
मै आज सुनी है चातकडो धरती रो पानी लावेला
मै आज सुनी है हाथीडो कुत्ता री जूणी जीवेला
मैं आज सुनी के छतां खसम अब रांड होवेला रजपूती
मै आज सुनी के म्याना मे तलवार रहेला अब सूती ॥

13

साध्य और साधन की शुचिता

□ □

साधक को साध्य और साधन दोनो का सम्यक् ज्ञान होना चाहिए और उसे इन दोनो की पवित्रता पर ध्यान देना चाहिए। तभी पवित्र (शुद्ध) साधनो से साधक अपने साध्य को प्राप्त कर सकेगा, लक्ष्य तक पहुँच सकेगा। साध्य और साधन का उत्कृष्ट शैली मे सुन्दर विश्लेपण प्रस्तुत है—मुनिश्री के चिन्तनपूर्ण प्रवचन मे........

१३

साध्य और साधन की शुचिता

□ □

साधन और साध्य की विसंगति

जैनागमो मे साध्य-साधन के परस्पर सम्बन्धो पर विस्तार से विचार हुआ है। देखा गया है कि प्राय सभी प्राणी अपनी आकांक्षाओ को पूरा करने के लिए किसी न किसी साधन का उपयोग करते हैं, किन्तु इस तथ्य पर विरले ही विचार कर पाते हैं कि साधनो की कोई संगति साध्य से है अथवा नहीं है ? प्राय. हमारा ध्यान परिणाम की ओर ही रहता है, माध्यम की ओर नही। माध्यम चाहे जो और जैसा हो, हम परिणाम पर आ जाना चाहते हैं। सारी गलती यही होती है। माध्यम यदि सशक्त और निर्मल नही होता है तो यह असदिग्ध है कि लक्ष्य उतना भी सशक्त और निर्मल नही होता। होता यह है कि हम अपनी उपलब्धि-यात्राओ की जल्दबाजी करते हैं और लक्ष्यभ्रष्ट हो जाते हैं। जैन श्रमणो और आचार्यों ने साधनो की निर्मलता और पवित्रता पर बहुत जोर दिया है।

परिणाम की अपेक्षा साधनों की ओर ध्यान दें

इसलिए सबसे पहली शर्त सफलता की यह है कि अपने लक्ष्य को स्पष्ट करें। बहुधा हम अस्पष्ट लक्ष्य के साथ अस्पष्ट यात्राएँ करते है और जब असफल हो जाते है तो भाग्य को कोसते हैं और विधाता पर दोपारोपण करते है। हमारी विफलताएँ ही सबसे बड़ी पाठशालाएँ है, इनकी समीक्षाओ के गर्भ मे ही आने वाली सफलताएँ निहित हैं। अकसर होता यह है

कि हम परिणाम की समीक्षा करते है, और साधनो को असमीक्षित छोड़ देते हैं। होना यों चाहिये कि हम परिणाम की अपेक्षा साधनों की पहले समीक्षा करे, क्योकि यदि हम किसी मंजिल तक नही पहुँच पाये हैं तो इसमे मजिल का कोई अपराध नही है। क्योकि सम्भव है, हम किसी गलत जीने से चढे हो, या किसी कमजोर सीढी पर ही हमने अपने कदम वढाए हो। गलत और दुर्वल सीढी सही मजिल पर नही पहुँचा सकती। इसीलिए जैनदर्शन मे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की चर्चा की गई है। लक्ष्य को पहिचानने पर आचार्यो ने सबसे अधिक वल दिया है। इसके वाद उनका ध्यान साधनो की पवित्रता और उनके व्यवस्थित सयोजन पर गया है।

लक्ष्य पर ध्यान दें

कहा गया है कि साध्य की स्पष्टता और तदनुसार साधनो की योजना लक्ष्य तक पहुँचने की सम्पूर्ण यात्रा की आधी यात्रा है। इस सन्दर्भ में मुझे एक किस्सा याद आता है। एक व्यक्ति दौड़ता-हाँफता रेलवे स्टेशन पर गया। वह वेहद परेशान था। साँस भरी हुई थी, पसीने से लथ-पथ था, हैरानियों से घिरा हुआ था। इस परेशानी के दुश्चक्र को तोड़ते हुए टिकट वावू ने कहा—"महाशय, गाड़ी अभी रुकेगी, आप स्वस्थ हो जाएं और वतायें, कहाँ का टिकट चाहते है?" आगन्तुक इतना घवराया हुआ कि उसने वावू की बात को ध्यान से सुना ही नही और कहता गया—"मुझे टिकिट दे दीजिये, ससुराल का टिकिट दे दीजिये, जल्दी दे दीजिये।" वावू हैरान था। उसने फिर पूछा, किन्तु जव कोई उचित उत्तर नही मिला तो उसने जितने पैसे मिले थे, उतनो का किसी गाँव का टिकिट वना दिया। आप यदि इस किस्से पर ध्यान से सोचे तो यह किस्सा अकेले उस आदमी का नही है, हम सबका है। हम सव टिकिट तो माँग रहे हैं, किन्तु अपने लक्ष्य के वारे में स्पष्ट और असदिग्ध नही हैं।

प्रस्थान-विन्दु; : गन्तव्य-विन्दु

इसी तरह का एक उदाहरण हम और ले सकते हैं। कोई आदमी घवराया हुआ दौड़ रहा हो, दौड़ता ही जा रहा हो, और उससे यदि हम पूछें कि "भाई, कहाँ जा रहा है? कौन है तू? यह दौड़धूप किसलिए है? और वह यह वताये कि 'बस, दौड़ रहा हूँ, दौड़ना मेरा काम है; और इतना कह कर पहले से अधिक तेज दौड़ना शुरू कर देता है तो इसे हम कोई निष्काम साधना नही कहेगे। निष्काम साधना में कामना मरती है, किन्तु लक्ष्य स्पष्ट रहता है। साधक जानता है कि वह कौन है?

वह कहाँ है ? और उसे कहाँ जाना है ? किन रास्तों से हो कर जाना है ? वह अपने प्रस्थान-विन्दु और गन्तव्य-विन्दु के वारे मे सम्यग्ज्ञान रखना है। ऐसे साधक ही साधनो का सही उपयोग कर पाते हैं, अन्य चूक जाते है और जन्मजन्मान्तर तक माथा धुनते रहते है। इसलिए हम चाहिये कि हम अपने साध्य को स्पष्ट और सुनिश्चित करें और अपने साधनो की परीक्षा करे और उस लक्ष्य की ओर भलीभाँति संयोजित करे। जैनधर्म केवल साध्य ही नही, साधनो की भी परीक्षा करता है और इस तरह साधक को एक विशुद्ध, वास्तविक और असदिग्ध धरातल पर पाव रखने की सलाह देता है।

सम्यक् साधन, सम्यक् साधना

साधनो की शुचिता उतनी ही महत्वपूर्ण है, जितनी साध्य की शुचिता और उसका स्पष्ट-निर्धारण। कवि के शब्दो मे—

> साधन सच्चे वे ही है जो,
> अन्तर शुद्ध वनाते हैं।
> वाकी वाह्याचार भार हैं।
> मूरख वृथा निभाते हैं।

अव प्रश्न हो सकता है—सु-साधन क्या है ? अशुचितापूर्ण, भ्रामक या गलत साधन क्या है ? ऐसे कौनसे साधन है, जो जीवन की सफलताओ के लिए स्वीकार्य-ग्राह्य हैं ? और ऐसे साधन कौन से है, जो जीवन-यात्रा के लिए अग्राह्य अथवा हेय है ? एक जिज्ञासु के मन मे यदि मोक्ष की आकाक्षा जन्म ले और उससे प्रश्न किया जाए कि मोक्ष के साधन क्या है ? आचार्य उमास्वाति ने इस सन्दर्भ मे जो सूत्र कहा है, वह जीवन का स्वर्णसूत्र है—"सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।" सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ही मोक्षमार्ग हैं। मोक्ष के समीचीन साधन हैं। हम अपनी भाषा मे यो कहेंगे इसे—सत्य विश्वास, सत्य विचार और सत्य आचार ही मोक्ष-प्राप्ति का मार्ग है। मार्ग यहाँ माध्यम का पर्याय है। मार्ग यानी साधन। सम्यक्त्व, जीवन के हर सन्दर्भ मे सम्यक्त्व, ही मोक्ष का मार्ग है। यहाँ सम्यक् शब्द मे शुचिता सन्निहित है और शुचिता मे सम्यक्त्व सम्मिलित है। शुचिता और सम्यक्त्व अलग-अलग नही हैं, परस्पर आश्रित हैं।

अप्पदीपो भव

वस्तुतः साधना को सफल बनाने का यही एक सुसंगत और उपयुक्त साधन है। साधक स्वय पर विश्वास करे, स्वयं को जाने और स्वयं को शुद्ध बनाये। इसके विपरीत जब वह स्वयं पर अविश्वास रखता है, स्वयं को समझने का कोई प्रयत्न नही करता और स्वयं को शुद्ध नही बनाता तो अपने लक्ष्य से चूक जाता है। असल मे होना यह चाहिये कि हम भगवान् महावीर की उस उक्ति पर ध्यान दें, जिसमें कहा गया है कि 'तू खुद का दीपक खुद बन' (अप्पदीपो भव)। हम भीतर जागे और सही लक्ष्य-केन्द्रित साधनो का उपयोग करे तो फिर ऐसा कुछ नही रह जाता, जिसे हम प्राप्त न कर सकते हो। साध्य-साधन की शुचिता के सामने कुछ भी असम्भव नही है। ☐

14

बन्धन-मुक्ति

□ □
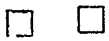
स्वतन्त्रता और मुक्ति शब्द हमे परतन्त्रता और बन्धन के बारे मे सोचने को बाध्य करते है। बन्धन के बाह्य और आन्तरिक कारणो को जान कर तथा स्वतन्त्रता और परतन्त्रता के वास्तविक स्वरूप को समझ कर उस बन्धन या परतत्रता से मुक्त होने के उपाय पर गहराई से सोचना चाहिए। भगवान् महावीर के शब्दो मे बन्धन और मुक्ति सब - स्वय मे है, इसलिए बाहर से बन्धन-मुक्ति की आशा छोड कर आत्मानुशासन मे चल कर बाह्य और आन्तरिक बन्धनो को तोड़ने का स्वय पुरुषार्थ करना चाहिए। तभी बाह्य स्वतन्त्रता और बन्धनमुक्ति के साथ आत्मिक स्वतन्त्रता और बन्धनमुक्ति प्राप्त होगी। बन्धन क्या है? मुक्ति क्या है? स्वतन्त्रता क्या है? इन सब पहलुओ पर पढिए—गम्भीर चिन्तन से ओतप्रोत प्रस्तुत प्रवचन····

१४

बन्धन-मुक्ति

□ □
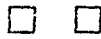
मूल प्रश्न

आज स्वतन्त्रता-दिवस है, राष्ट्र का मुक्ति-दिन। इस मगलमय दिवस पर हमारा राष्ट्र विदेशियो के पजों से मुक्त हुआ था, और उसने उन्मुक्त गगन के तले शान्ति, सुख, समृद्धि और स्वतन्त्रता की सास ली थी। इस सन्दर्भ मे जब हम 'स्वतन्त्र' या 'मुक्त' विशेषण का उपयोग करते हैं, तब हमारा ध्यान इसके विलोम शब्द पर जाता है। चिन्तन की ज्योति मे जगमगाता मुक्ति का स्वरूप बन्धन के व्यक्तित्व की ओर भी इशारा करता है। इससे यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि कही कोई परतन्त्रता है, बन्धन है, जिसे हम तोड कर आजाद होना चाहते हैं। बन्धन के परिपार्श्व मे मुक्ति की महत्ता का बोध होता है, अन्धकार की पृष्ठभूमि पर आलोक अधिक निखर कर सामने आता है।

एक उपप्रश्न

इस तरह मुक्ति पर विचार बन्धन की स्पष्ट समीक्षा के बिना आधा-अधूरा ही है, इसलिए मुक्ति की बगल मे बन्धन की पूरी पहचान भी आवश्यक है। मुक्ति का प्रश्न उठते ही एक उपप्रश्न सामने आता है, मुक्ति किससे? किसी बन्धन से, किसी जकड से, किसी पराधीनता, या किसी गुलामी से? इस बन्धन पर आचार्यों ने काफी विस्तार से विचार किया है। जो यथार्थ को ढकता है, उसके मौलिक व्यक्तित्व को प्रकट नही होने देता। यह बन्धन द्वैध है, दो प्रकार

का है : वाह्य और आन्तरिक। तत्वज्ञो की दृष्टि मे वाह्य वन्धन का विशेष महत्त्व नही है। वाह्य वन्धनों से तनिक पुरुपार्थ और वाहरी साधनो के उपयोग से मुक्त हुआ जा सकता है। यह स्थूल है, दीख पड़ता है, अतः इसे पहचानने और काटने मे कोई कठिनाई नही होती। किन्तु आन्तरिक वन्धन अधिक सूक्ष्म और गहरा होता है। एक तो उसे पहचानना कठिन होता है और कदाचित् समझ मे आ भी गया तो इसे तोडना या उन्मूलित करना दुष्कर कार्य होता है।

वन्धन के दो कारण : राग-द्वेष

आध्यात्मिकों ने आन्तरिक वन्धन को ही महत्त्व दिया है। उन्होने इसकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म समीक्षा की है, और इसके लक्षणो पर विशद प्रकाश डाला है। इस सन्दर्भ मे हमारी जानकारी भले ही नगण्य हो, किन्तु आगम मे इसके स्वरूप पर विस्तार से विचार हुआ है। जैनदर्शन मे वन्धन के दो कारण वताये गये है : राग और द्वेष। इन दोनो को पहचानना और इन्हे छिन्न-भिन्न करना ही सच्चा पुरुपार्थ है, और वास्तविक स्वातन्त्र्य-प्रेम है। वन्ध के ये जो दो कारण कहे गये है, राग और द्वेष, ये आत्मा के विभाव है, स्वभाव नही है। स्वभाव मे स्वाधीनता है, वहाँ कोई वन्धन नही है, वन्ध विभाव मे ही सम्भव है, इसलिए वन्धन, फिर वह चाहे देह का हो, विदेह का हो, त्याज्य है।

वैभाविक स्वतन्त्रता

वाह्य वन्धन देह के विकास को रोकते हैं तो आन्तरिक वन्धन आत्मोत्थान के निष्कण्टक मार्ग को काटो से भरी डगर वनाते हैं। वास्तव मे जीवन का मूल आत्मा है, यदि आत्मातिरिक्त कोई महत्त्वहीन वस्तु है तो उससे लाभ ही क्या है ? कहा जा सकता है वाह्य स्वतन्त्रता, जिसे हम वैभाविक स्वतन्त्रता कह सकते हैं, से कोई लाभ नही है क्योकि वह एक तरह की परतन्त्रता ही है; किन्तु इसका भी एक लाभ है, स्वतन्त्रता के सस्कार पडने पर हम उसे अन्तर्मुख कर सकते हैं और आत्मा को उसकी वैभाविकता से मुक्त करने का सत्यप्रयास कर सकते हैं।

वन्धन और मुक्ति सव तुझ मे है

वाह्य स्वतन्त्रता की उपलब्धि उतनी कठिन नही है, जितनी भीतरी स्वतन्त्रता की। वाहर की आजादी तो आन्दोलन आदि से प्राप्य है, किन्तु आन्तरिक मुक्ति अर्थात् आत्मस्वातन्त्र्य परमात्म-प्रेम या आत्मपुरुषार्थ के विना सभव नही है।

व्यक्ति जहाँ सद्विवेक, सच्चिन्तन, शुभ-पवित्र प्रक्रियाओ से मुक्त हो जाता है, वहाँ मिथ्यात्व, अविवेक इत्यादि से अधिक प्रगाढ बन्धनो मे जकड़ता जाता है। सचाई तो यह है कि बन्धन और मुक्ति सब तुममे है, बाहर कही कुछ नही है। आत्मा के मंच पर ही बन्ध-मोक्ष घटित होते हैं, अन्यत्र नही।

बन्धन की प्रतीति

हम एक उदाहरण ले। शूरवीर हनुमान जब नागपाश मे बद्ध हुए, तब बन्धन उनके लिए तब तक बन्धन रहे, जब तक वे उन्हे बन्धन मानते रहे। मुक्ति की अनुभूति होते ही उनका पुरुषार्थ अँगड़ाई लेने लगा और वे अविलम्ब मुक्त हो गये। इसलिए मुक्ति, चाहे वह भौतिक हो, या आत्मिक, बन्धन को पहिचाने बगैर सम्भव नही है। और फिर केवल पहिचानने से ही काम नही चलेगा, बन्धन को जान कर उसे तोडने तथा उसके निर्जरण की आवश्यकता भी होगी। प्रतीति या बोध एवं तदुपरान्त उन्हे नष्ट करने का आत्मपुरुषार्थ, बन्धन को काट कर स्वतन्त्र होने की यही सम्यक् प्रक्रिया है।

आत्मानुशासन

जैसा कि मैं आरम्भ मे ही कह चुका हूँ कि आज १५ अगस्त है। देश की स्वतन्त्रता का मंगलमय दिन। इसलिए हमारी चर्चा का विषय स्वाधीनता है। इसे यदि हम तनिक विस्तृत करें तो यह स्वाधीनता कई प्रकार की हो सकती है। इससे पहले हमने आध्यात्मिक स्वाधीनता पर विचार किया है। आज देश को आर्थिक और सामाजिक स्वाधीनताओ की भी जरूरत है। ठीक है कि कोटि-कोटि जन राष्ट्रीय ध्वज के नीचे खड़े हो कर राष्ट्रगीत गा रहे है। यह अनुशासन है। किन्तु क्या केवल अनुशासन मे ही हमारी सारी समस्याओ का समाधान हो सकता है? अनुशासन के बाद की सीढी है आत्मानुशासन। इस सीढी पर अभी हमारे देश ने पैर नही रखा है। क्योकि हम देख रहे हैं कि चारो ओर एक तरह की सामाजिक अराजकता है। कोई किसी को लूट रहा है, कोई किसी के खिलाफ षड्यन्त्र कर रहा है, कोई भ्रष्टाचार कर रहा है, कोई मिलावट कर रहा है। इस तरह चारो ओर धोखाधड़ी का वातावरण बना हुआ है। इसका समाधान आत्मानुशासन मे है। आत्मानुशासन बाहर से नही आता, यह भीतर से प्रकट होता है।

जो कहो, उसे जिओ

दुर्भाग्यपूर्ण यह है कि आजादी हासिल कर लेने के वाद हमारे राष्ट्रीय और वैयक्तिक चरित्र का जैसा विकास होना चाहिये था, वैसा नही हुआ है। चारित्रिक दृष्टि से हममे स्वार्थ गहरे हुए है, और परस्पर अविश्वास तथा शोपण की स्थितियों मे वृद्धि हुई है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के स्थान पर क्रमशः हिंसा झूठ, चोरी, असयम और सचय ने जडे पकड़ ली है। यह हमारा चारित्रिक पतन है। भगवान् महावीर की अहिंसा बहुत सूक्ष्म है, किन्तु उसे अमल मे नही लाया जा सकता, ऐसा कहना, स्वय पर अविश्वास करना है। महावीर ने जो भी कहा, वह सव उनके चरित्र मे से आया है। उन्होने अहिसा, सत्य, अपरिग्रह इत्यादि को जीया था, उन्होने मात्र उपदेश नही दिया। इसलिए सच्ची स्वाधीनता हमे तव प्राप्त होगी, जब हम चारित्रिक श्रेष्ठताओ को उपलब्ध करेंगे और अपने चारो ओर खड़े दूषित वातावरण को निर्मल वनायेगे। क्या अधिकार है—कुछ लोगो को कि वे गन्दी फिल्मे वनाये. गन्दा साहित्य लिखे और हमारे चारित्रिक उत्थान को पिछड़ायें हमे इनका खुल कर विरोध करना चाहिये और आत्मानुशासन के बीज हर व्यक्ति मे अकुरित करने चाहिये।

जो आजादी दूसरों को गुलाम बनाती है

ऐसे दिन बहुत कम ही आते है. जब हम अपनी कमियो और दुर्वलताओं का लेखाजोखा करते हो, और उत्थान के नये संकल्प करते हो। आज का दिन आत्मनिरीक्षण का महत्त्वपूर्ण दिन है। हर नागरिक को स्वय मे एक गहरी खोज-यात्रा करनी चाहिये और उन सारी बुराइयो का पता लगाना चाहिए, जो उसकी स्वतन्त्रता को अवरुद्ध किये हुए है। उन्हे उखाड फेकना चाहिये और आत्मस्वातन्त्र्य की दिशा मे तेजी से कदम उठाना चाहिए। आत्मस्वातन्त्र्य ही, याद रखिये, आगे चल कर सपूर्ण राष्ट्र की सच्ची स्वतन्त्रता में रूपान्तरित होता है। यहाँ आत्मस्वातन्त्र्य का अर्थ स्वैराचार नही हैं, वरन् आत्मानुशासन है, दूसरो को कोई तकलीफ दिये विना स्वतत्र होने की अद्वितीय प्रक्रिया है। जो आजादी दूसरो को गुलाम बनाती है, वह आजादी न हो कर परतन्त्रता का ही एक रूपान्तर है। इसलिए हमारा ध्यान ऐसी किसी छलिया आजादी की ओर नही है, वल्कि सच्ची और सही आजादी की ओर है। यदि हम इस स्वाधीनता को प्राप्त कर सके तो, विश्वास कीजिए, हमे कभी, कोई, कही भी पराजित नही कर सकेगा, क्योकि हमारी आजादी स्वय को आजाद करने के लक्ष्य पर अविचल यात्रा करेगी। उसका लक्ष्य दूसरों को परतन्त्र वनाने का होगा ही नही। भगवान् महावीर की स्वतत्रता-धारणा इतनी ही मानवीय और पवित्र थी। हमे इसकी गहराई मे जा कर समझने के प्रयत्न करने चाहिए। □

□ □

कुछ पाश्चात्य दार्शनिक 'मानवजीवन संघर्ष से ही चलता है' इस बात पर विश्वास करते है, लेकिन गहराई से देखा जाए तो अहिंसा से ही मानवजीवन के सभी व्यवहार चलते है, स्थायी और सुखद रह सकते हैं। संघर्ष-हिंसा मनुष्य मे युद्ध, वैर-विरोध, राग-द्वेष, कषाय आदि बढाती है। और जहाँ-जहाँ, जिस-जिस क्षेत्र मे अहिंसा को छोड कर हिंसा को अपनाया गया, वहाँ-वहाँ मानवजाति की अशान्ति, दुःख, कष्ट पीडा और घुटन बढी है। इसके विपरीत प्रायः प्रत्येक क्षेत्र मे जहाँ अहिंसा के सफल प्रयोग हुए हैं, वहाँ-वहाँ स्थायी सुख-शान्ति बढी है, परस्पर, प्रेम, सेवा, सहानुभूति, मानवता और सद्-भावना के अंकुर फूटे हैं। अहिंसा का सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक, पारिवारिक आदि विविध क्षेत्रो मे कैसे सफलतापूर्वक प्रयोग और व्यवहार किया जा सकता है ? अहिंसा का पालन कब, कौन और कैसे कर सकता है ? विविध भूमिकाओ मे उसकी मर्यादाएँ क्या है ? सभी व्रतो और नियमो आदि मे अहिंसा क्यो आवश्यक है ? इन सब प्रश्नो पर मार्मिक विश्लेषणपूर्वक मुनिश्री का सशक्त चिन्तनयुक्त प्रवचन प्रस्तुत है……

१५

अहिंसा की सार्वभौम शक्ति

□ □

अहिंसा भारतीय संस्कृति की आत्मा है। भारत के प्रत्येक मानवीय व्यवहार मे ऋषि-मुनियों ने अहिंसा का पुट दिया है। अहिंसा के बिना भारत का मानव, चाहे वह गृहस्थ हो या साधु एक भी प्रवृत्ति सुखशान्तिपूर्वक नहीं कर सकता। भारत के हा नही, विश्व के सभी दर्शन और सभी धर्म एकस्वर से अहिंसा की महत्ता और अनिवार्यता मानवजाति के लिए स्वीकार करते हैं। आप किसी भी धर्मग्रन्थ को उठा कर देख लीजिए, सब मे अहिंसा का स्वर मुखरित होता हुआ मिलेगा।

अहिंसा के बिना कोई भी व्यवहार सुखद नहीं

बहुत-से लोग यह कहा करते हैं, खासकर पश्चिम के कुछ दार्शनिक, कि मनुष्य का जीवन संघर्ष से ही चल सकता है, सहयोग से नही।" परन्तु यह तो आपका प्रतिदिन का प्रत्यक्ष अनुभव है कि क्या परिवार मे, क्या जाति और समाज मे, क्या धर्मसंघ और राष्ट्र मे सर्वत्र सहयोग से ही काम चलता है। माता अगर बालक को पालन करने के कष्ट से बच कर उसे फेंक देती, या बालक जब-जब उसके सामने रोता, हाथ-पैर मारता या उसके शरीर को अपने मल-मूत्र से गंदा कर देता, तब-तब वह उसके साथ संघर्ष करती यानी उसे डांटती-डपटती, मारती-पीटती, उसके साथ लड़ाई करती तो क्या बालक आगे बढ सकता था ? क्या उसके तन, मन और बुद्धि का विकास हो सकता था ? क्या उस शिशु का जीवन बच सकता था ? कदापि नही। बालक का जीवन बचा है—माता के सहयोग से, माता के वात्सल्ययुक्त व्यवहार से, माता की परम करुणा से ! और बालक भी मां को पूजनीय दृष्टि से न देखता, उसे

माँ कह कर न पुकारता, उसके द्वारा पालन-पोषण को सद्भाव से ग्रहण न करता, माता के साथ सदा ही झगडा करता, उसके प्यार को भी धिक्कार देता, उसके वात्सल्य-व्यवहार को कठोर वन कर ठुकरा देता तो क्या बालक का जीवन चल सकता था, या माता से उसको पालन-पोषण या रक्षण-संवर्द्धन मिल सकता था ? तात्पर्य यह है कि वालक का जीवन संघर्ष से बचा या सहयोग से ? यह आप स्वयं सोच सकते है ।

सघर्ष हिंसा है, सहयोग अहिंसा है। हिंसा से संसार का जीवन चल नही सकता, अहिंसा से ही जीवन और जीवन का प्रत्येक व्यवहार चल सकता है ।

यही वात सामाजिक क्षेत्र मे समझ लीजिए । समाज परस्पर सहयोग के आधार पर चलता है, असहयोग या सघर्ष के आधार पर समाज कदापि नही चल सकता ।

आपको अपने विकास के लिए विविध पदार्थो का ज्ञान चाहिए, विविध कलाओ और विद्याओ का अनुभव तथा प्रत्यक्ष ज्ञान चाहिए, बिना सहयोग के कैसे मिलेगा ? क्या आप बचपन से स्वय ही सब कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकते है ? यह माना कि प्रत्येक आत्मा मे अनन्त ज्ञान है, परन्तु वर्तमान मे तो वह सब ज्ञान दबा हुआ है, अप्रकट है । उसे प्रकट करने के लिए कोई न कोई निमित्त चाहिए । निमित्त का सहयोग—प्रेम और अहिसा से ही मिलता है । मानवजाति के पूर्वज या अग्रज महानुभाव या समाज के वडे-वूढे महामान्य लोग अगर हम पर करुणा करके ज्ञान-विज्ञान सुरक्षित न रखते, अथवा विविध अनुभव हमारे लिए सुरक्षित न छोड जाते अथवा हमे वर्तमान मे भी बुजुर्ग महानुभाव ज्ञान-विज्ञान मे हमे शिक्षित और अभ्यस्त न करे तो हम कदापि इतना विकास नही कर सकते थे, न ही वर्तमान मे कर सकते है । अहिंसा के वल पर ही यह सब विकास हुआ है ।

राजनैतिक क्षेत्र मे मानव ने शासनव्यवस्था के नये-नये सुविधाजनक और जनकल्याणकारी शासनतत्र-राजतन्त्र से लोकतत्र तक की जो खोज की है, वह सब मानवजाति के प्रति वात्सल्य से प्रेरित हो कर ही की है । क्या यह कार्य हिंसा के द्वारा सम्भव था ? क्या हिंसा से जबरन दमन करके, डरा-धमका कर, संघर्ष करके हम उन पूर्वजो से ज्ञान-विज्ञान और कला-विद्या का शिक्षण-प्रशिक्षण प्राप्त कर सकते थे ? कदापि नही । जीवन के सभी व्यवहार अहिंसा के आधार पर चलते है ।

हिंसा का आधार व्यवहार्य नहीं

अगर मनुष्य यह नियम ले ले कि मैं तो अहिंसा के आधार पर एक भी व्यवहार या कार्य नही चलाऊगा, तो कितने दिन चलेगा उसका वह प्रण ? शायद एक घटे भी नही चल सकेगा ? क्या भूख लगने पर माता या पत्नी से वह लड़-झगड कर रोटी प्राप्त करेगा ? क्या अपने मालिक से सघर्ष करके वह नौकरी करेगा या वेतन पायेगा ?

अपने बच्चो, पत्नी तथा अन्य परिवार वालो से झगड़ा करके क्या वह प्यार पा सकेगा ? क्या अपने शिक्षकों के डण्डे मार कर वह विद्या प्राप्त कर पाएगा ? अथवा अन्य जितनी भी प्रवृत्तियाँ दिनभर मे होगी, क्या वह उन सब प्रवृत्तियो मे हिंसा के बल पर दूसरों से सहयोग पा सकेगा या अहिंसा के बल पर पा सकेगा ? आप कहेगे कि हम सब कहते हैं कि अहिंसा के बल पर ही सर्वत्र काम होगा। परन्तु कही-कहीं हिंसा से भी काम होता है, भले ही वह हिंसा किसी प्राणी को जान से मारने की न हो, परन्तु कोई उद्दण्ड व्यक्ति हमे सताये, हम पर अन्याय करे, या हम पर अत्याचार करे, हमारा धन जबरन छीनना चाहे, उस समय उसका सामना हिंसा से ही तो करना होगा ? उस समय अहिंसा क्या काम आएगी ? उस समय हमारा प्यार उसे कैसे जीत सकेगा या अन्याय आदि करने से कैसे रोक सकेगा ?

अहिंसा से क्रूर प्राणी भी वश में

बस, यही तो समझने की बात है। अहिंसा की शक्ति पर आपको विश्वास नहीं है। अहिंसा का चमत्कार आपने देखा-सुना नही है, अथवा देखा या सुना है तो भी अभी तक आपके हृदय मे यह विश्वास नही जम पाया है कि संसार के सारे व्यवहार अहिंसा से चल सकते है, उद्दण्ड, क्रूर और दानव-तुल्य बने हुए मनुष्य को भी अहिंसा से वश मे किया जा सकता है, उसे बदला जा सकता है, उसे बुरे कार्य करने से रोका जा सकता है। इसीलिए तो अहिंसा के पुजारी, योगदर्शन के प्रणेता महर्षि पतंजलि ने कहा—

'अहिंसा-प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः

जहाँ, जिस हृदय या जीवन में अहिंसा अपने पैर मजबूती से जमा लेती है, अहिंसा का वातावरण प्रतिष्ठित कर दिया जाता है, अहिंसा सर्वांगीण क्षेत्र मे स्थिर हो जाती है, उसके सान्निध्य (निकट) मे परस्पर विरोधी, कट्टर शत्रु या हिंस्र प्राणी भी अपना वैरभाव भूल जाते है, द्वेषभाव छोड़ देते हैं।

रोम में जिन दिनो गुलामी-प्रथा का जोर था, गुलामो से जबरन काम लिया जाता था और एक बार गुलाम बन जाने पर जिन्दगीभर उसका मालिक के अत्याचारी चगुल से छुटकारा पाना कठिन हो जाता था, एक गुलाम जिसका नाम था—'एड्रयूज कील', अपने मालिक के अत्याचारो से तंग आ कर किसी तरह भाग छूटा और जंगल मे एक सिंह की गुफा मे जा कर छिप गया। उसने मन मे ठान लिया कि रोज-रोज के मालिक के त्रास सहने की अपेक्षा तो एक ही बार मे सिंह के आक्रमण से मर जाना बेहतर है। परन्तु उसका आयुष्यबल प्रबल था। इसलिए गुफा मे सिंह न मिला। किन्तु दूसरे ही दिन उसने सिंह के कराहने की आवाज सुनी। पीड़ा की आवाज और क्रूरता की आवाज मे, तथा दुःख के स्वर और क्रूरता के स्वर मे बहुत अन्तर होता

है। गुलाम एण्ड्रयूज कील ने जब सिंह का पीडाभरा स्वर सुना तो उसके मन मे विचार उठा कि मालूम होता है, यह सिंह किसी न किसी पीडा से व्यथित है। इसे किसी न किसी की सहायता की जरूरत है, जो इसकी पीड़ा को सुन सके और दूर कर सके। मरना तो है ही, इसीलिए तो मैं यहाँ सिंह की गुफा मे आया था। अगर पास मे जाने से और उसकी पीडा को समझ कर दूर करने से सिंह मुझे झपट कर मार डालेगा, तो मेरा मनोरथ पूर्ण हो जायेगा।' यह सोच कर वह गुलाम सिंह की आवाज, जिधर से आ रही थी, उधर दौडा। सिंह ने ज्योंही उसे देखा, वह पहिचान गया कि यह मुझे मारने तो नही आ रहा है, यह शिकारी तो नही है। पशु मे भी इतना ज्ञान प्रायः होता है कि वह मारने वाले और बचाने वाले की चेष्टाओं एवं संकेतों पर से उसे जान जाता है। सिंह के पंजो मे तीखे काँटे घुस जाने के कारण वह उसकी पीड़ा से कराह रहा था। घायल सिंह की पीडा को समझते गुलाम को देर न लगी। वह तुरन्त उसके पास पहुँचा और उसके पजे हाथ मे ले कर उसके काँटे निकाले, उसके घावों पर कुछ वनस्पति लगा कर मरहम पट्टी कर दी। सिंह की पीडा कम हो गयी। वह उस गुलाम के प्रति कृतज्ञ हो गया। तीन-चार दिनो बाद जब वह स्वस्थ हो गया तो उस गुलाम के पास आ कर उसके पैर चाट कर प्यार जताने लगा। गुलाम उसके सिर पर हाथ फिराता। इस प्रकार रोजाना वह गुलाम के पास आ कर इसी प्रकार प्रेम प्रदर्शित करने लगा।

उधर गुलाम कील के भाग जाने से उसके मालिक ने उसकी तलाश करने के लिए चारो तरफ आदमी दौडाये। आदमी ढूँढ़ते-ढूँढ़ते गुलाम के पास आ पहुँचे और उसे पकड कर मालिक के पास ले आये। संयोगवश उस सिंह को भी पिंजरे मे पकड़ कर ले आया गया। सिंह को तीन दिन तक भूखा रखा गया। चौथे दिन उस गुलाम को सिंह के पिंजरे के सामने खड़ा होने का आदेश दिया गया और तीन दिन के भूखे सिंह को उसके सामने छोडा गया। मगर सिंह ने पिंजरे से बाहर निकलते ही अपने उपकारी को पहचान लिया, उसने तीन दिन के भूखे होते हुए भी उस गुलाम पर कोई आक्रमण नही किया। दर्शक लोग दंग रह गये। अधिकारियो ने सिंह को बहुत ही उत्तेजित करने का प्रयत्न किया, लेकिन भूखे सिंह ने अपने उपकारी गुलाम को जरा भी हानि नही पहुँचाई।

आखिर एंड्रयूज कील को बन्धनमुक्त कर दिया गया और उसके मालिक ने उससे पूछा—"तुम्हारे सब अपराध माफ है, परन्तु यह बताओ कि तीन दिन के भूखे शेर ने तुम्हे क्यो नही मारा ? क्या तुम कोई जादू जानते हो ?"

गुलाम ने हाथ जोडते हुए कहा—"मैंने इस सिंह की घायल अवस्था मे सेवा की है। इसलिए अपना उपकारी जान कर मुझे इसने जरा भी हानि नहीं पहुँचाई।"

प्रसन्न हो कर उसके मालिक ने उस गुलाम को गुलामी से मुक्त कर दिया।

जब सिंह और सर्प जैसे क्रूर प्राणी भी अहिंसा से वश मे किये जा सकते हैं, तब क्रूर मनुष्यों को अहिंसा से वश में करना कौन बड़ी बात है? जिसके रोम-रोम मे अहिंसा प्रतिष्ठित हो जाती है, जिसकी रग-रग मे अहिंसा रम जाती है और जिसके संस्कारों मे अहिंसा घुलमिल जाती है, वह व्यक्ति तो इतना निर्भय और प्रभावशाली हो जाता है कि उस पर हिंस्र पशु, पक्षी या मनुष्य आदि कोई भी प्राणी आक्रमण नही करता। उसके सानिध्य मे बैठे हुए सदा के विरोधी पशु या मानव भी अपना वैरभाव भूल जाते हैं। यह अहिंसा का ही चमत्कार था कि भगवान् महावीर एवं भगवान बुद्ध के उपदेश के समय सिंह और मृग एक ही जगह शान्तभाव से बैठ जाते थे। मगधसम्राट् बिन्दुसार (अशोक के पिता) के जीवन मे ऐसी आँखो देखी घटना का उल्लेख कवियो ने किया है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपने खण्डकाव्य पंचवटी में इसी बात को प्रस्तुत किया है—

"अहा! आर्य के विपिन-राज्य में, सुखपूर्वक सब जीते हैं।
सिंह और मृग एक घाट पर आ कर पानी पीते हैं॥"

यही क्यों? स्वामी श्रद्धानन्दजी जब योगसाधना करते थे, तब एक सिंह उनके पास चुपचाप आता और उनके पैर चाट कर वापिस लौट जाता। रमणमहर्षि के आश्रम मे रात को अनेक जहरीले साँप निकलते, परन्तु उन्हे कभी किसी भी साँप ने पीड़ा नही दी। यहाँ तक कि साँप, बिच्छू, बन्दर आदि सब उनके सामने नम्र बन जाते थे। तीर्थंकरो की परम अहिंसा के प्रभाव से ही उनकी धर्मसभा (समवसरण) में सिंह और गाय, साँप और नेवला आदि शाश्वत विरोधी प्राणी भी निर्वैर हो कर बैठ जाते थे।

अहिंसा का मानवजगत् के सभी क्षेत्रो में पालन सम्भव

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अहिंसा का प्रभाव सार्वभौम है। मानव-जीवन के सभी क्षेत्रो—सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक आदि मे अहिंसा का पालन आसानी से किया जा सकता है। परिवार में कभी किसी बात पर सघर्ष खडा हो जाता हैं, या मनमुटाव बढ़ जाता है तो क्या आप डण्डो से हर बात मे फैसला करते है? क्या बात-बात मे आप पारिवारिक मसले हल करने के लिए हिंसा पर उतर आते है? नही, वहाँ परस्पर बीचबिचाव, समझौता, पंचो द्वारा दोनों पक्षों के विवाद का शान्ति से निपटारा, परिवार के बुजुर्गों के नैतिक दबाव से परस्पर सुलह कर लिया जाता है। क्या ये अहिंसा के अंग नही हैं?

और जातियो मे परस्पर झगड़े, कलह या मनोमालिन्य होने पर भी प्राचीन-

काल में जाति के निष्पक्ष और प्रभावशाली पंचो द्वारा दोनो पक्षो को कह-सुनकर तथा जिस पक्ष का जितना दोष या अपराध हो उसे उतनी मात्रा मे दण्ड या प्रायश्चित्त दे कर बहुत-से झगड़ो और पेचीदा प्रश्नो का अहिंसक ढग से पारस्परिक समाधान कराया जाता था।

आर्थिक क्षेत्र मे भी लेन-देन के मसलो या विवादों का निष्पक्ष न्याय दे कर समाधान कराया जाता है। सामाजिक क्षेत्र मे भी अनेक क्रूर, लुटेरे, हत्यारे और पापी लोगों को अहिंसा की पावनसुधा ने उपदेश, आध्यात्मिक प्रभाव, वातावरण एवं समझाहट-भरी प्रेरणा के द्वारा बदल दिया है, उनका हृदय-परिवर्तन कर दिया है।

भगवान् महावीर के अनुपम वात्सल्य के रूप मे अहिंसा ही चण्डकौशिक विषधर का हृदय-परिवर्तन करने मे सफल हुई। यह अहिंसा का ही चमत्कार था कि अंगुलिमाल जैसे कुख्यात डाकू ने भगवान बुद्ध के सामने आत्म-समर्पण करके सदा के लिए अपनी दुर्वृत्ति छोड दी। यह अहिंसा के ही सार्वभौम पालन का प्रभाव था कि वाल्मीकि लुटेरे से ऋषि बन गया। यह अहिंसा का ही प्रताप था कि दुर्दान्त चिलातीपुत्र चोरी, हत्या और लूटमार छोड़ कर एक शान्त सन्त बन गया। यह अहिंसा की ही विशेषता थी कि आलमगीर पठान महात्मा गाधीजी के क्षमाभाव के सामने नतमस्तक हो कर अपने अपराध के लिए पश्चात्तापपूर्वक क्षमायाचना करने लगा। भारतीय स्वतन्त्रता-सग्राम अहिंसा पर ही तो आधारित था, जो विना किसी प्रकार के शस्त्र-अस्त्र लिये, किसी प्रकार की सशस्त्र फौज लिये विना महात्मा गांधीजी के नेतृत्व मे ब्रिटिश सरकार से लडा गया और किसी शस्त्रास्त्र या हिंसाकाण्ड के सामने न झुकने वाली कूटनीतिक ब्रिटिश सरकार झुक गई। ब्रिटिश सरकार को बाध्य हो कर भारत छोड़ना पडा और इसे स्वतन्त्रता देनी पडी। महात्मा गाधीजी ने तो अपने जीवनकाल मे सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों के विविध पेचीदा प्रश्नो पर अहिंसक सत्याग्रह करके अहिंसा से ही वे मसले हल किये है। मिल-मालिकों और मजदूरो मे आये दिन होने वाली तनातनी, सघर्ष और विवाद को बढने से और उसके फलस्वरूप दोनों ओर से लाठी, गोली, गालीगलौज, मारपीट आदि हिंसक साधनो को अपनाने से रोकने के लिये कई बार सफल अहिसक प्रयोग किये थे। और बाद मे सदा के लिए मिलमालिको और मजदूरो के झगडो के अहिंसक ढंग से पारस्परिक समाधान के लिए उन्होने 'मजूर-महाजन' नाम की सस्था ही स्थापित कर दी। महात्मा गाधीजी ने तो पारिवारिक क्षेत्र मे भी कई समस्याएँ अहिंसक तरीको से सुलझाई है। उनके देहावसान के बाद भी सन्त विनोबा तथा जयप्रकाशनारायण, रविशंकर महाराज जैसे प्रबुद्ध लोकसेवको ने अहिंसा का विविध क्षेत्रो मे सफल प्रयोग किया है। जिसका जीताजागता प्रत्यक्ष उदाहरण हमारे सामने है—चम्बल घाटी के लगभग ४२५ दुर्दान्त एवं खूंख्वार डाकुओ द्वारा आत्मसमर्पण। व्यावहारिक जगत् मे भी अहिंसा ने अपना चमत्कार

दिखाया है। जो व्यक्ति कठोर और दमनयुक्त व्यवहार से कभी काबू मे नहीं आ सकता था, वही व्यक्ति अहिंसक व्यक्ति के नम्र, सरल, निष्पक्ष, उदार एवं निश्छल व्यवहार से विलकुल वदल गया, पानी-पानी हो गया। क्या पारिवारिक और क्या सामाजिक सभी क्षेत्रो मे अहिंसा कृतकार्य हुई है, होती है, और होगी। साम्प्रदायिक वाद-विवादो मे भी अहिंसा अनेकान्तवाद एवं सापेक्षवाद के रूप मे अवतरित हो कर समाधान एव विरोध शान्ति करने मे सफल हुई है। प्रत्येक धार्मिक विवाद आसानी से अहिंसा से मिटाया जा सकता है। राजनैतिक क्षेत्र मे भी अतिप्राचीन रामयुग से ले कर गांधीयुग तक अहिंसा का अवलम्बन ले कर कई विवाद और संघर्ष मिटाये गये है।

व्यक्तिगत जीवन में तो हर व्यक्ति अहिंसा का पालन करके उच्चभूमिका पर पहुँच सकता है। वैशेषिक दर्शन के प्रवर्त्तक महर्षि कणाद कृषि मे होने वाली अल्पहिंसा से भी बचने के लिए खेतो मे स्वतः उगे हुए और यत्र-तत्र विखरे हुए अन्नकणों को वीन-वीन कर खाते थे और उसी से अपना निर्वाह करते थे। पौराणिक कथानुसार भरत मे हरिणयोनि मे उत्पन्न हो कर केवल पत्तो को खा कर जीवन टिकाए रखा था। इससे भी आगे बढ़कर सर्वथा आरम्भ से निवृत्त जैन मुनि मन-वचन-काया से पूर्णरूप से अहिंसा का पालन करने हेतु अचित्त पदार्थ निर्दोष भिक्षावृत्ति द्वारा ग्रहण करते हैं।

परिवार, कुल, जाति, धर्म-सम्प्रदाय, ग्राम, नगर, प्रान्त और राष्ट्र आदि सब मानवजाति के विभिन्न अग हैं। धनिक-निर्धन, शिक्षित-अशिक्षित, मालिक-मजदूर, स्वामी-सेवक, राजा-प्रजा आदि अलग-अलग वर्ग इसके उपांग हैं। मानवजाति के इन सभी अंगो और उपांगो मे अहिंसा का पालन वहुत आसानी से अच्छी तरह किया जा सकता है। यह हम पहले कह चुके हैं कि इन सवके आपसी झगड़ों, संघर्षो, लड़ाइयो या लेन-देन के विवादो, अथवा किसी भी क्षेत्र के किसी भी प्रश्न को अहिंसा के द्वारा हल किया जा सकता है। परन्तु आप से मैं पूछूँ कि आपको अहिंसा जैसी उत्तम वस्तु मिल जाने पर भी प्रायः आप प्रत्येक क्षेत्र मे हिंसा से काम लेते देखे जाते हैं। वैचारिक अहिंसा के रूप मे आपको अनेकान्त मिला है, फिर भी कई जगह अनेकान्तवाद के तथाकथित पुजारी एकान्तवाद मे पड़ कर जरा-जरा-सी वात के लिए तू-तू मैं-मैं करने लग जाते हैं। दूसरो के—यहाँ तक कि एक ही धर्म की अपनी सम्प्रदाय से भिन्न दूसरी सम्प्रदाय के जरा-से मतभेद या विचारभेद को आप धैर्य-पूर्वक शान्ति से सुन नही सकते, आप उछल पड़ते हैं और निन्दा, विकथा और गाली-गलौज पर उतर आते हैं। कई व्यक्तियो का पारा तो इतना गर्म हो जाता है कि वे दूसरे मत के अनुयायियो से झगडा कर वैठते हैं, सिरफुटौव्वल मचाने लगते है, और इस प्रकार लड़-झगड़ कर एक-दूसरे का सिर फोड कर, एक-दूसरे पर पाषाण-वर्षा करके या मुकद्दमेवाजी करके राग, द्वेष और कषायो से लिप्त हो कर हिंसा द्वारा उस

समस्या का, मतभेद का समाधान करना चाहते है। पर किसी भी विवाद का निपटारा, स्थायी और शुद्ध न्याय के अनुरूप निर्णय हिंसा के द्वारा कदापि नही हो सकता। वह जब कभी होगा, अहिंसा के द्वारा ही होगा।

इसी प्रकार कई वार समाज मे पदो और अधिकारो के लिए परस्पर प्रेम से समाधान के बदले अपने अहंकार और प्रतिष्ठा का प्रश्न बना कर एक-दूसरे पर छीटाकशी और तानाकशी करके हिसा का सहारा लिया जाता है। अहिंसा को उस समय ताक मे रख दिया जाता है।

कई वार पारिवारिक मसलो को भी प्रेम से हल करने के वजाय लड़-झगड कर पारस्परिक स्नेह के आग लगा कर दवाव से और दण्डशक्ति से हिंसा द्वारा हल करने के प्रयत्न किये जाते है। ऐसे प्रयत्नो मे भावहिंसा तो खुल कर होती है। द्रव्यहिंसा का तो मौका लगे या न लगे, आत्मा का हनन तो हो ही जाता है। ये सब हिंसक प्रयत्न अहिंसा के स्वरूप को न समझने के कारण होते है। अहिंसा के देवता भगवान् महावीर के अनुयायी भी जब इस प्रकार वात-वात मे हिंसा पर उतारू हो जाते हैं, हर क्षेत्र के मसले हिंसा से हल करने का प्रयत्न करते है, तो आश्चर्य होता है। महात्मा गाँधीजी परम्परा से जैन नही थे, किन्तु उन्होंने एक आदर्श श्रावक से भी वढकर अहिंसा का पालन किया था। उन्होने परिवार, समाज, राजनीति, अर्थनीति, धर्मसम्प्रदाय आदि सभी क्षेत्रो मे होने वाली हिंसा को दूर करने के लिए वार-वार अहिंसा का प्रयोग किया था। अहिंसा के द्वारा ही सभी समस्याओ और मसलो को हल किया था, आज उसी अहिंसा की जरूरत है, अहिंसा के विविध प्रयोग अगर सभी क्षेत्रो मे और सभी राष्ट्रों में होने लगे तो मानवजाति सुख और शान्ति से जी सकती है। परन्तु ये मान्धाता या ये अधिकारी अथवा अग्रगण्य अहिंसा का प्रयोग होने दे, तव न ? ये अपने अहं, पद-प्रतिष्ठा एव स्वार्थ के लिए, और अपनी धाक जमाने के लिए हिंसा को ही ज्यादा महत्त्व देते है। संयुक्त राष्ट्र-संघ (यू० एन० ओ०) वना तो है—अहिंसा से राष्ट्रो का विवाद या सघर्ष मिटाने और शान्ति स्थापित करने के लिए; परन्तु इसके सर्वेसर्वा पक्षपात, स्वार्थ, पद या सत्ता के मद मे आ कर ऐसा होने दे, तव न ? हीरोशिमा और नागासाकी पर जो अणुवम गिराये गये थे, वे इन मान्धाताओ की भयकर हिंसा की पराकाष्ठा का नमूना है। किसी भी देश को ये उभरने देना नही चाहते, और उसे दवाने के लिए इस प्रकार की भयंकर हिंसा का सहारा लेने का प्रयत्न करते है, जवकि अहिंसा से, प्रेम से अगर ये दूसरे देशो के साथ व्यवहार करे तो दूसरे देश भी इनके प्रेम के वशवर्ती वन सकते है।

अहिंसा सार्वभौम व्रत है

भारतीय चिन्तनधारा की हर लहर मे अहिंसा का तत्त्व प्रतिष्ठित है।

भारतवर्ष की वायु मे श्वास लेने वाले व्यक्ति के जीवन मे अहिंसा का प्रभाव प्रत्यक्ष या परोक्षरूप से प्रायः परिलक्षित होता है। कई लोग कह देते है कि अहिंसा तो महात्माओ या साधु-सन्यासियो के पालन की चीज है, हम गृहस्थ उसका पालन कर ही नहीं सकते। परन्तु मैं पहले यह सिद्ध कर चुका हूँ कि अहिंसा सर्वांगी एव सर्वक्षेत्रस्पर्शी होने से हर व्यक्ति उसका पालन कर सकता है। अहिंसा किसी जाति, व्यक्ति, वर्ग, देश या काल से बंधी हुई नही है। गरीव से गरीव और अमीर से अमीर तक इसका पालन कर सकता है, चाहे वह नीच कहलाने वाली जाति मे, अनार्य कहलाने वाले देश मे, कलियुग कहलाने वाले युग मे अथवा दुःषम कहलाने वाले पचमकाल मे अथवा विरोधी से विरोधी वातावरण एवं परिस्थिति मे क्यो न पैदा हुआ हो। पापी और पतित व्यक्ति भी अहिंसा का पालन करके मोक्ष प्राप्त कर सकता है। सभी अवस्थाओ, क्षेत्रो, कालो या परिस्थितियो में अहिंसा पालन की जा सकने योग्य होने से इसे योगदर्शन मे सार्वभौम महाव्रत कह कर इसका स्पष्टतः सार्वभौमत्व घोपित किया है—

"जाति-देश-काल-समयाऽनवच्छिन्नाः सार्वभौमाः महाव्रतम्"

जाति, देश, काल और समय की सीमा मे बधे हुए न होने के कारण अहिंसा आदि सार्मभौम महाव्रत है। अर्थात् अहिंसा आदि किसी जातिविशेप, देशविशेष, अवस्थाविशेष या परिस्थितिविशेष के ही एकाधिकार मे नहीं है। समस्त मानवजगत् सभी अवस्थाओं मे इसका परिपालन कर सकता है।

सभी व्रतों और नियमों में अहिंसा आवश्यक

जैनधर्म का तो प्राण ही अहिंसा है। यहाँ छोटी से छोटी या वडी-से वडी साधना मे अहिंसा को अनिवार्य माना गया है। ऐसा नही हो सकता कि कोई गृहस्थ सत्यव्रत को तो ग्रहण कर ले, लेकिन अहिंसा को छोड दे। अहिंसा है तो सत्य सत्य है, अन्यथा वह सत्य भी प्राणहीन हो जाएगा। जैसे एक व्यक्ति सत्य का व्रत लिए हुए है। वह जगल मे से जा रहा है। उसके सामने से एक हिरन भागता हुआ गया। कुछ ही देर वाद एक शिकारी आया। उस सत्यव्रती गृहस्थ से वह शिकारी पूछता है कि एक हिरन को तुमने इधर जाते हुए देखा है? अथवा हिरन किधर गया है? वताओ! अव अगर वह सत्यव्रती उस व्यक्ति को पोशाक से या उसके व्यवहार से शिकारी जानते हुए भी सत्य-सत्य कह देता है कि हिरन इस दिशा मे गया है, चले जाओ, तो निश्चय ही हिरन की हत्या वह शिकारी कर देगा। वह मौन रह सकता है, किन्तु अगर मौन रहने से शिकारी समझ जाता है कि इसी दिशा मे गया है, यह कहता नही है तो मौन का कोई अर्थ नही हुआ। और यदि उसके मौन रहने पर वह उसे मारे-पीटे, उसकी जान लेने पर उतारू हो जाय, और इतनी सहन-शक्ति या क्षमता उस सत्यव्रती गृहस्थ मे नही है कि वह इतना सव कुछ सह ले। और वह अगर झूठ

बोलता है, तो उसका सत्यव्रत भंग होता है। ऐसी दशा मे वह अहिंसा की भावना को साथ मे रखते हुए ही सत्य को रखेगा, वह उपेक्षाभाव से कुछ कहेगा, जिससे उसका सत्य भी रहे, हिरन की हत्या भी न हो। अर्थात् अहिंसा के साथ सत्य है तो वह सत्य है, अन्यथा नही। एक व्यक्ति अन्धा या काना है, लोगो मे उसे अपमानित करने या उसका दिल दुखाने की दृष्टि से कोई कहे—"अबे अघे! अबे काने!" तो शब्दों की दृष्टि से तो यह वाक्य सत्य है, किन्तु भाव कलुषित होने से, साथ मे अहिंसा न होने से तथ्य भले ही हो, सत्य नही है।

इसी प्रकार सेवा, परोपकार, दया आदि के पीछे भावना कुटिल है, किसी की सेवा आदि करके उसका धन हडपने, उसका मकान अपने अधिकार मे करने या उसका धर्मसम्प्रदाय-परिवर्तन कराने की दुर्भावना हो तो वह कार्य अहिंसात्मक न होने से बाहर से अहिंसा दिखाई देने पर भी वहाँ अहिंसा नही है, प्रकारान्तर से हिंसा है।

अगर कोई क्रोध या आवेश मे आ कर किसी नियम, प्रत्याख्यान या व्रत को ग्रहण कर लेता है तो उसके पीछे अहिंसा न होने से वह व्रत निष्फल, दुर्व्रत है, दुर्नियम है, दुष्प्रत्याख्यान है, मोक्षफलदायक नही है। इसलिए जितने भी व्रत, नियम आदि है, उन सबके साथ पहले अहिंसा का होना अनिवार्य है।

योगदर्शन के व्यासभाष्य मे इसी बात का समर्थन किया है—

तत्राहिंसा सर्वथा सर्वभूतानामनभिद्रोहः, उत्तरे च यमनियमास्तन्मूलास्तत्सिद्धिपरतयैव तत्प्रतिपादनाय प्रतिपाद्यन्ते।"

सब प्रकार से समस्त प्राणियो के प्रति अनिष्ट चिन्तन या द्रोह न करना अहिंसा है। आगे के जितने भी यम-नियम है, उन सबका मूल अहिंसा है। वे अहिंसा की सिद्धि (प्राप्ति) के लिए है। अहिंसा के ही प्रतिपादन के लिए उनका विधान किया गया है।

इसका अर्थ यह कदापि नही कि जैनधर्म या वैदिक धर्म अहिंसा को ही महत्त्व देता है, दूसरे सत्य आदि व्रतो को नही। अपने-अपने स्थान पर सभी व्रतो का महत्त्व है। सभी व्रत उपादेय है। किन्तु कहना यह है कि अहिंसा समस्त व्रतो नियमो और त्याग-प्रत्याख्यानो की जड है। अहिंसा की विद्यमानता मे ही सत्य टिकेगा, अचौर्य टिकेगा, ब्रह्मचर्य टिकेगा अथवा अपरिग्रह की वृत्ति टिकेगी। अहिंसा इन सभी की आधारभूमि है। आधार के अभाव मे जैसे आधेय टिक नही सकता, वैसे ही अहिंसा के आधार के बिना सत्य, अस्तेय आदि टिक नही सकते। जीवन के जितने भी बडे-बडे नियम-उपनियम या व्रत-उपव्रत है, उन सब मे अहिंसा प्राण के समान है तो वे नियमोपनियम या व्रत-उपव्रत सभी जीवित है, अन्यथा उनका कोरा कलेवर ही है। इसीलिए जैनधर्म मे अहिंसा को प्राथमिकता दी है। वैसे तो अहिंसा

वहुत परिश्रम से मिलता है, इसलिए उसकी मांग ज्यादा है। जितनी मांग ज्यादा है, उतना ही सोना अधिक दुर्लभ है।

यह तो एक दृष्टान्त है, किन्तु मनुष्य-जीवन की महत्ता अवर्णनीय होती है। निचली योनियों मे अनन्त-जन्म निकल जाते है, उनमें कभी साधना का एक क्रम बनता है तो वह शनैः-शनैः विकास पाता हुआ आत्मा को मनुष्य गति की ओर अग्रसर बनाता है। एक बार मनुष्यगति मिलने का अर्थ है कि आत्मा को मुक्ति का आधार मिल गया है। पहले स्तर पर पृष्ठभूमि का मिलना और बनना बड़ा कठिन होता है। क्योंकि एक बार पृष्ठभूमि मिल जाय और फिर अन्तर्चेतना सुव्यवस्थित गति से पुरुषार्थरत बन जाय तो सर्वोच्च आत्मोत्थान की मंजिल तक पहुंचना असाध्य नही रहता। फिर थोड़ा-बहुत गिरते-पड़ते भी मंजिल की तरफ गति बनायी रखी जा सकती है।

ऐसा सर्वश्रेष्ठ मनुष्य-जीवन सर्वथा अभिनन्दनीय माना गया है, धन्य कहा गया है। आप अपने सासारिक जीवन मे अनुभव करते होगे कि जब कोई उपलब्धि आप अपने ही परिश्रम से करें तो उसके उपभोग का आनन्द कितना सुखद होता है। और तो और कभी आप अपने ही हाथ से खाना बनाएँ और फिर उसे खाएँ—तो उसका स्वाद कैसा लगता है? अपने परिश्रम का फल सबसे ज्यादा मीठा होता है, यह सबका सुपरिचित अनुभव माना गया है।

मनुष्यजीवन की सर्वश्रेष्ठता का भी यही रहस्य है कि अपने समस्त पुरुषार्थ को कर्मरत बना कर उसका सर्वोच्च फल प्राप्त कर सकने का यही एकमात्र जीवन है। ऐसी उच्चतम योग्यता प्रकट करने एव उसका परिणाम देखने के लिए दूसरा कोई जीवन नही है। भगवान् महावीर ने स्पष्ट घोषणा की है—

माणुस्सं खु सुदुल्लहं।

अर्थात्—मनुष्यजन्म सर्वथा दुर्लभ है। इसलिए विवेक की सबसे बडी अपेक्षा और सबसे बडी कसौटी भी यह मानी जानी चाहिए कि कौन इस दुर्लभ जीवन का कितना बढकर सदुपयोग करता है और उसे किस प्रकार सर्वश्रेष्ठता के लक्ष्य तक पहुंचाने का कठिन पुरुषार्थ करता है?

दुर्लभत्व का मूल्यांकन : विवेक का दिशाबोध

आप अपने सासारिक जीवन मे किसे विवेकशील मानते हैं? घर मे जितना सोना है, उसके तोल के बराबर जो लोहा ले ले, उसे अथवा घर के लोहे के बराबर जो सोना प्राप्त कर ले उसे? आप तत्काल उत्तर देंगे कि जो लोहे को सोने मे बदल दे, वही विवेकी पुरुष समझा जायगा। सोना दुर्लभ होता है, और जो कम मूल्य के पदार्थ के स्थान पर अधिक मूल्य का दुर्लभ पदार्थ संग्रहीत कर सके, वही अधिक विवेकशील माना जायगा और अधिक योग्य भी।

स्वर्ण के दुर्लभत्त्व का मूल्यांकन तो आप शीघ्रता से कर लेंगे, किन्तु मूल्यवान से भी मूल्यवान तथा दुर्लभ से भी दुर्लभ पदार्थों से भी अतिमूल्यवान एवं अति-दुर्लभ इस मनुष्यजीवन का कभी घड़ीभर बैठ कर गहराई से मूल्यांकन करते हैं आप? कितना दुर्लभ है यह मनुष्य-जीवन ? न जाने कितने पुण्य-फल के प्रभाव से यह जीवन प्राप्त हुआ है, किन्तु हम इसका मूल्य तक जानने की चेष्टा नही करते, ऐसा करके हम अपने ही साथ कितनी वड़ी आत्म-प्रवंचना कर रहे हैं ?

कमल-पत्र पर पड़े हुए ओस के विन्दु के समान यह छोटा-सा मनुष्य-जीवन न जाने कव समाप्त हो जायगा और इसे निरुपयोगी वनाये रखने के दण्ड-स्वरूप आत्मा को फिर कितनी निचली योनियों मे भटकते रहना पड़ेगा—इस पर चिन्तन न किया जाय तो कहाँ है विवेक और कहाँ है उसका दिशावोध ? पृष्ठभूमि के स्तर का भी विवेक न जागे और आत्मोत्थान की सही दिशा ही न दिखाई दे तो, फिर इस दुर्लभत्त्व का क्या मूल्यांकन हो सकेगा ? कल्पना करें कि आपके छोटे वच्चे को कही एक हीरा मिल जाय, आप उसे देख लें और इस विचार से किसी दूसरे काम मे लग जाएँ कि वच्चा खेल लेगा तो उससे ले लेंगे। इस वीच वच्चा उसे कही फेंक दे, क्योकि उसके लिए तो हीरे और कांच के टुकड़े मे कोई अन्तर ही नही होता है, और आपको पता चले कि वच्चे ने कीमती हीरा फेंक दिया है तथा खोजने पर भी मिला नही है तो वताइये कि उस समय आपके मन की क्या दशा होगी ? एक पत्थर के टुकडे के लिए आपका मन पागल हो सकता है, किन्तु अमूल्य मानव-जीवन के लिए आपके मन मे कुछ भी न हो, यह मन की कैसी पतनावस्था है ? आपको हीरे का मोल तो मालूम है, किन्तु अपने ही मनुष्य-जीवन के मूल्य का कोई भान आपको नही है ?

विवेक के इस दिशावोध को जगाइये कि आपको मनुष्य-जीवन के दुर्लभत्त्व का मूल्यांकन करना आ जाय। यह विवेक यदि एक वार जाग गया तो आप इस अमूल्य जीवन का मूल्याकन भी कर लेंगे और हम साधुओ की तरह इसका सदुपयोग करने के लिए कमर भी कस लेंगे।

रूप में इन्सान, पर स्वरूप में कितने ?

विज्ञान के इस विकास-युग मे मानवता का मानदण्ड कितना नीचे गिरा है ? इसका उल्लेख एक शायर ने इस तरह किया है—

> **सभी कुछ हो रहा है, इस तरक्की के जमाने में।**
> **मगर यह क्या गजब है कि आदमी इन्सान नहीं वनता ॥**

मानवता एवं इन्सानियत के सन्दर्भ मे वर्तमान की दुरवस्था पर विचार करें, उससे पूर्व भारत की अतीतकालीन गरिमा पर एक दृष्टिपात अवश्य कर लें, ताकि तुलनात्मक रूप से भी हम जान सके कि इस क्षेत्र मे हमारा देश कितना और क्यों पिछड़ गया है ?

यह एक निर्विवाद तथ्य है कि अपने दार्शनिक एवं सांस्कृतिक उद्भव के साथ अपनी भौतिक समृद्धि मे भी भारत का अतीत अत्यधिक गौरवपूर्ण रहा है। संस्कृति एवं सभ्यता की समुन्नति के कारण हमारे देश को विश्वगुरु माना गया तो आर्थिक सम्पन्नता के कारण अर्थ-लोलुप विदेशियो ने इसे सोने की चिडिया भी कहा। इतना सम्पन्न और समुन्नत हमारा देश क्यों बन पाया ? इसका एकमात्र कारण रहा है— हमारे यहाँ महान् विभूतियो का जन्म, उनके मानवता भरे उपदेश तथा उन उपदेशों के अनुसार सामान्य जन-जीवन मे आचरण। हमारा चरित्र एवं कथा-साहित्य इस सत्य का प्रमाण है कि अतीतकालीन समाज मे पारस्परिक व्यवहार कितना मानवता-पूर्ण तथा कितना सौहार्द्र, सहानुभूति एव सहयोग पर आधारित था ? समाज एवं वर्ग के भेदों की तब खाइयाँ नही खुदी थी और मनुष्य सबसे पहले अपने को मनुष्य समझता था, अपने साथियो का हमदर्द साथी। इसी मानवीय एवं आत्मीय वातावरण मे हमारे देश ने अद्भुत विकास किया था।

कोई चालीस-पचास वर्ष पहले के वर्तमान ग्रामीण वातावरण पर भी नजर डालें तो आपको वहाँ अतीतकालीन सौजन्यता की झलक दिखाई देगी। गाँव का सम्मान व्यक्ति बड़े से ले कर छोटे से छोटे व्यक्ति की संकट के समय सहानुभूति से सहायता करता था। गाँवो मे तब छोटे-बडे वर्गों के बीच मनोमालिन्य या द्वेष के भाव नही थे। गाँवो का स्वर्ग कुछ-कुछ भी जो बना हुआ था, उसका मूल आधार मानवीय दृष्टिकोण ही था।

किन्तु विज्ञान के विकास, आर्थिक पद्धति के परिवर्तन तथा स्वार्थ के दुर्दान्त दुष्प्रभाव ने उस मानवीय आत्मीयता की धज्जियाँ उड़ा दी। मानव अपनी मनुष्यता को नष्ट करने पर तुल गया। मानव देव होता तो नही हुआ, किन्तु बदले हुए इस कुटिल भौतिक वातावरण मे वह अपनी मनुष्यता भी नही बचा सका। आदमी की इन्सानियत गायब हो गई। आदमी केवल आदमी रह गया, बल्कि कई जगह तो वह शैतान बनने लगा।

मानव का बदलता हुआ दानवीय रूप

वैज्ञानिक प्रगति ने विश्व मे समय को छोटा कर दिया और दूरियाँ घटा दी। आवागमन के द्रुतगामी साधनों से दूरस्थ प्रदेशो के निवासियों का पारस्परिक सम्पर्क सहज व घनिष्ठ होने लगा। विस्तृत सम्पर्क से व्यापार-व्यवसाय तो बढ़ा; किन्तु साथ ही स्वार्थ की जटिलताएँ भी बढती गईं। व्यवहार का दायरा बढ़ा, किन्तु सहानुभूति व सहयोग का दायरा छोटा होने लगा। पहले मनुष्य छोटे कार्यक्षेत्र मे सबके साथ सौहार्द्रभाव रखता था। उसकी आय भी थोडी थी, तो तृष्णाएँ भी थोड़ी थी। कार्य-क्षेत्र विस्तृत होने के साथ-साथ धन और भोग की निजी लिप्साएँ बढ़ती गईं तथा

सहानुभूति व सहयोग की भावनाएँ घटती गईं। आर्थिक व्यवहार की नई प्रणालियों के कारण व्यवहार मे मानवीयता कम होने लगी तथा तकनीकी विधि मुख्य बन गई। इस प्रकार व्यक्ति का जो सामूहिक रूप था, वह समाप्त-सा हो गया। इसके अतिरिक्त कार्यक्षेत्र के विस्तृत होने का विपरीत परिणाम यह भी हुआ कि व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत सीमाओ मे अधिक सिकुड़ने लगा। इस बदले हुए वातावरण मे मानवता के मानदण्ड गिरते चले गये और मानव का दानवीय रूप उभर कर ऊपर आता गया। मानवता के इस विकृत रूप का शायरों ने कैसा मार्मिक व्यग प्रस्तुत किया है—

मुल्ला दुःखी, रहमान नहीं मिलता है।
पडित चिन्तित, भगवान् नहीं मिलता है।
मै दुःखी हूँ इन्सानों की इस आबादी में-
बहुत ढूँढ़ने पर भी खरा इन्सान नहीं मिलता है।

एक और मुक्तक है—

इन्सान ही कमाता है, इन्सान हीं खाता है।
इन्सान ही इन्सान के लहू से नहाता है।
लोगों ने शैतान को बेकार ही बदनाम किया।
बेचारे शैतान का तो नम्बर ही नहीं आता है।

यह मुक्तक बहुत ही मार्मिक है। आदमी से आदमी क्यों डरता है ? क्योंकि इन्सान ही इन्सान के खून से नहाता है। ऐसा क्यो हो रहा है ? इसे समझना बहुत आवश्यक है।

आर्थिक प्रणाली मे ज्यो-ज्यो जटिलताएँ बढ़ती गईं, आर्थिक शोषण के रूप भी परोक्षरूप से क्रूर बनते गये। आर्थिक एव औद्योगिक दृष्टि से जो राष्ट्र एवं राष्ट्रो मे जो वर्ग या व्यक्ति अधिक उन्नत तथा अधिक सम्पन्न बन जाते है, वे पिछडे हुए राष्ट्रो मे या पिछड़े हुए वर्गों मे तथा व्यक्तियो मे अपने पाव पसारने लगते है तथा शोषण के नये-नये तरीके ढूँढ़ कर अपनी पूँजी का संचय बढाते रहते हैं। पूँजी का सचय शोषण के बिना सम्भव नही होता। जब राष्ट्र विशाल पूँजी का संचय कर लेता है तो वह पिछड़े हुए राष्ट्रो मे अपनी पूँजी का नियोजन करता है। धीरे-धीरे पूँजी की रक्षा के बहाने वहाँ पर अपनी राजनीतिक सत्ता जमाता है और सत्ता के सयोग से वह राष्ट्र वहाँ पर ऐसी लूटमार मचाता है कि वह पिछड़ा हुआ देश सदियो के लिये गरीब भी बन जाता है। हमारा देश तो स्वय ब्रिटिश साम्राज्यवाद के शोषण का जीता-जागता शिकार रहा है। राष्ट्रो की ऐसी आर्थिक नीति के कारण संसार दो भागो मे बँट जाता है—एक तो साम्राज्यवादी देश और दूसरे उपनिवेश। आजकल आर्थिक शोषण का क्रम और बारीक हो गया है, अतः इन दो भागो को शासक और शासित नही, बल्कि शोषक और शोषित का नाम दे सकते हैं।

एक ही राष्ट्र मे गलत आर्थिक नीति के कारण वर्गों एव व्यक्तियो मे शोषण की प्रमुखता से राष्ट्रीय सम्पत्ति चन्द से चन्द हाथों मे जमा होती रहती है। अधिक से अधिक हाथ मजदूरो के होते हैं, किन्तु फिर भी वे कई बार बेकार भी रहते है। धनाढ्यो की एक ओर गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ दिखाई देती हैं तो दूसरी ओर एक-एक कोठरी मे पूरा मजदूर-परिवार खचाखच भरा रह कर जिन्दगियाँ गुजार देता है। आर्थिक विषमता का यह दयनीय चित्र मानवता की जडे उखाड़ रहा है तथा अर्थ-सम्पन्नो को दानव के रूप मे प्रस्तुत कर रहा है।

मानवता को खोजिये और जगाइये!

एक बार यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू दिन मे लालटेन ले कर शहर की गलियो मे घूमने लगे। जिसने देखा, वही उनकी इस खोज पर आश्चर्य करने लगा। नागरिक एकत्रित हो गये तो कुछ वृद्धजनो ने अरस्तू को रोका और विनम्रता से पूछा—"हे महान् दार्शनिक! सूर्य के इतने तेज प्रकाश मे भी आप लालटेन ले कर क्या खोज रहे है? सूर्य के रहते, ऐसे दिन के उजाले मे आपको लालटेन की आवश्यकता क्यों महसूस हुई?" अरस्तू ने बहुत ही शान्ति से उत्तर दिया—"मैं लालटेन लेकर इन्सान को ढूंढ रहा हूँ।"

आज के लिये यह स्थिति कितनी यथार्थता से परिपूर्ण है? वास्तव मे दिन के उजाले मे लालटेन ले कर खोजे तब भी इस जटिलतम आर्थिक शोषण के युग मे इने-गिने इन्सानों को ढूंढ निकालना भी एक भगीरथ कार्य ही होगा। जिस समाज मे आदमी अपनी मतलबखोरी के लिये, पेट और पेटी की अनैतिक पूर्ति के लिये इन्सानियत को दफना देता हैं, वह आदमी भी कहाँ रहता है—दरिन्दा बन जाता है। ऐसे दरिन्दे और दानव मानवता को रौंदते-कुचलते हुए अपने मतलबो की हविश पूरी करते रहते है।

आदमी आदमी से आज डरने लगा है, क्योंकि ताकतवर आदमी अपनी दौलत और हुकूमत की ताकत से दरिन्दा बन कर कमजोर आदमियो को कुचलता हुआ चला जा रहा है और उसका नतीजा यह होता है कि एक तबका बहुत अधिक खा कर मदहोश है तो दूसरा गरीब तबका भूख के मारे पागल है। शोषक अन्याय करता है तो शोषित प्रतिकार की शक्ति से लाचार बन कर शोषक से भयभीत रहता है। एक शेर है—

आदमी से आदमी डरने लगा, आदमी बेमौत अब मरने लगा।
दुश्मनों से दोस्ती तो अब दूर है, दोस्तों से दुश्मनी करने लगा।

समाज की इस अनैतिक एवं शोषक परिस्थिति का परिणाम स्पष्टतः मानवता के ह्रास के रूप मे ही सामने आया है। जब मानव मे मानवता का ही अभाव होगा

तो वह धर्म के पथ पर कैसे चलेगा ? वह क्योकर महापुरुषो के आदर्शों को याद करेगा तथा अपने जीवन में तदनुकूल सुधार करने का प्रयत्न करेगा ? एक भावुक कवि ने इस स्थिति पर अपनी भावना यों व्यक्त की है—

कौन सुनेगा आज यहाँ पर-पीर को।
भूल चुका है आज मनुज, श्रीराम, कृष्ण महावीर को ॥
कभी जटायु की सेवा में, राम बाले-बाले जाते थे,
घायल पक्षी को गोदी में ले, आँसू टपकाते थे।
आज खड़ा है भाई आगे, भाई ले शमसीर को ॥
कभी सुदामा के चावल खा, नटवर हर्षित होते थे,
दीन-हीन ब्राह्मण के पग को, नयन नीर से धोते थे।
आज दुःखी को ठुकराते हैं, धिक्कारें तकदीर को ॥
कभी वीर चन्दनबाला से, उड़द बाकुले पाते थे,
चंडकोशिया के विष के बदले अमृत बरसाते थे।
आज मनुज बरसाते हैं कटु वाणी के विष तीर को ॥

इसी सन्दर्भ मे एक मुक्तक है—

किसको चिन्ता है, आज मानवता जी रही है या मर रही है ?
विदेशों में भारत की तस्वीर कैसी उभर रही है ?
विलासपूर्ण कोठियों में आराम करने वाले नेताओ—,
जरा गरीब झोंपड़ियों से पूछो कि उन पर क्या गुजर रही है ?

यह चिन्तनीय चित्र है, आज के विषम भारत का, वर्तमान विषमय विश्व का, जहाँ मानवता असीम पीड़ा से कराह रही है। प्रबुद्ध जनों को आह्वान है कि मानवता की खोज करें एवं जन-जन से मानवता को जगावे। यह कार्य कठिन अवश्य है, किन्तु है स्व-परकल्याण का पुनीत कार्य।

मानवता को जगानी होगी, महापुरुषों के आदर्श-स्मरण से !

आज के इस घोर अमानवीय वातावरण मे यदि मानवता को जगानी है तो हमे महापुरुषों के आदर्श जीवन-चरित्रो का ही आश्रय लेना होगा। उनके मानवीय आदर्शों का स्मरण करने से ही मानवता का भाव प्रबल एवं प्रखर बन सकेगा। ऊपर जो गीत—"कौन सुनेगा आज यहाँ पर पीर को" मैं सुना गया हूँ, उसमे प्रतीक-रूप श्रीराम, श्रीकृष्ण तथा भगवान् महावीर के ये ही आदर्श प्रस्तुत किये गये है। हमारे यहाँ मानवता की मर्यादा, कर्मण्यता एव उच्चता के रूप मे इन तीनों महा-पुरुषो के जीवन चरित्र पूजनीय माने गये हैं और इस दृष्टि से हम इन महापुरुषो के आदर्श-स्मरण से मानवता को जगाने का बीड़ा उठाएँ और प्राणपण से जुट जाएँ तो सफलता अवश्य ही हमारे चरण चूमेगी।

इन तीनों महापुरुषो के जीवन-चरित्रो की एक-एक झांकी पूर्वोक्त गीत मे दी गई है।

श्रीराम की मानवता उस समय मर्यादाओ से भी महान् बन गई, जब उन्होंने घायल जटायु को अपनी गोद मे उठा लिया और उसकी अश्रुधारा के साथ सेवा करने लगे। मनुष्य क्या-पक्षी के साथ भी उन्होंने आत्मीयता का व्यवहार किया। और आज के आदमी-श्रीराम के कहलाने वाले भक्त—जब भाई-भाई के बीच तलवारे खींच लेते है, और एक दूसरे के खून के प्यासे बन जाते है, तब क्यो नही चेतना का स्वर जागता है ? और गिरी हुई मानवता को उठाने के लिए वे चरण क्यो नही गतिशील बनते है ?

जब राम ने जटायु को घायल अवस्था मे देखा था, उस समय सीता के वियोग की घडियाँ थी। राम सीता की खोज मे घूम रहे थे, तभी उन्हें आहत जटायु मिला—पंख कटे हुए थे, खून वह रहा था, देखते ही राम के हृदय-हिमाद्रि से करुणा की गंगा बह निकली। वे एक बार तो सीता को भी भूल गये और पक्षी की सेवा मे समर्पित हो गये। गोस्वामी महाकवि तुलसी के शब्दों मे राम बोलने लगे—

जल भरि नयन कहे रघुराई।
तात ! करम ते निज गति पाई॥

आपसे पूछ लूं कि आप बाजार मे जा रहे हो, आपका दस का नोट गिर जाय और आप उसे ढूंढने लगे। एक अन्य व्यक्ति भी सहानुभूतिवश आपका नोट ढुढवाने लगे और दुर्योग से उसको एक्सीडेंट हो जाय तो बताइये आप पहले उसकी सेवा मे लगेगे या नोट ही ढूंढते रहेगे ? कही ऐसा तो नही बोल पड़ेगे कि—

मस्त रहो मस्ती मे, आग लगे बस्ती मे।

वास्तव मे स्वार्थवादिता जब सीमा से आगे बढ जाती है, तब घोर अमानवीयता उत्पन्न हो जाती है। इसलिए श्रीराम को याद करे एक मर्यादापुरुष के रूप मे तथा उनकी मर्यादाएँ अपने जीवन मे उतारे।

कर्मयोगी श्रीकृष्ण और श्रमणशिरोमणि महावीर के मानवता के आदर्श

दूसरा चित्र लीजिए श्रीकृष्ण के सुदामा-प्रेम का। बचपन का मित्र गरीब ब्राह्मण सुदामा सहायता की आशा ले कर त्रिखंडपति वासुदेव श्रीकृष्ण के प्रासाद मे पहुँचता है तो द्वारपाल से आगमन का पता लगते ही श्रीकृष्ण स्वयं दौड़े आते है और सुदामा से गले लग कर मिलते है। यही नही, स्वयं सुदामा के कंटकाकीर्ण पैरों को धोने के लिए बैठ जाते है। कवि की ही भाषा मे उस समय के श्रीकृष्ण के सुदामा-प्रेम को सुनिये—

पानी परात को हाथ छुयो नहिं।
नैनन के जलसों पग धोए॥

यही नही, सुदामा के चावल की दो मुट्ठियाँ खा कर दो लोक का राज्य तो उसे दे ही दिया—यदि रुक्मिणी न रोकती तो वे तो तीसरी मुट्ठी भी खाने वाले थे। वताइये, दीन-हीन मानवता के उद्धार के लिए श्रीकृष्ण ने अपने को राह का भिखारी वनाने का निश्चय कर लिया। त्याग का कितना वड़ा आदर्श उदाहरण है ?

और वर्तमान मानव की स्थिति भी तोल लीजिये। वैभव के नशे मे आज का मानवताहीन मानव क्या-क्या दुष्कृत्य नही करता ? वह भूल जाता है कि मनुष्यता के नाते मानव-मानव भाई और साथी होता है। श्रीकृष्ण का आप इस तरह स्मरण करेंगे तो अवश्य ही मानवता आपके हृदय मे जागृत होगी।

तीसरा चित्र आपके सामने प्रस्तुत है—भगवान् महावीर की अनन्त करुणामय मानवता का; जिसका प्रवाह क्या मनुष्य और क्या पशु-पक्षी—सवको समानरूप से मानवता के सुकोमल भावों से विगलित करता रहा है। सेठानी की क्रूरता से पीडित चन्दनवाला के हाथ से उड़द के वाकुले ले कर अपनी अभिग्रहमय तपस्या पूरी करके दु.खी मानवता के उद्धार के लिए अपना हाथ आगे वढ़ाया। महान् विषधर चंडकौशिक की वाँवी पर ध्यानस्थ खडे होकर उसके विष के वदले मे उसको उद्‌वोधन का अमृत पिला कर उसका उद्धार ही कर दिया। सर्प का जहर उन्होंने लिया और वदले मे उसे अमृत दिया।

भगवान् महावीर के शिष्यो ! आप अपने जीवन को देखिये—गहराई से देखिये और ज्ञात कीजिये कि आप अपने प्रत्येक कार्यक्षेत्र मे दूसरे का विष पीते हैं या विष फैलाते है ? दूसरो के जहरभरे डंक मारते है या कभी किसी के डंक की पीडा उसके घाव को चूस कर कम भी करते है ? यह तो अपनी आत्मा से ही पूछिये, किन्तु मेरी समझ मे उत्तर अधिक आशाजनक नही मिलेगा। तो हम भगवान् महावीर के शिष्य क्यों कहलाते है ? जिन्होने मनुष्य पर ही नही, सम्पूर्ण प्राणियो पर भी अपनी अनन्त करुणा का अमृत वरसाया, उनके भक्त कहला कर मानव-मानव के साथ सद्‌भाव एव सहयोग का व्यवहार करने मे भी पिछड जाय, यह कितनी लज्जाजनक स्थिति है ?

आदमी-आदमी से डरे नहीं, आदमी-आदमी से मोहब्बत करे

इन्सानियत की जड़ है कि आदमी-आदमी से मोहव्वत करे, ऐसी मोहव्वत करे, ऐसी मोहव्वत कि वह उसका भाई और दोस्त है। आदमी आदमी से न तो डरे और न ही आदमी-आदमी को डराने कि हिमाकत करे। चारो ओर से जव ऐसा वातावरण वनाया जाने लगेगा, तभी इन्सानियत की जडें जमने लगेगी। मानवता के विकास का यही मार्ग है।

गौतमवुद्ध से एक वार एक भक्त ने पूछा—'प्रभो, एक व्यक्ति निरन्तर आपके नाम की माला फेरता है और दूसरा व्यक्ति विना आपका नाम लिये हर वक्त दुःखियो

की सेवा-सुश्रूषा मे लगा रहता है तो आपकी दृष्टि में कौन बडा भक्त है? बुद्ध ने तुरन्त निःसंकोच उत्तर दिया—'वह मेरा बड़ा भक्त है जो दुःखियो की सेवा मे लगा रहता है।'

यही सत्य भगवान् महावीर ने भी प्रकट किया था—

जे गिलाण पडियरई, से धन्ने।

अर्थात् जो दुःखियो की सेवा करता है, वह धन्य है।

जीवन के प्रत्येक पल मे मानवता को जगाने, मानवता को बनाये रखने तथा मानवता की सेवा मे जुटे रहने को सभी महापुरुषो ने एकस्वर से सबसे बड़ा धर्म बताया है। यदि इस प्रकार मानव प्रेम की एक धारा मे सब लोग अवगाहन करने लगे, तो विश्व मे अनाथ बनी हुई मानवता का परम उद्धार हो जाय।

दुर्लभ मानव-जीवन को मानवता से सजाइये, सँवारिये !!

पुण्ययोग से प्राप्त इस दुर्लभ मानव-जीवन को व्यर्थ न बनाएँ। मानवता के कोमल भावों से इस जीवन को यो सजाइये व सँवारिये कि आत्मा का स्वरूप उज्ज्वलतर बन सके और ईश्वरत्व-सिद्धत्व की दिशा मे वह अग्रसर हो सके। मानव-जीवन की सार्थकता अपने और दूसरो के मानव-मन को जगाने मे है, ताकि सब ओर जागृति की शंख-ध्वनि फूट पड़े। □

19

शानदार मरण,
शानदार जीवन !

□ □

प्रत्येक प्राणी को मृत्यु आती है, और मृत्यु के वाद नई जिन्दगी भी मिलती है। जन्म और मरण का यह चक्र तव तक चलता रहता है, जब तक वह कर्मो से सर्वथा मुक्त नही हो जाय। किन्तु जो मनुष्य मृत्यु को जीवन की सखी मान कर उससे डरता नही, वल्कि उसे अपने जीवन सुधारने, आत्मालोचन और आत्मशुद्धि करने का उत्तम साधन मान लेता है, उसकी मृत्यु भी शानदार होती है, उसकी मृत्यु के क्षण शोक, भय, चिन्ता, प्रमाद एवं राग-द्वेष-मोह आदि से वहुत ही दूर होते है। और यह भी सत्य है कि जिसकी मृत्यु शानदार होती है, उसका जीवन भी शानदार माना जाता है, क्योकि मृत्यु तो समग्र जीवन का पूर्णविराम है, सारे ही जीवन का लेखा-जोखा या उपसहार मृत्यु के समय आ कर होता है। मृत्यु ही मानवजीवन की उष्मा को नापने का थर्मामीटर है। जीवन और मृत्यु के इन समस्त तथ्यो को भलीभाँति जानने-पहिचानने के लिए पढ़िए मुनिश्री का गम्भीर तथ्यो से ओतप्रोत ओजस्वी प्रवचन·······

१६

शानदार मरण,
शानदार जीवन !

□ □

आगाह अपनी मौत का कोई बशर नही।
सामान सौ बरस का, पल की खबर नही ।।

एक बार एक राजा ने विचार किया कि वह मृत्यु को अपने समीप तक आने का कोई अवसर ही नही देगा और इस विचार से उसने एक ऐसे सुदृढ दुर्ग का निर्माण करवाया, जिसमे छोटे से छोटा जीव भी प्रवेश नहीं कर सकता था। चारो ओर की सुरक्षा की मजबूत व्यवस्था भी बनायी गई। उसके बाद वह राजा उसमें रहने लगा। वह आश्वस्त हो गया कि उसने अपनी मृत्यु को परास्त कर दिया है। वह अपने आप मे अपने जीवन के प्रति सन्तुष्ट हो कर उस दुर्ग मे निश्चिन्तता से रहने लगा।

एक सन्त को वह राजा एक बार सम्मानपूर्वक अपने दुर्ग मे ले आया। दुर्ग की रचना एव वहाँ की कठोर सुरक्षा-व्यवस्था देख कर सन्त को कुछ आश्चर्य हुआ। उन्होंने राजा से पूछा—"आपने अपनी रक्षा की ऐसी कठोर व्यवस्था क्यो की है ? क्या किसी शक्तिशाली राजा के आक्रमण का भय है ?' राजा ने उत्तर दिया—"नहीं महाराज, मेरे से युद्ध करने का किसी भी राजा मे साहस नही है। मैं सबको अपने अधीन कर चुका हूं।" सन्त ने कहा—"फिर आपको किसी बात का भय है ?" राजा का मुख लज्जा से आरक्त हो उठा, वे बोले—"महात्मन् ! भय तो क्या है, किन्तु मैं

मृत्यु को अपने तक नही पहुँचने देना चाहता हूँ, अतः मृत्यु के लिये ही मैंने ऐसी कठोर सुरक्षा-व्यवस्था की है।"

सन्त यह सुन कर हँस पडे, वोले कुछ नही। राजा मर्माहत-सा हो कर पूछने लगा—"आप मेरी वात पर हँसे क्यों, महाराज ?" सन्त ने कहा—"मैं तुम्हारी वात पर नही, तुम्हारी मूर्खता पर हँसा हूँ, राजन्! मृत्यु से वढकर निश्चित स्थिति संसार मे अन्य कोई नही होती। जो जन्मा है, उसका मरण निश्चित है। मृत्यु से तुम्हें न यह दुर्ग वचा सकता है, न कठोर सुरक्षा-व्यवस्था। मृत्यु जव आयेगी, तव एक पल की भी रियायत नही मिलेगी।"

राजा हतप्रभ-सा खड़ा सन्त का मुख निहारता रहा। उसके मुह से वोल तक नही फूटा।

और कुछ अनिश्चित हो सकता है, मृत्यु को एकदम निश्चित मानिये!

मैं आपसे पूछूँ कि क्या आप भी राजा की तरह ही सोचते है या सन्त की वात आपके गले उतरती है ? सोचने की वात तो आप जानें, किन्तु आप लोगो के आचरण को देख कर यही अनुमान लगाया जा सकता है कि आप सांसारिक तृष्णा मे गले तक डूवे हुए है तो मृत्यु के वारे मे सोचते ही कहाँ है ? रात-दिन सौ-वरस का सामान जुटाने मे अपनी सारी सुधवुध खो कर लगे हुए हैं; विना यह ख्याल लाये कि हकीकत मे एक पल की भी खवर नही है। यह विडम्वनापूर्ण मनःस्थिति है। यदि आप जीवन मे सावधान रहना चाहते है तथा सावधानी के साथ जीवन का विकास साधना चाहते है तो आपको सन्त की ही वात पर गहराई से सोचना पडेगा। संसार मे और कुछ भी अनिश्चित हो सकता है, किन्तु आप मृत्यु को एकदम निश्चित मानिये। अँग्रेजी में कहा जाता है—

Nothing is sure, than death.

अर्थात्—मृत्यु से अधिक सुनिश्चित कुछ भी नही है। हम देखते है कि कई वार निश्चित से निश्चित घटना भी घटने से रह जाती है और अनिश्चित घटना अकस्मात् घट जाती है। मृत्यु कब आयेगी, इसका ज्ञान तो प्रत्येक को नहीं होता, किन्तु मृत्यु एक दिन आयेगी अवश्य, इसमे किसी को रत्तीभर भी शका की गुंजाइश नही है। जिसने जन्म लिया है, वह एक दिन मरेगा ही, इस तथ्य मे सन्देह को कोई स्थान ही नही है।

भारत के दार्शनिको एवं संस्कृतिविदों ने जीवन की अनित्यता एवं क्षणभंगुरता के विषय मे वहुत कुछ कहा है। जैनसूत्र की यह उक्ति है—

अणिच्चे जीवलोगम्मि!

अर्थात्—इस संसार मे जीवन अनित्य है—जन्म और मरण का चक्र निरन्तर

चलता ही रहता है । जन्म के वाद मरण एवं फिर नया जन्म यह संसार का क्रम है । यह क्रम तव तक चलता रहेगा, जव तक आत्मा कर्म-वन्धन एवं फलभोग के गतिचक्र मे भ्रमण करती रहेगी । आत्मिक शक्तियाँ जव तक दवी रहती है, आत्मा कर्मो की शक्ति द्वारा भव-भ्रमण करती है । किन्तु जव आत्मा क्रिया से हट कर कर्त्ता का रूप धारण करने लगती है तथा अपनी आन्तरिक शक्तियों को तेजस्वी वनाती है तव कर्मों की शक्ति का क्षय होने लगता है । कर्म ज्यो-ज्यों क्षय होते है, आत्मा का स्वरूप निखरने लगता है । आत्मा जव कर्म-वन्धन से मुक्त हो जाती है, तव वह मृत्यु को भी जीत लेती है, अमर वन जाती है ।

मृत्यु से कभी डरें नहीं, उसे सदा अपने सामने रखें !

मृत्यु आयेगी—अवश्य आयेगी और वह किसी क्षण आ सकती है । अतः मेरे वताने का अभिप्राय यह नही कि आप मृत्यु से भय खाने लगे । जो निश्चित आने वाली है, उससे भय कैसा ? मै मृत्यु को जो अपने सामने रखने की वात कह रहा हूँ, उसका तात्पर्य यह है—आप अपनी आँखें वन्द करके सासारिकता मे रच-पच नही जाँय, वल्कि सतत सावधान रह कर मृत्यु के आने से पूर्व ही अपने जीवन-विकास की साधना करने मे सतर्क वन जाय । मृत्यु को सदा अपने सामने रखने का अर्थ है—सतत सतर्कता । प्रश्न होता है, जव मनुष्य यह चित्र हरदम देखें कि सामने मृत्यु है, जो किसी भी क्षण इस जीवन को समाप्त कर सकती है, तो मनुष्य आखिर क्या करे ? मृत्यु का विचार करके वह जीवन की अनित्यता एवं क्षणभंगुरता को समझे तथा जीवन के सुन्दरतम सदुपयोग की वात को सोचे और उस पर अमल करे । जव यह वात हृदयगम हो जाय कि हमारी प्राप्त वस्तु हमसे किसी भी समय छिन सकती है तो मानस यही वनेगा कि अल्पतम समय मे उस वस्तु का अधिकतम सदुपयोग कर लिया जाय ।

धर्मशास्त्रो ने भी इसी मनःस्थिति का समर्थन किया है—

अनित्यानि शरीराणि, विभवो नैव शाश्वतः ।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः, कर्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥

यह शरीर अनित्य है—क्षणभगुर है । यह सारा वैभव एव ऐश्वर्य भी शाश्वत नही है—नश्वर है । प्रतिदिन मृत्यु सिर पर मंडरा रही है । ऐसी अवस्था में धर्माचरण मे मन लगाना चाहिए । प्रतिपल सजग रहते हुए धर्मसंग्रह की प्रवृत्ति होनी चाहिए ।

मृत्यु से इसलिए नही डरना है कि मृत्यु शरीर की होती है, आत्मा की नही । पुराना वस्त्र छोड कर जैसे आप नया वस्त्र धारण कर लेते है, वैसे ही यह आत्मा मृत्यु होने पर पुराने चोले को छोड कर नये जन्म मे, नये चोले मे प्रवेश कर

लेती है। और 'मैं' जो है, वह शरीर नही, बल्कि आत्मा है। ऐसी दशा में 'मै' तो मरता ही नही है, मरता है, केवल शरीर, जो आत्मा से पृथक् होता है। इस प्रकार मृत्यु अपना तो कुछ छीनती नही है, फिर उससे डरना कैसा ? वह जब भी आए, निरपेक्षभाव से उसको वरण करने की मन की तैयारी होनी चाहिए।

मृत्यु को सदा अपने सामने रखने की मूलभूत उपयोगिता यही है कि इस जीवन मे जो कुछ सत्कार्य करने का अवसर मिला है, उसे तुरन्त सम्पन्न कर ले, अन्यथा मृत्यु उस अवसर को छीन लेगी। इसलिए प्रत्येक क्षण का लाभ बुद्धिमान व्यक्ति को उठा लेना चाहिए। यह अवसर व्यर्थ मे ही हाथ से निकल नही जाना चाहिए। इस सतत जागरूकता के लिए अवसर छीनने वाली मृत्यु को यदि अपने सामने रखेंगे तो उस अवसर के सदुपयोग मे निष्क्रियता नही आ सकेगी। क्रियाशीलता को गतिशील बनाये रखने के लिए निरन्तर मृत्यु का ध्यान आवश्यक है।

मृत्यु सिर पर मँडराती है, किन्तु मनुष्य का मन कहाँ मँडराता है ?

यह जानते हुए भी कि मृत्यु प्रतिपल सिर पर मँडरा रही है और न जाने किस पल मे हमारी इस जीवनलीला को समाप्त कर देगी, मनुष्य का मन कहाँ मँडराता है ? वह धर्मसंग्रह मे प्रवृत्त न हो कर विषयों के बीहड मे भटकता रहता है।

एक जैनकथा है कि मेहतारज कुमार अपने पूर्वभव मे मुनि थे और उनके एक साथी मुनि भी था—दोनों साथ-साथ धर्मसग्रह के कर्त्तव्य मे प्रवृत्त थे। दोनो मुनियो का नाम ईश्वर और गोविन्द था। ईश्वर ने तो साधु-धर्म का विशुद्ध भाव से पालन किया, किन्तु मेहतारजकुमार के जीव गोविन्द ने साधुधर्म के कठिन कष्टों से आकुल बन कर सासारिक सुखों की वाछा की। किन्तु दोनों ने एक-दूसरे की आत्मालोचना सुनी और भविष्य मे भी विकृति के समय एक-दूसरे को सावधान करके सयम-पथ पर लाने की परस्पर प्रतिज्ञा की। इस जन्म के बाद ईश्वर का जीव तो सप्तम देवलोक मे देवरूप मे उत्पन्न हुआ तथा गोविन्द का जीव मनुष्यजन्म मे मेहतारजकुमार के रूप मे। वैसे मेहतारज का जन्म तो एक मेहतर के घर मे हुआ था किन्तु देव बने हुए पूर्व मित्र ईश्वर का उपयोग लग जाने से उसने दो नवजातो की अदला-बदली कर दी और मेहतारज को एक कोटिपति के घर पहुँचा दिया।

मेहतारजकुमार ने यौवन की देहरी पर अपना पैर रखा ही था कि एक दिन देव उसके सामने प्रकट हुआ तथा सारी भूमिका बांध कर उसने कहा—

'मेहतारज ! एक-दूसरे को सावधान करने की हमने प्रतिज्ञा ली थी और इसी कारण मैं तुमको सचेत करने आया हूँ कि तुम इन सांसारिक सुख-भोगो को त्याग कर संयम-पथ पर आगे बढ़ो, क्योंकि मृत्यु कभी भी इस अवसर को समाप्त कर सकती है।

मेहतारज कुमार का मन भी कहाँ माना ? उन्होंने कहा—"हे उपकारी देव, मैं तुम्हारा आभारी हूँ, किन्तु अभी तो मेरा आठ सुकुमारियों से पाणिग्रहण होने वाला है, कुछ संसार के सुख भोग लूं तो उन्हे त्यागूं, इसलिए मुझे कुछ समय वाद सचेत करना। देव चला गया और मेहतारज संसार के सुख-भोग मे तल्लीन हो गये। वारह वर्ष वाद देव पुनः आया तो मेहतारज की पत्नियों की दयार्द्र विनति सुन कर उसने वारह वर्ष का समय और दे दिया। किन्तु पुष्प-शय्या मे सुन्दर सुकुमार पत्नियो के साथ क्रीड़ा करते हुए यह दीर्घ-समय भी किंचित् मात्र प्रतीत नही हुआ। फिर जव देव आया और उसने गम्भीर चेतावनी दी तो मेहतारज दीक्षा लेने को तैयार हुए।

कहने का तात्पर्य यह है कि सासारिक वितृष्णाओं के दल-दल में फँसकर मनुष्य का मन वहाँ से निकलने को तैयार नही होता। उसे वहा से निकालने के लिए दृढ इच्छा एवं कठोर नियन्त्रण की आवश्यकता होती है।

अमूल्य जीवन का सन्देश : एक पल के लिए भी प्रमाद मत करो !

जीवन का एक-एक पल नपा-तुला होता है, वह घटता-वढता नही है। भगवान् महावीर भी आयुष्य को एक पल के लिए आगे नही वढ़ा पाए। इन्द्र ने उनसे अपना आयुष्य वढ़ाने की प्रार्थना की तो महावीर ने कहा-मृत्यु को मैं तो क्या, अनन्त तीर्थंकर भी टाल नही सकते हैं। जिस पल मृत्यु आयेगी, वह जीवन-लीला को समाप्त कर ही देगी, उसे कोई भी शक्ति रोक नहीं सकती।' इसी विचार से भगवान् ने इन्द्र से कहा कि—

इन्दा ! न एवं भूयं न एवं भव्वं, न एवं भविस्सई।

अर्थात्—हे इन्द्र ! ऐसा न हुआ है और न वर्तमान मे होता है, न कभी हो सकेगा। मृत्यु को इस निश्चिन्तता के सन्दर्भ मे ही भगवान् महावीर ने जीवन के एक पल को भी प्रमाद आलस्य मे न खोने का निर्देश दिया। गौतम के पूछने पर उन्होंने कहा—

समयं गोयम ! मा पमायए।

हे गौतम, समय (कालखड का सवसे छोटा अविभाज्य अंश) मात्र के लिए भी प्रमाद मत करो। जितने भी पल प्रमाद मे विताये जायेंगे, वे व्यर्थ चले जायेंगे। यदि प्रमाद नही किया जाय तो उन पलो को जीवन-विकास के महत्कार्य मे सुनियोजित करके जीवन को सार्थक किया जा सकेगा।

जैसे सोना एक कीमती धातु होता है तो उसकी एक-एक रत्ती का हिसाव किया जाता है। इसी प्रकार यह मानवजीवन तो अत्यन्त ही अमूल्य है, इसके एक-एक पल का लेखा-जोखा नही किया तो यह भी वुद्धिहीनता का कार्य होगा। एक कवि ने इसी दृष्टि से कहा है—

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में प्रलय होइगी, बहुरि करेगो कब ?

जीवन थोडा है और उसके उत्थान का कार्य बहुत अधिक है। अतः यह महत्त्वपूर्ण कार्य तभी सफलतापूर्वक सम्पन्न किया जा सकता है, जबकि जीवन के एक-एक क्षण का पूर्णतया सदुपयोग किया जाय।

किन्तु मनुष्य का मन जब प्रमाद में डूब जाता है और वह मृत्यु को भूल जाता है, तब वह समझने लगता है कि संसार के सुख-भोग ही आनन्दकारी है तथा उनका सदा उपभोग करते रहना चाहिये, मानो उसे अखूट जीवन मिला हो, वह बोल उठता है—

आज करे सो काल कर, काल करे सो परसों।
इतनी जल्दी क्या मची, अभी जीयेंगे बरसों॥

हँसी आती है ऐसे बोल सुन कर—जब नादान इन्सान जिन्दगी के बरसों बने रहने की बात करता है, क्योकि वह इस हकीकत को भूल जाता है कि एक पल की भी खबर नही है। इस पल जिन्दगी है तो अगला पल मौत का हो सकता है। एक शायर का शेर है—

आगाह अपनी मौत का, कोई बशर नहीं।
सामान सौ बरस का, पल की खबर नहीं॥

यह नादान इन्सान जब जिन्दगी मे बेखबर हो कर चलता है, यह मानकर कि अभी तक तो बरसों जीना है, भोग-विलास और प्रमाद मे डूब जाता है, तो वे बरस आते नही और जब वह यहाँ से कूच करता है तो पापों की गठरी का बोझ ले कर ऐसी दुर्गति मे फस जाता है, जहाँ जीवन-विकास का द्वार अनन्त-अनन्त काल के लिए बन्द हो जाता है। एक पश्चात्ताप रह जाता है कि सर्वोच्च उत्थान के लिए मानव-जीवन के रूप मे जो स्वर्णावसर प्राप्त हुआ था, वह उसने नादानी मे खो दिया। पश्चात्ताप का कुसमय उसी के सामने आता है, जो अवसर रहते हुए अपने विवेक को जागृत नही रख पाता है तथा पुरुषार्थहीन रह कर अमूल्य अवसर को अनजाने मे समाप्त कर देता है।

करना है सो करले अथक गति से, आनन्दों से झोली भर ले स्वस्थ मति से

यह मानव-जीवन नश्वर है, प्राप्त वैभव भी नश्वर है और यह अपनी देह भी नश्वर है। इस सारे नश्वर वातावरण के बीच मे अनश्वर है हमारी आत्मा, अनश्वर रहेगा इस आत्मा का विकास। इसलिए इस दिशा में जो कुछ करना है, अथक गति से कर ले और अपने मन तथा अपनी बुद्धि को स्वस्थ एवं सुस्थिर रखते हुए अनन्त आत्मिक आनन्द से अपनी झोली भर लें। यदि यह अवसर चूक गये तो कौन जाने फिर ऐसा सुअवसर मिलेगा भी या नही। एक भावुक कवि ने कहा है—

क्या विश्वास किया जाए, इन आती-जाती साँसों का ।
कितना मूल्य गिना जाए, नित के रुदन औ परिहासों का ।
जो कुछ करना है जल्दी कर ले, कल की पक्की आस नहीं ।
साँस चल रहा तरल पवन-सा, पलभर का विश्वास नहीं ।

कवि का स्वर अत्यन्त मार्मिक है—मन के अन्तस् को छूने वाला है कि इन साँसों का क्या विश्वास ? गया हुआ समय फिर आता नही और आने वाला समय फिर आयेगा या नही—इसकी कोई गारण्टी नहीं । इसीलिए कवि ने चेतावनी दी है कि कुछ कर गुजर, वरना यह जिन्दगी तो प्रतिपल गल रही है । कल की आशा रख कर वैठे रहने से कही करने का अवसर ही समाप्त न हो जाय—कल आए ही नही । मृत्यु किस पल मे किस जीवन को दवोच लेगी, इसका कोई ठिकाना नही ।

एक वार एक मित्र अपने वीमार मित्र को देखने के लिए अस्पताल मे गया । वीमार मित्र खाट पर लेटा हुआ था । मित्र को आया देख कर गद्‌गद् हो गया, किन्तु कुछ खिन्न हो कर वोला—"मित्र ! माफ करना, मैं तुम्हारी अगवानी में खड़ा होना चाहता था, किन्तु क्या करूँ, मुझसे तो उठा ही नही जाता है ।" किन्तु दूसरे ही दिन जव वह फिर अपने मित्र को देखने अस्पताल पहुँचा तो खाट खाली थी, उसका मित्र परलोकवासी हो चुका था । यह दृश्य देख कर वह वोल उठा—

कल तो कहते थे कि विस्तर से उठा जाता नहीं ।
और आज दुनिया से ही चले जाने की ताकत आ गई ॥

उस व्यक्ति का मृत्यु का क्षण अत्यन्त ही भयावह होता है, जो जीवनभर भोग और प्रमाद मे पड़ा रह कर यह सोचता है कि अभी क्या है ? धर्म का आचरण समय आने पर कर ही लेंगे और जव उसकी मृत्यु उसके सामने आ जाती है, तव वह हक्का-वक्का-सा रह जाता है । उस समय सोच ही नहीं पाता कि अव क्या करूँ ? जीवन के अन्तिम क्षणो मे सारा जीवन चलचित्र की भाँति जव स्मृति-पटल पर घूमता है तो उस व्यक्ति के मुँह से सर्द आह निकल जाती है कि वह चाहते हुए भी जीवन मे कोई सत्कार्य नही कर सका तथा उसका सारा जीवन निरर्थक चला गया । अन्तिम क्षणों का वह पश्चात्ताप उसे झकझोर देता है । अतः जीवन को सही तौर पर जीने का दृष्टिकोण हमेशा सामने रखना चाहिए तथा उस दिशा मे क्रियाशीलता भी सजग वनी रहनी चाहिए । विवेक, आस्था और कर्मठता यदि जीवन के साथ जुड़े रहें तो उस व्यक्ति को पछताने की जरूरत नही रहती । जीवन के प्रत्येक क्षण का सदुपयोग उसे निष्ठावान वनाये रखेगा ।

जीवन में भी मौत आती है, और मौत के वाद भी जीवन होता है !

जीवन मे भी मौत आती है और मौत के वाद भी जीवन होता है, इस उक्ति

को सुनकर चौंकिये मत । एक अपेक्षा से यह भी सत्य है । आप जी रहे है, आपका जीवन चल रहा है, यानी आपके शरीर की सांसें चल रही हैं, लेकिन आपकी जिन्दगी मे ऐसी मुर्दानगी छाई हुई हो कि आपका जीवन निस्तेज दिखाई दे, तो भला ऐसा जीवन भी कोई जीवन होता है ? आप लोग ही कहते हैं कि ऐसे जीवन से तो मौत अच्छी । किसी जीवन मे छाई हुई ऐसी हीन निष्क्रियता को ही मैं जिन्दगी रहते ही मौत की उपमा देता हूं । ऐसे निरर्थक जीवन का ही दूसरा नाम मरण है । शरीर से जीने वाला, किन्तु आत्मा से मरा हुआ व्यक्ति वास्तव में मरा हुआ ही समझा जाता है ।

आपके घरों मे जब कोई नया जीव जन्म लेता है तो आप खुशियां क्यों मनाते है ? इसीलिए कि एक नये जीवन ने जन्म लिया है—वह बड़ा होगा और कुछ ऐसा कर गुजरेगा, जिससे आपका, परिवार का, राष्ट्र का और विश्व का नाम रोशन होगा । नये प्राणी के प्रति अनेक आशाएँ बांधी जाती है और ये आशाएँ उसकी कर्मठता जगाना चाहती है । खुशियां इसी सन्दर्भ मे मानी जाती है कि नई दुनिया मे आया हुआ आदमी कर्मठता के पथ पर चल कर स्व-पर-कल्याण के सत्कार्य मे नियो-जित होगा । ऐसे कर्मठ व्यक्ति ही जीवन को प्रकाश की रेखाओं से सुसज्जित बनाते है ।

और यह सही है कि प्रकाशमान जीवन जीने वाले अपने यशरूपी शरीर से मृत्यु के बाद भी जन-जन के मन में जीवित रहते है । इसे ही मैं मौत के बाद जीवन की संज्ञा देना चाहता हूं । वैसे मृत्यु के बाद आत्मा नया जन्म लेती ही है, जब तक कि वह मुक्त न हो जाय । किन्तु यह यशस्वी जीवन तो इसी जीवन का क्रम बन कर सारे संसार की अनुभूति मे आता है । महान् एवं कर्मठ व्यक्तित्व अपनी मृत्यु के बाद भी संसार को जीवन की प्रेरणा देते हैं । उनके क्रियाशील जीवन का स्मरण करके युगों-युगो तक संसारी आत्माएँ अपनी निष्क्रियता को हटाती हैं तथा उनके आदर्श-जीवन की लीक पर चल कर अपने विकास का मार्ग भी प्रशस्त बनाती है । मौत के बाद भी जीवन्त जीवनो का ऐसा ही सुप्रभाव होता है ।

जीवन-मृत्यु का रहस्य हर पल धर्माचरण की प्रेरणा देता है

विविध दृष्टिकोणो से जीवन एवं मृत्यु के रहस्यों को आप जब गम्भीरतापूर्वक समझने की चेष्टा करेंगे तो यह सत्य आपके मानस-पटल पर स्पष्टतर होता जायगा कि तृष्णा एवं प्रमाद की ओर झुके बिना जीवन के प्रत्येक क्षण का सदुपयोग धर्माचरण मे किया जाना चाहिए ।

और धर्माचरण क्या होता है ? अपना ही भला हो या अपना ही विकास हो—यह स्वार्थ की भावना धर्माचरण नही है । धर्माचरण स्व-पर-कल्याण का ही दूसरा नाम है । धर्म शब्द से उन कर्त्तव्यो का बोध होता है, जो दूसरो के प्रति होते हैं

और दूसरों के कल्याण के अपने कर्त्तव्यों की सफल पूर्ति तभी सम्भव होती है, जब अपनी आत्मा का धरातल इतना विशुद्ध एवं त्यागमय बन जाय कि दूसरों के लिए हमे कैसा भी त्याग बडा न दिखाई दे। इसका तात्पर्य यह है कि पहले स्वयं का जीवन ऊँचा उठे और यह जीवन भी तभी ऊँचा उठ सकेगा, जब इस जीवन को दूसरों की सेवा मे समर्पित कर दिया जायगा। ऐसा समर्पित जीवन स्वयं भी निखरेगा तथा दूसरों को भी प्रकाशमय बना सकेगा।

अतः धर्माचरण का पथ होता है—साधना का पथ। जीवन का प्रत्येक क्षण साधनामय होना चाहिये। साधना ही जीवन एवं मृत्यु के रहस्यों को सुलझाने वाली होती है। जिस जीवन मे साधना समा जाती है, वह जीवन अपने जीवन-काल मे भी जीवन्त होता है तो अपनी मृत्यु के बाद भी संसार के लिए जीवन्त बना रहता है। महापुरुष एव महात्मा अपने साधनामय जीवन से अपनी आत्मा का कल्याण भी करते हैं तो सारे लोक के कल्याण का मार्ग भी दिखाते हैं।

जीवन के दो पहलू होते हैं—व्यक्तिगत एवं सामाजिक। किन्तु इन दोनो पहलुओं को सर्वथा पृथक् करके नही देखा जा सकता। व्यक्तिगत जीवन सामाजिक संसर्ग से अछूता नही रह सकता, इसी प्रकार सारा समाज भी व्यक्तिगत जीवन के क्रिया-कलापो से निश्चित तौर पर प्रभावित होता है। जीवन के ये दोनों पहलू निरन्तर परस्पर सम्पर्कगत बने रहते हैं, बल्कि सत्कार्यों का हमारा जो निरूपण है, वह इन दोनों पहलुओ के सन्दर्भ मे ही निर्धारित किया हुआ है। दूसरो को हम सुख पहुँचाते है तो हमारे भीतर भी आनन्द जागता है। यह क्या है ? दूसरे के हित में होने वाला हमारा कार्य वस्तुतः उसको भी सुख पहुँचाता है और स्वयं को भी सुख पहुँचाता है, यही व्यक्तिगत एव सामाजिक जीवन का सामंजस्य है। इस दृष्टि से धर्माचरण जीवन के इन दोनो पहलुओं को विशुद्ध बनाता है— ऊपर उठाता है। व्यक्ति समाज को ऊपर उठाता है तो समाज के स्वस्थ धरातल पर व्यक्ति का विकास भी सहज बन जाता है। प्रतिपल धर्माचरण की लगन को क्रियाशील बनाये रखने का यही मर्म है।

शानदार जीवन जीएँ, शानदार मौत से ही मरें !!

जीवन उसी का सार्थक है, जो शानदार जीवन जीता है और शानदार मौत से मरता है। जब तक जीएँ, बहादुरी से जीएँ और मौत जब आए तो बहादुरी से ही उसका सामना करें। बहादुरी को हर समय बनाये रखें यही शानदार जीवन होता है। बहादुर आदमी जिन्दगी भी जीता है और मौत मे भी जिन्दा रहता है। वह जीवन और मृत्यु के भेद को तोड डालता है एव मृत्यु का सहर्ष वरण करता है।

प्रश्न होता है—शानदार जीवन कैसे जीएँ और शानदार मौत से भी कैसे

मरें ? शान उसकी मिट्टी में मिलती है, जो इस बेशकीमती जिन्दगी को बरबाद कर देता है। कहा जाता है कि बचपन खेल-खेल में बिता दिया, जवानी ऐश में डुबो दी और जब बुढ़ापा आया तो धर्माचरण का खयाल किया, मगर शरीर की शक्तियाँ तब जवाब दे देती है और इस तरह सारी जिन्दगी व्यर्थ हो जाती है। जीवन को शानदार बनाना है तो विवेक को जगाओ, प्रमाद को भगाओ तथा जीवन के प्रत्येक क्षण को गहरी निष्ठा के साथ धर्माचरण मे लगा दो। साधना के बल पर यह जीवन कुन्दन-सा निखर उठेगा और संसार उसके जाज्वल्यमान स्वरूप को प्रकाश-स्तम्भ मान कर उसका अनुसरण करने लगेगा। और शानदार मौत को जैनदर्शन की भाषा में पंडित-मरण कहा है। जीवन के अन्तिम क्षणों में अपनी गम्भीर आत्मालोचना करते हुए मोह-ममता के शेष अंशों को भी समाप्त कर दिया जाय तथा अन्तर्मन को परम धर्ममय बना दिया जाय तो ऐसे मरण को पंडित-मरण कहते हैं।

जीना और मरना दोनों शानदार हों, तभी जीवन की सार्थकता है। सौ बरस का सामान जुटाने मे अगर जीवन को बरबाद कर दिया तो न माया मिलेगी और न राम, क्योंकि एक पल की भी खबर नहीं है। मन मे सदा यही प्रेरणासूत्र अंकित कर लें कि हम शानदार जीवन जीएँ और शानदार मौत से ही मरें! ☆

20

विश्व-समस्याओं के सन्दर्भ में अहिंसा

□ □

वर्तमान विश्व राजनैतिक वादो और गुटो मे बँटा हुआ है, जिसके कारण आये दिन युद्ध के नगाड़े बजते रहते है। कभी मिस्र और इजराइल का संघर्ष संहार की पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है, कभी शक्ति-सम्पन्न राष्ट्रो द्वारा ध्रुवीकरण की प्रक्रिया के सन्दर्भ मे अविकसित राष्ट्रो का आर्थिक शोषण, प्रभुत्व, शस्त्रास्त्रवृद्धि द्वारा शक्ति-सन्तुलन आदि हिंसा के नित नये पैंतरे रचे जाते है। इस कारण सभी राष्ट्रो मे तनाव, घुटन, आशंका, भय और परस्पर अविश्वास की स्थिति पैदा हो गयी है। इन सबका अन्त लाने तथा विश्व मे शान्ति लाने के लिये वैचारिक (अनेकात) और आचारिक अहिंसा ही कारगर सिद्ध हो सकती है। उसी को अपनाने पर विश्व मे उच्च-नीच-भेद, रगभेद, जातिभेद, सबल-निर्बल-भेद आदि समस्त भेदभाव समाप्त हो कर मानव आध्यात्मिक समता प्राप्त करके सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र आत्मिक राज्य प्राप्त कर सकता है। इसलिये वर्तमान युग मे अहिंसा की सबसे अधिक आवश्यकता क्यों है ? इससे सारी समस्याएँ कैसे हल हो सकती है और मानव की व्यक्तिगत शान्ति भी विश्वशान्ति से कैसे जुड़ी हुई है ? वह सार्वजनिक शान्ति कैसे प्राप्त हो सकती है ? इन सब तथ्यों पर गम्भीरतापूर्वक चिन्तन करने के लिए प्रस्तुत प्रवचन पढ़िए……

२०

विश्व-समस्याओं के सन्दर्भ में अहिंसा

□ □

इस संत्रास, संपीड़न, संकुल एवं आत्मवेदना से व्यथित युग के लिये मानवता की तलाश जारी है। मानव की सतत प्रवाहशील परम्परा में जिन नैतिक मूल्यों का अवमूल्यन हो गया है और जिसके कारण मानवीय आचार अत्याचार बन कर आज उग्ररूप धारण कर रहा है, उसकी ओर विश्व का ध्यान आकर्षित करना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य हो गया है। क्योकि चारो ओर समाज पूरी तरह से विघटित हो रहा है, सृजन के मूल्यों मे आस्था नही रही है, आपात, विशीर्णन एवं विखराव लक्षित होने लगा है। परिणामस्वरूप बाहर का विस्तार वहुत हुआ है, मनुष्य की दुनिया छोटी हो गई है, एक-दूसरे के निकट आ गये हैं; किन्तु भीतर ही भीतर से मनुष्य कटता जा रहा है, निरन्तर दूरी वढती जा रही है। मनुष्य-मनुष्य के बीच एक गहरी खाई उत्पन्न हो गई है। अतः परस्पर प्रेम, विश्वास और आस्था उपलब्ध करने के लिये अहिंसा जैसी महाशक्ति की आवश्यकता है। अभी तक का राजनैतिक इतिहास यह वताता है कि मनुष्य सत्य की खोज मे वहुत भटक चुका है। दुनिया मे सुख-शान्ति स्थापित करने के सभी भौतिक प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हो चुके हैं। शक्ति-संतुलन का ही यह वढता हुआ प्रभाव था कि विश्व-युद्ध ने जन्म लिया। विश्वयुद्ध की सम्भावनाओ ने निरन्तर मनुष्य के भीतर भय, आशंका और अविश्वास को जन्म दिया; भीतर ही भीतर असन्तोष, द्वेष आतंक, शोषण और घुटन को उत्पन्न कर दिया।

संत्रास की स्थिति

वर्तमान युग मे विश्व की प्रमुख समस्या है—असन्तोष व घुटन। विश्व के अधिकतर मनुष्य आज अपनी स्थिति से असन्तुष्ट है और सतत आत्मपीड़न व घुटन से त्रस्त है। जातिया व समाज ही नही, बडे-से-बड़े देश भी अपनी सुरक्षा के भय से आतंकित है। असुरक्षा के भय के कारण बड़े-बड़े देश सदा अस्त्र-शस्त्रों की प्रतिस्पर्धा मे लगे हुए हैं। अस्त्र-शस्त्रों की विभीषणता यहाँ तक बढ गई है कि लगता है कि अब विश्व को बहुत बड़ा परमाणु-युद्ध का खतरा उत्पन्न हो गया है। कुछ समय पूर्व अमेरिका के प्रसिद्ध समाचार-पत्र 'वाशिंगटन पोस्ट' के सम्पादकीय लेख मे यह चेतावनी दी गई थी कि पश्चिम एशिया मे परमाणु-युद्ध के खतरे की आशंका को ध्यान मे रख कर परमाणु-अस्त्रों के उपयोग के विरुद्ध तुरन्त कोई प्रभावकारी कदम उठाया जाना चाहिये। किन्तु बडे-बडे देश सतत शक्तिसम्पन्न बनने के लिये शान्ति के गीत गाते रहे हैं और परमाणु-विस्फोट कर दुनिया को आतंकित करते रहे हैं। मिस्र और इजराइल की परमाणु भट्टिया प्राप्त करने तक अमेरिका परमाणु-अस्त्रो के प्रसार के सम्बन्ध मे तथा नियन्त्रण के विषय में उदासीन रहा। यह एक बहुत बड़ा खतरा है। जिसका परिणाम यह हुआ कि परमाणु-शक्ति-विहीन राष्ट्र परमाणु-शक्ति-सम्पन्न बनने के लिये निरन्तर प्रयत्नशील है। इसके पूर्व कि परमाणु-अस्त्र-प्रसार की रोकथाम के लिये कोई विश्व-व्यापी व्यवस्था लागू हो, सभी देश परमाणु-शक्ति से सम्पन्न हो जाना चाहते हैं; इसका परिणाम क्या होगा? यह तो भविष्य के गर्भ है; किन्तु इन प्रयत्नो से संसार मे शान्ति स्थापित नही रह सकती। क्योकि मूल प्रश्न यह है कि यदि ससार के सभी देश विश्वयुद्ध नही चाहते तो भीषण मारक परमाणु-अस्त्रो का निर्माण क्यों करते हैं? आये दिन नई-नई पद्धतियों का विकास और परमाणु-अस्त्रो का विस्तार यह खुली चेतावनी दे रहा है कि पनपने वाली मानवीय सभ्यता का विनाश निकट आ रहा है। क्या आज के मानव को यही इष्ट है?

अहिंसा क्यो और कैसे?

प्रसिद्ध समाजशास्त्री तायन्बी ने विश्व की उलझी हुई समस्याओ को लक्षित कर ठीक ही कहा था—"इन परिस्थितियों में अपने आप को विनाश से बचाने के लिये और ससार की सुरक्षा करने के लिये अहिंसा का प्रयोग आवश्यक है।" "मार्क्स के वर्ग-संघर्ष-सिद्धान्त ने अपने अधिकारों के प्रति जाग्रत कर मनुष्य और समाज के मध्य एक क्रान्तिकारी तथा तनाव की स्थिति उत्पन्न कर दी है, जिससे शोषित व दलित मानवता उभर कर सामने आई है, किन्तु घृणा, नफरत और असहयोग के कारण टूटे हुए मनुष्य के दिलो को जोडने वाला सूत्र खो गया है। विश्व में राज्यविहीन समाज की कल्पना मे खोये हुए मार्क्स ने जहाँ दिलो के बीच दूरी उत्पन्न कर समाज की इकाई व्यक्ति को कुचल दिया, वही प्रजातन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था ने

समाज को केवल व्यक्तियो का समूह बनाकर अपने-अपने अधिकारों की माग हेतु सतत संघर्ष कर दलित व साधन-विहीन बना दिया है। प्रजातन्त्र मे जहाँ व्यक्ति की स्वतन्त्रता स्वच्छन्दता बन कर तरह-तरह के चमत्कार उत्पन्न करने लगती है, वही साम्यवाद के आश्रित हो कर अपनी सम्पूर्ण स्वतन्त्रता को शासन के यहाँ गिरवी रख दिया जाता है। ऐसी विषम स्थितियों में जैनधर्म की अहिंसा कैसे कारगर हो सकती है? यही मुख्यरूप से विचारणीय है।

अहिंसा निरपेक्ष नहीं

विश्व के सुप्रसिद्ध नाटककार जार्ज बर्नार्ड शॉ का यह कथन अत्यन्त उचित है कि अन्य धर्मो की अहिंसा जहाँ पर समाप्त होती है, वहाँ पर जैनधर्म की अहिंसा प्रारम्भ होती है। क्योंकि जैनधर्म की अहिंसा निरपेक्ष नहीं है। अहिंसा का सूत्र एक ओर अनेकान्त से संयुक्त है, तो दूसरी ओर अपरिग्रह से। अहिंसा कोई नियम या आचार-विधि मात्र नही है। अहिंसा एक सिद्धान्त है, जिसका दार्शनिक और व्यावहारिक पक्ष भी है। अहिंसा का सिद्धान्त अनेकान्त-दर्शन के प्रतिफलित होता है। अनेकान्त न तो कोई सशयवाद है और न समझौता। वस्तु के सत्याशो को अलग-अलग अंशो (डिग्रियो) मे सम्बन्धित कर मापन-क्रिया की पद्धति का नाम अनेकान्त है। अनेकान्त अहिंसा का वैचारिक पक्ष है। बिना चिन्तन के कोई आचरण प्रारम्भ नही होता। जैनधर्म का चिन्तन व्यक्तिवादी नही है। व्यक्ति और समाज दोनों को ध्यान मे रख कर दोनों प्रकार की व्याख्याएँ की गई हैं। व्यक्तिवादी धर्म साधु-सन्तो का है, जो सामाजिक दायित्वों से ऊपर उठ कर एकान्तिक आत्म-साधना मे निरत रहते हैं। किन्तु उनके अतिरिक्त सभी गृहस्थो के लिये लोक-धर्म या समाजधर्म की व्यवस्था है। जैनधर्म ने शारीरिक हिंसा की अपेक्षा मानसिक हिंसा न करने पर विशेष बल दिया है। संसार मे जहाँ भी शोषण, अत्याचार, शीतयुद्ध और भीतर ही भीतर एक-दूसरे को कैद करने की वृत्ति लक्षित होती है, वहाँ वह सब मानसिक हिंसा का परिणाम है। जब तक मानसिक हिंसा की उग्रता बनी रहेगी, तब तक विश्व मे शान्ति-स्थापना की बात नही सोची जा सकती। आपस मे बैठ कर शान्ति-स्थापना के प्रयत्नों की चर्चा भी तभी सफल हो सकती है, जबकि हमारे मन तनावरहित हों। अहिंसा की स्थिति मे किसी प्रकार का तनाव नही होता। इसलिए जनधर्म कहता है कि मानसिक क्षोभ से रहित आत्मा की समता-परिणति का नाम अहिंसा है। यह कोई वाद नही है। फिर भी आप चाहे तो ससार के वादो मे जहाँ समाजवाद एवं साम्यवाद वस्तु के विकेन्द्रीकरण, सामाजिक सम्पत्ति के नियन्त्रण एवं राष्ट्रीयकरण की पैरवी करते है और समान वितरण मे समाज की भलाई की बात कह कर विराम ले लेते हैं, वही आप कह सकते है कि जैनधर्म उससे आगे आध्यात्मिक साम्यवाद तक ले जाता है। इस आध्यात्मिक साम्यवाद से सर्वतन्त्र सच्ची स्वाधीनता हमे परमात्मा बनने पर उपलब्ध

के आधार पर किये गये युद्ध स्थायी शान्ति के जनक नही होते। हिंसा से होने वाले युद्ध का कभी पूर्ण विराम नहीं आता। युद्ध प्रतियुद्ध को जन्म देता है। युद्ध से दोनो ओर शत्रुता वढ़ती जाती है। हिंसा से कभी हिंसा समाप्त नही हो सकती। युद्ध कभी युद्ध को मिटा नही सकता। जैसे अग्नि की ज्वाला अग्नि को जन्म देती है, वैसे ही एक युद्ध दूसरे युद्ध को जन्म देता है। यह हिंसा-परम्परा वढ़ती ही जाती है। अतएव रक्तरजित क्रान्ति कभी शासन को स्थायित्व एव सुदृढ़ता प्रदान नही कर सकती। अतएव विकासशील देशो के लिए हिंसा का मार्ग इष्ट नही होता। शान्ति-समर्थक देशो मे पूंजीवाद का चरित्र भी खोखला सिद्ध हो चुका है। अभाव की अर्थव्यवस्था हमे यह वताती है कि पूंजीवाद अव पतनोन्मुखी है। अधिक समय तक एकाधिकार रहने वाला नही है। शोषण करने वाले राष्ट्र अपने चरित्र को कव तक दूषित वनाये रख सकते है? उनका पतन निश्चित है। इसलिए जनतन्त्र ही एक ऐसा मार्ग है, जो ससार मे खुशहाली और शान्ति स्थापित कराने मे सहायक हो सकता है, वशर्ते कि उसकी वुनियाद अहिंसा पर आधारित हो। तोड-फोड़ और विद्रोह से कभी सच्ची क्रान्ति जन्म नही लेती। क्रान्ति शासन-शक्ति से भी नही आती। भगवान् महावीर ने अपने जीवन से यही प्रमाणित किया था कि राज्यसिंहासन पर बैठ कर कोई राजा अपने देश मे क्रान्ति नही कर सकता। क्रान्ति के लिये त्याग और तपस्या करनी पड़ती है। सच्ची क्रान्ति लोकशक्ति से ही उत्पन्न होती है। लोकशक्ति की वुनियादी भूमि-चरित्र पर अवलम्बित होती है। चरित्र का मूल उपादान तत्त्व अहिंसा-वृत्ति है। अहिंसावृत्ति को अपने जीवन मे उतार कर स्व० राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने इस विशाल देश को स्वतन्त्र कराया। इसमे कोई सन्देह नही है कि सच्ची अहिंसा का पालन शूर-वीर ही कर सकते है। वुजदिल और कायर तो अहिंसक वनने का ढोग रचते हैं। जहाँ अहिंसा है, वहाँ निर्भयता है।

ध्रुवीकरण की प्रक्रिया

इधर गत दशक मे राजनीतिक धुरी मे परिवर्तन आ गया है। अव सभी देश यह भलीभांति समझ चुके है कि परमाणु-अस्त्रों का निर्माण मानवता के विनाश के लिये कदापि उचित नही हो सकता। फिर भी जो देश शक्ति-वृद्धि मे लगे हुए हैं और दूसरे देशों को अस्त्र-शस्त्रो की बिक्री कर रहे है, वे महज इसलिये कि उनकी प्रतिष्ठा वनी रहे, किसी प्रकार व्यापार के द्वारा आर्थिक शोषण व प्रभुत्व वना रहे। उधर जव तक शक्ति-सन्तुलन के आधार पर विभिन्न देशो का झुकाव सोवियत संघ या अमेरिका की ओर था, तव तक केवल गुटसापेक्ष हो कर किसी एक खेमे मे सम्मिलित होने और उसकी नीतियो के समर्थन तक की कठिनाई थी। किन्तु जवसे शक्तियो मे बिखराव आ गया है, चीन जैसे राष्ट्र शक्तिसम्पन्न हो उठ खड़े हुए हैं, तव से ध्रुवी-करण की प्रक्रिया मे समूल परिवर्तन आ गया है और अव कई दिशाओं मे शक्तियो

का प्रसार तथा तनाव लक्षित होने लगा है। ये समस्याएँ पहले से और भी जटिल गई हैं। सभी विकसित देश अब यह मानने लगे हैं कि हिंसा उनके लिये नेगेटिव है, वे हिंसा के द्वारा अपना प्रभुत्व स्थायी रूप से स्थापित नही कर सकते। अतः दो गुटों का आन्तरिक संघर्ष अब छुटपुट युद्ध की चिनगारियाँ बनकर कई रूपो मे भीतर ही भीतर सुलगता रहता है। इससे भीषणता की स्थिति और भी अधिक बढ गई है। शक्ति के ध्रुवीकरण के अब अनेक केन्द्र हो गये है। ससार के किसी भी कोने से किसी भी समय युद्ध की चिनगारी सुलग सकती है। किसी भी देश का युद्ध का माध्यम बनाया जा सकता है। वास्तव मे मूल समस्या ज्यो की त्यों बनी हुई है। केवल साधन व पद्धति-परिवर्तन से कोई अधिक अन्तर नही आया है। यह बात अवश्य है कि बैठकर शान्ति-समझौते की वार्ताएँ होने लगी हैं। भौगोलिक दृष्टि से अब बडे देश क्षेत्र-विस्तार के पक्ष मे नही है, किन्तु सामरिक दृष्टि से जो भी महत्त्वपूर्ण स्थान हैं, उन पर अपना बराबर अधिकार बनाये रखने के लिये अथवा कायम करने के लिये प्रयत्नशील हैं। इससे स्पष्ट है कि विस्तारवादी नीति का रूप बदल गया है। सभी ओर से जो हमे परिवर्तन दिखलाई पड़ता है, वह सब बाहरी है। भीतर मे मूल-परिवर्तन नही हो रहा है। इसलिये युद्ध की सम्भावनाएँ किसी-न-किसी रूप मे कभी भी बलवती हो उठती हैं।

अधिकार के लिये युद्ध

आज अनेक छोटे-छोटे राष्ट्रो के समक्ष अधिकार का प्रश्न भयावह बना हुआ है। कई छोटे राष्ट्र बडे देशों से प्रभावित व उनके अधिकार-क्षेत्र मे हैं और कई साधन-विहीन होने से असहाय है, किन्तु मन ही मन उनके भीतर असन्तोष व विद्वेष की आग प्रज्वलित होती रहती है। वास्तव मे यूरोप का मानव इसलिए शक्ति व भयभीत है कि कही विश्वयुद्ध छिड गया तो भोग-विलास के सभी साधन समाप्त हो जायेंगे। मानवता की चिन्ता किसी को नही है। यदि सच्चे अर्थों मे मानवता की चिन्ता हो तो फिर अधिकार के लिये जगह-जगह युद्ध न हों। परन्तु इजराइल मिस्र का युद्ध, वियतनाम का लगभग उन्तीस वर्षो तक चलने वाला लम्बा सघर्ष और बडी ताकतो का हस्तक्षेप, दियागोगार्शिया मे नौ-सैनिक-अड्डे की स्थापना आदि अधिकारो को ले कर किये गये सघर्ष हैं, जिनमे मानवता को बुरी तरह से तिरस्कृत किया गया है।

आर्थिक शोषण के शिकंजे में

आज भी विश्व आर्थिक विषमता, स्वच्छन्द एव निर्बाध भोगवाद तथा उपनिवेशवादी धरातल पर आधारित पश्चिमीय अर्थव्यवस्थाओ से त्रस्त है। अपने-अपने प्रभाव-क्षेत्र को बढ़ाने मे प्रयत्नशील बडे राष्ट्र भी अर्थव्यवस्था से कम्पित होने लगे है। पश्चिमी देशो को अब यह वास्तविकता मान लेनी चाहिए कि संसार के

सीमित साधनों पर एकाधिकार कर उनका मनचाहा उपयोग करना सदा सम्भव नही है। संसार का भला इसी मे है कि आर्थिक दृष्टि से सभी राष्ट्र संगठित हो तथा ऊँच-नीच की भावना के विना सुनियोजित अर्थ-व्यवस्था कायम करें। विकासशील देशों को आगे वढ़ने मे हाथ मिला कर अधिक से अधिक सुविधाएँ और अवसर प्रदान करें। पश्चिमी यूरोप, जिनमें सोवियत संघ, उत्तरी अमेरिका, जापान, कनाडा, आदि भी सम्मिलित है, औद्योगिक दृष्टि से सम्पन्न है और आर्थिक संगठन की दृष्टि से भी सुदृढ़ हैं, ये सदा अधिकारपूर्ण सहायता देने के पक्ष मे रहे हैं। यह मानवीय आधार नही है। छोटे राष्ट्रों एवं अविकसित राज्यों (रूस, अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका आदि जो आर्थिक दृष्टि से अविकसित हैं) को सहायता दे कर अपने प्रभाव-क्षेत्र मे रखना चाहते है। यही संघर्ष का मूल कारण है। जैन आचार्य इसे हिंसा-वृत्ति कहते है। यदि आर्थिक सहायता मानवीय धरातल पर दी जाये, तो यही अहिंसा वन सकती है।

अहिंसा की प्रकृति

अहिंसा की प्रकृति सर्वोदय व समन्वय की है। पिता अपने वेटे को मारने एवं धमकाने पर भी अहिंसक कहा जाता है, क्योकि वह वेटे का विनाश नही चाहता है। वेटे की भलाई के लिए, उसके विकास के लिए पिता सभी प्रकार के प्रयत्न करता है। उसी प्रकार वड़े से वड़े राष्ट्र छोटे देशों की उन्नति के लिए सहयोग दें, उन पर कोई एकाधिकार का नियन्त्रण न रखें, तो संसार की वडी से वड़ी समस्याएँ हल हो सकती है और सद्भावना के वातावरण मे दुनिया खुशहाल हो सकती है। केवल मौखिक या औपचारिक सहानुभूति से काम नही चलता। हिंसात्मक प्रतिक्रिया सदा वुरी होती है। छोटे देश भी अपना सिर उठा सकते हैं। वर्षों तक फारस देश की खाड़ियो मे स्थित तेल-भण्डारो पर पश्चिमी यूरोप तथा अमेरिकी कम्पनियों का नियन्त्रण रहा और वे आर्थिक शोषण करती रही। इस वुरी तरह से शोषण किया कि कम से कम मूल्य पर तेल वाहर भेजती रहीं और कम से कम आय देश को देती रही। परिणाम यह हुआ कि एक दिन वहाँ भी राजनैतिक जागरण हुआ और तेल-भण्डारो का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। तेल का मूल्य निर्धारण कर कीमतें वढ़ा दी गई। वड़े राष्ट्रो ने धमकियाँ दी। अन्त मे "औपेक" (आर्गनाइजेशन ऑफ पेट्रोलियम एक्सपोर्ट कम्पनीज) को यह दायित्व सौंप दिया गया। हाल मे ही दस प्रतिशत वृद्धि की घोषणा की गई है।

रंगभेद-नीति

विश्व की जहाँ कुछ वैदेशिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्वन्धो के कारण उत्पन्न होने वाली प्रमुख समस्याएँ है, वही कुछ पारिवारिक तथा घरेलू समस्याएँ भी हैं। इन समस्याओ से भी विश्व पीडित है। इनमे से एक वहुत वड़ी अछूतो की समस्या

है। संसार के कई देशो में यह समस्या है। अफ्रीका में तो नव्वे प्रतिशत यही समस्या है। वहाँ पर श्यामवर्ण वालो की जनसख्या अधिक है। इसलिए उनकी सदा मांग रहती है कि सरकार हमारी होनी चाहिए। श्वेतसरकार रंगभेद की नीति से हटना नही चाहती। जापान की तीस लाख संख्या 'वुराकुमिन' जाति के सम्बन्ध में तो यहाँ तक कहा जाता है कि इस जाति के सम्बन्ध मे जापान-देश मे बातचीत तक करना वर्जित है। इसे जापान की अस्पृश्यजाति की संज्ञा दी गई है। भारत में इस समस्या के उन्मूलन के लिए सविधान की धारा १७ के अनुसार यह कानून बना हुआ है कि 'छुआछूत अपराध है, इस आधार पर किसी भी मनुष्य को अयोग्य मानना कानूनन अपराध है।'

आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पहले भगवान् महावीर ने ससार को यह आर्ष-मन्त्र तथा सन्देश दिया था कि "न देह की वन्दना होती है और कुल तथा जाति की। पूजा सदा गुणो की होती है। मनुष्य अपने कर्मो से महान् होता है। किसी बड़े कुल मे पैदा हो जाने मात्र से कोई बड़ा नही हो जाता है। बडे घर का बेटा यदि बुरे मार्ग पर चलता है, बुरा आचरण करता है, तो वह नीच ही कहा जाएगा, ऊँच नही कहा जा सकता है।" इसीलिए जैनधर्म ने मनुष्य के ऊपर किसी अलौकिक शक्ति को नही माना। उसने कहा कि मनुष्य स्वयं अपना स्रष्टा और विधाता है। यदि ईश्वर मनुष्य का सर्जक और विधाता हो तो प्राणी का कर्म और पुरुषार्थ क्या रह जाएगा ? भगवान् महावीर ने इस पराधीनता की भावना से दुनिया को उबारा और सच्ची स्वतन्त्रता का सन्देश दिया था। जहाँ मनुष्य के लिए कोई आलम्बन नही रह जाता, यहाँ तक कि इन्द्रियो से अनुभव मे आने वाला सुख भी जहाँ नही होता, ऐसे पूर्ण ज्ञानानन्द निर्विकल्प दशा मे जो अतीन्द्रिय सुख की उपलब्धि होती है, वही सच्चा आनन्द है और वह अहिसा की पूर्णता मे राग-द्वेष से रहित समता-भाव की स्थिति में प्राप्त होता है।

अहिंसा : आध्यात्मिक ऊर्जा

दीन-हीन, त्रस्त-त्रस्त एवं म्रियमाण मानवता के लिए अहिंसा आध्यात्मिक ऊर्जा है, ऑक्सिजन प्राप्त कराती है। अहिंसा से ही सहअस्तित्व और अपरिग्रह का जन्म हुआ है। यह कहना पुनरुक्तिमात्र होगा कि आज की परिस्थितियों में आत्म-पीड़न, घुटन और विनाश से मानवता को बचाने के लिए अहिंसा एक अमोघ अस्त्र है। आज के युगधर्मी अहिंसा के व्यापक क्षेत्र तथा महत्त्व को नकार नही सकते है, जिसके द्वारा वर्गहीन-समाज की स्थापना की जा सकती है और जो संसार को विश्व-कुटुम्ब के रूप मे देखती है। यह अहिंसा का ही प्रभाव है कि किसीजर की यात्राएँ और मिस्र-इजराइल की समझौता-वार्ताएँ होने लगी हैं, किन्तु अभी अहिंसा की तेजस्विता को उजागर होना है और अखण्ड मानव-जाति मे सही आस्था

और निष्ठा उत्पन्न करनी है कि अहिंसा कायरों का नहीं, वीरो का धर्म है। अहिंसा के आधार पर जो भी कार्य किये जायेंगे उनमें शोषण और संघर्ष का प्रवेश नही हो सकता। अहिंसा का लक्ष्य है—वर्ग-भेद और जाति-भेद से ऊपर उठ कर वर्गहीन मानव को ही नही, प्राणी-मात्र को सुखी बनाना। यह निश्चित है कि कोई भी बल-प्रयोग या अधिकारो के द्वारा अधिक समय तक मानवीय सम्बन्धो का अभेद्य-दुर्ग स्थापित कर उसमें सुखी नही रह सकता। मनुष्य पर अनुशासन करने के लिए जातीय गुणो तथा अहिंसा, करुणा, परोपकार आदि की आवश्यकता होती है। आज तक केवल कानूनो से शासन नही चले। शासन चलाने के लिए उन असंख्य लोगो का दिल जीतना पड़ता है, जो उन कानूनो का पालन करने वाले होते हैं। अतएव अहिंसा मे वह अद्भुत ऊर्जा है, जो आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक सभी प्रकार की समस्याओं को सरलता से सुलझा सकती है और जिससे संसार मे मानवता का सच्चा साम्राज्य स्थापित हो सकता है। ☆

21

समता के विभिन्न रूप

□ □

ससार के समस्त प्राणी सुख-शान्ति चाहते है, किन्तु जब तक वे सुख-शान्ति को भंग करने के कारणों को दूर नही कर देते, और समत्व की पगडडी पर चलने का उपक्रम नही करते, तब तक उन्हें स्थायी सुख-शान्ति मिलना असम्भव है। अज्ञान, मोह, आर्तरौद्रध्यान एवं सावद्य कार्य, ये सब समता को भंग करने के कारण है। द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव—इन चारों दृष्टियो से समता को भली-भाँति समझ कर समस्त प्राणियो के प्रति सभी अवस्थाओ मे सदा समत्व का आचरण करना ही सुख-शान्ति का वास्तविक राजमार्ग है। इस राजमार्ग पर चलते-चलते व्यक्ति जब परभावों एवं काषायिक विकारों से हट कर अपने आत्मस्वरूप मे स्थिर हो जाता है, तब उसकी समत्व-साधना परिपक्व हो जाती है। समता के इन विभिन्न रूपों को भलीभाँति समझने और समत्व की साधना परिपक्व करने के लिए मुनिश्री का प्रवचन मनोयोगपूर्वक पढ़िए…………

२१

समता के विभिन्न रूप

□ □

धर्मप्रेमी वन्धुओ, माताओ, वहनो !

आज आपके सामने मैं सुख-शान्ति के मूलमन्त्र के विपय मे कुछ वाते कहूँगा ।

आप ही नही, संसार के जितने भी प्राणी है, वे एक या दूसरी तरह से सुख-शान्ति चाहते है । परन्तु अज्ञान, ममता, मोह या कपाय के कारण वे सुखशान्ति के लिये प्रयत्न करते हुए भी दु ख, अशान्ति और कष्ट पाते हैं । जिस किसी मनुष्य से पूछ कर देख लो, वह प्रायः यही कहता हुआ मिलेगा कि आज मुझे अमुक दुःख है, आज अमुक चिन्ता है, आज मुझे फला व्यक्ति ने नमस्कार नही किया, आज अमुक ने मेरा तिरस्कार कर दिया, अमुक व्यक्ति ने आज मेरी वात नही मानी, अमुक ने मुझे घाटे मे डाल दिया, अमुक ने घोखेवाजी की । अगर इन सव वातों के कारण मनुष्य के मन ने आर्तध्यान—रौद्रध्यान चलते रहते हैं । और आर्त-रौद्रध्यान का मन मे चलते रहना ही अशान्ति है । कई वार वाहर से कष्ट कम होता है, परन्तु मन का माना हुआ कष्ट—अपमान, ममत्व आदि से जनित दु.ख अधिक होता है ।

प्रश्न होता है, किस कारण ये सव कष्ट या दु.ख होते है ? मूल कारण अज्ञान और मोह है । इसीलिये उत्तराध्ययन सूत्र मे भगवान् महावीर ने अभी अन्तिम देशना मे वताया है—

दुक्खं हयं जस्स न होई मोहो ।
मोहो हओ जस्स न होई तण्हा ।।
""अन्नाण-मोहस्स विवज्जणाए ।

अर्थात्—जिसके मोह ममत्व नही होता, उसका दु.ख मिट जाता है। जिसके मन मे तृष्णा नही होती, उसका मोह नष्ट हो जाता है। अज्ञान और मोह के दूर करने से ये सब दु:ख मिट जाते है। अज्ञान और मोह को दूर करने का उपाय है—समत्व !

जब समत्व आ जाता है.......

जब मनुष्य के जीवन मे प्रत्येक शारीरिक, वाचिक, मानसिक प्रवृत्ति मे समत्व आ जाता है, तभी मनुष्य सुख और शान्ति प्राप्त करता है। समत्व मे ऐसा जादू है कि उसके मन मे, वचन मे और काया मे आते ही मनुष्य की अशान्ति समाप्त होने लगती है।

समत्व भंग के कारण

मान लीजिये, एक व्यक्ति स्वस्थ बैठा है। उसी समय उसे तार मिला। "आपका अमुक प्रिय व्यक्ति मर गया।" साधारण आदमी तो तुरन्त ही रोने-पीटने लगेगा, अफसोस करने लगेगा। वह यह नही सोचेगा कि मरना तो एक दिन सबको अवश्यम्भावी है। इसमे मैं क्या कर सकता था और वह भी क्या कर सकता था ? किन्तु स्वार्थ और मोहवश आदमी अपने इष्ट के वियोग में रोता है, शोक करता है विलाप करता है। इसे आर्तध्यान कहते है। पर ऐसा आर्तध्यान क्यो होता है ? समत्व न होने के कारण।

अगर समत्व होता तो मनुष्य उस घटना पर मानसिक सन्तुलन न खो कर मरने के कारणो पर विचार करता, रोने-धोने के बजाय समत्व और धैर्य रख कर वस्तुस्वरूप का विचार करता।

इसी प्रकार एक व्यक्ति को खबर मिली कि "तुम्हारा विरोधी मर गया, कि तुरन्त ही उसके मन मे हर्ष की लहर पैदा होगी। वह दस आदमियो के सामने जिक्र करेगा—"अच्छा हुआ, दुष्ट मर गया तो ! उसका मर जाना ही ठीक था।" और इस प्रकार उस व्यक्ति के मर जाने पर कई लोग तो खुशी मे पेड़े बांटते है।

महात्मा गाधीजी का जब स्वर्गवास हुआ तो उनके विरोधियो ने (हालाकि महात्मा गाधीजी ने किसी का बुरा नही किया, किन्तु कुछ लोग अपनी अज्ञानता के कारण और हिन्दू-मुस्लिम समभाव के कारण उन्हे शत्रु मानने लगे थे उन्होंने) खुशी मे पेड़े बांटे। हमने जब सुना तो विचार किया कि ऐसे लोग कितने अज्ञान मे है। अनिष्टवियोग भी एक प्रकार का आर्तध्यान है।

इसी प्रकार का मिलता-जुलता एक और आर्तध्यान है—इष्टसयोग। एक व्यक्ति ने एक गरीब पर झूठा मुकद्दमा चलाया। उधर गरीब परेशान था, किन्तु इधर वह मुकद्दमा चलाने वाला भी रात-दिन बेचैन रहता था कि कही मेरी हार न हो जाय। उसने तिकड़मबाज होशियार वकील किया। वकील ने भी उसे झूठे बयान

देने का पाठ सिखा दिया। इस तरह वहुत पैसा खर्च करके और तिकडमवाजी करके वह मुकद्दमे में जीत गया। मुकद्दमे मे विजय होने से उसकी खुशियो का पार न रहा। उसने अपने इष्टजनों को दावत दी। यह भी एक प्रकार का आर्तध्यान हुआ।

इसी प्रकार अनिष्ट का संयोग भी आर्तध्यान ही है। एक व्यक्ति को खवर मिली कि तस्करी के आरोप के कारण तुम्हे सरकार गिरफ्तार करने वाली है।" अव उसका खाना-पीना हराम हो जायेगा। उसे चैन नही पड़ेगा, कि क्या करूँ और क्या न करूँ? अव वह उसी वेचैनी के कारण छिपता और इधर-उधर भागता रहेगा उसके मन मे रात-दिन आर्तध्यान वना रहेगा कि हाय! अव मेरा क्या होगा? मेरा अपमान होगा, वेइज्जती होगी, जेल की सजा होगी, और न जाने क्या-क्या दण्ड मुझे मिलेगा! इस आशंका से कभी तो व्यक्ति का हृदय वन्द हो जाता है।

परन्तु अगर वह पहले ही तस्तकरी न करता तो उसे वेचैनी न होती। मान लो, उस पर तस्करी का झूठा आरोप है, वह तस्करी नही करता तो उसे अपनी गिरफ्तारी की खवर सुन कर भी घवराना नही चाहिये था। अनिष्ट संयोग के समय भी व्यक्ति अपना मानसिक सन्तुलन खो वैठता है।

हाँ, तो ये चारो प्रकार आर्तध्यान के है। और आर्तध्यान के समय अगर समता रखी जाय, हर्ष और शोक के प्रसंगो मे सम रहा जाय, अपना मानसिक सन्तुलन न खोया जाय, तो व्यक्ति सुख-शान्ति प्राप्त कर सकता है।

अशान्ति का दूसरा प्रकार रौद्रध्यान का है। रौद्रध्यान भी मानसिक सन्तुलन (समत्व) खो देने के कारण होता है। रौद्रध्यान आर्तध्यान से अधिक खतरनाक है। आर्तध्यान तो अपनी आत्मा के लिये ही अहितकर होता है, लेकिन रौद्रध्यान तो अपनी आत्मा के सिवाय तत्सम्वन्धित अनेक व्यक्तियों को हानि और धक्का पहुँचाता है। रौद्रध्यान व्यक्ति के स्वार्थ, लोभ, इच्छा और दुर्वृत्ति की पूर्ति न होने पर उनके भग्न होने पर प्रायः होता है। रौद्रध्यान मे व्यक्ति अपने इष्टवियोग अथवा अनिष्टसंयोग की परिस्थिति मे दूसरे का वुरा करने की सोचता है। एक व्यक्ति अनाज का व्यापारी है, वह चाहता है कि अनाज मे तेजी आ जाये तो मैं खूव पैसा कमा लूंगा। इसलिए मन ही मन यह चाहता है कि इस वर्ष दुष्काल पड़ जाये तो अनाज के भाव आसमान मे पहुँच जायेंगे और मैं मालामाल हो जाऊँगा।" यह रौद्रध्यान का एक प्रकार है। इससे व्यक्ति के हृदय मे संक्लेश पैदा होता है। मानसिक शान्ति समाप्त हो जाती है। वह सन्तुलन खो वैठता है। समता-पूर्वक विचार नही करता।

एक चन्दन का व्यापारी था। एक वार चन्दन का वाजार मंदा होने से उसके माल की खपत कम हो गई। उसने सोचा—"अगर यहाँ का राजा मर जाय तो मेरा सारा चन्दन विक जाय।" उसके इस दुश्चिन्तन का प्रभाव राजा पर पड़ा।

राजा बीमार पड़ गया और दिनों-दिन दुर्बल होता गया। किन्तु राजा को जब इस बात का पता लगा कि चन्दन का व्यापारी मेरे विरुद्ध दुर्भावना कर रहा है, तो उसने व्यापारी को बुलाया। व्यापारी ने सुना तो बहुत ही सन्नाटे में आ गया और राजा से अपने दुर्विचार के लिये क्षमा मांगी। राजा ने कहा—"अगर तुम मुझे ऐसा दुर्विचार करने से पहले कह देते तो मैं तुम्हारा सारा चन्दन खरीद लेता। अच्छा, अब तुम अपना सारा चन्दन तौल कर हमारे भण्डार में रखवा दो।" व्यापारी बहुत प्रसन्न हुआ और उसी दिन से वह राजा के लिये शुभचिन्तन करने लगा।

यह है—हिंसानुबन्धी रौद्रध्यान। ऐसा रौद्रध्यान, तब होता है, जब व्यक्ति अपने विरोधी या प्रतिस्पर्धी की तरक्की देखता है, उसे उच्च पद पर देखता है तो ईर्ष्या से जल-भुन जाता है, समता के आगे लगा देता है। इसी कारण वह उसकी जड़ काटने या नीचे गिराने के लिये षड्यन्त्र रचता है, मारने की क्रूर भावना करता है। यह तो उस व्यक्ति के आयुष्यबल पर निर्भर है कि वह रौद्रध्यानी उसे मार नहीं सकता।

इसी प्रकार का दूसरा रौद्रध्यान है—मृषानुबन्धी, जो दूसरों की प्रतिष्ठा तरक्की आदि देख कर जल उठता है, अथवा अपने पापकर्मों को छिपाने के लिये झूठ-फरेब करने या असत्याचरण करने की योजना बनाता है, उसी उधेड़बुन में रहता है। दूसरों को धोखा देने या चकमा देने का प्लान रचता रहता है। इस रौद्रध्यान में रत रहने वाला भी समता से बहुत दूर चला जाता है। समता उसके हृदय से विदा हो जाती है।

इसी तरह तीसरे रौद्रध्यान का हाल है। इसका नाम है—स्तेयानुबन्धी रौद्रध्यान। यह रौद्रध्यानी तो बड़ी-बड़ी चोरी, तस्कर-व्यापार, करचोरी, चोर-बाजारी आदि विविध प्रकार की चोरियाँ करने की योजना बनाता है। ऐसा रौद्रध्यान-परायण व्यक्ति बहुत ही साहसी और अपने प्राणों की बाजी पर खेलने वाला होता है। समता का तो इससे वास्ता ही क्या है। इस रौद्रध्यानी के मन में ममता-देवी विराजमान हो जाती है। लोभदेव उससे विविध प्रकार के नाच नचाता है। तृष्णा-देवी भी उसे चैन से एक जगह बैठने नहीं देती। लालसादेवी उसे विविध सुखों के प्रलोभन और सब्जबाग दिखा कर स्तेयानुबन्धी रौद्रध्यान में प्रवृत्त करती है। आशा-देवी उसे अपना दास बना कर मदारी की तरह रात-दिन अपने भंवरजाल में फँसाए रखती है। तब भला ऐसे व्यक्ति के दिल-दिमाग में समतादेवी कब आए? कैसे वह समतादेवी की आराधना करके शान्ति का वरदान पाए? यही कारण है कि स्तेना-नुबंधी रौद्रध्यानी भी समता से कोसों दूर रहता है।

और इसका चौथा प्रकार तो और भी भयंकर है। वह है—संरक्षानुबन्धी रौद्रध्यान। इस रौद्रध्यान के स्वामी में रात-दिन अपनी, परिवार की, धन-सम्पत्ति

की और जमीन-जायदाद आदि की दूसरों से सुरक्षा की रट लगी रहती है। ऐसा व्यक्ति औरंगजेब बादशाह की तरह हर एक आदमी—यहाँ तक कि अपने घरवालों से भी—माता-पिता, भाई-बहन आदि से भी आशंकित रहता है, उसके दिमाग मे वहम का कीड़ा घुस जाता है, कि मुझे कोई मार न दे, मुझे कोई लूट न ले, मुझसे कोई धोखा न कर ले। इसलिए उसकी दृष्टि मे सभी दुर्गुणी, बेईमान, चोर या हिंसक जंचते हैं। वह किसी पर भी विश्वास नही करता। अपनी सुरक्षा के लिए, अपनी पद-प्रतिष्ठा, सत्ता, या गद्दी की रक्षा के लिए वह बाधक लोगों को मारने, दुःख देने या उन्हें अपने मार्ग से हटाने के प्लान रचता है, रात-दिन इसी उधेड़बुन में रहता है कि कैसे मेरी कुर्सी, मेरा पदाधिकार या मेरी सत्ता सुरक्षित रहे। आजकल के राजनीतिज्ञ प्रायः इसी रौद्रध्यान के चक्कर मे फँसे रहते हैं। बंगलादेश में मुजीब को हटाकर अपनी सत्ता जमाने के लिए मुजीब और उसके साथियों को समाप्त कर दिया गया। औरंगजेब ने अपने प्रिय भाइयों को मरवा डाला, पिता को कैद कर लिया। इस प्रकार आज भी सत्ता और पद की रक्षा के लिए बड़े-बड़े षड्यन्त्र रचे जाते हैं। सरक्षानुबन्धी रौद्रध्यान की कहानियाँ तो किसी से भी छिपी नही हैं। ये घटनाएँ तो चुनावो के अवसर पर या पक्षो की सत्ता-प्रतिस्पर्द्धा में आए दिन हमारे देश और विदेशों मे होती ही रहती हैं। ऐसी रौद्रध्यान के उपासक के पास क्या समता-सती फटक सकती है। ऐसे रौद्रध्यान का उपासक महत्त्वाकांक्षी होता है। रातदिन अपने पद, अपनी प्रतिष्ठा और सत्ता को बरकरार रखने के लिए मन मे नयी-नयी योजना बनाता रहता है और उसे कार्यान्वित करने की उधेड़बुन मे लगा रहता है। ऐसे व्यक्ति को समता-सती की सुध लेने की फुरसत कहाँ ?

यह चारों रौद्रध्यानो का कच्चा चिट्ठा है, जो समता को पास भी नहीं फटकने देते। तब भला इन चारों रौद्रध्यान के भक्तो को सुख-शान्ति, अमनचैन या आनन्द कैसे हो ? इनकी सुखशान्ति का सरोवर तो सदा सूखा रहता है, उसमे मस्तबहार कैसे आए ?

इसके बाद सुख और शान्ति को दूर भगाने वाले और समता को तिलांजलि देने वाले कारण होते हैं—सावद्य-कार्य, पापमय कार्य। पापकार्यो से मतलब है—हत्या, चोरी, जीवहिंसा, मांसाहार, मद्यपान, जूआ, परस्त्रीगमन, वैश्यागमन, व्यभिचार असत्य, अनापसनाप संग्रहवृत्ति, परिग्रहलालसा आदि। ये जब भी किसी के जीवन में आते हैं, उमकी समता को चौपट कर देते हैं। उसकी समता चौपट हो जाने पर सुख-शान्ति और अमनचैन तो विदा हो ही जाती है। इन पापकार्यों के फलस्वरूप यहाँ भी उसकी समता भग होने से उसे किसी प्रकार पारिवारिक, सामाजिक, आत्मिक या शारीरिक सुख नही मिलता और मरने के बाद परलोक मे भी उसे

नरकगति या तिर्यंचगति मे अनेक यत्रणाओं और दारुण दुःखों का शिकार होना पड़ता है। बताइए समता-देवी की विराधना—या समतादेवी की उपेक्षा करने का कितना भयकर दण्ड ऐसे व्यक्ति को भोगना पड़ता है :

इसीलिए जैन सस्कृति के उच्चतम मनीपियो, तीर्थंकरो एवं महामुनियों ने समता की साधना को एक व्रत मे स्थान देकर उसे शिक्षाव्रत के रूप में प्रतिष्ठित किया है। शिक्षाव्रत की तो साधना प्रतिदिन करनी पड़ती है, या उसका अभ्यास बारबार करना पडता है। सामायिक की साधना के लिए इन महापुरुपो की शर्त यही है—

"त्यक्तार्त्तरौद्रध्यानस्य त्यक्तसावद्यकर्मणः।
मुहूर्त्तं समता या तां विदुः सामायिकं व्रतम् ॥"

जो साधक आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान को छोड देता है, और सावद्य (सदोप) कार्यो को भी छोड़ देता है, और मुहूर्त भर समता की साधना मे लगता है, उसका वह व्रत सामायिक कहलाता है।

हाँ, तो निष्कर्प क्या निकला ? निष्कर्प यह निकला कि पूर्वोक्त समता के आराधक को आर्तध्यान और रौद्रध्यान से विरत होना पडता है, सावद्य प्रवृत्तियो को छोड़ने का अभ्यास करना पड़ता है। तभी समता की साधना पक्की हो सकती है और तभी वह समता की आराधना के फलस्वरूप सुखशान्ति की उपलब्धि कर सकता है।

समता के चार प्रकार

समता के आराधक को केवल एक ही पहलू से समता को नहीं पकड़ना है, अन्यथा उसकी समता एकांगी हो जाएगी। समता की सर्वांगीण आराधना के लिए उसके सभी पहलुओ पर विचार करना आवश्यक है। प्रथम पहलू तो हमने पहले बता दिया है—समताप्राप्ति के लिए आर्त-रौद्रध्यान का त्याग एवं पापमय कार्यो का वर्जन आवश्यक है। अब यह समता का दूसरा पहलू है—द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से समभाव रखना। समता के ये चार प्रकार भी बहुत महत्त्वपूर्ण है।

द्रव्य-समता—सर्वप्रथम द्रव्यसमता पर समता के साधक को ध्यान देना आवश्यक है। द्रव्य से मतलब है, संसार के सजीव निर्जीव, इष्ट-अनिष्ट, अल्पमूल्य-बहुमूल्य, प्रिय-अप्रिय और स्वकीय-परकीय इत्यादि प्रत्येक पदार्थ से। जिस समय व्यक्ति अपनी प्रियवस्तु और जिस पर अपनी आसक्ति या ममता हो, उसे पाता है तो फूल उठता है, वह हर्प के मारे नाच उठता है। उसकी मनोवृत्ति अभिमान से छलक उठती है। वह अपने को बहुत बड़ा आदमी मानने लगता है। वह उस प्रिय वस्तु को पाने की बेहद खुशी मे अपनी समता को खो बैठता है। उस वस्तु पर उसे रागभाव हो जाता है कि

और किसी तरफ झाँकता ही नही। इसी प्रकार अप्रिय वस्तु या द्रव्य को पा कर रोष से भन्ना उठता है, उसका दिमाग संतुलित नही रहता, वह द्वेष और घृणा करके उस निर्जीव वस्तु को फेक देने या तोडने-फोडने का प्रयत्न करता है, सजीव वस्तु हुई तो उसे मारने-पीटने, सताने और अपने मार्ग से हटाने की कोशिश करता है। किसी भी सजीव या निर्जीव, इष्ट या अनिष्ट द्रव्य को पाकर राग करना या द्वेष करना द्रव्य-समता का विनाशक है। द्रव्य-समता आ जाने पर व्यक्ति प्रिय या अप्रिय अथवा इष्ट या अनिष्ट किसी भी द्रव्य के प्राप्त होने पर न तो राग करता है और न द्वेष करता है। न उसके मन मे मोह, आसक्ति या ममत्व पैदा होता है, और न ही उसके मन मे उस द्रव्य के प्रति घृणा, द्वेष, क्रोध, ईर्ष्या, वैरभाव या बेचैनी पैदा होती है। वह उस प्रिय या अप्रिय, मनोज्ञ या अमनोज्ञ वस्तु को प्राप्त कर समता की पगडंडी पर चलता है। समता की पगडडी पर चलने वाला व्यक्ति उस द्रव्य के वस्तुस्वरूप का विचार करता है। वह यह सोचता है कि अगर यह वस्तु या व्यक्ति प्रिय व मनोज्ञ है तो वह मेरी आत्मा का कुछ वना नही सकता और अगर यह अप्रिय या अमनोज्ञ है तो वह मेरी आत्मा का कुछ बिगाड़ नही सकता। क्योकि यह परद्रव्य है। स्वद्रव्य तो मेरी अपनी आत्मा ही है। परद्रव्य—फिर वह चाहे सचेतन हो या अचेतन, इष्ट हो या अनिष्ट अपनी आत्मा का कुछ भी भला-बुरा नही कर सकता। कोई अगर मेरी प्रशंसा या स्तुति करता है तो उससे मेरी आत्मा का कुछ भी भला नही हो सकता और निन्दा करता है, द्वेपभाव रखता है तो उससे भी मेरी आत्मा का कुछ भी बुरा नही हो सकता। कोई दूसरा (आत्मा के अतिरिक्त) मेरा कुछ भी अच्छा या बुरा नही कर सकता। मेरी आत्मा स्वय ही अपना अच्छा-बुरा, इष्ट या अनिष्ट कर सकती है। इस तत्त्व को हृदय मे उतार लेने पर साधक के जीवन मे द्रव्यसमत्व आ जाएगा। वह निमित्तो को न कोसेगा और न निमित्तो को भला-बुरा कहेगा।

आज मानव स्वय की ओर न देख कर कुछ भी वन या विगड़ जाने पर निमित्तो पर रोष-तोष करता है। कुछ भी हानि हो गई तो अमुक निमित्त पर झल्ला उठेगा। अमुक ने ऐसा न किया होता तो मेरा काम न बिगड़ता। अमुक ऐसा करता तो ऐसा हो जाता! अमुक ही मेरे कार्य को बिगाड़ने के लिए जिम्मेवार हैं आदि। वर्तमान युग का मानव अगर द्रव्यसमन्व के स्वरूप को भली-भाँति समझ ले तो न तो वह कार्य विगड़ जाने पर किसी पर रोष करेगा और कार्य सुधर जाने पर तोष! वह अपने उपादान (आत्मा) को टटोलेगा, उसी को दोष देगा या सन्तोष से युक्त होगा।

क्षेत्र-समता—समता का दूसरा प्रकार क्षेत्र-समता है। क्षेत्र से मतलब है—स्थान, भूमि, खेत, जगह या मानव-जीवन के विविध क्षेत्र। क्षेत्र भी इष्ट या अनिष्ट मिलने पर मनुष्य का मन समता से विचलित हो जाता है। बुरा या अमनोज्ञ क्षेत्र

मिलने पर मनुष्य रोष से झल्ला उठता है, अमुक निमित्तो को कोसने लगता है, अनिष्ट स्थान पर सममावपूर्वक जमने के बदले उखड़ने लगता है ।

भगवान बुद्ध के जीवन का एक प्रसंग है। एक बार वे किसी नगर में पहुँचे तो वहाँ के निवासी भगवान बुद्ध को गालियाँ देने लगे, उनके भिक्षुओं को सताने लगे, उन्हे आहारादि नही देते या अनादरपूर्वक देते। यह देख कर भगवान बुद्ध के शिष्य आनन्द भिक्षु तिलमिला उठे। उन्होने भगवान बुद्ध से आकर शिकायत की—"भंते ! हमे यहाँ से शीघ्र ही अन्यत्र चल देना चाहिये। यहाँ रहना ठीक नही है।"

भगवान बुद्ध ने पूछा—"क्यो, आनन्द ! क्या बात है ? यहाँ से क्यों चल देना चाहिये ?"

आनन्द—"भंते ! यहाँ हमे कोई पूछता नही, लोग गालियाँ देते हैं, भिक्षा भी तिरस्कारपूर्वक देते है। यह क्षेत्र अच्छा नही है। यहाँ के लोग खराब है।"

भगवान बुद्ध—"अगर दूसरे नगर या कस्बे मे गये, और वहाँ भी ऐसे लोग हुए तो, फिर क्या करेंगे ?"

आनन्द—"फिर वहाँ से भी अन्यत्र चल देना होगा।"

बुद्ध—"मान लो, आगे के क्षेत्र इससे भी ज्यादा खराब मिले, और वहाँ के मनुष्य इनसे भी ज्यादा क्रूर या अज्ञानी मिले, अनार्य मिले या अनाड़ी मिले तो फिर क्या करेंगे ?"

आनन्द—"भंते ! फिर आप ही बताइए कि हम क्या करें ? ऐसी परिस्थिति मे हमारा मन डाँवाडोल हो उठता है। हम कहाँ जाएँ ? आप ही कोई रास्ता बताइए।"

भगवान बुद्ध ने मुस्कराते हुए कहा—"आनन्द ! इस तरह एक क्षेत्र को या एक स्थान को अपमान से घबरा कर छोड़ देने से तो समस्या का समाधान नही होगा। समस्या का स्थायी समाधान यह है कि जिस क्षेत्र मे रहे, वहाँ के लोगो की ओर न देखे, अपनी ही आत्मा को देखे, अपने ही गुण-दोषो का अवलोकन करे। दूसरो की ओर देखने या क्षेत्र के प्रति अच्छा-बुरा चिन्तन करने से तो हमारा सन्तुलन बिगड़ जाएगा। इसलिए इसी क्षेत्र मे रह कर सममावपूर्वक सहन करते जाओ। तुम्हारी इसी समता का प्रभाव लोगो पर पड़ेगा और हार-थक कर वे तुम्हारे पास आ जाएँगे। फिर तुम्हे वे स्वतः अपनाएँगे। अतः इसी स्थान या क्षेत्र मे रहकर अपनी संयम-यात्रा चलाओ। यह क्षेत्र या क्षेत्रवासी जन तुम्हारी आत्मा का क्या बिगाड़ सकते है और क्षेत्र अनुकूल हो या क्षेत्रनिवासी इष्ट हों तो उससे तुम्हारी आत्मा को कौन-सा लाभ होगा ? अतः समतारस का पान करो, उसी मे अवगाहन करो।"

क्षेत्र-समता जब व्यक्ति मे आ जाती है तो वह मन मे अपना-पराया, इष्ट-

अनिष्ट, प्रिय-अप्रिय का भेदभाव करके विषमता नही लाता और न ही इष्ट-अनिष्ट को पा कर राग-द्वेष का जाल बुनता है। वह समता के पावन-पथ पर मजबूती से पैर जमा कर किसी भी प्रकार के क्षेत्र, स्थान, जमीन या सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक आदि क्षेत्रो मे भी अपने संतुलन को नही खोता। भगवद्गीता मे इसी प्रकार के सतुलन और समत्त्व को योग कहा गया है—

समत्वं योग उच्यते

समत्व को योग कहा है। फिर वह योग कर्मयोग हो, ज्ञानयोग हो, चाहे भक्तियोग हो। उसकी प्रतिष्ठा योग में ही होती है।

काल-समता—समता का तीसरा प्रकार काल-समता है। काल का अर्थ—समय, मृत्यु, अवस्था, सयोग, अवसर, स्थिति तथा आयु आदि है। इन सभी अर्थों मे प्रयुक्त होने वाले काल के अनुकूल-प्रतिकूल, इष्ट या अनिष्ट, अथवा अच्छे या बुरे होने पर समत्व को न खोना काल-समत्व है। काल-समता का आराधक दु.ख हो या सुख, वियोग हो या सयोग, अनुकूल समय हो या प्रतिकूल, परिस्थिति अच्छी हो या बुरी, मृत्यु आ जाए, चाहे जिन्दगी लम्बी हो जाए, श्वास ठीक हों या खराब, हर हाल मे मस्त रहता है, हर परिस्थिति में वह समत्व-पथ पर स्थिर रहता है। 'मेरी भावना' के अनुसार उसके जीवन का मूलमंत्र यह होगा—

> कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।
> लाखो वर्षों तक जीऊँ या, मृत्यु आज ही आ जावे॥
> होकर सुख में मग्न न फूले दु ख मे कभी न घबरावे।
> पर्वत, नदी, श्मशान भयानक, अटवी मे नही भय खावे॥
> रहे अडोल अकम्प निरन्तर, यह मन दृढतर बन जावे।
> इष्ट-वियोग, अनिष्टयोग मे, सहनशीलता दिखलावे॥

यह है काल-समभाव का तात्पर्य! जीवन मे एक समय ऐसा भी आता है, जब तिजोरी मे चाँदी की छनाछन होती है, और जब अपने दिन फिर जाते है, तब रूखी-सूखी रोटी भी मयस्सर नही होती। पर काल-समभावी साधक इन दोनों परिस्थितियो मे समत्व-पथ से विचलित नहीं होता। लाखो वर्षो का लम्बा जीवन हो, या आज ही मृत्यु आ जाए, समभावी साधक काल के विषय मे निश्चिन्त होता है। चाहे इष्ट का वियोग हो या अनिष्ट का सयोग हो, दोनो ही अवस्थाओ, कालसमभावी व्यक्ति का जीवन समता की सीमा का अतिक्रमण नही करता। इसी प्रकार कालसमभावी पुराने के प्रति मोह या नये के प्रति द्वेष या घृणा नही करता। उसके सामने वस्तु नई हो या पुरानी—वस्तु की उपयोगिता का सवाल है। अगर पुरानी अनुपयोगी है, अहितकर है, तो उसे वह छोड़ देगा और नई वस्तु अगर उपयोगी और हितकर है तो उसे

अपना लेगा। कालसमभावी व्यक्ति घोर अँधेरी भयकर रात हो या दिन का उजेला हो, भय नहीं खाता। वह मन को निर्भय और समत्व मे स्थिर रहता है। इसी समत्व-भावना को द्योतित करते हुए आचार्य अमितगति ने सामायिक-पाठ मे कहा है—

दुःखे सुखे, वैरिणि बन्धुवर्गे,
योगे वियोगे, भवने वने वा।
निराकृताशेष-ममत्व-बुद्धेः,
समं मनो मेऽस्तु सदाऽपि नाथ ॥

अर्थात्—दु.ख हो, सुख हो, वैरी हो, बन्धुवर्ग हो, संयोग हो, वियोग हो, भवन हो या वन हो, हे नाथ ! मेरा मन समस्त ममत्त्वबुद्धि से रहित हो कर सदैव सम रहे।

भाव-समता—भावो मे समता-भाव रखना भाव-समता है। विषम प्रसगो, या राग-द्वेष के प्रसंगो पर समता-भाव रखना भाव-समत्व है। आचार्य हरिभद्र पचाशक मे लिखते हैं—

समभावो सामाइयं, तण-कंचण-सत्तुमित्त-विसउत्ति।
णिरभिसंगं चित्तं उचिय-पवित्तिप्पहाणं च ॥

चाहे तिनका हो, चाहे सोना, चाहे शत्रु हो, चाहे मित्र, सर्वत्र अपने मन को राग-द्वेप की आसक्ति से रहित रखना तथा पापरहित उचित धार्मिक प्रवृत्ति करना, सामायिक है, क्योकि समभाव ही तो सामायिक है।

भावसमत्व से युक्त व्यक्ति व्यक्तिगत जीवन मे भी कैसी भी परिस्थिति आने पर राग-द्वेप से युक्त नही होता। साम्यभाव से युक्त व्यक्ति किसी भी पापी या घृणित व्यक्ति को देख कर घृणा या द्वेप नही करता, वह उसके साथ आत्मीय-भाव रखता है।

एक आचार्य ने तो राग-द्वेष के मध्यपथ मे रहने को साम्य बताया है—

इतो राग महाम्भोधिरितो द्वेषदवानलः।
यस्तयोर्मध्यगः पन्थास्तत्साम्यमिति गीयते ॥

इधर रागरूपी महासमुद्र गर्जन कर रहा है, उधर द्वेप-रूपी दावानल भड़क रहा है। इन दोनो के मध्य मे स्थित जो पथ है, वही भाव-साम्य कहलाता है।

समस्त प्राणियों पर समभाव

समभाव की सीमा यही तक समाप्त नही हो जाती, वह सारे विश्व के प्राणियो तक पहुँचती है। अपने परिवार, जाति, समाज या राष्ट्र के व्यक्तियो के साथ ही नही, विश्व की समस्त मानव-जाति के साथ ही नही, सभी प्राणिमात्र के

साथ समभाव रखना ही समत्व की पराकाष्ठा है। वर्तमान युग का मानव इतना स्वार्थी और ममत्वयुक्त हो गया है कि वह प्राय. अपने परिवार से ऊपर उठ कर नही सोचता। कुछ लोग ऐसे होते है, जो परिवार और जाति से ऊपर उठ कर सारे राष्ट्र के हित की बात सोचते हैं। उनमे स्वराष्ट्र-समभाव तक का विकास हो जाता है। किन्तु तीर्थंकरो की समता का आदर्श समग्र विश्व की मानवजाति और समग्र सृष्टि की प्राणिजाति तक का है। इसीलिए समस्त उच्च साधक मुनिदीक्षा लेते समय **'करेमि, भते ! सामाइयं'** भते ! मैं समता की साधना (सामायिक) स्वीकार करता हूँ।'

यही नही, वे अपने जीवनकाल मे समत्व की साधना के चरम शिखर पर पहुँच जाते है।

तीर्थंकर प्रभु की धर्मसभा मे सदा समभाव का साम्राज्य रहता है। वहाँ कोई शत्रु नही, कोई भी मित्र नही। मानव ही नही, पशुपक्षी भी वहाँ आ कर समभावपूर्वक बैठ जाते है। वहाँ क्रूर से क्रूर प्राणियो मे भी परस्पर द्वेषभाव नही उमड़ता। उनके सान्निध्य मे सभी लोग अपनी शत्रुता भूल जाते है। इसीलिए उनकी धर्मसभा का नाम समवसरण है। जहाँ सभी समभाव से आते हैं, उसे ही तो समवसरण कहते है।

इसीलिए समता की साधना के विषय मे तीर्थंकरों की मान्यता है—

जो समो सव्वभूएसु तसेसु थावरेसु य।
तस्स सामाइयं होई इइ केवलिभासियं ॥

जो साधक त्रस और स्थावर सभी प्राणियों पर समभाव रखता है, उसी की समत्व-साधना सामायिक कहलाती है, ऐसा केवली भगवान ने कहा है।

सचमुच समता की साधना सारे विश्व को छूती है; विश्व के प्राणिमात्र के साथ समभावी साधक का वास्ता पड़ता है।

आध्यात्मिक समता

आध्यात्मिक समता का सम्बन्ध आत्मा से है। शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि आदि आत्मा की समता को भग कर डालते है, वे विक्षेप डालते है। आत्मा अपने स्वभाव मे स्थिर होना चाहती है, किन्तु कर्म, शरीर आदि आकर घपला मचा देते है, वे विपमता पैदा कर देते है। साधारण व्यक्ति तो शरीर आदि पर ममत्व करके समता की एक सीढ़ी भी नही चढ़ पाते। जिसके अन्तर मे शरीरादि के प्रति ममता-मूर्च्छा कम होती है, परभाव मे रमणता की रुचि नही रहती, वही व्यक्ति आत्मा मे स्थिर हो सकता है। और आत्मा मे स्थिर होना ही आध्यात्मिक समता है।

इसके लिए भेद-विज्ञान की प्रक्रिया अपनाई जाती है। शरीर और आत्मा,

कर्म और आत्मा का पृथक्करण करना, इनका विश्लेपणपूर्वक विवेक करना, इन्हे अलग-अलग समझ कर शरीर, कर्म आदि पर जो ममत्व है, उसे छोड़ना, शरीरादि के प्रति आसक्ति का त्याग करना ही समत्व है, तभी समत्व के शिखर पर साधक पहुँच सकता है।

जब-जब शरीर पर किसी प्रकार का कष्ट आ पडे, भूख, प्यास, शर्दी, गर्मी, मच्छर आदि विविध परीषह आ कर सताने लगें, उस समय समभावी व्यक्ति अपने धर्म से च्युत नही होता, वह कष्टसहिष्णु बन कर अपने समभाव पर या अपने आत्म-स्वरूप मे स्थिर हो जाता है, किन्तु अपने गृहीत व्रतो, नियमो या आचार-विचारों को नही छोडता। सामायिक-पाठ मे आध्यात्मिक समता के लिए पहला पाठ बताया गया है—

> शरीरतः कर्तुमनन्तशक्तिं, विभिन्नमात्मानमपास्तदोषं।
> जिनेन्द्र! कोषादिव खड्गयष्टिं, तव प्रसादेन ममाऽस्तुशक्तिः।

हे जिनेन्द्र! आपकी स्वभावसिद्ध कृपा से मेरी आत्मा मे ऐसी आध्यात्मिक समता-शक्ति प्रगट हो जाय कि मैं अपनी आत्मा को कार्मणशरीर आदि से उसी प्रकार अलग कर सकूँ, जिस प्रकार म्यान तलवार से अलग की जाती है। क्योकि वस्तुत मेरी आत्मा अनन्तशक्ति से सम्पन्न है और सम्पूर्ण दोषों से रहित होने के कारण निर्दोष, वीतराग और अविनाशी है।

इसके अतिरिक्त आध्यात्मिक समता से सम्पन्न साधक कर्म और आत्मा का विश्लेषण करके उन्हे पृथक्-पृथक् करता है, और आत्मा के अपने असली स्वरूप मे स्थिर हो जाता है। एक आचार्य ने इस सम्बन्ध मे स्पष्टीकरण किया है—

> 'कर्म जीवं च संश्लिष्टं परिज्ञातात्मनिश्चयः।
> विभिन्नीकुरुते साधुः सामायिक-शलाकया॥

अर्थात्—कर्म और जीव दोनो परस्पर एक-दूसरे से संश्लिष्ट है, चिपके (मिले) हुए है, आत्मा का निश्चित ज्ञाता साधक समता-साधना की सलाई से इन दोनो को पृथक्-पृथक् कर लेता है।

आत्मस्वरूप में स्थिरता ही निश्चय समत्व है

वास्तव मे, आत्म का अपने स्वरूप मे स्थिर होना ही समता है। अपने स्वरूप से भ्रष्ट होकर परभावो मे भटकना ही विषमता है। विषमता को छोड कर जब आत्मा अपने स्वरूप मे स्थिर होती है, तभी उसकी समत्व-साधना परिपक्व कही जाती है। इसीलिए भगवतीसूत्र मे इस पर गम्भीर चिन्तन करके कहा गया—

> 'आया समाइए, आया सामाइयस्स अट्ठे'

आत्मा ही सामायिक है और आत्मा ही सामायिक का अर्थ प्रयोजन है।

वाह्य विषय-भोगो की चंचलता से हटकर स्वभाव-आत्मस्वरूप मे स्थिर-लीन होना ही समत्व-साधना है। और कर्मो या काषायिक विकारों से अलग करके अपने शुद्ध स्वरूप को पा लेना ही समत्व साधना (सामायिक) का अर्थ फल है। निष्कर्ष यह है कि आत्मस्वरूप मे परिणति हुए विना साधक के त्याग, नियम, व्रत, प्रत्याख्यान, प्रतिक्रमण आदि सव की सव वाह्य धर्म-क्रियाएँ पुण्याश्रवरूप हैं; मोक्ष-साधक संवर-रूप नही।

इस प्रकार से निश्चय समत्व को प्राप्त करके व्यक्ति समत्व के उच्च शिखर को छू लेता है, तव समत्व मे वह सदा के लिए स्थिर हो जाता है।

आप भी समत्व के इन विभिन्न रूपो को भलीभाँति समझ कर क्रमशः समत्व के प्रासाद पर आरूढ़ होंगे, तभी आप मे आत्मसाधना की परिणति परिपक्व हुई समझी जाएगी। ●

सरल-चित्त हृदय, प्रतिभा और पुरुषार्थ के पुंज

स्व० श्री गजेन्द्रसिंह जी भंडारी

स्मृति-परिशिष्ट

आपकी इबादत के क्या कहने,
आपकी बन्दगी के क्या कहने ?
जो शमां की मानिन्द थी रौशन,
आपकी जिन्दगी के क्या कहने ?

इन्द्रधनुषी व्यक्तित्व की विरल झाँकी

☆ श्री टी० एन० पार्थसार्थी
योजना एवं विकास अधिकारी
फ्लोअर एण्ड फूड लि० इन्दौर

जैनधर्मप्रभाकर युवा कविरत्न पूज्य श्री महेन्द्रमुनि "कमल" का इस वर्ष इन्दौर मे श्रावकसंघ द्वारा वर्षावास आयोजित किया गया था। इस चातुर्मास मे उनके द्वारा किये गये प्रेरक उद्‌बोधनों एवं व्याख्यानो से भण्डारी-परिवार अत्यधिक प्रभावित हुआ तथा भण्डारी-परिवार के कुलश्रेष्ठ स्वर्गीय श्री गजेन्द्रसिंहजी भण्डारी की विदुषी पत्नी श्रीमती भुवन भण्डारी ने मुनिश्री के प्रवचनो के संकलन के साथ ही साथ अपने स्वर्गीय पति श्री गजेन्द्रसिंहजी भण्डारी के अविस्मरणीय संस्मरणो का संकलन निकालने का दृढ़ निश्चय किया तथा इस कार्य के लिये श्रीमती भण्डारी को मुनिश्री का आशीर्वाद प्राप्त हुआ। उन्ही के आशीर्वाद से इस पुस्तक का प्रकाशन सम्भव हो सका है। प्रस्तुत पुस्तक अन्तर्दृष्टि मे जहाँ मुनिश्री के प्रवचन मानव-कल्याण के लिए हितकर होगे, वही स्वर्गीय गजेन्द्रसिंह भण्डारी के जीवन के मार्मिक प्रसंग भावी पीढ़ी के चरित्र-निर्माण मे सहायक होगे।

यह सृष्टि जीवन एव मृत्यु इन दो शब्दो का सगम है। यहाँ कई आत्माएँ अवतरित हुईं और काल के कराल मे लीन हो गईं। ऐसी विरली ही आत्माएँ होती हैं, जो सत्कर्मों से काल के आवरण को हटा कर अमर हो पाती है। हम उस आत्मा की जीवन मे कमी अनुभव करते है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसका जीवन हमारी आवश्यकता थी—जिसका आज अभाव है। इस अभाव का जितना अधिक आभास होता है, उतनी ही उस आत्मा की महानता बढती जाती है और उसके स्मरणमात्र से ही सत्कर्मों की प्रेरणा जागृत हो जाती हैं। उस आत्मा की महिमा का वर्णन करने से वाणी धन्य हो जाती है और लेखनी कृतार्थ। ऐसी ही एक महान् आत्मा स्व० गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी की जीवनी को लेख के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा हूँ।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी श्रीगजेन्द्रसिंहजी साहब भण्डारी की विभिन्न संस्थाओ मे मुझे कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तथा आज भी मैं उनके द्वारा

स्थापित मैसर्स फ्लोअर एण्ड फूड लिमिटेड, इन्दौर मे योजना एवं विकास अधिकारी के रूप मे कार्य कर रहा हूँ। जहाँ मुझे स्वर्गीय भैयासाहब की विभिन्न संस्थाओं मे कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ वही उनके साथ मेरे पारिवारिक सम्बन्ध भी मधुर रहे। यही कारण है कि मुझे स्वर्गीय भैयासाहब की प्रतिभा को निकट मे देखने का सुअवसर मिला।

बाल्य-काल

सन् १६२६ के नवम्बर माह की ६ तारीख के शुभ-दिन जैनरत्न सेठ सुगनमलजी साहब भण्डारी की धर्मपत्नी श्रीमती चम्पाबाई को एक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई बालक का नाम गजेन्द्र रखा गया। विरले ही ऐसे होते हैं जो 'यथानाम तथागुण' के नाम से चरितार्थ होते हैं। जैसे ही बालक के चरण घर मे पड़े, वैसे ही परिवार मे सुख और वैभव की श्रीवृद्धि होना प्रारम्भ हो गया। उस समय भण्डारी-परिवार रायबहादुर राज्य भूषण सेठ कन्हैयालालजी साहब भण्डारी के मार्ग-दर्शन मे सफलता की ओर अग्रसर हो रहा था।

किसी भी व्यक्ति की प्रगति मे उसके परिवार-जन, संस्कार और शिक्षा-दीक्षा का बहुत बड़ा योग हुआ करता है। बड़ों के प्रति विनीत भाव, छोटो के प्रति अनुराग, दीनों के प्रति दया और व्यवहार मे स्वाभाविक सरलता आदि गुण जन्म से ही भण्डारी-परिवार के प्रत्येक सदस्य को विरासत के रूप मे मिलते रहे हैं! एतदर्थ श्रीमान् गजेन्द्रसिंहजी भी इन सभी गुणो से ओत-प्रोत थे।

शिक्षा-दीक्षा

श्री गजेन्द्रसिंहजी की प्रारम्भिक शिक्षा उस समय के प्रसिद्ध विद्यालय डेली कालेज, इन्दौर नगर मे हुई; जहाँ उस समय देश के राजा-महाराजाओ के बच्चे ही शिक्षा ग्रहण किया करते थे। अपने प्रारम्भिक शिक्षा-काल मे वे अत्यन्त प्रखर बुद्धि के होनहार छात्र थे। मैट्रिक की परीक्षा उच्च श्रेणी मे उत्तीर्ण कर अग्रिम अध्ययन हेतु उन्हे होल्कर साइन्स कालेज मे भर्ती किया गया। तत्पश्चात् २२ दिसम्बर, १६४६ मे उन्हे कैमिकल इन्जिनियरिंग के उच्च अध्ययन हेतु कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी, इंग्लैण्ड भेजा गया। वहाँ अपने गुरु श्रीसोमदत्तजी शर्मा के सानिध्य मे सन् १६५० तक विद्यार्जन करने के पश्चात् वे स्वदेश लौट आए।

उनकी प्रखर प्रतिभा को देख कर पूज्य संत कस्तूरचन्दजी महाराज साहब ने उन्हे 'पारस' एवं 'चिन्तामणि' इन दो शब्दों से अलंकृत किया था। वे अपने जीवन के अन्तिम क्षणो तक ऐसे पारस बनकर रहे कि जिस कार्य को भी उन्होने अपने हाथ मे लिया उसमे सफलता ही अर्जित की और जिस व्यक्ति पर हाथ रखा, उसे इन्सान बना दिया। इन शब्दो का सम्बोधन उनके लिए कितना उपर्युक्त था यह आपको उनके संस्मरणो से विदित होगा।

पारिवारिक जीवन

१५ फरवरी, सन् १९५१ को वे अजमेरनिवासी सेठ अभयकरणजी साहब मेहता की ज्येष्ठ पुत्री भुवनेश्वरी देवी से विवाह-सूत्र मे बंधे। अल्पावधि मे ही वैचारिक समानता से इतने घुल-मिल गये कि उनका दाम्पत्य-जीवन आनन्द एवं उल्लास के हिलोरे लेने लगा। उन्हे तीन पुत्र-रत्नों की प्राप्ति हुई। जहाँ उन्हे अपनी पत्नी से अगाध स्नेह था, वही माता-पिता के प्रति अपार श्रद्धा एव भक्ति भी थी। उनका स्नेह अपने माता-पिता, पत्नी एवं वच्चो तक ही सीमित नही था, अपितु उनके हृदय मे परिवार के सभी सदस्यों के प्रति आदर एवं सहानुभूति थी। उन्हे अपने परिवार के प्रति इतना स्नेह था, जो इस वात से स्पष्ट है कि एक वार वे विदेश-भ्रमण पर जाने वाले थे और उनकी हार्दिक इच्छा थी कि वे अपनी धर्म-पत्नी को भी अपने साथ इस यात्रा मे ले जायं, किन्तु उन्होंने ऐसा न करते हुए अपने लघु-भ्राता स्वर्गीय महेन्द्रसिहजी, जो कि उस समय इंग्लैण्ड मे डाक्टरी का अध्ययन कर रहे थे, उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रजनी को पूज्य पिताश्री की अनुमति प्राप्त कर इग्लैण्ड भेजा।

आज के इस कलियुगीन एव भौतिकतापूर्ण जीवन मे ऐसे विरले ही व्यक्ति होते हैं जो अपने माता-पिता को असीम आदर तो देते ही हैं, किन्तु उनके द्वारा प्रदत्त सभी आज्ञाओ को भी शिरोधार्य करते है, श्री गजेन्द्रसिह भैयासाहव भी उन विरले व्यक्तियों मे से एक थे। उनकी कर्त्तव्यपरायणता, माता-पिता के प्रति आदर-भाव न केवल उनके परिवार तक ही सीमित था, किन्तु उसकी अनुभूति से जैन-समाज भी वचित न रह सका। श्रीमान् भैयासाहव अपनी दिनचर्या माता-पिता के चरण स्पर्श से ही प्रारम्भ करते थे। उनका यह दृढ विश्वास था कि माता-पिता की अनुमति या आशीर्वाद लिए विना प्रारम्भ किया गया कार्य अथवा यात्रा कभी भी सफल नही हो सकती। इसलिए अनजाने में भी उन्होने ऐसा कोई कार्य या यात्रा अपने माता-पिता की अनुमति या आशीर्वाद के विना नही किया। भण्डारी-परिवार मे आज भी उनकी इस परिपाटी का अनुसरण होता आ रहा है।

कभी-कभी वृहत् परिवार मे ऐसे प्रसंगो का होना भी स्वाभाविक ही है, जहाँ वैचारिक मतभेद उपस्थित हो जाते हैं। ऐसे समय श्रीमान भैयासाहव सदैव अपने से वडो की आज्ञा को परिवार की प्रतिष्ठा एवं गरिमा के अनुरूप शिरोधार्य करते थे, जो भण्डारी-परिवार का अनुशासन के सम्बन्ध मे एक विशिष्ट गुण माना गया है। यही कारण है कि इतना धनाढ्य एव विशाल परिवार होने के बावजूद भी यह एकसूत्र में वॅध कर दिन-प्रतिदिन प्रगति के पथ पर अग्रसर होता रहा है। परिवार के हित मे वे सदैव अपनी आकाक्षाओ की आहुति देते रहे। उनके द्वारा अपनी ही डायरी मे ऐसे मर्मस्पर्शी प्रसंग अंकित है, जिनसे प्रतीत होता है कि उनकी अन्तिम

इच्छा अपनी पत्नी को विदेश यात्रा पर ले जाने की थी, किन्तु निष्ठुर विधि के विधान ने उनकी यह आकांक्षा पूर्ण न होने दी और वे सदैव के लिए अपने हृदय पर यह बोझ लेकर दिव्य ज्योति मे लीन हो गये। श्रीमान् गजेन्द्रसिंहजी भैयासाहब की जीवन-संगिनी होने के नाते विदुषी श्रीमती भुवनेश्वरीजी ने भी पारिवारिक हितों को आत्मसात कर लिया था। जब-जब भी श्रीमान भैयासाहब विदेश यात्रा पर रवाना होते पारिवारिक आकाक्षाओ को शिरोधार्य कर, मन में उठे भावो की कभी भी अभिव्यक्ति न होने दी और पति के मंगल प्रवास की कामना का लक्ष्य रख उन्हे हँसते-हँसते विदा करती रही।

श्रीमान् गजेन्द्रसिंह जी भैयासाहब अपने बच्चो के भविष्य निर्माण के प्रति कितने कर्तव्यनिष्ठ थे कि वात्सल्य प्रेम को त्यागकर, छः वर्ष की अल्पायु से ही उन्होने बच्चो के प्रमुख विद्यालय दून स्कूल, देहरादून, मे विद्यार्जन हेतु भिजवाया तथा समय-समय पर वहाँ जाकर शिक्षको से उनके अध्ययन के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त करते थे। पत्र-व्यवहार के माध्यम से वे अपने बच्चों से उनकी शैक्षणिक गतिविधियाँ भी मालुम किया करते थे। सफलता के लिए प्रोत्साहन एवं असफलता पर उचित मार्गदर्शन देकर बच्चो के धैर्य को स्थायित्व प्रदान करते रहते। वे देश-विदेश मे कही भी हों, उनका पत्र-व्यवहार निरन्तर जारी रहता था। साथ ही घर-परिवार की प्रत्येक गतिविधियो से भी वे अपने बच्चो को अवगत कराते रहते थे ताकि बच्चे दूर रहकर भी अपने परिवार की दूरी महसूस नही कर सके।

श्री गजेन्द्रसिंह जी भैयासाहब अपने तीनो पुत्रों को उनकी रुचि के अनुसार पृथक-पृथक विषयों मे ज्ञान दिलवाना चाहते थे और उसी दृष्टिकोण को सामने रखकर वे देश-विदेश के प्रमुख विश्व-विद्यालयो से पत्राचार करते रहते। अपने ज्येष्ठ पुत्र श्री जसवीरसिंह को सीनियर केम्ब्रीज कर लेने के पश्चात् फूड टेक्नॉलाजी के उच्च अध्ययन हेतु अमेरिका की कॅन्सास यूनिवर्सिटी में भर्ती करवाना चाहते थे जिससे प्रोसेस फूड लाइन मे वे अपना निजी उद्योग स्थापित कर सकें। किन्तु कन्सास यूनिवर्सिटी के नियमानुसार सीनियर कैम्ब्रीज पास किये विद्यार्थियो के लिए प्रवेश की अनुमति न होने से यूनिवर्सिटी के अधिकारियो ने प्रवेश देने मे अपनी असमर्थता व्यक्त की। अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जिस कार्य को भी उन्होने अपने हाथ मे लिया उसमे असफलता का मुख उन्होंने कभी नही देखा अतः जब वे वर्ल्ड-टूर पर गये तो स्वय कन्सास यूनिवर्सिटी के अधिकारियो से मिले और उनसे विचार-विमर्श करके प्रवेश की अनुमति प्राप्त की।

जहाँ उन्हे अपने बच्चो से अगाध प्रेम था, वही उन्हे व्यावसायिक ढांचे मे ढालने एव अनुशासन मे रखने के वे प्रबल हामी थे। उन्हे इस बात का जरा भी गिला नहीं था कि मेरे बच्चे मेरे ही कर्मचारियों के मातहत रहकर कार्य सीखे। वे

चाहते थे कि जहाँ से भी जो भी अच्छी चीज सीखने को मिले, वे उसे ग्रहण करें और अमल में लाएँ। इसका ज्वलन्त उदाहरण यह है कि सन् १९६७ से १९७० तक पोलैण्ड के एक तकनीकी विशेषज्ञ मिस्टर जार्ज पाल को श्रीमान् गजेन्द्रसिंह जी भैया साहब ने फैक्टरी के संचालन हेतु बुलाया था। मिस्टर पाल की कार्य करने की विशिष्ट शैली को अल्पावधि मे ही भैयासाहब की पैनी दृष्टि ने पहचान लिया और उन्होने दृढ सकल्प किया कि क्यों न उनकी तकनीकी विशेषताओ का पूरा-पूरा लाभ उठाया जाय। इसी उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र श्री जसवीरसिंह, जो आज हमारे प्रबन्ध सचालक है, श्री पाल के साथ कार्य करने के लिए आदेश दिये तथा मिस्टर पाल से उन्होंने कहा, "**मेरा आपसे निवेदन है कि आप जसवीर को अपने शिष्य के रूप में शिक्षा दें, कोई भी कार्य चाहे वह बोरा उठाने का ही क्यों न हो, आदेश देने के लिए स्वतन्त्र है**" आप मन मे यह विचार कभी नही लावें जसवीर मेरा पुत्र है। जब कभी श्रीमति गजेन्द्रसिंह जी अपने पुत्र श्री जसवीर सिंह को मिस्टर पोल के साथ कार्य करते देखती तो मातृत्व प्रेम हृदय की गहराइयों से आँखों मे छलक पडता और वे खिन्न होकर भैयासाहब से कहतीं कि "आप मेरे बच्चे पर कठोरता बरत रहे है।" किन्तु श्रीमान भैयासाहब बडे ही दूरदर्शी व्यक्तित्व के धनी थे, वे उनकी खिन्नता को स्नेहमयी विचारों मे परिवर्तित कर देते तथा कहते "कठिन परिश्रम से ही मेरे बच्चे सोना बनकर सामने आवेंगे।" आज उन्ही के तीनों सुपुत्र अल्पायु मे उनके अवशिष्ट कार्यो को पूर्ण करने मे तन-मन से संलग्न है। उनका यह सफल संचालन देखकर प्रतीत होता है कि मानो स्वयं भैयासाहब उन्हे स्वर्ग से निर्देशित कर रहे हो।

उनके तीनों पुत्र स्वय अनुभव प्राप्त करे और उनमे आत्मबल जाग्रत हो, इसके भी वे प्रबल समर्थक थे। इसी भावना के अनुरूप सन् १९७० मे उन्होंने अपने तीनो पुत्रो को अकेले ही विदेश भ्रमण के लिए भेज दिया था।

अपने बच्चों मे जहाँ उन्होने भविष्य के लिए ठोस बुनियाद डाली थी। वही वे उसे कसौटी पर कसकर परखने मे भी अत्यन्त माहिर थे। एक बार उन्होंने अपने द्वितीय पुत्र श्री जम्बूकुमार को बम्बई के सिद्धार्थ आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कालेज मे अग्रिम अध्ययन हेतु प्रवेश लेने अकेले ही बम्बई भेज दिया, जहाँ कि बिना बडी-बडी सिफा-रिशो के प्रवेश पा सकना सम्भव नही था। चार-पांच दिन तक लगातार प्रयत्न करने के बावजूद भी उन्हे प्रवेश न मिल सका किन्तु श्री जम्बूकुमार जी निराश नही हुए और प्रयत्न करते रहे। आखिर प्रवेश के अन्तिम दिन उन्हें अपने प्रयत्न मे सफलता मिली और इस तरह कालेज मे प्रवेश पाकर वे अपने पिता की कसौटी पर खरे उतरे।

उनके वात्सल्य प्रेम की विशालता भी अथाह थी जिसका एक मार्मिक चित्रण

यहाँ दे रहा हूँ। १९ जुलाई, १९७१ को श्रीमान् भैयासाहब व्यावसायिक कार्य से बम्बई गये हुए थे और दिनाक २२ जुलाई को वापस आने वाले थे चूंकि उनके तृतीय पुत्र श्री सतीशकुमार उसी दिन विद्यार्जन हेतु देहरादून रवाना होने वाले थे। प्रातः १०-११ बजे के करीब उनका बम्बई से फोन आया कि वे कार्य की अधिकता के कारण न आ सकेंगे इसलिए सतीश को निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार देहरादून रवाना कर देवें। श्री सतीश को इस बात से बडा दुःख हुआ कि उन्हें बिना पापा जी से मिले ही देहरादून जाना पड़ेगा। इसे सयोग कहिए या पुत्र-वात्सल्य कि भैयासाहब ने पुन. संध्या को फोन करके बताया कि वे सतीश से मिलने हेतु यहाँ से रवाना हो रहे हैं तथा कल प्रातः रतलाम पहुँच रहे हैं और वही सतीश से मिल लेंगे। यह उनके वात्सल्य-प्रेम का कितना ज्वलन्त उदाहरण था। श्री सतीश जी के लिए भी यह संयोग ही था कि वे रतलाम स्टेशन पर अपने पिता से अन्तिम बार भेंट कर सके और जब वे इन्दौर आये तो अपने पिता श्री को दुबारा इस दुनिया मे न देख सके।

व्यावसायिक, धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाओं के संचालक एवं पदाधिकारी

(१) फ्लोअर एण्ड फूड लि० के संस्थापक एवं चेयरमेन
(२) नन्दलाल भण्डारी मिल्स लि० के डायरेक्टर
(३) काउ एण्ड गेट (इण्डिया) लि० के सस्थापक एवं मैनेजिंग डायरेक्टर
(४) इण्डस्ट्रीयल ट्रेडर्स के प्रबन्ध संचालक
(५) नन्दलाल भण्डारी मिल्स लि० प्राविडेण्ट फण्ड ट्रस्ट के ट्रस्टी
(६) नन्दलाल भण्डारी विद्यालय के प्रमुख सलाहकार
(७) नन्दलाल भण्डारी एण्ड संस के डायरेक्टर
(८) रा० रायबहादुर कन्हैयालाल नन्दलाल भण्डारी पारमार्थिक ट्रस्ट के ट्रस्टी
(९) देवास फ्लोअर आइल एण्ड डीआइल्ड केक फैक्ट्री के तत्कालीन डायरेक्टर
(१०) सेण्ट्रल होटल के संस्थापक एवं डायरेक्टर
(११) रणधीरसिंह गजेन्द्रसिंह आइल मिल के डायरेक्टर
(१२) इण्डस्ट्रीयल फाउण्डेशन मध्य प्रदेश के संस्थापक
(१३) आल इण्डिया रोलर फ्लोअर मिलर्स फेडरेशन के मैनेजिंग कमेटी के सदस्य
(१४) मध्यप्रदेश रोलर फ्लोअर मिलर्स एसोसिएशन के उपाध्यक्ष
(१५) बैंक आफ इण्डिया के तत्कालीन डायरेक्टर
(१६) महाराणा भूपाल इलैक्ट्रीकल्स लि० उदयपुर के डायरेक्टर
(१७) आल इण्डिया मैन्यूफैक्चरिंग आर्गेनाइजेशन मध्य प्रदेश के सस्थापक एव अध्यक्ष

(१८) भण्डारी क्रासफिल्डस प्रा० लि० के डायरेक्टर
(१९) रोटरी क्लब के १९५६ से आजीवन सदस्य
(२०) भारतीय ग्रामीण महिला बेकरी यूनिट के प्रेरणास्रोत
(२१) पुष्पकुंज अस्पताल के प्रेरक
(२२) यशवन्त क्लब के सक्रिय सलाहकार
(२३) मध्य प्रदेश क्रिकेट एसोसिएशन के मैनेजिंग कमेटी के सदस्य

विदेश प्रवास

श्रीमान् गजेन्द्रसिंहजी भैयासाहब ने विश्व के कई प्रमुख देशो की यात्रा की थी। उनकी ये विदेश यात्राएँ सन् १९४६ से १९७० के मध्य मे हुईं। उनकी इस यात्रा के प्रारम्भ के पांच वर्ष इंग्लैण्ड मे विद्यार्जन मे ही बीते। किन्तु बाद के सभी वर्षो मे की गई विदेश यात्राएँ शुद्ध व्यावसायिक थी जिसका मूल उद्देश्य विदेशों में हुई तकनीकी एवं औद्योगिक विकास की जानकारी एकत्रित करना था, ताकि वे अपने देश मे नये-नये उद्योगो की स्थापना कर सके। श्रीमान् भैयासाहब ने जिन-जिन देशों की यात्राएँ, की थी वे नीचे दी गई तालिका के अनुसार हैं—

क्रमाक	वर्ष	देश का नाम	यात्रा का उद्देश्य
(१)	१९७२ में	इंगलैण्ड	बाल्यकाल मे
(२)	१९४६ से १९५०	इंगलैण्ड	विद्यार्जन हेतु
(३)	१९५२	जापान	व्यावसायिक
(४)	१९६०	इंगलैण्ड एवं अन्य यूरोपीय देश	व्यावसायिक
(५)	१९६३	चैकोस्लावाकिया एवं अन्य यूरोपीय देश	व्यावसायिक
(६)	१९६५	पोलैण्ड	व्यावसायिक
(७)	१९६७	पोलैण्ड एवं अन्य यूरोपीय देश	व्यावसायिक
(८)	१९७०	विश्व भ्रमण (अमेरिका एवं विश्व के अन्य देश)	व्यावसायिक

व्यावसायिक प्रतिष्ठानों की स्थापना

श्रीमान् गजेन्द्रसिंहजी भैयासाहब ने शिक्षा के माध्यम को व्यावहारिक रूप देने के लिये कई नये-नये उद्योगो की स्थापना की। नि.सन्देह इन उद्योगो की स्थापना में उनके द्वारा की गई व्यावसायिक विदेश यात्रा का काफी बड़ा योगदान रहा। उन्होने जिन-जिन उद्योगो की स्थापना की वे अग्रानुसार हैं—

(१) इण्डस्ट्रियल ट्रेडर्स
(२) विस्को यानमार
(३) देवास फ्लोअर आईल एण्ड टी आईल केक फैक्टरी (सालवेण्ट एक्स-ट्रेक्शन प्लाण्ट)
(४) काउ एण्ड गेट (इण्डिया) लि०
(५) भण्डारी क्रास फिल्ड्स लि०
(६) सुप्रसिद्ध होटल का निर्माण (सेन्ट्रल होटल)
(७) फ्लोअर एण्ड फूड लि०

श्रीमान् गजेन्द्रसिंहजी भैयासाहब ने अपनी २१ वर्ष की अल्पायु से ही अपने परिवार के कार्यो के साथ ही साथ भण्डारी परिवार के व्यावसायिक प्रतिष्ठानों का काम-काज देखना भी प्रारम्भ कर दिया था और साथ ही साथ नये उद्योगो की स्थापना कर उनकी प्रगति मे लग गये ।

(१) इण्डस्ट्रियल ट्रेडर्स एवं विस्को यानमार

श्रीमान् भैयासाहब ने महारानी रोड पर बहुत ही सुसज्जित एवं आधुनिक मशीन बिक्री प्रतिष्ठान की स्थापना की जिसका नाम इण्डस्ट्रियल ट्रेडर्स रखा गया। यह सस्था अपने समय की एकमात्र प्रमुख संस्था थी, जिसके पास कई देश व विदेश की प्रमुख कम्पनियो की एजेन्सियां थी । जहाँ यह कृषि से सम्बन्धित सभी आधुनिक उपकरणो का बिक्री केन्द्र था वही जापान की सुप्रसिद्ध कम्पनी विस्कोयान मार के सहयोग से एन्जिन के निर्माण का कार्य भी शुभारम्भ किया । ये एन्जिन उस समय अपनी तकनीकी विशेषताओ की वजह से बहुत लोकप्रिय हुए ।

(२) सेण्ट्रल होटल

श्रीमान् गजेन्द्रसिंहजी भैयासाहब एक लम्बे अरसे तक विदेश में रहे एवं उन्होंने विश्व के कई प्रमुख देशो की यात्रा भी की । अपनी इन यात्राओ के दौरान वे कई आधुनिक होटलों मे रुके और उनके मस्तिष्क में एक बहुत ही सुन्दर एवं सभी सुविधाओ से युक्त होटल के निर्माण की कल्पना जागृत हुई । अतः इस कल्पना को साकार रूप प्रदान करने के लिये सन् १९५१ मे शहर के मध्य रामपुरा-वाला बिल्डिंग मे 'सेण्ट्रल होटल' की स्थापना की । आज जो सुख-सुविधाएँ प्रदेश की अन्य होटल मे उपलब्ध है, वे आज से २५ वर्ष पूर्व भी इस होटल मे थी । श्रीमान भैया साहब के सफल सचालन के कारण जहाँ यह होटल शहर का एकमात्र श्रेष्ठ होटल बना वही यह देश के सुप्रसिद्ध होटलो की श्रेणी मे माना गया और आज भी यह प्रदेश का एक अग्रणीय होटल है ।

(३) देवास फ्लोअर आइल एण्ड डि-आइल केक फैक्टरी (सालवण्ट एक्सट्रेक्शन प्लाण्ट) —

नये-नये आधुनिक उद्योगों की जानकारी एकत्रित करने हेतु श्रीमान भैया साहब हमेशा देश-विदेशो से पत्र-व्यवहार किया करते थे। विदेशो से हुए पत्र-व्यवहार के माध्यम से उन्होने साल्वण्ट एक्सट्रेक्सन प्लाण्ट की सम्पूर्ण जानकारी एकत्रित की। सालवण्ट एक्सट्रेक्शन प्लाण्ट द्वारा खलियो मे बचे हुए तेल को निकाल कर तेल रहित खली विदेशों मे निर्यात की जा सकती थी जिससे देश विदेशी मुद्रा अर्जित कर सकता था।

उस समय तेल-मिलो से निकलने वाली खली मे ५ प्रतिशत से १० प्रतिशत तेल रह जाता था जो तेल-मिलों की शक्ति के बाहर था। अतः सन् १९५९ मे श्रीमान भैया साहब ने देवास फ्लोअर आईल एण्ड डी-आईल केक फैक्टरी (सालवण्ट एक्सट्रेक्शन प्लाण्ट) की स्थापना की और उसका निर्माण अपने निर्देशन मे बड़ी ही द्रुत-गति से करवाया। इस फैक्टरी द्वारा निकली हुई खली देवास-केक के नाम से विदेशों के बाजारो मे बहुत लोकप्रिय हुई। जब यह फैक्टरी उत्पादन के क्षेत्र मे अपनी चरम-सीमा पर पहुँच गई तो श्रीमान भैयासाहब ने इस फैक्टरी का सचालन अपने परिवार के ही अन्य सदस्य को सौप दिया और वे स्वयं अन्य उद्योग की स्थापना के लिये योजना बनाने लगे।

(४) काउ एण्ड गेट (इण्डिया) लिमिटेड

सन् १९६३ मे श्रीमान गजेन्द्रसिह जी भैयासाहब ने इंगलैण्ड का प्रवास किया। वहाँ वे विश्व की विख्यात सस्था काउ एण्ड गेट (इंगलैण्ड) लिमिटेड के प्रबन्ध सचालको से मिले। तथा उन्होने इस विश्व विख्यात सस्था का सूक्ष्म अवलोकन किया और वे इस संस्था से अत्यधिक प्रभावित हुए। उन्होने इस संस्था को अपने देश मे लाने का दृढ़ संकल्प किया। वहाँ के उच्च अधिकारियो से विचार-विमर्श कर स्वदेश रवाना होने से पूर्व वे काउ एण्ड गेट (इगलैण्ड) लिमिटेड के चेयरमेन मि० गेट से मिले और उन्हे अपने उच्च अधिकारियो के दल के साथ भारत आने का निमन्त्रण दिया। मि० गेट उनकी व्यवहार-कुशलता से अत्यधिक प्रभावित हुए और उन्होने भारत आने का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। मि० गेट अपने दल के साथ सन् १९६२ मे ही भारत आये और श्रीमान भैया साहब के अतिथि बनकर रहे। काउ एण्ड गेट (इगलैण्ड) लिमिटेड के प्रतिनिधि मण्डल ने इन्दौर और आसपास के सभी स्थानो को सर्वे किया जहाँ प्रचुर मात्रा मे दूध आसानी से उपलब्ध हो सके। और अन्त मे उन्होने उज्जैन जिले के मक्सी नामक स्थान का चयन कर सन् १९६३ मे काउ एण्ड गेट (इण्डिया) लिमिटेड की स्थापना की। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि काउ एण्ड गेट (इण्डिया) लिमिटेड का अपने देश

में एक विशिष्ट स्थान हो और इस विशाल डेरी फार्म के माध्यम से शुद्ध एवं ताजा दूध-घी, मक्खन एवं क्रीम जन-साधारण तक सुगमता से पहुँच सके। वे अपने उद्देश्य मे सफल भी हुये किन्तु केन्द्रीय सरकार द्वारा कुछ तकनीकी कारणो से बेबीफूड (Baby Food) के निर्माण की अनुमति न मिलने के फलस्वरूप इस डेरी फार्म की प्रगति को रोक देना पड़ा। काउ एण्ड गेट (इंगलैण्ड) लिमिटेड के चेयरमैन मि० गेट स्वर्गीय भैया साहब की कार्य-कुशलता से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने अपने प्रस्थान से पूर्व ये शब्द, "यद्यपि हमें काउ एण्ड गेट (इण्डिया) लिमिटेड का कार्य केन्द्रीय शासन से अनुमति न मिलने से स्थगित करना पड़ रहा है किन्तु भविष्य मे जब कभी भी केन्द्रीय सरकार से इसकी अनुमति मिल जायेगी तो हम भण्डारी परिवार के माध्यम से ही आपके संस्थान को इस देश मे लावेंगे।" मिस्टर गेट ने अपने इन शब्दों को आज भी बरकरार रखा है तथा समय-समय पर इस सम्बन्ध मे वे पत्र-व्यवहार करते रहते हैं।

(५) भण्डारी क्रासफिल्ड्स लिमिटेड

जहाँ स्वर्गीय भैया साहब ने एक अति आधुनिक डेरी फार्म के निर्माण की योजना बनायी थी, वही पशुओ को सन्तुलित पशु आहार उपलब्ध हो तथा जिससे पशुधन की उत्पादन क्षमता बढ़े एवं दूध की क्वालिटी भी सुधरे इस सम्बन्ध में भी आपने गहरी रुचि ली तथा अपने इगलैण्ड प्रवास के समय पशुओ का (Balance Feed) बनाने वाली सुप्रसिद्ध संस्था मे क्रास फिल्ड्स एण्ड कलथ्राप लिमिटेड, लिव्हर-पूल के संचालको से मिले और उनके सहयोग से भारत मे ऐसी ही संस्था बनाने की योजना तैयार की और जब उनसे इसकी सहमति मिल गई तो अपने लघुभ्राता श्री राजेन्द्रसिंह जी भण्डारी के सहयोग से सन् १९६४ मे भण्डारी क्रासफिल्ड्स लिमिटेड की स्थापना की। यह संस्था उस समय प्रदेश की एकमात्र (Catte Food) फैक्टरी थी, जिसके उत्पादन देश तथा विदेशों मे बहुत प्रसिद्ध हुए तथा भण्डारी परिवार का नाम दूर-दूर तक फैल गया। आज भी भण्डारी क्रास फिल्ड्स लिमिटेड का देश मे अपना एक विशिष्ट स्थान है।

(६) फ्लोअर एण्ड फूड लिमिटेड

भण्डारी क्रास फिल्ड्स लिमिटेड की फैक्टरी के निर्माण के साथ ही साथ उनके मन मे एक आधुनिक मैदा मिल के निर्माण का विचार भी आया। सर्वप्रथम उन्होने गेहूँ से निर्मित पदार्थ जैसे मैदा, रवा-सूजी, आटा एव चापड के मार्केट रिपोर्ट का सर्वे करवाने का विचार किया तथा अपने मातहत अधिकारियो के साथ वे स्वय भी सर्वे के दौरान विभिन्न मण्डियो मे गये। इसके साथ ही आपने देश की कई प्रमुख मैदा-मिलो का भी निरीक्षण किया। सर्वे के माध्यम से वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे की देश मे मैदा मिले तो कई है, किन्तु उत्तम क्वालिटि निर्माण करने वाली मैदा
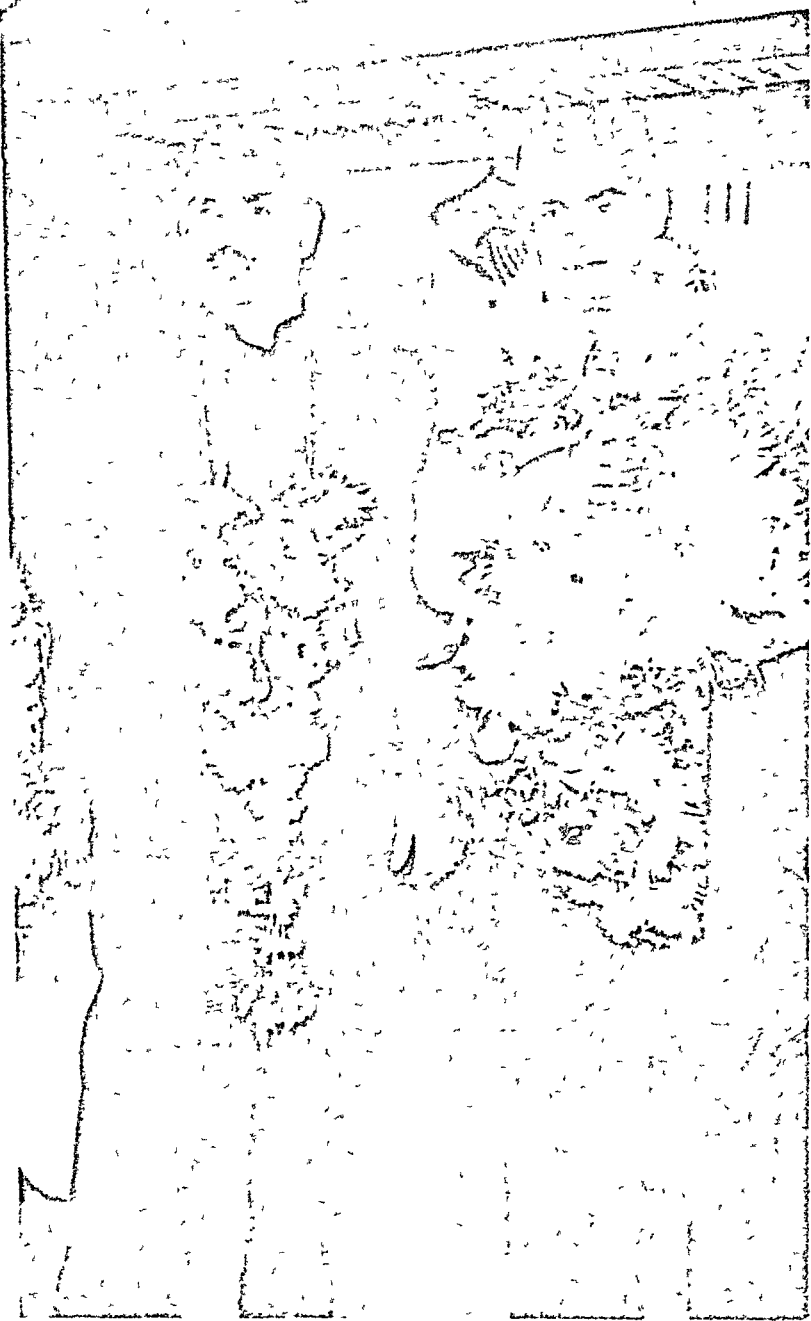
मध्यप्रदेश के प्रमुख उद्योगपति, समाजसेवी, धर्मनिष्ठ जैनरत्न सेठ श्री सुगनमलजीसाहब भन्डारी उद्योग-व्यवसाय के आधुनिक सर्वेक्षण के लिए अपने प्रतिभाशाली पुत्ररत्न श्री गजेन्द्रसिंह भन्डारी के साथ विदेश जाते हुए। स्वजन-मित्रो की असीम सद्भावनाएं, मंगल कामनाएं पुष्पहारो के रूप मे स्वीकार किये विमान तल पर। ई० सन् १९६०।

मिलें इनि-गिनि ही हैं। अतः यदि श्रेष्ठ उत्पादन करने वाली मैंदा मिल डाली जावे तो निःसंदेह वेकरीज एव होटल वालों को जहाँ उत्तम क्वालिटि का रवा-मैंदा मिलेगा वही गरीव एवं मध्यम वर्ग के लोगो को अच्छी क्वालिटि का आटा उचित मूल्य पर उपलब्ध हो जावेगा और उन्हें राहत मिल सकेगी। अतः अपने निश्चय को कार्य रूप मे परिणत करने के लिये उन्होने देश-विदेश से पत्र-व्यवहार करना प्रारम्भ कर दिया। पत्र-व्यवहार के माध्यम से उन्हे यह जानकारी मिली कि विश्व में पोलैण्ड द्वारा निर्मित मैंदा-मिल मशीनरी ही सवसे श्रेष्ठ, स्वचालित एवं पूर्ण विकसित हैं। गेहूँ मशीन मे डालने से रवा, आटा, मैंदा आदि के निर्माण तक सभी कार्य स्वचालित रूप से प्रतिपादित होता है। सन् 1965 मे पोलैण्ड की सुविख्यात कम्पनी मैसर्स पौलिमैंक्स से फ्लोअर मिल को लगने वाली मशीनरी खरीदने हेतु पत्राचार प्रारम्भ किया। और अल्पावधि मे ही सम्पूर्ण मशीनरी खरीदने की कार्यवाही सम्पन्न हो गई। वे स्वयं मशीनरी खरीदने एव उसकी कार्य-प्रणाली समझने के लिये पोलैण्ड की यात्रा पर गये। मैसर्स पोलिमैक्स के सचालक-गण स्वर्गीय भैयासाहेव की व्यवहार कुशलता से इतने प्रभावित हुए कि फ्लोअर मिल को लगने वाली सभी मशीनरी भारत भेजने के लिये सहमत हो गये। और उन्होने अनुवन्धित अवधि से पूर्व ही फ्लोअर मिल मशीनरी भारत भिजवाना प्रारम्भ कर दिया। कुछ ही महिनों मे सम्पूर्ण फ्लोअर मिल मशीनरी अपने गन्तव्य स्थान तक पहुँच गई। फैक्टरी निर्माण का कार्य स्वयं भैयासाहव ने अपनी देख-रेख मे द्रुतगति से प्रारम्भ करवाया। वे स्वयं प्रातः ७ वजे से रात्रि के दस वजे तक निर्माण स्थल पर उपस्थित रहते और अपने मार्ग-दर्शन मे कार्य करवाते। निर्माण के साथ ही साथ यथासमय मशीन इरेक्शन वर्क भी करवाते गये। उनकी लगन और उत्साह देखते ही वनता था। निर्माण का कार्य इतनी द्रुतगति से हुआ कि ४ अक्टूवर १९६७ को प्रदेश की इस आधुनिक स्वचालित मैंदा मील ने अपना उत्पादन प्रारम्भ कर दिया और आज यह मैंदा मील देश की प्रमुख मैंदा मिलों मे मानी जाती है।

उत्पादन प्रारम्भ होते ही माल के विक्रय की जटिल समस्या सामने आई क्योकि मार्केट के लिये उस समय यह उत्पादन नया-नया ही था। आपने अपने स्वय के मार्गदर्शन मे विक्रय की समुचित योजनाएँ वनाईं तथा उसी के अनुरूप विक्रय कार्य प्रारम्भ कर दिया और उन्हे इसमे सफलता भी मिली। अपने सभी व्यापारियों से, चाहे वे वड़े हो या छोटे, वड़ी ही आत्मीयता से मिलते थे। उनकी समस्याओं का निराकरण करते और सुझावो का स्वागत। उनकी यह मान्यता थी कि साफ-सुथरी व्यावसायिक पद्वति ही व्यापारी को वांधे रख सकती है और यही कारण है कि आज यह सस्था शहर की अग्रणीय सस्थाओ मे मानी जाती है वे एक कुशाग्र वुद्धि के सचालक थे। व्यावसायिक कार्यो का सफल संचालन हो सके इसलिये उन्होने

कार्यालय के सम्पूर्ण कार्य को पृथक-पृथक विभागों मे विभक्त कर दिया था जैसे— विक्रय विभाग, एकाउण्ट्स विभाग, परचेज विभाग, एवं प्रशासकीय विभाग। इसके अतिरिक्त प्लानिंग एण्ड डेव्हलपमैंण्ट विभाग की भी स्थापना आपने स्वतन्त्र रूप से की थी। किन्तु इन सभी विभागो मे अभूतपूर्व सामन्जस्य था और सभी विभाग के कर्मचारी टीम वर्क से कम्पनी का कार्य संपादित करते थे।

इस फैक्टरी का निर्माण ही इस उद्देश्य को सामने रखकर किया गया था कि यहाँ उत्तम और श्रेष्ठ गेहूँ निर्मित पदार्थ बनते रहे। इसी दृष्टिकोण को सामने रखकर पोलैण्ड के प्रमुख तकनीकी विशेषज्ञ मिस्टर जार्जपाल को फैक्टरी के सचालन के लिये बुलवाया ताकि उनकी तकनीकी विशेषताओ का लाभ अन्य मिलर उठा सके ताकि आने वाले वर्षो मे मिस्टर पाल की अनुपस्थिति मे ये ही मिलर फैक्टरी का सफलतापूर्वक संचालन कर सके। क्वालिटी कन्ट्रोल के लिये भी वे एक आधुनिक एवं सुसज्जित लेवोरेटरी का निर्माण करवाना चाहते थे। फैक्टरी के अधिक विकास एव अन्य कई नई-नई योजनाओ की जानकारी एकत्रित करने के लिये स्वर्गीय भैया साहब ने मुझे अमेरिका और अन्य यूरोपिय देशो की यात्रा करने के लिए प्रोत्साहित किया।

मैं जब उक्त देशो की यात्रा कर वापस आया तो मैंने स्वर्गीय भैयासाहब को कई नये-नये सुझाव दिये। मेरे इस सुझाव को कि हमे अलग से फूड टेक्नालाजी एव रीसर्च विभाग की स्थापना करना चाहिये उन्होने तुरन्त स्वीकृति दे दी, क्योंकि वे चाहते थे कि इस विभाग के माध्यम से उपभोक्ताओ को बढ़िया से बढिया खाद्य पदार्थ उपलब्ध हो सके और उन्हे अपने इस कार्य मे सफलता भी मिली।

इस मील द्वारा किये गये श्रेष्ठ उत्पादनो सुदृढ़ विक्रय व्यवस्था के फलस्वरूप अल्पावधि मे ही इसका उत्पादन देश के कई प्रमुख शहरो मे द्रुतगति से पहुँच गया और उत्तमता की वजह से दिन-प्रतिदिन लोकप्रिय होता चला गया। स्वर्गीय भैया साहब के सफल सचालन एवं मील के श्रेष्ठ उत्पादनों के फलस्वरूप इस मील का नाम देश की अन्य प्रमुख फ्लोअर मिलो के नक्शे पर अग्रणी रूप से उभरकर आया और इसी वजह से स्वर्गीय भैयासाहब को आल इण्डिया रौलर फ्लोअर मिलर्स फेडरेशन के मैनेजिंग बोर्ड के एक सलाहकार के रूप मे मनोनित किया गया, साथ ही साथ आप मध्य प्रदेश रौलर फ्लोअर मिलर्स एसोसिएशन के उपाध्यक्ष भी बनाये गये।

स्वर्गीय भैयासाहब ने जिस मेहनत एवं लगन से इस मील का निर्माण किया था, आज यह मील एक वटवृक्ष की भांति चहुँमुखि प्रगति कर रहा है। आज इस मील के उत्पादन देश के सभी प्रमुख बाजारों मे अपना विशिष्ट स्थान बनाये हुए है। हमे गर्व है कि मध्यप्रदेश मे आज इस मील के उत्पादनो का विक्रय सबसे अधिक है।

हमारे वर्तमान प्रवन्ध संचालक श्री जसवीरसिंह जी भण्डारी, जो कि स्वर्गीय भैया साहव के ज्येष्ठ पुत्र है, उन्ही के पद-चिन्हो पर चलकर इस मील का वहुत ही कुशलता पूर्वक सफल संचालन कर रहे हैं एवं अपने पिता श्री नाम रोशन कर रहे है ।

कुशल उद्योगपति, समाज सेवक, निष्ठावान कर्मयोगी, प्रेरक व्यक्तित्व, दूरदर्शी एवं कुशल विनियोजक एवं सहृदय व्यक्तित्व :

अभी तक आप स्वर्गीय भैयासाहव के वचपन से लेकर उनके प्रतिष्ठानों की स्थापना, उनके संचालन आदि के सम्वन्ध मे पढ़ते आ रहे थे । अव मैं उनके जीवन से सम्वन्धित उपरोक्त सभी मुद्दो पर सक्षिप्त प्रकाश डालने का प्रयास कर रहा हूँ—

यह सर्व विदित है कि स्वर्गीय भैयासाहव एक कुशल उद्योगपति थे । उन्होंने पशुपालन, दुग्ध पदार्थ उत्पादन, वेकरी तथा अन्य कई उद्योगो की स्थापना की तथा उनका सफल संचालन भी किया । उन्होने अपने व्यावसायिक पक्ष के साथ ही ऐसे प्रतिष्ठानो मे, जहा खाद्य पदार्थो का निर्माण होता था, इसलिये अभिरुचि ली की ये सभी जनकल्याण के साथ ही साथ दैनिक उपयोग की प्रमुख आवश्यकताओं की भी पूर्ति करते थे । वे अपने सफल संचालन से काफी लोकप्रिय हुए और इसी वजह से वैंक आफ इण्डिया ने उन्हें डायरेक्टर के पद पर मनोनित किया । साथ ही वे आल-इण्डिया मैन्युफेक्चरर्स आर्गेनाइजेशन के मध्यप्रदेश के संस्थापक अध्यक्ष भी वनाये गये । इस संस्था का विशाल भवन जो पोलोग्राउण्ड मे स्थित है, स्वर्गीय भैयासाहव की प्रेरणा एवं प्रयत्नो का ही फल है ।

स्वर्गीय भैयासाहव का दायरा अपने व्यावसायिक प्रतिष्ठानों तक ही सीमित नही था । प्रतिष्ठानो के सचालन मे यद्यपि वे अत्यधिक व्यस्त रहा करते थे किन्तु इसके वावजूद भी वे सामाजिक एवं धार्मिक कार्यो मे वड़ी ही लगन एवं निष्ठा से भाग लिया करते थे । निम्नाकित सगठनो से उनका आवद्ध रहना इस वात की पुष्टि करता है :—

(१) १९५६ से रोटरी क्लव के आजीवन सदस्य
(२) राय वहादुर कन्हैयालालजी भण्डारी पारमार्थिक ट्रस्ट के ट्रस्टी
(३) मै० नन्दलाल भण्डारी मील प्रॉवीडेण्ट फण्ड के ट्रस्टी
(४) मध्यप्रदेश क्रिकेट एसोसिएशन के मैनेजिग कमेटी के सदस्य
(५) यशवत क्लव इन्दौर के सदस्य ।

आपकी ही प्रेरणा से भारतीय ग्रामीण महिला वेकरी यूनिट का राउ (इन्दौर) मे शुभारम्भ हुआ जो आज समाज की मध्यमवर्गीय महिलाओं के कल्याण एवं भरण-पोपण का प्रमुख अग है । शहर के मध्य स्थित नन्दलाल भण्डारी हायर सैकण्डरी विद्यालय के वे प्रमुख सलाहकार थे । समय-समय पर वे विद्यालय जाकर अपने कुशल

निर्देशन एव विचारो से शिक्षकों एव विद्यार्थियो का हौसला बढ़ाते रहते थे। नन्दलाल भण्डारी मेटरनिटि हास्पिटल का भी आप समय-समय पर निरीक्षण करते थे। इस अस्पताल को सुसज्जित करने मे भी आपका काफी बड़ा योगदान रहा।

स्वर्गीय भैयासाहव समाज के एक प्रमुख अग तो थे ही, धर्म के प्रति भी उनकी काफी अभिरुचि थी। वे सभी धर्मों को समान दृष्टि से देखते थे। जिस धर्म से जो भी अच्छी वात ग्रहण करने को मिलती, वे उसे अवश्य ग्रहण करते थे। जब भी समय मिलता आध्यात्मिक लाभ लेने के लिये गीता भवन, महावीर भवन, सेवा सदन आदि धार्मिक स्थलो पर वे जाते रहते थे। अपने कर्मचारी चाहे वे किसी भी धर्म के क्यों न हो, उनके धार्मिक पर्व पर विशेष रूप से सम्मिलित होते और उस दिन कार्यालय मे अवकाश रखते। स्वर्गीय गजेन्द्रसिंहजी भैयासाहब दूर दृष्टि व्यक्तित्व के धनी एव कुशल प्रशासक थे। उनके कार्य की यह विशेषता थी की जो भी व्यवसाय वे प्रारम्भ करते आने वाले २०-२५ वर्षों वाद की आवश्यकता को मद्देनजर रखते हुए उसकी स्थपना करते थे तथा उस समय उसकी क्या स्थिति होगी इस ओर वे विशेष ध्यान देते थे। वे कुशाग्र बुद्धि के व्यक्ति थे। जो भी पेपर या फाईल वे एक वार देख लेते, उसे कभी नही भूलते। ८-१० वर्ष पूर्व के सन्दर्भ मानो उनकी जवान पर रहते थे। यदि कोई पेपर मुझे नही मिलता तो वे मुझसे कहते कि आप अमुक फाईल देखे उसमे आपको रिफरन्स मिल जावेगा। वे सदैव मुझसे यही कहते कि प्रत्येक कार्य को अगर सोच-समझ कर एवं योजनावद्ध तरीके से करोगे तो कभी कठिनाई महसूस नही होगी। जव भी वे कोई नया प्रोजेक्ट अपने हाथ मे लेते तो सर्वप्रथम उसकी योजना क्रमानुसार कागज पर उतार लेते तथा हर पहलू पर उसका गहन अध्ययन करते ताकि उन्हे आत्मविश्वास हो जाय कि यह योजना सफल होगी। यही कारण है कि उन्होने जिन-जिन प्रतिष्ठानो की स्थापना की वे सभी प्रतिष्ठान योजनाबद्ध रूप से यथासमय साकार हुए।

स्वर्गीय भैयासाहव अनुशासन के प्रवल समर्थक थे। उनके कार्यालय का अनुशासन उच्च श्रेणी का था। उन्हें सफाई अधिक पसन्द थी। अपने कार्यालय व फैक्टरी को वे हमेशा सुव्यवस्थित और साफ रखते थे। प्रत्येक कर्मचारी साफ-सुथरी पोशाक पहन कार्यालय मे आवे, उसकी टेबल सुव्यवस्थित हो, इस ओर भी वे विशेष ध्यान देते थे। कार्यालय के समय, कम्पनी के कार्य के अलावा अन्य कोई भी कार्य करना वे पसन्द नही करते जो कम्पनी के हित मे न हो। कार्य का तुरत निराकरण (Ouick disposal) उनकी प्रमुख विशेषता थी। विलो के भुगतान मे वे विलम्ब नही होने देते थे क्योकि वे नही चाहते थे कि कोई भी प्रतिनिधि निरर्थक उनकी कम्पनी के चढकर काटे। अपने ग्राहको के प्रति उन्हे विशेष स्नेह था। उनकी कठिनाईयो का निराकरण वे तुरन्त करते थे और जो भी उनके अच्छे सुझाव होते, उसका भी स्वागत करते थे।

उनमे अपने ग्राहकों को सन्तुष्ट करने की अद्भुत क्षमता थी। कोई भी ग्राहक उनके व्यवहार से कभी भी असन्तुष्ट नही हुआ चाहे वह खरीददार रहा हो या वेचवाल।

स्वर्गीय भैयासाहव वहुत ही वड़े मानव-शिल्पी थे। जव उन्हे यह विश्वास हो जाता कि अमुक व्यक्ति में काम करने की क्षमता एवं लगन है तो वे उसे अपने प्रतिष्ठान मे नियुक्ति दे देते। उनकी यह निजी मान्यता थी कि यदि कर्मचारी मन लगाकर काम करे तो कोई भी शक्ति उसकी तरक्की मे वाधा नही डाल सकती। उन्होने अपने समस्त कर्मचारियो को इतना दक्ष एवं कार्य कुशल वना दिया था कि वे आजीवन उन्हे भुला नही सकते। उनके आर्शीवाद से कई व्यक्ति वड़ी-वडी कम्पनियो मे ऊँचे ओहदो पर सेवारत है और कई अपने नीजि उद्योग स्थापित कर चुके हैं। उनकी स्वयं की कम्पनी मे मेरे अलावा ऐसे कई कर्मचारी है जो अपनी कार्य-कुशलता, सच्ची लगन एवं ईमानदारी से एक मामूली कर्मचारी से अधिकारी के पद तक पहुँच गये हैं। उदाहरणार्थ, श्री पी० सी० मेहता को ही ले लिजीये जिन्होने स्वर्गीय भैया-साहव के सानिध्य मे आज से १६ वर्ष पूर्व एक साधारण कर्मचारी के रूप मे कार्य प्रारम्भ किया था और आज वे इस कम्पनी के सफल सेल्स मैनेजर के रूप मे कार्य कर रहे है।

कम्पनी का कार्य सुचारु रूप से समय पर हो, इसके वे कट्टर समर्थक थे तथा वे स्वय भी अपने कार्य के प्रति निष्ठावान थे। किसी कर्मचारी की लापरवाही से यदि कार्य समय पर पूर्ण न हो पाता तो स्वर्गीय भैयासाहव स्वय कार्यालय समय के वाद रुककर उसका कार्य पूर्ण कर देते थे। दूसरे दिन जव कर्मचारी कार्यालय मे आता और अपना काम पूर्ण हुआ पाता तो स्वर्गीय भैयासाहव के समक्ष नतमस्तक हो जाता और दुवारा अपने कार्य के प्रति कभी भी लापरवाही नही करता था स्वर्गीय भैयासाहव स्वयं भी समय के पावन्द थे। वे नियमित रूप से कार्यालय आते और प्रत्येक कार्य चाहे वह वडा हो या छोटा लगन एवं निष्ठा से प्रतिपादित करते थे। यही कारण था कि उनके समस्त कर्मचारियो ने उनके इस गुण को आत्मसात कर लिया था।

स्वर्गीय भैया साहव एक वहुत ही कोमल प्रकृति के सहृदय व्यक्ति थे। वे अपने कर्मचारियो को अपने ही परिवार का एक सदस्य मानते थे। मुझे अच्छी तरह से याद है कि एक वार भैया साहव ने मुझे कोर्ट का एक महत्त्वपूर्ण काम सौंपा। जव यह कार्य पूरा हो गया तो मैंने भैया साहव से कहा कि आपका कार्य पूर्ण हो गया है। इस पर भैया साहव तुरन्त वोले, आपका नही, हमारा कार्य पूर्ण हो गया है, ऐसा कहो। जव आप हमारे हो गये हैं तव ऐसा कहने की क्या आवश्यकता। छोटे-वडे सभी स्तर के लोगो को अपना वना लेने की उनके व्यक्तित्व की एक विशेषता थी। जो भी व्यक्ति एक वार उनके सम्पर्क मे आ जाता वह हमेशा के लिये उनका वन जाता।

स्वर्गीय भैया साहव का यह मत था कि व्यक्ति स्वयं अपनी प्रतिभा एवं परिश्रम से, स्वयं का निर्माण करता है। हमे जैसे कर्मचारियो की आवश्यकता हो हम वैसे कर्मचारी वना सकते है। वे अपने कर्मचारी की गलती को दुर्लक्ष कर जाते ताकि उसे गलती सुधारने का पूरा-पूरा अवसर मिले और वह निरुत्साहित न होने पाये।

आपको वह प्रसंग याद होगा कि एक वार महात्मा सुकरात ने किसी व्यक्ति से पूछा, 'आदमी को कितनी गलतियों तक क्षमा कर देना चाहिए।' इस पर सुकरात वोले, 'वह जितनी वार गलती करे उतनी वार।' स्वर्गीय भैया साहव भी अपने कर्मचारियो को हमेशा क्षमा कर देते थे। वे हमेशा कहा करते कि विना गलती किये आदमी सीखेगा कैसे। किन्तु गलतियो का दुहराना नही चाहिए। मानवशिल्पी भैया साहव के इन विचारो से उनके हृदय मे छिपे हुए विनम्र भाव की ही अनुभूति होती थी।

वे अपने कर्मचारी के पारिवारिक कार्य में स्वयं उपस्थित रहते एवं उसे सहृदयतापूर्वक वित्तीय सहायता देते थे। चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियो के प्रति तो उनको विशेप प्रेम था। एक वार एक चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी वीमार हो गया तो स्व० भैया साहव ने उसके स्वास्थ्य एवं वित्तीय कठिनाइयो के सम्वन्ध मे तलाश करवाई और उसे वित्तीय सहायता पहुँचाई तथा अपने अधिकारियो को यह आदेश दिए कि चतुर्थ श्रेणि कर्मचारियो के कटोती आदि के सम्वन्ध मे मेरी स्वीकृति के वाद ही कोई कार्यवाही करें।

स्वर्गीय गजेन्द्रसिह जी भैया साहव से सम्बन्धित कुछ मार्मिक प्रसंग

स्वर्गीय भैया साहव के सम्बन्ध मे जितना भी लिखा जाय कम ही हो होगा। उनके व्यावसायिक, सामाजिक एव धार्मिक पक्षो मे से किसी भी एक पक्ष का यदि विश्लेषण करने वैठूं तो पाठको को ऐसा लगेगा कि मैं कोरी चाटुकारिता कर रहा हूँ। लेकिन यथार्थ, यथार्थ ही है। आप उनकी जीवनी मे पढ चुके है कि स्वर्गीय भैया साहव वडे ही कुशाग्र वुद्धि के व्यक्ति थे एव कार्य के प्रति वहुत ही पैनी दृष्टि रखते थे। गीता का यह श्लोक उन्होने अपने जीवन मे आत्मसात कर लिया था—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन

उनकी यह मान्यता थी कि निरन्तर प्रयत्न करने से ही सफलता प्राप्त की जा सकती है। उन्होने जिस कार्य को भी अपने हाथ मे लिया उसमे कीर्ति एव यश अर्जित किया। यद्यपि वे लक्ष्मीपुत्र थे और चाहते तो विना काम किए आजीवन एशो आराम से अपनी जिन्दगी व्यतीत कर सकते थे, किन्तु उन्होने ऐसा न कर, कर्म को ही महत्त्व दिया। वे प्रतिदिन १४-१४ घण्टे काम करते। कभी-कभी तो वे रात को आकस्मिक निरीक्षण (सड़न चेकिंग) के लिये फैक्टरी भी चले जाते थे। जव कभी भी

भैयासाहब व्यावसायिक कार्य पर बाहर गाँव जाते और वापसी पर यदि कार द्वारा रतलाम या भोपाल से उनका इन्दौर आने का प्रोग्राम होता तो वे समस्त कार्यालयीन कागजात जो उनकी अनुपस्थिति मे आते, बुला लेते थे और रास्ते मे ही उनका अवलोकन कर लेते ताकि आफिस मे आते ही उनका अविलम्ब निराकरण (डिस्पोजल) किया जा सके। व्यवसाय से सम्बन्धित वे करीब ४००-४५० फाइले देखते थे। उन्हे देश-विदेश की पत्रिकाएँ, अन्य ज्ञानार्जन सामग्री आदि पढ़ने की भी अत्यधिक अभिरुचि थी। जब कभी भी उन्हे समय मिलता वे इन पत्रिकाओ से ज्ञान अर्जित करते। उनका यह दृष्टिकोण था कि ज्ञान ही सच्ची सम्पत्ति है। उन्होने सभी विषयो का गहन अध्ययन किया और इसी ज्ञान ने उन्हे नम्रता की प्रतिमूर्ति बना दिया। जो भी उनसे मिलता उनके नम्र व्यवहार से प्रभावित हुए बगैर न रहता। वे ऐसे सभी कागज जो एकतरफा कोरे होते या उनका रफ वर्क मे उपयोग हो सके, अपने पास एकत्रित करके रखते और उनका उपयोग किसी न किसी रूप मे अवश्य करते थे। यद्यपि ये कागज के टुकड़े उनके लिये कोई महत्त्व नही रखते थे किन्तु यह उनकी सूक्ष्मता का ही द्योतक है और यही कारण था कि उनके कार्यालय मे अनावश्यक अपव्यय नही हो पाता था।

अगर वे चाहते तो एक प्रतिभावान लक्ष्मी पुत्र की हैसियत से राजनीति मे भी उतर सकते थे किन्तु उन्होने ऐसा न कर अपना अधिक से अधिक समय बौद्धिक एवम् रचनात्मक कार्यो मे ही लगाया। वे अत्यन्त ही विलक्षण एव तीक्ष्ण बुद्धि के व्यक्ति थे। कोई भी कार्यालयीन समस्या हो, वे उसका तत्काल निराकरण कर देते थे। अपने अधीनस्थ कर्मचारियों एवं अधिकारियों से वे ऐसी ही अपेक्षाएँ रखते थे। वे चाहते थे कि कार्यालय से सम्बन्धित हर कार्य का उन्हे तत्काल जबाब मिल सके।

आज वह महान् विभूति हमारे बीच नही रही। २४ सितम्बर, १९७१ का वह अशुभ दिन मेरे जैसे अनगिनित लोगों, परिजन, मित्र, स्नेही एवं हितैषी आजन्म भुला नही पायेंगे। श्री गजेन्द्रसिंह जी जिन्हे हम श्रद्धा एवम् आदर से 'भैया साहब' कहकर पुकारते थे, हमसे विमुख होकर दिव्य ज्योति मे लीन हो गये। २४ सितम्बर, १९७१ की सुबह जब उनके आकस्मिक निधन का समाचार हमे मिला तो हम हतप्रभ रह गये। हमे विश्वास ही नही हुआ कि वे इतनी जल्दी इस संसार से अपना नाता तोडकर जा सकते है। कल तक जिनमे बडे-बड़े कार्य करने का अदम्य उत्साह था, वह एकाएक हमसे कैसे विमुख हो सकते है, किन्तु काल के कराल हाथों ने सचमुच ही उन्हे हमसे छीन लिया था और हमे यह मानने के लिये विवश कर दिया कि भैया साहब अब इस दुनिया मे नही रहे।

उन्हें करीब एक सप्ताह पूर्व मामूली-सा हृदयाघात (हार्ट अटैक) हुआ था। तत्काल शहर के प्रमुख चिकित्सको को उनके इलाज के लिये बुलाया गया और इलाज

प्रारम्भ कर दिया गया था। वे अपने कार्य की धुन मे इतने मग्न थे कि उन्होंने अपने स्वास्थ्य की विशेष चिन्ता नही की। जव भी मैं फोन पर उनसे उनके स्वास्थ्य के वारे मे पूछता तो उनका एक छोटा-सा उत्तर रहता कि मैं विल्कुल ठीक हूँ। अवसान के एक दिन पूर्व तक वे वरावर अपने काम-काज देखते रहे। २४ सितम्वर, १९७१ की सुवह से ही उनका स्वास्थ्य विगडता चला गया और भरसक प्रयत्नो के वावजूद भी इस महान् विभूति की आत्मा शून्य मे लीन हो गई।

उनकी शवयात्रा मे सम्मिलित होने के लिये हम सव लोग उनके निवास-स्थान नन्दनवन कोठी पर पहुँचे। मैंने जव भैया साहव की मृत देह को देखा तो मुझे विश्वास ही नही हुआ कि भैया साहव सचमुच मे इस दुनिया से कूच कर गये है। उनकी देह ऐसी लग रही थी मानो एक कुशल व्यावसायिक अपने सम्पूर्ण कार्य से निवृत्त होकर, सन्तोष के साथ, चैन की नीद ले रहे हो। किन्तु यथार्थ कुछ और ही था। पलभर मे ही उनके निधन का समाचार द्रुतगति से सारे शहर मे फैल गया। देखते-देखते ही अपार जनसमूह स्वर्गीय भैयासाहव को अपनी अन्तिम श्रद्धांजलि अर्पित करने हेतु उनके निवासस्थान पर एकत्रित हो गया। भण्डारी परिवार के समस्त प्रतिष्ठानों के साथ ही साथ शहर के अन्य कई प्रमुख वाजार भी शोक-निमित्त वन्द कर दिये गये।

उनके पार्थिव शरीर की अर्थी को जैसे ही उनके वृद्ध पिताश्री अपने कमजोर कन्धों पर लेकर वाहर निकले तो एकत्रित जन-समूह की आँखों से अविरल अश्रुओ की धारा वहने लगी। यह कैसी विधि की विडम्वना थी कि एक वृद्ध पिता अपने युवा पुत्र की अर्थी को कन्धा दे रहा था। जव भैयासाहव की शवयात्रा अपने गन्तव्य स्थान की ओर बढ़ी तो एकत्रित जन-समुदाय भी अपनी अन्तिम अश्रुपूरित श्रद्धाजलि अर्पित करने हेतु शवयात्रा के पीछे-पीछे चल पड़ा। उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री जसवीरसिंह जी ने उनकी चिता को अग्नि देकर प्रज्वलित किया। धो-धो करते हुए चिता सुलग पडी और भैया साहव का पार्थिव शरीर अग्नि की गोद मे सदा के लिये समा गया।

कई धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक कार्यकर्ताओ ने स्वर्गीय भैया साहव के सम्वन्ध मे अपने-अपने विचार प्रकट किये जो उनके अन्तिम संस्कार के वाद एक विराट शोकसभा मे परिणित हो गई थी।

चिता की उठती हुई लपटो से मैंने तथा मेरे जैसे कई व्यक्तियों ने यह शिक्षा ग्रहण की कि इस जीवन का कोई विश्वास नही। अतः कर्म ही जीवन है, कर्म ही शाश्वत है। स्वर्गीय भैया साहव कार्य करते-करते ही इस दुनिया से चले गये अतः हमे उनके पथ का अनुसरण कर, उनके जो भी अवशेष कार्य रह गये है, उनको गति प्रदान करना है ताकि जन-जीवन के कल्याण मे हम व्यक्तिगत रूप से तथा भण्डारी परिवार की ओर से देश और समाज की अधिक से अधिक सेवा कर सकें। यदि हम
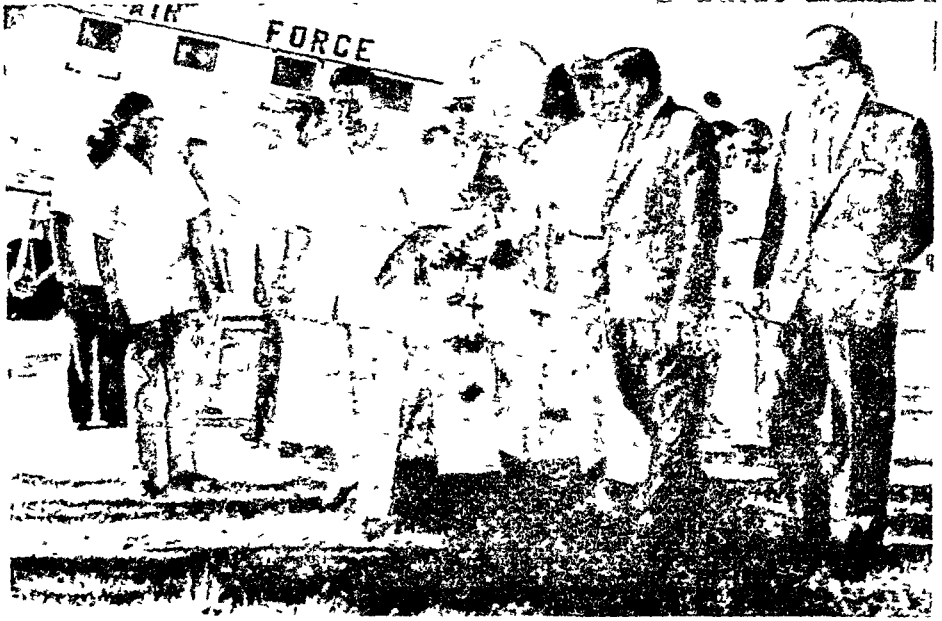
बहुमुखी कर्तृत्व की विविध झांकियां :-

मध्यप्रदेश स्टेट बोर्ड ऑफ ऑल इण्डिया मेन्यूफेक्चरिंग आर्गेनाइजेशन के उद्घाटन समारोह पर आदरणीय सुब्रमण्यम का स्वागत करते हुए श्री गजेन्द्रसिंह जी भन्डारी, [चेयरमैन म०प्र० स्टेट बोर्ड ऑफ ए० आई० एम० ओ० १९६२]

'काउ एण्ड गेट' इण्डिया लि० के कोलोबोरेशन के सम्बन्ध मे आए हुए विदेशी मेहमानों का स्वागत समारोह

मि० राबर्टसन, मि० आइ० एन० वार्टर, मिसेस टेट, श्री गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी ले० कर्नल गेट (मेनेजिंग डायरेक्टर यूनीगेट), मि० शाह (चार्टर्ड एकाउण्टेंट), मि० टेट

श्री गजेन्द्रसिंह भण्डारी ए० आई० एम० ओ० बम्बई की कार्यकारिणी संस्था के समक्ष अपने अनुभव एवं विचार प्रस्तुत करते हुए।
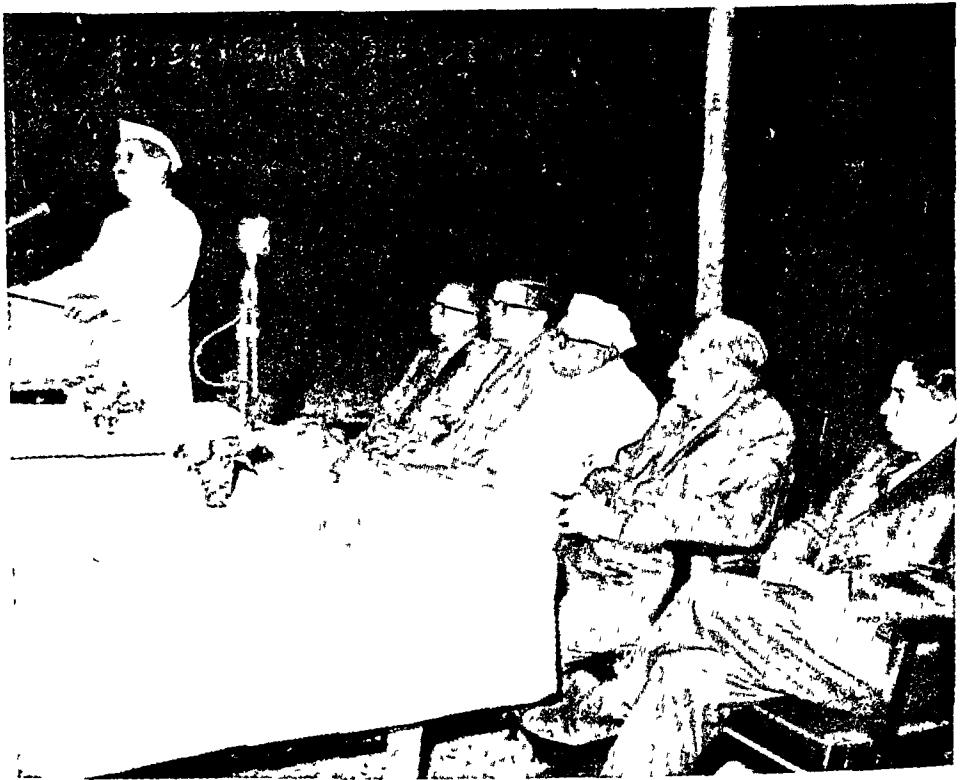
श्री जगजीवनराम जी की उपस्थिति मे ए. आई. एम. ओ. के सदस्यों को सम्बोधित करते हुए श्री शंकरदयाल जी शर्मा

मे वायें–श्री शंकरदयाल जी शर्मा, श्री एस. आर. नांदेडकर, श्री वी. के. टोंग्या, जगजीवनराम जी, श्री टी. सी. जेठमलानी, श्री गजेन्द्रसिंह जी भन्डारी

अपने उद्देश्य मे सफल हो सके तो ही यह हमारी स्वर्गीय भैया साहव के प्रति सच्ची श्रद्धाजलि होगी ।

स्वप्न साकार कर रहे हैं

स्व० भैया साहव जिनकी केवल स्मृतियाँ ही शेष है, स्मृति रूप हैं उनकी तीन प्रतिमूर्तियाँ । उनके सुपुत्र श्री जसवीरसिंह जी, जम्बूकुमार जी एवं श्री सतीशकुमार जी । ज्येष्ठ पुत्र श्री जसवीरसिंह जी ने अपने पिता श्री के कार्यभार को जहाँ आत्मसात किया है, वही श्री जम्बूकुमारजी मे उनके व्यक्तित्व की अमिट छवि व्याप्त है तथा श्री सतीशकुमारजी मे स्व० भैया साहव की सौम्यता परिलक्षित होती है ।

तीनों ही पुत्ररत्न अपने पिताश्री के स्वप्नो को साकार करने मे जुटे हुए हैं, एवं घरेलू कार्यो के साथ-साथ व्यावसायिक प्रवन्धो को प्रदत्त मार्गदर्शन के आधार पर दिनोंदिन उत्तरोत्तर गति प्रदान कर रहे है ।

निष्ठुर विधि के विधान का असह्य हृदय-विदारक वज्रपात जो कि तीनो पुत्रों की वाल्यावस्था एवं शैक्षणिक काल मे (अचानक) अकस्मात् असमय मे हुआ । जिसे पूर्णरूपेण चुनौती स्वरूप स्वीकार करने को इन्हे विवश होना पड़ा ।

श्री जसवीरसिंह जी ने इस वज्रपात के पश्चात् अपने पिता श्री की पद्धति को अंगीकार कर अपनी पैनी दृष्टि से फ्लोअर एण्ड फूड लि० के सभी विभागों के कार्यो का विना हस्तक्षेप अध्ययन करते रहे एवं अल्पावधि मे संचालन सम्वन्धी सभी जानकारियाँ प्राप्त करके शनैः-शनैः स्वतन्त्र कार्य देखना प्रारम्भ किया, फलस्वरूप श्री सेठ सुगनमलजी साहव ने विश्वास व्यक्त करते हुए उन्हे सचालक का पदभार सौंपा । अन्ततः शीघ्र ही वे कम्पनी के मैनेजिंग डायरेक्टर (प्रवन्ध-संचालक) नियुक्त कर दिये गये ।

जैसा कि स्वर्गीय गजेन्द्रसिंह भैया साहव का उद्देश्य था कि अपनी संस्था द्वारा यथाशक्ति अधिक से अधिक उत्पादन क्षमता वढ़ाई जाए उनके पुत्र उनके स्वप्न को साकार करते हुए उच्चतम शिखर पर पहुँचाने का प्रयास करते हुए दिनोंदिन प्रगति की ओर अग्रसर हो रहे है ।

अपने यशस्वी स्व० पिताश्री के अनुरूप ही श्री जसवीरसिंह जी के प्रगति का प्रशस्त मार्ग भी स्वागतार्थ स्वयमेव खुला हुआ है, फलस्वरूप वे मध्यप्रदेश रौलर फ्लोअर मिलर्स एसोसिएशन के उपाध्यक्ष पद पर मनोनीत किये गये है । सौम्य भावुक एव दरियादिल के कर्मनिष्ठ युवा उद्योगपति है एव अपने कर्मचारियो को पारिवारिक सदस्य मानते हुये उनके सुख-दुख मे हर सम्भव सहायता पहुँचाने मे वे कभी नही चूकते ।

किसी भी संस्था का विकास कार्य संचालन-विधि पर निर्भर करता है । श्री जसवीरसिंह जी कुशल सचालक है एव इस अल्पवय मे जो कुछ उन्होने कर दिखाया है एवं जिस शैली से वह कार्य कर रहे है । ऐसा प्रतीत होता है कि नेपथ्य से अथवा कोई अदृश्य अद्भुत शक्ति स्वर्ग से इन्हे सत्कार्यों की प्रेरणा प्रदान कर रही हो । □

एक सुवासित पुष्प : जो असमय ही मुरझा गया !

जीवन : एक चिन्तन

□ मुनि श्री महेन्द्रकुमारजी 'कमल'

किसी के जीवन के सम्बन्ध मे कुछ लिखने का या कहने से पूर्व यह समझना परम आवश्यक होता है कि जीवन क्या है ?

इस प्रश्न पर कि जीवन क्या है ? विश्व के मूर्धन्य मनीषियो ने गम्भीर चिन्तनपूर्वक विविध परिभाषाओ का निर्माण किया है एवं आज भी हो रहा है। जीवन एक है। उसको प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी नजर से अपनी-अपनी दृष्टि से देखने का प्रयास करता है। जब विभिन्न दृष्टियो से देखने का प्रयास किया जाता है, तब वह वस्तु एक होकर भी अनेक हो जाती है। शूरवीर की भाषा मे जीवन एक साहस है, कायर की भाषा मे जीवन एक रोना है, खिलाडी की भाषा मे खेल है, कवि की भाषा मे एक सुन्दर काव्य है, अस्तु।

एक साधक ने जिज्ञासा प्रस्तुत की—

किं जीवनम् ?

जीवन क्या है ? समाधान किया गया—**दोषविवर्जितम् यत्** ? जिसमे कोई दोष नही है, वही जीवन है। सत तुकाराम ने कहा—मानवजीवन स्वर्णकलश के समान है। उसमे विलास की सुरा न भरकर सेवा की सुधा भरो। सोचता हूँ, स्वर्गीय गजेन्द्रसिह जी साहब भण्डारी जिनके सम्बन्ध मे अगली पक्तियाँ प्रकट होने जा रही है। वैसे किसी के जीवन की आन्तरिक गहराइयो मे जाना सागर के अन्तराल मे प्रवेश करने के समान है। समुद्र की अतल गहराई की थाह पाना कठिन है, ऐसे ही किसी जीवन को सम्पूर्ण रूप से परख पाना कठिन ही नही, लगभग असभव है। परन्तु यह तो निर्विवाद सत्य है कि स्वर्गीय श्रीयुत भण्डारी जी का जीवन दोष-विवर्जित सौरभ से परिपूर्ण एवं आलोकमय था। तभी तो दैहिक दृष्टियाँ विलीन हो जाने के बावजूद भी आज उनके सद्गुण मण्डित सुवासित जीवन की स्मृतियाँ लोकमानस में तैर रही है। निःसन्देह सफल जीवन ही वही होता है।

जिन्दगी केवल न जीने का बहाना
जिन्दगी केवल न सासों का खजाना
जिन्दगी सिन्दूर है पूरब दिशा का
जिन्दगी का काम है सूरज उगाना ॥

जीवन का यह विकास निष्ठा एवं कर्म-साधना का विषय होता है। प्रतिभा की पृष्ठभूमि पर एक व्यक्ति अपनी निष्ठा एवं कर्म साधना के बल पर इतना विकास सम्पादित कर लेता है और वह भी अल्पावधि मे ही। जितना विकास कार्य अन्य व्यक्ति पूरे जीवनभर के प्रयासो से भी नही साध सकते, विकासोन्मुख व्यक्तियो के व्यक्तित्व मे ऐसा विशिष्ठ एवं सौष्ठव होता है तो वे सहज ही मे अपना, न केवल अपना ही विकास सम्पादित कर लेते है, अपितु अपने प्रशंसनीय विकास मे सबको अपनी ओर चुम्बकवत् सहज आकृष्ट भी कर लेते है।

ऐसा ही विशिष्ट व्यक्तित्व था स्वर्गीय गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी का जिन्होंने अपने अल्प जीवन-काल मे ही अपने जीवन को सद्गुणों से विकसित किया तथा उस खिले हुए जीवन की सुवास से सबको आल्हादित बनाया।

जन्म और बाल्यकाल

स्वर्गीय श्री गजेन्द्रसिंहजी भण्डारी का जन्म दिनांक ९ नवम्बर, १९२९ को इन्दौर के विख्यात भण्डारी कुल में हुआ। वे धर्मनिष्ठ, सुश्रावक, प्रसिद्ध श्रीमन्त श्री सुगनमल जी भण्डारी के सुपुत्र थे, जो प्रमुख व्यवसायी एवं समाजसेवी हैं।

"होनहार बिरवान के होत चीकने पात" की प्रसिद्ध उक्ति के अनुरूप बाल्यकाल मे ही गजेन्द्र बाबू की विशिष्ट प्रतिभा के लक्षण प्रकट होने लग गये थे। उनकी विलक्षण चंचलता ने सबका मन मोह लिया तथा वे सब के गहरे प्यार के प्रतीक बन गये।

प्राथमिक शिक्षा के पश्चात् उनकी सम्पूर्ण शिक्षा-दिक्षा इंग्लैण्ड मे ही सम्पन्न हुई। वहाँ से उन्होने सीनियर कैम्ब्रीज की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद कैमीकल इन्जीनियरिंग मे प्रवेश लिया। अपनी प्रखर बुद्धि के कारण ही हमेशा उनके परीक्षा परिणाम शानदार रहे तथा वे अपने शिक्षा संस्थान के छात्रो मे भी लोकप्रिय हो गये। पाठ्यक्रम के सिवाय संस्थान की अन्य विविध प्रवृत्तियों मे भी वे सोत्साह भाग लेते थे। इन्जीनियरिंग के शिक्षण-काल मे उन्होने इगलैण्ड का विस्तृत भ्रमण किया तथा वहाँ की सस्कृति एव सभ्यता का गहराई से परिचय भी प्राप्त किया। कैमीकल इन्जीनियरिंग मे स्नातकीय उपाधि प्राप्त कर वे भारत लौटे।

इन्जिनियरिंग के छात्र होते हुए भी गजेन्द्र बाबू भाषा जगत के प्रति पूर्णरूप से आर्कापित थे। अंग्रेजी भाषा के उच्च ज्ञान के साथ-साथ हिन्दी भाषा का भी उनको श्रेष्ठ ज्ञान था। बोलने व लिखने मे दोनो ही भाषा पर उनका समान रूप से अधिकार था। मराठी भाषा का भी उन्होंने अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था। सामान्य रूप से उनकी तकनीकी शैली के बावजूद उनकी साहित्यिक प्रवृत्तियो के प्रति गहरी अभिरुचि थी।

अपनी शिक्षा एवं अपने अनुभव की दृष्टि से श्री गजेन्द्र बाबू का मस्तिष्क-विकास, अल्पवय मे सन्तोपजनक रीति से प्रभावोत्पादक हो गया था, अत. उन्होने व्यवसाय क्षेत्र मे कदम रखा तो उनके प्रौढ विचारो से सभी प्रभावित हुए। कम समय मे ही वे इस विशेष योग्यता के कारण कई औद्योगिक संगठनो के व्यवस्थापक और मार्गदर्शक वन गये।

कुशल व्यवसायी एवं सफल गृहस्थ

स्वर्गीय श्रीयुत गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी ने परिपक्व शिक्षा एवं अनुभव के वल पर ओद्योगिक क्षेत्र मे अपनी विशेष योग्यता की छाप जमा दी। कुशल व्यवसायी के रूप मे उन्होंने इतनी प्रतिष्ठा अर्जित की कि कई सगठनो को उनसे प्रेरणा मिली तथा कई संगठनो से वे सम्वद्ध रहे। औद्योगिक क्षेत्र मे उन्हे काफी सम्मान मिला। व्यवसाय मे कुशलता इस आधारशिला पर आधारित थी कि वे एक सफल सद्गृहस्थ थे। वे अपने गृहस्थ धर्म के प्रति सदा सजग रहते थे तथा कभी भी किसी सदस्य को किसी प्रकार से असन्तुष्ट नही होने देते थे। वड़ो के साथ आदर एवं छोटों के साथ स्नेह उनके स्वभाव मे वसा हुआ था। वे हरवक्त इतने सहज वने रहते थे कि कभी किसी सदस्य ने उनकी वात को वुरा नही माना। अपितु उन्होने जो कुछ भी कहा उसे सहर्ष सम्मानपूर्वक स्वीकार किया। यह उनके स्वभाव की ही विशेपता थी कि उनका सवके साथ एकसा मधुर व्यवहार था। अपने पीछे वे अपनी धर्मपत्नी श्रीमती भुवनेश्वरी देवीजी तथा तीन पुत्र सर्वश्री जसवीर, श्री जम्वू एवं श्री सतीश जी को छोड गये हैं। आज उनमे जिस प्रकार के सजग, सक्रिय, धार्मिक, पवित्र जीवन की झलक देखने को मिलती है वह स्पष्ट श्रीयुत भण्डारीजी के ही सुसंस्कारो का सुफल है। वे एक सद्गृहस्थ थे। यह उसी का सुपरिणाम है। अपनी अल्पायु मे उन्होंने कुशल व्यवसायी एवं सफल गृहस्थ होने के जो आदर्श प्रदर्शित किये, स्पष्ट है कि उनकी आज भी हर कोई मुक्त कण्ठ से सराहना करता है। शायर की भाषा मे—

तुम्हें कहते हैं मुर्दा कौन, तुम जिन्दों के जिन्दा हो।
तुम्हारी नेकियाँ बाकी, तुम्हारी खूवियाँ बाकी॥

"सादा जीवन उच्च विचार" उनका मोटो था :

वे एक धनाढ्य एवं सम्पन्न परिवार मे पैदा हुए थे। अंग्रेजी कहावत के अनुसार वे अपने मुह मे चान्दी के चम्मच के साथ जन्मे थे। उनकी शिक्षा-दिक्षा भी मुख्य रूप से विदेशो मे हुई फिर भी उनके जीवन की सवसे वडी विशेषता यह थी कि वे सादा जीवन उच्च विचार के अनुपालक थे। यह मोटो उनके विचार एवं व्यवहार का आदर्श था। जिसका उन्होने सम्पूर्ण जीवनपर्यन्त निष्ठापूर्वक निर्वाह किया।

समृद्धि के शिखर पर वैठकर भी उनमे आश्चर्यजनक सादगी थी। यह

सादगी न केवल उनके रहन-सहन मे ही थी, अपितु उनके विचारों में भी सर्वतोभावेन उसका स्वरूप स्पष्टतः परिलक्षित होता था। नम्रता एवं उच्चता तो जैसे उनके जीवन के कण-कण मे कूट-कूटकर परिव्याप्त थी। छोटे से छोटा व्यक्ति ही क्यों नही सामने आया हो, उनका व्यवहार उसके प्रति भी सदा नम्र दिखाई दिया। धन का मद उन्हे छू भी नही पाया था और यही कारण था कि धनी होने के वावजूद भी उन्हे अभिमान नाम-मात्र को भी नही था। जैसी उनकी मन की सादगी थी, वैसी ही उनके व्यवहार की भी सादगी थी। उनके विचार सरल थे तो रहन-सहन, खान-पान भी सादा था। वड़प्पन की भी यह तारीफ होती है कि धन-वल व्यक्ति के जीवन मे अभिमान न आने दे और दुराचरण की तरफ कदम न वढ़ाने दें। स्वर्गीय श्रीयुत भण्डारी जी ऐसे वडप्पन के जीवन्त प्रमाण थे। जीवन के सभी क्षेत्रो मे उनकी सात्विक वृत्ति सर्वत्र परिलक्षित होती थी। विचार मे सात्विक वाणी मे सात्विक तो कर्म मे सात्विक, घर मे सात्विक तो वाहर सात्विक सात्विकता एव शुद्धता उनके जीवन के प्रधान गुण वन गये थे। इसी सात्विकता के परिणामस्वरूप वे सदा निर्भीक दिखाई देते थे। किसी गलती को गलती वताने मे वे सकोच नही करते थे। तो किसी सत्य विचार को स्पष्टता के साथ लाने मे भी नही चूकते थे। उनके पास अपने संयम का, चरित्र का, मर्यादा का ऐसा वल था, ऐसी तेजस्वी शक्ति थी कि उनके आचरण मे निर्भीकता समा गई थी। जीवन जव सादा और सात्विक हो तथा विचार उच्च हो, तव निर्भीक वृत्तियाँ स्वत. ही पनप जाती है। क्योकि वैसा व्यक्ति वुराई के साथ कभी भी समझौता नही कर सकता है, उसके आचरण की उज्वलता उसे अपराजित वनाये रखती है। स्वर्गीय भण्डारीजी की निर्भीकता का रहस्य भी वस्तुतः उनकी सात्विक वृत्ति की गूढता मे छुपा हुआ था।

नियमित एवं पुरुषार्थी जीवन

स्वर्गीय श्रीयुत भण्डारीजी ने एकान्त रूप से नियति एवं भाग्य पर विश्वास करके कभी भी निष्क्रिय वैठना नही सीखा। उनका विचार था कि व्यक्ति अपने पुरुषार्थ को सदा जागृत एवं कार्यरत रखे तथा इस विचार को उन्होने अपने स्वयं के जीवन मे कार्यान्वित किया एवं अपने जीवन को सतत् रूप से पुरुषार्थी वनाए रखा, चाहे गृहस्थी का कार्य हो अथवा व्यवसाय का, काम से जी चुराना तो उन्होंने सीखा ही नही था। पुरुषार्थ से उनका ऐसा लगाव था कि वे काम और परिश्रम मे आनन्द की अनुभूति करते थे। उनकी सर्वत्र सफलता का रहस्य यही था कि वे कठिन पुरुषार्थी थे।

जैन सूत्रों मे एक उक्ति आई है कि 'जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा।' अर्थात् जो कर्म मे शूर होते है वे धर्म मे भी शौर्य दिखाते हैं। उनका जीवन केवल सांसारिक कार्यो मे ही पुरुषार्थी नहीं था, अपितु वे धार्मिक क्षेत्र मे भी अपना शौर्य प्रकट करने

मे कभी पीछे नही रहते थे। पुरुपार्थ के प्रति धार्मिक क्रियाओं में भी उनका उतना ही प्रेम था। वे प्रतिदिन नियमित धार्मिक-क्रिया तथा स्वाध्याय करते थे एव कुछ न कुछ समय धार्मिकता के विकास हेतु अवश्य ही व्यतीत करते थे। उनके जीवन की नियमवद्धता एव पुरुपार्थी वृत्ति कर्म से धर्म तक के सारे स्रोतो मे फैली हुई थी। इस प्रकार वे विचारो से सुलझे हुए और सधे हुए थे तो वाणी से अत्यन्त मृदुभापी एव आचरण से नियमवद्ध नम्र एवं पुरुपार्थी थे। उनके जीवन के क्रिया-कलापो की पहली विशेपता यह थी कि वे सत्यनिष्ठ थे। सत्य को उन्होंने अपने जीवन मे सर्वत्र स्थान दिया। उनका सारा जीवन-स्रोत गुण सम्पन्न था कि उनका व्यक्तित्व विशेपताओं से परिपूर्ण रहा तथा जो भी उनके निकट सम्पर्क में आया उसको प्रभावित करता रहा।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ धार्मिक दृष्टि

अपनी शिक्षा की पृष्ठभूमि से स्वर्गीय श्रीयुत गजेन्द्रसिंह जी के विचार एव उनका आचार वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जुड़ा हुआ था, तो पारिवारिक संस्कारो ने उन्हे धार्मिक दृष्टि प्रदान की थी। विज्ञान एव धर्म का इस प्रकार उनके जीवन मे अनूठा तालमेल था। वे विज्ञान की भौतिकता के भी पक्षधर नहीं थे तो धर्मो की अन्धश्रद्धा को भी उन्होने कभी उचित नहीं समझा। वे चाहते थे कि धर्म एव विज्ञान का परस्पर सामन्जस्य निरन्तर वढ़ता रहना चाहिये ताकि भावना और विचार के दोनो पहलू, अपने-अपने मे परिपुष्ट वने रहे।

वे इन्जिनीयर थे, एक वैज्ञानिक थे, किसी भी सिद्धान्त या तत्त्व को अपनी वैचारिकता की कसौटी पर कसे विना, उसके अन्धानुगामी नही वने थे। वे प्रत्येक तत्त्व को निष्ठापूर्वक समझने की चेष्टा करते थे तथा उस पर मौलिक चिन्तन भी रखते थे। वैज्ञानिक सदा सर्वदा सार को ग्रहण करता है और वे भी तत्व की जड़ तक पहुँचकर उसके अन्तरहस्य को पकडने का प्रयास किया करते थे।

वैज्ञानिक कोण के साथ उनकी धार्मिक दृष्टि भी स्पप्ट एव पुष्ट थी। धार्मिक दृष्टि उन्हे उनके जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे वरावर मानवीय भावों से ओत-प्रोत वनाये रखती थी। तथा यही कारण था कि उनके व्यक्तित्व मे विशिष्ट गुण समाये हुए थे एवं वे अपने व्यवहार मे इतने सरल, इतने विनम्र तथा इतने मृदु थे।

विज्ञान मनुष्य को विचारशील वनाता है तो धर्म—भावनाशील। मस्तिष्क की शक्तियो के साथ जब हृदय की शक्तियाँ जुडती है तो उस व्यक्ति के जीवन मे विवेक सतत् जागृत रहता है। दार्शनिकों ने विवेक को अत्यधिक महत्त्व दिया है कि उठने, वैठने, चलने, सोने से लेकर ज्ञानदर्शन एवं चरित्र की आराधना करने तक की प्रत्येक क्रिया मे मनुष्य विवेक का साथ कही नही छोड़े। स्वर्गीय भण्डारीजी विवेक को नही भूले, वल्कि उनका विवेक वैज्ञानिकता से तराशा हुआ तथा धार्मिकता से सँवारा

हुआ रहता था। ऐसे स्वस्थ विवेक के घरातल पर उनका छोटा-सा जीवन नरगिस के फूल की तरह अपनी सम्पूर्ण क्रान्ति से जगमगा उठा।

पुष्प मुरझा गया, सुवास व्याप्त है

खेद है कि अपनी भौतिक देह के साथ देहिक दृष्ट्या आज नररत्न श्रीयुत गजेन्द्रसिंहजी भण्डारी सब के बीच मे नही हैं। एक सुवासित पुष्प असमय ही मुरझा गया किन्तु मैं कहना चाहूँगा कि उस खिले हुए पुष्प की सुवास आज भी चारों ओर व्याप्त है। उनके जीवन का एक गुण उनके व्यक्तित्व की एक-एक विशेषता तथा उनकी पावन स्मृति का एक-एक चिन्ह यह बताना चाहता है कि वे आज भी उसी प्रकार जीवित है और गहराई से यदि विचार किया जाय तो यह ठीक भी है कि

हम जिन्हे कहते हैं फानी, वे फना होते नही।
मरने वाले असल मे हमसे जुदा होते नही॥

स्वर्गीय श्रीयुत् गजेन्द्रसिंहजी के सम्पर्क मे जो भी आया, वह उनके गुणों पर मुग्ध हुए बिना नही रह सका। वह आज भी उनके गुणमय जीवन को श्रद्धापूर्वक याद करता है। तथा उनके साथ बीते अपने क्षणो को सराहता है। गुणी व्यक्ति के जीवन के लिये कहा गया है कि जब वह जन्म लेता है तो वह स्वतः रोता है और उनके सारे परिजन प्रसन्नतावश हँसते हैं परन्तु उसके गुणी जीवन का यह सुप्रभाव होता है कि जब वह मृत्यु को प्राप्त होता है तो वह स्वयं तटस्थ भाव से हँसता हुआ चला जाता है। और सारे परिजन व दुनिया वाले उसके सद्‌गुणों को याद कर-करके उसकी स्मृति मे रोते है। स्वर्गीय श्रीयुत् गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी के छोटे से किन्तु सुवासित जीवन का दिनांक २४ सितम्बर, १९७१ को अन्त हुआ, न केवल पारिवारिक सदस्यों पर, न केवल इन्दौर वालो पर अपितु दूर-दूर तक स्थित सदस्यों पर कैसा वज्र प्रहार हुआ, कल्पना से परे है। नि.सन्देह आज उनकी जबरदस्त अपेक्षा थी। उनका अभाव हृदय को पीडित, व्यथित एवं उद्‌वेलित करता है पर इस स्तर तक आकर सबको विवश हो मौन होना ही पड़ता है **कालस्य कुटिला गतिः**।

काल की गति बड़ी ही दृष्टि एव क्रूर होती है। वे आज हमारे बीच नही हैं पर उनके लिये एक बात मैं कहना चाहूँगाः—

तू चुप है लेकिन सदियों तक बुझेगी सदा ये साज तेरी।
दुनिया को अन्धेरी रातो मे, ढाढस देगी आवाज तेरी॥

अन्त मे उनकी आत्मशान्ति की अगणित मंगलकामनाओ के साथ हम पुनः उस सुवासित पुष्प की स्मृति मे श्रद्धावन्त होते हैं जो असमय मे ही मुरझा गया। □

अपनों की नजर में

□ श्रीमती भुवन भण्डारी
[धर्मपत्नी स्व० श्री गजेन्द्रसिंह जी]

तुम चले
विश्वास नही होता
मनको
तुम मौन हुए
मानो जीवन की स्वर लहरी ही
रूठ गई
है मूक वेदना शोकाकुल
संतप्त हृदय
घनघोर व्यथा
है हमें सात्वना देने को
तेरे जीवन की अमर कथा ।
युग-युग गूंजेगी तेरी
अमृत-स्वर लहरी
वसुधा पर
अम्बर में होगी, धरती की
उषाएँ, सध्याएँ, दोपहरी ।

आज
नियति के हाथों से
अरमान हमारे छले गए
लगता है
मन्जिल पाते ही
क्षणभर मे
ओझल हुई दिशा,
दिनमान अभी जागा ही था
छा गई अचानक और निशा ।
निस्तेज हो गई किरण प्रखर
विश्वास नही होता मन को
वीच भंवर में पड़ते ही
पतवार हाथ से छूट गई
इस वसुधा के शृंगार 'सरस'
तुमको अर्पित
शत: शत: वन्दन !

☆

वे ऐसे थे................

[स्व० श्री गजेन्द्रसिंह जी भंडारी के अन्तरंग जीवन की खुली झांकी उन्हीं की आदर्श पत्नी श्रीमती भुवन भंडारी की मार्मिक लेखनी से]

जीवनी आमतौर पर अपने नायक की अच्छाइयों की ओर दृष्टिपात करती है उसके साथ एकाकार हो जाती है इसलिए दृष्टिकोण पक्षपात पूर्ण हो जाता है फिर भी लिखने वाले के लिए यह आवश्यक होता है कि अपने नायक की जीवनी का मूल्यांकन करके अच्छे और बुरे पृष्ठो को परखे और आने वाली पीढ़ी को सूचना एव मार्गदर्शन के लिए जीवन के आलोकित पृष्ठों की पृष्ठभूमि को पुष्ट करके प्रस्तुत करे।

व्यक्ति अपनी मृत्यु के उपरान्त केवल अपने अच्छे व बुरे कामो के रूप मे अपने व्यक्तित्व की स्मृति छोड़ जाता है। वह एक ज्योतिर्धर महान व्यक्तित्व, जो आज हमारे पास से भौतिक रूप से भले ही न रहे हों परन्तु विचार रूप से उनके समुज्ज्वल सद्‌गुण आज भी हमारे मानस मे, आत्मा मे स्थित है और अतीत के इन्ही पदचिह्नो से मानव समाज उसका मूल्याकन करता है, एव जिसके माध्यम से उनके व जीवन के कार्यकलापो से परिचय प्राप्त होता है। उनकी आत्मा काल के आवरण को पार करके अमर हो गई है पर उन्होंने अपने छोटे से जीवन-काल मे जो कुछ भी सद्‌कार्य किये वह ऐसे क्षितिज हैं जो आने वाली पीढ़ी को लम्बे समय तक मार्ग-दर्शन करेंगे।

जगत का नियम है, राजा हो या रंक इस ससार से एक दिन सभी को विदा लेनी है और जब मनुष्य इस लोक से विदा ले लेता है तो कुछ समय बाद उन विगत आत्माओ के बारे मे लोग अक्सर भूल जाया करते हैं। किन्तु कोई मनुष्य अपने कार्य व्यवहार का आधार मानवीयता को बनाता है और वह जन-जन के हृदय को इस प्रकार स्पर्श कर लेता है कि उसमे सदा के लिए स्थिर हो जाता है।

जीवन के दो पृष्ठ है दुख और सुख। अतीत के लम्बे-चौड़े प्रागण मे इन उभय पक्षो की विषमता भी सामने आती है किन्तु मानवता ने उनको एक ऐसी पुनीत भाव-धारा मे अवगाहन करने की शक्ति दी थी कि उसके द्वारा, अपने मे अच्छाइयों को आत्मस्थ किया व बुराइयों के कल्मष को सदैव दूर रखा।

उनके जीवन को शब्दो के परिधान से सुसज्जित करना मेरे सामर्थ्य से बाहर का विषय है। आज जब इनके विषय मे जो कुछ छोटा-सा लिखने का मैंने दुर्गम प्रयास किया है तो चलचित्र की भांति एक-एक करके अनेक विगत जीवन के मधुर सस्मरण स्मृति-पट पर उभरने लगे है जीवन की तुलना यदि नाटक के उन कुशल पात्रो से की जाय तो शायद ज्यादा उपयुक्त होगी। एक कुशल पात्र जिस प्रकार नाटक के हर पक्ष

को अपने कुशल अभिनय द्वारा अभिव्यक्त करता है वही स्थिति आज हमारी है। जब विगत जीवन के उन मधुर क्षणो की ओर दृष्टिपात करती हूँ तो वे सभी स्मृतियाँ और अनुभूतियाँ शब्दो के माध्यम से एक साथ उद्‌बुद्ध होना चाहती है—स्मृतियाँ एवं अनुभूतियाँ अनेक है और शब्द कोश के शब्द असीम है। जिनका जीवन व्यापक एव विराट रहा उनकी परिचय प्रशस्ति को शब्द शृंखला की कड़ियो मे आवद्ध करना सूर्य को दीपक दिखाने के समान होगा।

उनका व्यक्तित्त्व था त्याग की महान गरिमा से ओत-प्रोत, मानस करुणा एव प्रज्ञा से समन्वित अपराजित साहस एवं धैर्य गाम्भीर्य की साक्षात प्रतिमूर्ति, कार्य शक्ति के सुन्दर सयोजक, कलापूर्ण वक्तृत्त्व के धनी, सरल हृदय, प्रकृति से उदारतम हृदय विनम्र आचार-विचार, ऊँचे-नीचे और छोटे-वड़ो के प्रति समान भावना।

भौतिक दृष्टि से देखा जाय तो सामान्यतः मनुष्य अर्थ और काम के वीच डोलता रहता है, अर्थ उसके लिए साधन और काम साध्य है। मनुष्य कभी अर्थ भूमि पर रहता है और कभी काम भूमि पर। अर्थ साधना व काम-साधना के वीच जीवन वँट जाता है और जो व्यक्ति दोनो मे सामंजस्य स्थापित कर लेता है उसी को जगत, समाज सफल पुरुष मान लेता है। इनका जीवन भी कुछ ऐसा विरला जीवन था जो इन दोनो साधनाओ का पूर्णरूप से परिपालन करने पर भी वहुत ऊँचा था।

वचपन

इनका विकास जिस सस्कृति मे हुआ था उसमे व्यक्तित्व विभक्त होने के स्थान पर समन्वित था। एक वहुत ही जाने-माने सयुक्त परिवार के सदस्य थे। इनके जीवन मे मेरे और तेरे की भावना तो थी ही नही, सदैव वह किसी भी चीज को मेरी न कह कर हमेशा हमारी या अपनी कहा करते थे, चाहे घर मे चाहे आफिस मे। पारिवारिक सदस्यो के प्रति उत्सर्ग हो जाना कोई महत्त्वपूर्ण मूल्य रखता था और कभी उस उत्सर्ग के प्रति खेद भी नही होता था। कितनी ही वार व्यापारिक क्षेत्र मे यह प्रसग आए कभी पूछ भी लेती तो यही कहते इस घर मे सभी का समान अधिकार है क्या फरक पड़ा अगर मेरी जगह उस कुर्सी पर कोई मेरा ही भाई आकर वैठ गया, अपन और नयी फैक्टरी लगा लेंगे, मुझमे क्षमता चाहिए मुझे तो तुमसे यह सुनना है कि एक जगह हम नयी फैक्टरी और कम्पनी शुरू करे। अगर इनको ममत्व था तो अपने पारिवारिक सदस्यो से अन्यथा धन-वैभव सव इनके सामने नगण्य से थे—वैभव भी वहुत भोगा, दान भी खूव दिया लेकिन दूसरे कान को भी खवर नही पड़ी, किसी भी गरीव को असहाय अवस्था मे देख ही नही सकते। पैसे से, कपड़े से, अन्न से, जिस भी क्षेत्र मे सेवाएँ वाछनीय थी करते थे, यहाँ तक कि अपनी, वच्चो की व मेरी अलमारी से विना वताए कपड़े निकाल कर चुपचाप दे देते थे। जव किसी कर्मचारी को कपड़ा या चीज वापरते देखते तो मालूम पड़ता कि चीज गुमी नही,

वरना यथास्थान पर पहुँची है। दिल मे करुणा का निर्झर अविरल रूप से सदैव वहता था।

२२ साल की अवस्था से ही इनका विदेशो मे भ्रमण चालू हुआ। आखिरी विश्व यात्रा १९७० की रही। इस वीच करीव १० वार विदेश जाकर आये। १९४६ से १९५० तक विद्या उपार्जन के लिए लन्दन मे ही रहे—वह जमाना था ऐसा जव अमोद-प्रमोद, भोग-विलास, ऐश्वर्य एवं लक्ष्मी का वोलवाला था। चाहते तो सुरा एव सुन्दरियो के स्वप्नलोक मे ही विचरण करते रहते। सारी सुख-सुविधाएँ चरणों की दासी थी। अर्थ और काम के क्षेत्र मे सव कुछ प्राप्त कर सकते थे—किन्तु मानवता ने उनके गम्भीर चिन्तन से उपलव्ध जीवन मे उनको इन सव आसक्तियो से वहुत ऊपर रखा इसका कारण यही था कि मन मे शुद्ध मानवीय विचारो का ज्योतिपुज था और गम्भीर अन्तर-चिन्तन था। उसी चिन्तन एवं जाज्वल्यमान दृष्टि के आलोक मे जीवन के सही मार्ग का अनुसरण किया। वह उन करुणानिधियों मे से एक थे जिनका हृदय, जिनकी भावना पीड़ितों के रुदन को भी सुनती थी तथा सुखलिप्सु और विलासियो की कामनाएँ पूर्ण करने के लिए निर्दयता के साथ कुचली हुई आत्माओ को वड़ी नजदीकी से देखती थी। अपने मे सयम एवं तप की अद्वितीय चमक थी उन्होने अपने जीवन मे ऐसे अनेकों दृश्य देखे थे देश एवं विदेशो मे, जवकि श्वेत पत्थरो पर सुगन्ध फैलाता हुआ रग-विरगे व वस्त्र लपेटे अत्यन्त सुन्दर अप्सरा की रुन-झुन की आवाज, रंग-विरंगे सुगन्धित जल के फव्वारो के माध्यम से सौन्दर्य विखर पड़ता था, सुख झलकता था और उत्साह की वाढ-सी लग जाती थी, किन्तु उस मादकता का नर्तन इन पर अपना कोई प्रभाव इसलिए नही छोड सका कि अन्तर हृदय मे मानवता की ज्योति एवं करुणा का स्रोत अवाध एव अविरल रूप से प्रवाहित होता रहता था। एक तटस्थ दर्शक की भाँति जीवन की सभी अच्छाइयो को भोगते रहे। जीवन के कार्यो मे कही भी किंचित् मात्र शिथिलता नही आने दी। मैं वडी ही आश्चर्य विभोर होकर पूछा करती थी इन सवको देखकर भी आप इन सवसे परे कैसे है ? वस एक यही छोटा-सा उत्तर होता था पिता श्री की प्रेरणा ने जीवन के सही मार्ग पर आरूढ होने का मूक सन्देश दिया :—

Character is the Governing Element of Life and above all Genious.

"चरित्र जीवन मे शासन करने वाला तत्त्व है और वह सभी प्रतिभाओ से उच्च है" धन्य है उन पिता श्री एव गुरु श्री सोम जी शर्मा को, जिन्होने जीवन के उस रहस्य को समझाया कि पश्चिम का जो भी कुछ अच्छा प्रगतिशील है उसे अवश्य ग्रहण करो। पश्चिमी जीवन के यह वहुत निकट रहे, उनकी अच्छाइयो और वुराइयो को हर क्षेत्र मे जाकर देखा, उनके विलास पूर्ण जीवन को भी इन्होने एक मूक दर्शक की भाँति वडी ही नजदीकी से देखा, फिर भी उस विलासपूर्ण जीवन की चकाचौंध

इन पर अपना असर न दिखा सकी क्योंकि इनका अन्तर एक ऐसे आलोक से प्रकाशमान था जो पूर्ण सन्तोष व अपने आपके अस्तित्व को समझने से प्राप्त होता है और जिसका अभ्यास अपने अन्तर मानस के ज्ञान को जागृत करने से होता है। यहाँ भी हमारा मिलने-जुलने वालो का परिवार बहुत ही बडा था। अत्यधिक आधुनिक सभ्यता के पुजारियो के सम्पर्क मे रोज ही आते थे और अत्यधिक रूढ़िवादियो के सम्पर्क मे भी, पर कभी भी हमे उन दोनों मे सामन्जस्य स्थापित करने मे दिक्कत महसूस नही हुई।

समाज के ही क्षेत्र मे हम लोग जाते थे चाहे क्लब की पार्टी है मिलिट्री के समारोह। महु मे हमारा जाना-आना काफी रहता था क्योकि वहाँ के उच्चतम अफसरो से इनकी बहुत ही अच्छी मित्रता थी जो कि आपको पीछे के पृष्ठ पत्रो से मालूम पड़ ही रहा होगा—जैसा कि सुना जाता था कि मिलिट्री वालो का जीवन बड़ा ही गतिशील रहता है, वैसा ही उनका पारिवारिक जीवन भी; परन्तु हमें तो उन सबसे भिन्न लगा उनका जीवन बड़ा ही शिष्टाचार से ओत-प्रोत, मानवीय गुणो के रक्षक, त्याग की असीम भावना सदैव मौत को अपने सिर पर समझते हुए कि जीवन भंगुर है, जो भी अच्छा कार्य करना है इसी समय कर लेना है। जीवन मे समय के मूल्य की पहचान इन्होने अपने जीवन मे वही से आत्मसात् की। समय बहुत ही कम है जल्दी-जल्दी अपने मुस्तैदी कदमों को बढाओ, जीवन क्षणभंगुर है घूमती हुई आत्मा के लिए यह जीवन अस्थाई स्थान है विवेक, विचार एवं विनम्रता तीनो-हीं गुणो का सामन्जस्य इनके जीवन की धारा मे अविरल रूप से प्रवाहित होता रहा। हर चीज का बडी ही गहराई एव दोनो पहलुओ से विचार करते। किसी भी वस्तु का एक पहलू सुनकर अपने विचार प्रकट नही करते थे। सदैव कहा करते थे व्यक्ति वस्तु के एक पहलू को सुनकर, समझ करे अपनी धारणा बना लेता है वह सदैव अन्धेरे मे भटक जाता है। वस्तु के सही स्वरूप को वह पहचान नही सकता परन्तु जब वह दोनो पहलुओ को आत्मसात करता है तब सही स्वरूप स्पष्ट हो जाता है।

मनुष्य को कभी भी अपनी भूल स्वीकार करने मे संकोच नही होना चाहिए, मानव की सबसे बड़ी कमजोरी है, जब वह यह मान लेता है कि मैं सबसे अधिक बुद्धिमान, ज्ञान, सम्पन्न एवं शौर्य का पुज हूँ और अपनी गल्तियो पर झूठा आवरण बढने देता है। इनको झूठ से बहुत चिढ़ थी, जो अपनी कमियो को सुधारने का प्रयत्न करता है वही ज्ञानी है। अपने स्वरूप को जानना ज्ञान है। जो अपने मानस को भली-भाँति जानता है वह सबको जानता है। स्व का जानने वाला पर का ज्ञाता न हो ऐसा हो नही सकता। ज्ञान का उपयोग यही है कि अपने और जन-जन के जीवन को आलोक से भर दे। वही दीपक-दीपक कहलाने का अधिकारी है जो अपने स्पर्श करने वाले बुझे हुये दीपक को ज्योतिर्मय बना दे। इनमे गुणी के गुणों का आत्मसात

करने की रहस्यमयी शक्ति थी और यही मुख्य कारण रहा है शायद कि हम अपना इतना आधुनिक जीवन व्यतीत करते हुये भी कही भी अधोपतन की ओर नही गये । जिन्होंने हमे वहुत नजदीकी से देखा था सभी विस्मय पूर्ण दृष्टि से देखते थे, इतने आधुनिक विचारो मे विचरण करने वाले रहने वाले, परन्तु आधुनिकता से अती दूर कैसे रहते है ? किसी भी प्रकार का व्यसन इनके जीवन में नही था । अपने जीवन मे उन्ही आधुनिक विचारों को आत्मसात् किया जिनमे अच्छाई थी, मान-मर्यादा को जिससे ठेस न लगे और उन कार्यो को करने से मन को कम से कम ग्लानि पैदा न हो । हर सप्ताह करीव-करीव पार्टी होती थी चाहे घर पर हो या मित्रों के यहाँ हो, हर पार्टी का मुख्य आकर्षण ये रहते थे । वहुत ही विनोदशील व्यक्तित्व सदैव फूलों की मुस्कान मुखमंडल पर रहती । स्वभाव की सरलता, विनम्रता एवं वाक्पटुता और खास जो आकर्षण का विषय था कि पार्टी मे सुरा सेवन । से कोसों दूर रहना । कभी जीवन मे आस्वादन करने का भी प्रयास नही किया । विना सुरा के तो आधुनिक सम्यता की पार्टी फीकी व गोण लगती है, सदैव इन पर शर्ते लगती थी कि भण्डारी माहव को एक वूंद भी पिला दे तो उसे हम जाने पर शर्त लगाने वाले को हारना ही पडा । इतना भव्य था इनका आत्मवल । अच्छाइयो और वुराइयों मे रहते भी उन सवसे ऊपर उठकर रहे सदैव जीवन से वैमनस्य वैषम्य को हटाने का सन्देश दिया और सत-सत प्रयास भी किया । इनके जीवन का क्षेत्र ऐसा नहीं रहा जहाँ पर वह कर्त्तव्यविमूढ हुये हो, सभी को खुश रखने की कला इनमे गजव की थी; चाहे पिता हो, पत्नी, वच्चे हो—या पारिवारिक सदस्य हो इनसे कभी भी किसी का मनोमालिन्य मनमुटाव नही हुआ होगा । जिस प्रकार हीरा अपने समस्त पहलुओं से प्रकाश फैलाता है उसी प्रकार के इनके जीवन के पहलु थे कौन से पक्ष को ज्यादा उभारना है या उभरा था शव्दों मे व्यक्त करना वहुत ही कठिन है ।

पुत्र थे तो पिता भक्त—कभी भी जाने-अनजाने अपने पिता श्री का मन नही दुखाया होगा । चाहे अपनी खुशियो को उनके आदेशो के लिए उत्सर्ग करना पडा हो, पर वह भी हसते हुये कभी भी मन मे उत्सर्ग के पश्चात् कलुषित या वैमनस्य की भावना नही आई और न मेरे मन भी आने दी । जीवन मे कभी भी नां नही सुना । जिस परिस्थिति को देखा कि हाँ नही होगी तो वह कभी पूछा ही नही । मेरी शादी के पश्चात् ये ७-८ वार विदेश-भ्रमण करके आये पर वावू जी को नही पसन्द था या पारिवारिक कुछ उलझनें होंगी पता नही, पर मुझे एक वार भी इनके साथ जाने का सौभाग्य प्राप्त नही हुआ । जीवन मे अगर कोई वहुत वड़ा गम इनके साथ गया है तो वस यह कि मैं तुम्हें विदेश नहीं ले जा सका । इतना ज्यादा इनको इस वात का अफसोस था । पर मैं भी हमेशा हँस कर टाल देती थी क्या फरक पडता है अभी नहीं अगली वार चलेगे, जितनी वार गये

ये मेरे ही अनुनय आग्रह से गये होंगे, यदि कभी मैंने मेरे जीवन में इनका आत्मबल कमजोर पडते देखा था तो बस विदेश भ्रमण के समय बहुत ही भारी मन से विदा होते थे और महीना का कहते तो २० दिन मे घर पर। सदैव यही कहा करते थे कि मुझे समझ नहीं आता तुम किस चीज की बनी हो, कभी तो कहो मुझे भी साथ चलना है, पर मुझे इनके सभी कार्यों पर इतना आत्म-विश्वास था कि कभी भी मेरे मन मे आया ही नही कि मुझे ये क्यो नही ले जा रहे है ? आज तो जीवन को सभी खुशी की अनुभूतियां समाप्त हो चुकी है, फिर भी कभी भूले-भटके भी मन में नही आता है कि मेरे जीवन मे विदेश भ्रमण की तो बहुत बड़ी कमी रही, कभी भी नही और सिर ज्यादा गर्व से उठ जाता है कि कितने आदर्श विचारों के धनी थे, कितने पितृभक्त थे, दुख की जगह मुझे बड़ी ही आत्म-सतोष की अनुभूति होती है, सबसे आश्चर्य की चीज मुझे कभी पहले थी और अभी भी यह अनुभूति ही मन मे नही आई कलुषता ही नहीं आई कि मैं क्यों नहीं इनके साथ गई। कभी भी मैंने इनको भारी मन या भारी नयनों से विदा नही दी सदैव इनको हँसते हुए विदा दी।

१९६० में जब यह विदेश गये थे मेरे ओपरेशन को कुल ५ दिन हुये थे। ओपरेशन की वजह से जाने का कार्यक्रम केन्सल हो गया। अब मेरी तबियत तीसरे या चौथे दिन जरा ठीक हुई मैंने यही पूछा था कि आपके जाने का क्या हुआ ? सूटकेस सामान सब तैयार है या नही इतने विस्मय से देखने लगे आज भी वह शक्ल मुझे याद है।

किसी भी हालत मे जाने को तैयार नही हुये। साथ मे पूज्य बाईजी जाने वाले थे। मुझे इतना बुरा लगा जब इन्होने कहा कि बाईजी ने अभी जाना स्थगित कर दिया है तुम ठीक हो जाओगी फिर जावेगी। आखिर मेरे अनुनय-विनय को स्वीकार करके इन्होने बाईजी से जाकर कहा। बाबूजी भी आश्चर्यचकित रह गये और आखिर ता० ६ जुलाई को इनको सहर्ष कोठी आकर अस्पताल से विदा किया जब तक तो मेरे टाँके भी नही खुले थे। यह छोटा-सा उदाहरण देने का आशय यही है कि यह मेरी शक्ति नही थी यह इनकी प्रेरणा थी या यो कह दीजिये कि इन्होंने अपने द्वारा मुझमे इतना मनोबल कूट-कूट कर भर दिया था कि परिस्थितियो से हारना या ठहर जाना नही सिखाया था। पढने वाले पाठक भी शायद आश्चर्य करेंगे, पर यह काल्पनिक कथा नही है यह जीवन के सच्चे उदाहरण हैं। मेरे जीवन मे तो कितने ही हजारो ऐसे प्रसंग आये हैं जिनको लिखकर व्यक्त करना लेखनी की शक्ति से बाहर है। कहने का या लिखने का सिर्फ अर्थ यही है कि दूसरे के विचारों को अपने अनुकूल बनाने की क्षमता कितनी थी अगर इस जगह दूसरी दृष्टि से सोचिये तो यह लगता है कि पत्नी बिस्तर मे पड़ी है और चल दिये घूमने-फिरने, पर मेरे मन मे तो

कभी यह भाव न उत्पन्न हुआ न होने वाला है, मुझे तो इन्हीं सब बातों पर इनके त्याग, इनके उत्कर्ष पर आज भी गर्व है जीवन मे वैमनस्यता तो किसी से भी नही रही सदैव जीवन से वैमनस्य वैषम्य को दूर हटाने का सन्देश दिया एवं स्वयं के जीवन मे शत-प्रतिशत उसको उतारा। शत्रु को भी मित्र करके माना। आने वाला आगन्तुक चाहे कितनी ही विपरीत अवस्था व विचारधारा से आया है। परन्तु इनके स्नेह पूरित सम्बोधन, कला पूर्ण व्यक्तित्व एवं सद्व्यवहार से आने वाला व्यक्ति सुखद अनुभूतियाँ ही लेकर जाता, पता नही क्या आकर्षण था इनके नेत्रो में, मूक सन्देश में। खुशी, दुख, गुस्सा सभी के मूक सन्देश नेत्रो से ही मिलते थे, कभी बोलकर कुछ कहा हो याद नही आता। सदैव कहा करते थे किसी भी बात के दोनों पहलू देखोगे तो दुश्मनी हो ही नही सकती। यदि गलती एवं भूल स्वीकार करने का सामर्थ्य है और निःसंकोच भाव से अपनी भूल स्वीकार कर ली तो शत्रुता आ ही नहीं सकती। मनुष्य की सबसे बडी कमजोरी ही उसका यह सोचना कि वह जो कह रहा है वही सत्य है, वह सबसे अधिक बुद्धिमान है एवं ज्ञान-सम्पन्न शक्ति पुंज है। सच्चा ज्ञानी वही है जो अपनी गल्ती को आत्मसात करके चिन्तन करे और आगे से उस कमजोरी को हृदय की शक्तियों के साथ सुधार करने का प्रयास करे। सौभाग्यशाली वही व्यक्ति है जो अपनी भूलो को स्वीकार कर कर्त्तव्य पथ पर अविरल अग्रसर होते रहते हैं और आत्म-विश्वास की ज्योति प्रज्ज्वलित होती रहती है।

बच्चों को भी स्कूल मे पत्रों द्वारा यही सन्देश मिलता था। तीनों बच्चे जसबीर, जम्बू, सतीश, अभी तक तो अपने पापा जी के पद-चिन्हो पर चलने का अविरल प्रयास कर रहे है हालाकि पथ कंटको से भरा हुआ है नही, पूर्ण आच्छादित है पर फिर भी इनकी आत्म ज्योति के बल पर हम चारों ही उस पथ की ओर निरन्तर अबाध गति से बढते रहे जहाँ पर निराशाएँ पग-पग पर हैं, फिर भी विश्वास को टूटने नहीं दे रहे है। कविवर मैथलीशरण की भाषा मे—

ससार की समर स्थली मे धीरता धारण करो।
चलते हुए निज इष्ट पथ मे संकटों से मत डरो।
जीते हुए भी मृतकसम रह कर न केवल दिन भरो।
वर वीर बनकर आप अपनी विघ्न बाधाएँ हरो।

जीवन के विस्फोट के मुहाने पर अवसाद के उन क्षणों मे मुस्कराने का प्रयत्न किया।

जीवन जागरण है, सुषुप्ति नही, उत्थान है, पतन नही, पृथ्वी के तमसाछन्न अन्धकारमय पथ से गुजर कर भी उस दिव्य ज्योति से साक्षात्कार करना चाहते हैं।

वैसे दैहिक दृष्टि या सासारिक दृष्टि से वे हमारे पास नही हैं, लेकिन आत्मा से यह सदैव अति निकट रहे और सदैव रहेंगे । उन्हीं की जाज्वल्यमान आत्म-ज्योति हमारा हर क्षण मार्गदर्शन कर रही है यह अनुभूति है, अनुभव करने वाला ही इसका रसास्वादन कर सकता है और जिनको आत्मा की इस असीम शक्ति में विश्वास है, मेरे लिये तो इनको जीवन की व्याख्या करना अति दुष्कर है परन्तु चन्द्रमा से भी निर्मल शान्तता प्रदान करने वाला जिसका मानस हो, सूर्य से भी अधिक तेजस्वी गम्भीर शालीन एव सागर से भी अधिक जिसके मनस्थल में लहराता हो ऐसे महान पति के चरण कमलो मे—

जिसकी प्रभा के सामने रवि तेज भी फीका पड़ा ।
अध्यात्म विद्या का यहाँ आलोक फैला था बड़ा ।
मानस कमल सबके यहाँ दिन-रात रहते थे खिले ।
मानो सभी गजेन्द्र की ज्योति छटा मे थे मिले ।
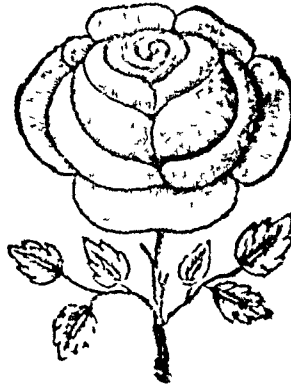
वह अधखिला गुलाब........

☐ श्रीमती रजनी एम० भण्डारी
नन्दनवन, १ महात्मा गांधी मार्ग,
इन्दौर

२४ सितम्बर का वह कैसा अशुभ दिन था, नन्दनवन के लिए।

उस दिन पूज्य जैठसाहव ने हँसते-हँसते अन्तिम विदा ली थी। नन्दनवन के उद्यान का वह अधखिला गुलाव पूरी सुगन्ध फैलाने के पूर्व ही डाली से टूट गया।

आज भी वह दृश्य आंखों के सामने घूमता हुआ नजर आता है। सुवह पूज्य जेठसाहव वड़े ही प्रसन्नचित्त थे। एकाएक घवराहट होने लगी। उसी समय डाक्टर को भी वुलवाया गया लेकिन घवराहट वढ ही रही थी। उस वक्त सव कोई किसी डाक्टर को वुलाने भागे, कोई हकीम को वुलाने भागे, किसी को सुध नही थी, कोई सोच भी नही सकते थे, यह क्या हो रहा है। अन्त के पाँच मिनिट तक जीवन और मृत्यु के वीच का जो संग्राम हो रहा था, उस वक्त दो मिनिट के लिये मैं सामने थी। डाक्टर अपने इलाज पूर्ण रूप से कर रहे थे लेकिन काल भी इतना कठोर वन गया था कि उसने किसी को वक्त ही नही दिया। अचानक एक सैकण्ड के लिये मन में विचार आया कि जेठसाहव के मुंह में गंगाजल और तुलसी किसी को कह करके दे दूं लेकिन विचार से ही मैं बुरी तरह से कांप उठी और जैसे ही सामने देखती हूँ डाक्टर पूज्य जेठसाहव के मुंह को चादर से ढांक रहे थे और एकक्षण मे दुनिया कहां से कहां पहुँच चुकी थी। वह आत्मा अनन्त मे विलीन हो चुकी थी और करीव ५० आदमी सामने खड़े थे जिनमे एक में भी यह शक्ति नहीं थी जो नैसर्गिक पीड़ा को वदल दे। इन्सान की यहा सवसे वड़ी हार है। जो इन्सान भौतिक सुखों से इतना गर्वित हो उठता है कि उसको उस वक्त तो भगवान का भी डर नही रहता और भगवान नाम किसको कहते है, इतना सोचने का समय भी उसके पास नहीं होता है। उसको अपने सुख-सम्पत्ति, भोग-विलास से फुर्सत ही कहां कि वह भगवान का नाम स्मरण करें और जव अन्त आता है तो उसकी स्थिति जैसी दयनीय वनती है कि तरस आ जाये।

लेकिन यह व्यक्तित्व उससे एकदम भिन्न था। सुख-सम्पत्ति, ऐश्वर्य सव कुछ सामने होते हुये भी उनमे कभी उलझे नही वल्कि उन सवको अपने वश में रखा था। उनके मन मे गरीव और पीड़ितों के लिये हमेशा दर्द रहता था और किस प्रकार से सम्पन्नता और शान्ति दे सके इन्ही विचारों मे खोये रहते थे।

घर के हर व्यक्ति के लिये उनके मन मे एक-सा सच्चा प्रेम था जो कि आज के युग मे एक दुर्लभ-सी वस्तु हो गया है। सच्चा प्रेम आज के कलियुग मे नष्ट-सा हो गया है। मैं समझती हूं कि जिनको भी ऐसा आज के युग मे थोडा-सा भी प्रेम मिलता है वह सचमुच भाग्यवान होते है।

मेरे विचार मे जीवन मे महान वही होता है जो दूसरों की मुस्कान के लिए अपने आंसू पी ले। पूज्य जेठसाहव भी ऐसे ही व्यक्ति थे।

जिस फैक्टरी के लिये जेठसाहव के मन में क्या-क्या इच्छाएँ नही थी। एक-एक इच्छा पूर्ण करने के लिये वड़े वावू चि० जसवीरजी जिनकी की उम्र अभी शौक-मौज की है, लेकिन उन सवको तिलांजली देकर दिन-रात उसी विचार मे खोये रहते हैं। पापाजी की एक-एक इच्छा पूर्ण करनी है। उनकी कृपा से आज फैक्टरी भी उत्कर्ष की सीमा पर है लेकिन फिर भी उनके मन मे एक कसक उठती है, यह सव देखने के लिये पापाजी नही है। उनका एक-एक पल शायद इसी मे व्यतीत होता है कि अपने पूज्य दादाजी, दादीजी, मम्मीजी और सव छोटे भाइयों को हर तरह से सम्पन्न और हंसते देखूं। इसके लिए पसीने की एक एक वूंद की कुर्वानी देनी होगी यह वे जानते है।

मैं अपने जेठसाहव के सवसे छोटे भाई की वहू हूँ, लेकिन वे हमेशा मुझे अपनी वेटी-सा ही मानते थे। हालांकि उनको खुद को वेटी नही है लेकिन वेटी का पूर्ण प्यार उनमे देखने को मिलता था। घर की सव लडकिया वहुत प्यारी थी। पूज्य जेठसाहव के साथ यही विशेपता रही की इतने आधुनिक विचार होते हुए भी अपने घर की मर्यादा कभी भंग नही होने दी। अपने कुल की मर्यादा का उन्हे पल-पल ध्यान रहता था। जव मैं लन्दन अपने पति के पास जा रही थी और जव मैं पाव पड़ने पूज्य जेठसाहव के पास गई तव उन्होंने मुझे आशीर्वाद देते हुए ये निर्देश दिये कि तुम ऐसे देश मे जा रही हो जो यहां के वातावरण से विल्कुल भिन्न है। वहा के आचार-विचार, रहन-सहन मे जो अच्छा लगे वह ग्रहण करना। अपने कुल की मर्यादा का सदैव खयाल रखना। उन्होने जो उपकार करे उस उपकारी का स्मरण करके और कदम-कदम पर उन आदेशो का अनुसरण ही उनके आदर्शों का अपनाना एवं उनकी आत्मा को चिरशान्ति पहुंचाना है।

अभी जेठसाहव का वियोग तो भूले ही नही थे कि अचानक ४ अप्रैल, १९७५ को दुर्दैवी घटना वापस घटी। पता नही हमारे परिवार की प्रभु कैसी-कैसी परीक्षा लेने पर तुला है। इस घर के सवसे छोटे पुत्र, मेरे पति श्री महेन्द्रसिंह जी भण्डारी का अचानक लदन मे हार्टफेल हो गया। इस कुल का वह नन्हा सा दीपक अपनी ज्योतिर्मय छटा फैलाने के पहले ही काल के सघन अन्धकार मे विलीन हो गया। विधि

की कैसी विडम्वना है, जिनके विना हम एक पल भी रहने की सोच नहीं सकते उनके आखरी दर्शन से भी हमे वंचित रहना पडा ।

सुख और दुःख तो अव हमारे जीवन के सहचर है । एक की अनुपस्थिति में दूसरे के अस्तित्व का अनुभव नही किया जा सकता । अतएव सुख की अनुभूति के लिए दुख से परिचय होना आवश्यक है और यह प्रतीती किसी हद तक अव सत्य लगती है । जव हम वर्तमान जीवन की ओर दृष्टिपात करते हैं तो ऐसा लगता है कि काली सघन घटाओ के वीच जो विद्युत प्रकाश का महत्व होता है वही हमारे जीवन मे अतीत के सुख का महत्व है । इस अतीत की उस खोयी हुई मानसिक शांति की कल्पना से ही मन रोमाचित हो उठता है । गुरु सानिध्य एवं प्रभु-स्मरण ही एक ऐसा शस्त्र है उसमे लीन होकर ही अपने अपार दुःख के सागर से तैर सकते हैं और उस अनन्त अक्षय शान्ती के वैभव को पा सकते है । जो इन भौतिक सांसारिक वैभवों से करोडो गुना अधिक आत्मशान्ती प्रदान करता है । सुख-दुःख की सीढ़ियों पर उतरना-चढना सरल काम नही है । कही टूटे-फूटे पत्थर हैं तो कही इतने चिकने की पाँव फिसलने को होते है । यदि सद्‌गुरु की शक्ति ऐसे समय पर मिल जाये तो उस शक्ति के आधार पर इन सवको पार करके हम अपने गतव्य शिखर की ओर पहुँच सकते है ।

मै मेरे आराध्य से यही प्रार्थना करती हूँ कि जहाँ कही भी इन दोनों भाइयो की आत्मा हो, वहाँ उनको सुख-समृद्धि और चिरशान्ती मिले और वह आत्मायें अपने शुभकर्मो के द्वारा इस ससार के जन्म-मरण के चक्र से अपने आपको मुक्त करके आत्मा से परमात्मा वने । श्रद्धा के सुमन उन दोनो के पवित्र चरणो में मेरी ओर से एवं हमारे वच्चों की ओर से चाहती हूँ और हम इन सद्‌गुणों को ग्रहण करके संसार के मोह-माया के महल की सीढ़िया पार कर सके और दुखियो का दुःख दूर कर सकें ।

हे भगवान ! मुझे दुनिया की सेवा का वरदान दो
दुखियो का दुःख मिटा सकूँ
ऐसी शक्ति महान दो
उन्हे हँसी की छाँह दूँ
विना सहारे भटक रहे जो
उन्हे सुख की वाँह दूँ
हे भगवान मुझे अपनी
दया, दृष्टि और शक्ति दो
सदा वुराई से लड़पाऊँ
मुझमे तुम वह शक्ति दो !

पिताजी के सपने, मम्मी की शक्ति

□ श्री जम्बू भण्डारी
(द्वितीय पुत्र स्व० श्री गजेन्द्रसिह भण्डारी)

भारत का अतीत यदि वीर योद्धाओं की यशोगाथा से गुजित रहा है तो वही पर वीर सन्नारियों की वीरता, धर्म-परायणता एवं उज्ज्वल आचरणो से गौरवान्वित है। भारतीय नारी का आदर्श हमे विश्व के किसी भी दूसरे साहित्य मे उपलब्ध नही हो सकता। भारतीय नारी का त्याग एवं सेवा उसे वहुत ऊँचे आसन पर लाकर खडी कर देती है। भारतीय इतिहास जो अद्‌भुत एवं अनुपम है भारत की सन्नारियों के नाम भी इतिहास के स्वर्णपृष्ठो पर अंकित है उसे उपेक्षा के गर्त मे फेका नही जा सकता घर की प्रतिष्ठा और समाज का सन्मान नारी के उत्कर्ष पर अवलवित है तव ही शास्त्रकारो ने कहा—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।

भारतीय नारी के कितने ही ज्वलंत उदाहरण हैं जिसने अपनी कुल-परम्परा के सम्मान के लिए कितने महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं। वैसे आज के समाज मे भी नारी को कितने ही अधिकारो से वंचित रखने का प्रयत्न यत्र-तत्र परिलक्षित होता है परन्तु नारी के मन मे एक अद्‌भुत दृढ़ संकल्प शक्ति है जो उसे पीछे लौटने की प्रेरणा नही देती, यह मैं आपको अपने अनुभव से कह रहा हूँ क्योकि जब 'अन्तर्दृष्टि' पुस्तक की योजना वनी, हमारी पूज्य माताजी को कितनी ही समस्याओं के सामने करने पडे यह उनके मन का दृढ निश्चय अपने पर अटल विश्वास एवं पूज्य पापाजी के प्रति असीम श्रद्धा का ही प्रतिफल है कि सव समस्याएँ अपने आप सरल वनती चली गई कही भी उन्हे मार्ग अवरुद्ध नही मिला। सभी के जीवन मे कभी-कभी कठोर परीक्षा के क्षण आते है जिनमे व्यक्ति की अपनी परीक्षा होती है और शायद ये ही वे कुछ क्षण होते है जिनमे व्यक्ति का वास्तविक रूप निखरता है व्यक्ति की आन्तरिक निष्ठा का मूल्यॉकन होता है और अपने आराध्य के प्रति अवस्था की गहराई का पता चलता है।

पूज्य ममी ने जिस अडिग आस्था और निष्ठा का परिचय इस पुस्तक के समय दिया वह एक वहुत अमूल्य निधी है। एक पत्नी के जीवन मे पति के असमय के वियोग से वढकर और दूसरा कौन-सा दुख होगा और फिर उन्हीं सुखद अतीत क्षणो की स्मृतिस्वरूप वटोरना और पुस्तक के रूप मे व्यक्त करना कितना दुष्कर कार्य है हम तो सोचने से ही रोमाचित हो जाते है परन्तु ममी ने तो यह कार्य पूज्य

(१) श्रीमती स्व० मोतीलालजी सा० भण्डारी (२) श्रीमती सुन्दरबाई (मुनिश्री महेन्द्रकुमार जी की मातुश्री) (३) श्रीमती भुवनेश्वरी भण्डारी (४) श्रीमती सेठ सुगनमलजी साहब भण्डारी (५) श्री जसवीरसिंहजी सा० भण्डारी (६) श्री जम्बू कुमार जी भण्डारी (७) पू० मुनिश्री महेन्द्रकुमार जी 'कमल' (९) श्री सतीशकुमारजी भण्डारी (१०) श्री आशीष भण्डारी (सुपुत्र श्रीराजेन्द्रसिंह जी सा० भण्डारी) (११) श्री पवन भण्डारी (सुपुत्र स्व० श्री महेन्द्रसिंहजी भण्डारी)

जैनरत्न सेठ सुगनमलजी सा० भण्डारी
मुनिश्री से आशीर्वचन प्राप्त करते हुए।

विविध झांकियां :
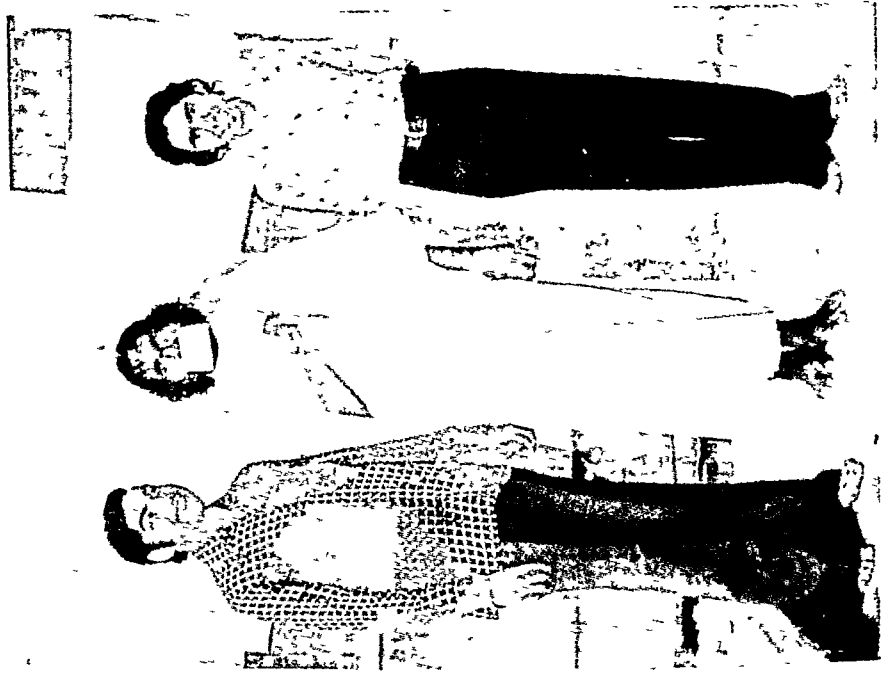
मुनिश्री के साथ स्व० गजेन्द्रसिंहजी के द्वितीय पुत्र श्री जम्बू-कुमार जी एव तृतीय पुत्र श्री सतीशकुमारजी भण्डारी

श्रीमती कृष्णावहन अग्रवाल, श्रीमती पद्मिनी शुक्ल (म० प्र० के मुख्य मन्त्री श्री शुक्ल की धर्मपत्नी) श्रीमती भुवन भण्डारी (चेयरमेन बेकरी प्रोजेक्ट) बेकरी प्रोजेक्ट के अन्तर्गत निर्मित ब्रेड का अवलोकन करते हुए।

महाराज के सानिध्य मे रहकर पूर्ण किया है एक ओर टेप पर से प्रवचन उतारने का कठिन कार्य जिसमे की ७-८ घन्टे रोज लगते और दूसरी ओर महाराज साहव का यह आदेश कि भण्डारी साहव की स्मृति स्वरूप संस्मरण आना वहुत जरूरी है, शुरू-शुरू मे जब संस्मरण की वात चली तो हम सभी एवं ममी वहुत ही अधीर हो गये परन्तु जव हम लोगो की यह अवस्था देखी तो यह कार्य ममी ने अपने पर ले लिया और कहा कि तुम जरा भी विचलित मत हो मैं सब ठीक से करवा लूंगी। जब जीवन के उस वीभत्स सत्य को स्वीकार करना पडा है तो यह भी करूँगी। पता नही इतनी शक्ति उनमे कहाँ से आ गई जिस माँ की आँख मे पापा जी के नाम के साथ अश्रुधारा प्रवाहित होती थी वह आज दिन भर उस नाम के साथ वड़ी ही दृढ़ निष्ठा के साथ व्यस्त है। लगता है तव ही भारत मे नारी को शक्ति के रूप मे भी पूजा जाता है नारी सचमुच मे शक्ती वाहिनी है हम भी ऐसी शक्ति पुज अपनी माँ के वहुत कृतज्ञ हैं जिन्होने हमारे प्रतिक्षण वन्दनीय, अज्ञानतिमिर के नाशक हमारे जीवन के प्रकाश स्तम्भ, पापा जी की स्मृति इस पुस्तक के रूप मे लाकर चिरस्थायी कर दी। ममी का दृढ संकल्प, अविरल अथक प्रयास एव पूज्य महाराज साहव की प्रेरणा ने पापाजी की स्मृति स्वरूप इस पुस्तक को आप सवो के कर-कमलो मे प्रस्तुत की और पापाजी की पावन-स्मृति उन अनोखे प्रवचनो के संकलन के साथ सदैव-सदैव के लिए जैन जगत मे चिरस्थायी रूप मे स्थापित हो गई।

कठोर परीक्षा के क्षण

हमारे जीवन मे तो यह एक और परीक्षा का क्षण था। मैं वम्वई मे पढ़ता था और अपनी कालेज की परीक्षा मे व्यस्त था। मेरा छोटा अनुज सतीश देहरादून मे अपनी सीनियर कैम्ब्रीज की तैयारी मे सलग्न था पर प्रभु ने तो हमारी परीक्षा कुछ और ही ले ली जिस परीक्षा की स्वप्न मे भी कल्पना नही थी। पापा जी के स्वास्थ्य की तो हमे कभी भी चिन्ता नही रहती थी, ममी का अवश्य सदा कुछ न कुछ चलता रहता था। जैसे ही मुझे वम्वई मे मेरी भुआ का फोन आया कि इन्दौर चलना है तुम तैयार रहना। गज्जु की (पापाजी को सभी प्यार से गज्जू कहा करते थे) तवियत खराव है। मेरे मस्तिक मे तो एकदम शून्यता छा गई २२ सितम्वर को तो मेरी पापा जी से फोन पर वात हुई और वे वड़े ही सहज एवं प्यार भरे शव्दो मे कह रहे थे। "जमसा" हम नही आ रहे है वम्वई ममी ने मना कर दिया कि अभी नही जाने देंगे। मेरा आगे का कलकत्ता टिकट केंसल करवा देना—और अचानक यह क्या खवर मिली ? सहसा मन मे अनेकों विचारो का ताता-सा लग गया। मन मे कुविचारो ने जजाल वुन डाला था समय काटे नहीं कट रहा था कव इन्दौर आवे और कव पापाजी के हँसते हुये कमल जैसे मुख के दर्शन हों, पर न मालूम क्यो दिमाग मे तूफान, दिल मे परेशानी, और शरीर मे शून्यता तीनों ने मिलकर मेरी चेतना पर आक्रमण कर

दिया । मैं अपनी समग्र चेतना को समेट कर संभालना चाह रहा था, परन्तु मन मे अशुभ की एक काली छाया मेरे सामने बार-बार आ रही थी । जैसे-तैसे इन्दौर स्टेशन पर पहुंचे कोठी से न कोई लेने आया न मोटर ही आई बड़ा ही आश्चर्य हुआ । मैं यह सब देख कर परेशान-सा हो गया और अशुभ की कामना करके मैं अपने आप को रोक न सका । भुआ के पास स्टेशन पर ही मैं तो बिखर-सा गया और कोठी आने पर पापाजी की मेरे बड़े भाई जसवीर पूज्य बाबूजी काका साहब सभी की हालत अवर्णनीय है । प्रभु किसे भी ऐसा सकटमय समय न दिखाए । ममी को देखकर तो मैं अवाक रह गया । मैं जब आया तो मेरे आने का सुनकर ही बेहोश हो गई । उनकी दिमाग की अवस्था भी ठीक नही थी बहकी-बहकी बाते करती थी उनकी चेतना लुप्त-सी हो चुकी थी । प्रभु ने हमारी कैसी परीक्षा ली है ।

कैसा कुसमय हमारे व हमारे परिवार के लिए आया, लेकिन इस समय मैंने, मेरे पू० दादा सा० एवं बड़े भाई जसवीर ने अपना संतुलन नही खोया । माँ की भी चेतना धीरे-धीरे लौटने लगी । माँ को पुन: स्वस्थ देखकर हमारे मन भी जरा संभलने लगे, पापाजी की आत्मा की दिव्य-लोक से निरन्तर प्रेरणाएँ आती रही उन्ही की आत्म प्रेरणा से ही कहिए कि हम सभी कठिन परीक्षा मे बैठ गये । हम लोग कहाँ तक उत्तीर्ण हुए वह तो समय ही बताएगा । परन्तु इतना बडे भाई जसदा एवं पू० मा० के विषय मे जरूर आत्म-विश्वास नही अपितु बडे ही गर्व के साथ सर ऊँचा करके कह सकता हूँ कि प्रकृति की उन दोनों वस्तुओ को भी हृदय मे सहेज लिया तो गुरू की आकस्मिक परीक्षा मे भी बुद्धि बाहुल्य एवं चातुर्य से उत्तीर्ण हो गये ।

महान् एव भव्य आत्माएँ कभी मरती नही, न कभी नष्ट होती, यह बिलकुल सत्य है, अपितु अमर हो जाती है । पापाजी भौतिक रूप से अवश्य हमारे पास नही परन्तु उनकी आत्मा का वह भव्य स्वरूप जो उनके जीवन-काल मे हमे दृष्टिगोचर नही हुआ था वह स्वरूप हमारे सामने क्षण-प्रतिक्षण उनकी आत्मा से निर्देशित है । हम भौतिक एव शारीरिक रूप से अवश्य अलग हो गये है, परन्तु पापाजी के स्वर्गवासी होने के बाद हमारे परिवार पर उनकी दिव्य आत्मा आज भी हमे अपने कर्तव्य-पथ पर बढने का सम्बल दे रही है । □

स्व० श्री गजेन्द्रसिंहजी भंडारी

के स्मृति स्वरूप

प्रकाश्यमान स्मारिका हेतु

संदेश

एवं

प्रेरक-संस्मरण

संदेश

भारत के उपराष्ट्रपति के सचिव
नई दिल्ली-११००११

पत्र संख्या उ० रा० स० १३४६/७६

महोदय,

आपका पत्र उपराष्ट्रपति जी के नाम प्राप्त हुआ, धन्यवाद।

उपराष्ट्रपति जी को यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप स्वर्गीय गजेन्द्रसिंह भंडारी की स्मृति मे "अन्तर्दृष्टि" नामक पुस्तक प्रकाशित करने जा रहे हैं। उपराष्ट्रपति जी आपके इस प्रयास की सफलता के लिए अपनी शुभकामनाये भेजते है।

भवदीय,
(वि० फडके)

संदेश

श्री माननीय कृषि एव सिंचाई मंत्री

श्री जगजीवनराम जी

भारत सरकार, नई दिल्ली

दि० २१ सितम्बर, १९७६

प्रिय महोदय,

स्व० श्री गजेन्द्रसिंह भंडारी की पावन स्मृति में जैनधर्म की एक पावन पुस्तक का प्रकाशन किया जा रहा है, यह आपके पत्र दिनांक १७-९-७६ से माननीय कृषि एवं सिंचाई मंत्री, श्री जगजीवनराम जी को ज्ञात हुआ।

माननीय मंत्री जी की शुभकामना है कि पुस्तक अपने लक्ष्य में सफल हों।

भवदीय

(धर्मचन्द्र गोयल)

संदेश

□ **श्री विजयसमुद्रसूरि जी महाराज :**

कवि मुनि श्री महेन्द्रकुमार जी "कमल" ने इन्दौर में वर्षावास में स्थिर होकर परम परमेश्वर परमात्मा महावीर स्वामी के शुभ सन्देशों के प्रवचन के माध्यम से साधारण जनता तक पहुँचाने का प्रयास किया है, वह श्लाघ्य है ही। विशेष श्लाघ्यतर यह है कि उन प्रवचनों का नाम आपने "अन्तर्दृष्टि" रखा है।

चरण-करणानुयोग के व्याख्यान श्रुतकेवलियों ने समय-समय पर अन्तरलीन साधक के तप, प्रज्ञा और यश का उतरोत्तर अहर्निश आदर किया है वैसे मैं भी इस 'अंतर्दृष्टि' का आदर करता हूँ और साथ में मुनि श्री को धन्यवाद। व्यवहार भाष्य में लिखा है कि—

सव्वजगुज्जोयकरं नाणं, नाणेण नज्जइ चरणं
—११७/२१६

ज्ञान संसार के सकल रहस्यों को प्रकाशित करने वाला एक तेजोमय परम आत्मधर्म है। क्योंकि ज्ञान से ही आचरण का यथोचित बोध होता है। आप भी ज्ञानाराधक ज्ञानियों की सेवा कर साहित्य संसार में श्रेयोमार्ग का निर्माण कर रहे हैं। अतः धर्मलाभ की पात्रता तो है ही।

—विजयसमुद्रसूरि

संदेश

स्व० श्री गजेन्द्रसिंह जी साहेब भंडारी की शुभस्मृति में उदियमान कवि श्री महेन्द्रकुमार जी "कमल" के प्रभावशाली प्रवचनों का संकलन "अन्तर दृष्टि" पुस्तक प्रकाशित करने का निर्णय हो गया यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई। मुनि जी का मधुर कंठ, गायन की कला के साथ वक्तव्य कला का भी सुन्दर ढग है जो श्रोताओं के लिए आर्कपण का केन्द्र बन गया है। अल्पायु में ही मुनिजी ने अपने पुरुषार्थ द्वारा काफी सफलता अर्जित की है। उनकी रचनाओं से, और विशेषकर "अन्तर्दृष्टि" से पाठकों को नैतिक एवं धार्मिक मार्ग-दर्शन मिले, यही शुभकामना है।"

—आचार्य आनन्द ऋषि

●

महेन्द्र मुनिजी, 'कमल' अच्छे प्रवक्ता हैं। स्व० श्री-गजेन्द्रसिंह साहेब भंडारी जी की स्मृति में इन्दौर संघ उनके प्रवचनों को प्रकाशित करके स्थायी रूप दे रहा है, और जन-जन के लिए एक उपयोगी कार्य कर रहा है, इसके लिए धन्यवाद एवं शुभ-कामना व्यक्त करता हूँ।

जैन भवन
लोहामन्डी आगरा
२१-९-७६

—विजय मुनि

●

संदेश

□ **मालवकेशरी प्रसिद्धवक्ता**
श्री सौभाग्यमल जी महाराज साहब
रतलाम

दिवगत युवाहृदयी श्री गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी जीवन की जीवन्त ज्योति थे। जिनकी चेतना का प्रकाश पारिवारिक सीमा में आवद्ध नहीं था, वरन् निष्पक्षीय रूप से समाज एवं नगर को आलोकित करने में सक्षम था।

आध्यात्मिक विकास की धार्मिक प्रणालियाँ उन्हें पसन्द थीं। आज के गुमराह वर्ग को वे उससे जुड़ने के लिए वार-वार प्रेरित करते रहते थे।

जीवन को सही अर्थों में जोड़ने की कला उन्हें आती थी। साधु-संतों के वे वड़े प्रेमी थे। सत्संग में उनकी भरी-पूरी रुचि थी। उसमें वे सहज रूपेण ही तल्लीन हो जाते थे। मानो वे ध्यान-योग की आनन्दानुभूति कर रहे हों।

ऐसे धर्मज्ञ युवा मानस की पुण्य स्मृति में प्रस्तुत पुस्तक का प्रशंसनीय प्रकाशन मुमुक्षुजनों के लिए उपलब्ध किया जा रहा है। यही उनकी सच्ची श्रद्धांजली है।

☆

संदेश

वित्त मन्त्री,

रामसरनचन्द मित्तल

विभाग, हरियाणा

चण्डीगढ़

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि कवि मुनिश्री महेन्द्रकुमार जी "कमल" के सम्प्रति इन्दौर वर्षा कालीन-वास मे विविध विषयों पर होने वाले प्रभावशाली प्रवचनों का सकलन स्वर्गीय श्रीयुत् गजेन्द्रसिह जी साहब भण्डारी की पावन स्मृति में "अन्तर्दृष्टि" के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है।

मुनि श्री महेन्द्रकुमार जी "कमल" के प्रवचनों के संकलन का कार्य एक महत्त्वपूर्ण निर्णय है। उनके प्रवचनों का संकलन प्रकाशित करना जहाँ श्रीयुत् गजेन्द्र सिंह जी की सच्ची श्रद्धांजलि है, वहाँ इससे समाज का भी भारी हित होगा। उनके प्रवचनों के प्रकाशित रूप में एक ऐसी मिसाल जगेगी, जिससे समाज में मानव-प्रेम और शांति की नई रोशनी फैलेगी।

मैं अन्तर्दृष्टि के उक्त संकलन की सफलता की कामना करता हूँ और आशा करता हूँ कि इससे समाज का हर वर्ग लाभ उठायेगा।

मंगल-कामनाओं सहित।

—रामसरनचन्द मित्तल

संदेश

प्रवचन और उसका प्रकाशन अध्यात्म-उन्नति के लिए युगीन आवश्यकता की पूर्ति करना है, जन-मानस को धर्म की दिशा देने मे सक्षम है।

स्व० श्रीयुत् गजेन्द्रसिह जी भण्डारी की स्मृति स्वरूप 'अन्तर्दृष्टि' पुस्तक का प्रकाशन स्तुत्य प्रयास होगा।

सद्भावना के साथ।

—रतन मुनि

●

आज साहित्य का प्रकाशन कम नहीं हो रहा है। इसके विपरीत साहित्य प्रकाशन की बाढ़ आ रही है। किन्तु आम जतना के लिए सुगमता से सरल सुरुचि पूर्ण साहित्य की कमी है।

विशालकाय ग्रन्थों का अध्ययन परीक्षाओं तक अथवा कुछ सीमित लोगों तक रह गया है। दौड़-धूपमय वीसवी शताब्दी मे सरल साहित्य, जो जीवन को सही दृष्टि प्रदान कर सके उस प्रकार के साहित्य की आवश्यकता है। मुझे आशा है कि महेन्द्र मुनिजी के प्रवचनों का संकलन अंतर्दृष्टि के रूप मे स्व० श्रीयुत् गजेन्द्रसिह जी भण्डारी की पावन स्मृति सरल साहित्य की कमी को कम करेगा। और जीवन-निर्माण में महत्वपूर्ण योग देगा।

—साध्वी सुमतिकुँअर
राजगीरि

●

संदेश

स्वर्गीय श्रीयुत् गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी की स्मृति में श्री महेन्द्रमुनिजी 'कमल के महत्त्वपूर्ण प्रवचन—"अन्तर्दृष्टि" के माध्यम से उनकी लोक-कल्याणी वाग्धारा का प्रस्तुतीकरण "सत्यं, शिवं, सुन्दरम्" के रूप में जीवनोपयोगी उपलब्धि होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

—मुनि शान्तिस्वरूप
मेरठ

●

डॉ० वशिष्ठनारायण सिन्हा
दर्शन विभाग
काशी विद्यापीठ
वाराणसी-२

यह जानकर अति प्रसन्नता हुई कि पूज्य मुनि श्री महेन्द्रकुमार जी "कमल" के प्रेरणास्रोत प्रवचनों का प्रकाशन "अन्तर्दृष्टि" के रूप में स्वर्गीय श्री गजेन्द्रसिंह जी साहब भंडारी की पुण्य-स्मृति मे होने जा रहा है। इससे धर्म-दर्शन साहित्य की समृद्धि होगी। इस कार्य के सफल समापन के लिए मेरी सभी शुभकामनाएँ आपके साथ हैं।

●

श्रद्धांजलियाँ

इन्दौर के रत्न

थे सचमुच इन्दौर के वे सच्चे शृंगार
श्रीयुत बंधु गजेन्द्र जी, त्याग चुके संसार
त्याग चुके संसार, धर्म में जीवन वीता,
सब कुछ होते हुए, धर्म विन जीवन रीता,
शुभ कर्मो से ही तो सिद्धी मिला करती है,
यश जीवित रहता, केवल काया मरती है,
कहे 'कमल' मानव जीवन का कर्म यही है
वह क्या जीवन है, जिसमें सत्कर्म नहीं है ॥

× × ×

मिला जिन्हें सम्पन्न कुल, अन्तरदृष्टि प्रवुद्ध
युवक हृदय गजेन्द्र थे, उनका मन था शुद्ध
उनका मन था शुद्ध, धन्य मानवता-सेवी
विदुषी भुवनेश्वरी धर्मपत्नि है देवी
पुत्र त्रय जसवीरजी, जम्बू और सतीश
धर्मनिष्ठ श्री सुगनमलजी है उनके ईश,
कहे 'कमल' इन्दौर आपका ऋणी रहेगा
'सतकर्मी की जय हो,' जग यह सदा कहेगा ॥

—मुनि महेन्द्र कुमार 'कमल'

●

ओ भुवनेश्वरी के ईश्वर !

समृद्धि के आंगन के आलोक !
तुम्हें क्या सूझी थी ?
तुम्हीं बताओ किस अपराध में
ज्योत तुम्हारी बुझी थी ॥१॥

तुम, प्रिय पुत्र, पत्नि का जीवन
अतुल, अधुरा, छोड़ गए।
भरे-पूरे परिवार से नाता।
बिन बतलाए तोड़ गए ॥२॥

गए जहाँ हो, वहीं सुखी हो
यही भावना अंतर की।
आत्मा उन्नत होती रहे बस
भुवनेश्वरी के ईश्वर की ॥३॥

—साध्वी प्रीति सुधा

---

(१)
निकल रहे हैं आपके
भाषण विविध प्रकार
'मुनि महेन्द्रजी' कीजिये
साधुवाद स्वीकार।

(२)
'चन्दन' की यह कामना
बनकर के आदित्य
निश-दिन रचते जाईये
नया - नया साहित्य

(३)
श्रीयुत गजेन्द्रसिंह जी
भंडारी की याद।
इस पुस्तक से पायेंगे
पाठक जन साल्हाद।

दिव्य ज्योति को बुझा गया है असमय में ही काल-कराल

□ रमेश जोशी

अश्रुधार वहती नयनों से, सुन परिजन का करुण विलाप
यह निश्चित है असमय में ही, विधि से छले गये हैं आप
मन-मानस में खिले हुए हा ! कुसुमित-कमल सरीखे फूल
किसका वस चलता है जग में जव विधि हो जाता प्रतिकूल
धकधक करती हुई चिता पर क्षण-क्षण नर्तन करता काल
कौन नियति को जीत सका है, हे नश्वर जग के प्रतिपाल !
दिव्य ज्योति को····

झुके नही जो रुके नही जो कभी न डिग पाया विश्वास
प्रगति-पंथ का अनुयायी था जिनका एक एक उच्छ्‌वास
करुणा द्रवित हुई नयनों में, तेज पुन्ज वे थे साकार
था सर्वस्व समर्पित जीवन, सवके लिए झलकता प्यार
मुक्तिदूत बन कर आये थे जिनका रहा समुन्नत भाल
दिव्यालोक दिखा कर जग को विध्वंसित करता भूचाल
दिव्य ज्योति को····

पतितों की पतवार संभाली, किया दलित-जन का उत्थान
समता के थे प्रबल समर्थक, रखते मानवता का ध्यान
विश्व-भ्रमण कर प्राप्त किया जो ज्ञान, किया उसका उपयोग
मिला जिन्हें देवत्व, न उनको लुभा सके हैं केवल भोग
सुर दुर्लभ इस नर जीवन में जीता है नर कितने साल ?
अमृत पिला कर इस जीवन मे विष क्यों घोला करता व्याल ?
दिव्य ज्योति को····

जव तक सूर्यचन्द्र है जग में तव तक अमर तुम्हारा नाम
कल की आशा किये विना ही सतत किये कर्म निष्काम
क्रूर-विधाता तोड़ चुका है "नन्दनवन" का कोमल फूल
क्षमा कीजिए हमको स्वामिन् ! हमसे यहाँ हुई जो भूल
श्रद्धावनत-समर्पित करते हैं श्रद्धान्जलि का यह थाल
ग्रहण कीजिए, यह नश्वर तन हम जैसों का है जंजाल
दिव्य ज्योति को····

ए मौत ! बुरा हो तेरा

□ मोतीलाल सुराणा

साक्षी है इतिहास
हजारों-करोडों वर्षो की उम्रवाली
बूढी मौत को
आज भी
कम उमर के लाडलों को
आदत है पहले ले जाने की
इतराते थे हम जिन गजेन्द्रसिंहजी पर
कुछ कर गुजरने की साध थी जिनके मन मे
बहुत कुछ आशाएँ थीं जिनसे हमें
मौत के बर्फीले हाथों ने
दबोच लिया उन्हें
बेबस थे सब
देखते रह गए हम टुकुर-टुकुर
सुबह के बाद दोपहर
और दोपहर के बाद सन्ध्या
पर प्रकृति का इस बार
बदल गया नियम
सबेरे के बाद
हो गई शाम,
आकाश की ऊँचाई को
छूने वाली वह इमारत
ढह गई
एक ही क्षण में
हम सब मौन है
क्या कहें इस समय
एक ही आवाज निकलती है मुँह से
ए मौत ! बुरा हो तेरा !

जीवन सचमुच है नियति का दास

□ पद्म शास्त्री, मांडलगढ़

काल के हैं सभी क्रूर विधान
कर स्वयं वह जीव का निर्माण।
मनुज घट में डाल करके स्नेह
स्वयं हर लेता सभी के प्राण ॥१॥

श्रेष्ठिवर थे धन्य सिंह-गजेन्द्र
मानवी-सद्वृत्तियों के भक्त।
क्रान्तदर्शी, कर्मयोगी - वीर
भोग पाकर भी न थे आसक्त ॥२॥

स्नेह से परिपूर्ण उनका चित्त
दीन जन पर द्रवित होता शान्त।
लोचनों से बरसता पीयूष
चन्द्रमा की कौमुदी सा कान्त ॥३॥

किया करते थे अहर्निश
स्वयं जीवन भर रहे गतिमान।
तीक्ष्ण प्रतिभा के धनी थे, सत्य
श्रेष्ठिवर का बहुमुखी था ज्ञान ॥४॥

सूर्य सम था प्रखर जिनका तेज
विघ्न उनसे भागते थे दूर।
खौलता ही रहा उनका रक्त
स्वयं सचमुच नवयुवक थे शूर ॥५॥

दिग्दिगन्तों तक लगी थी दृष्टि
सिन्धु से उनमें भरे गुणरत्न।
नीतिवेत्ता, सजग और निर्भीक
गुण-ग्रहण के कर रहे थे यत्न ॥६॥

योग्य उनके हैं सभी सत्पुत्र
वधू-भुवनेश्वरी गुण की खान।
जनक भी तो वृद्ध है सन्तप्त
रख रही है सभी का वे ध्यान ॥७॥

रह गई स्मृति शेष केवल आज
चित्रमय उसके सभी है कार्य।
गये क्यों वे शीघ्र स्वर्ग सिधार
हो गया था उन्हें क्या अनिवार्य ? ॥८॥

मिली होगी काल को अब तृप्ति
हुआ होगा क्रोध उसका शान्त।
परिजनों के क्यों किये हा हन्त !
अश्रुओं से सिक्त लोचन प्रान्त ॥९॥

मेट सकता कौन विधि का लेख
हन्त ! शोकाकुल हुआ परिवार।
मिले उनकी आत्मा को शान्ति
सत्य ही यह विश्व है निःसार ॥१०॥
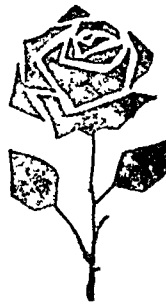
लेखनी की नोंक से

गुदगुदाती स्नेहिल यादें

CEREAL TECHNOLOGISTS
1435, Clay Street 0 No. Kansas City Mo.
64116, P. O Box 7498
September 3, 1976

DOTY
LABORATORIES
INCORPORATED
Telephone 816-471-8580
James M. Doty—Director

Mr. T. N. Parthasarathy
Flour & Food Ltd.,
27 M. G. Road,
INDORE—452001 M. P. India

Dear Sir,

It is a pleasure to express my appreciation for having had the opportunity of an all too brief acquaintance with the sterling character of Shri G. S. Bhandari.

I spent time with him in India and also here in the United States. His innovative thinking in all areas of business was both stimulating and refreshing. His hospitality was so sincere that to be with him was always a most complete joy.

Mrs. Doty and I attended a dinner party in his beautiful home in Indore. This was an experience we will never forget. It was truly delightful.

I also had the pleasure of driving him from Kansas State University to Arkansas City, Kansas. Although the drive was of several hours, it seemed only a few minutes because of his new and original concepts of ways cereal grains might be processed more advantageously.

It was a privilege just to have known Shri G. S. Bhandari.

Yours truly,
DOTY LABORATORIES, INC.,
Sd. J. M. Doty
(James M. Doty)

DIXIE-PORTLAND FLOUR MILLS, INC.

P. O. Box 3423, Newphis, Tennessee 38103
Phone : Area Code 901-525-7382

Mr. T. N. Parthasarathy, September 1, 1976
Planning & Development Officer,
Flour & Food, Inc.
27, M. G Road,
INDORE 452001 M. P. INDIA

Dear Mr. Parthasarathy,

The President of our company, Mr. John T. Stout, has referred to me for reply your letter of 20th August.

When the late Shri G. S. Bhandari visited our office, we were very much impressed with his warm personality and human insight.

Besides visiting our office, he also visited two of our mills to observe first hand our experiments with air classification used in the extraction of wheat protein.

His idea was to install a similar process in his milling operations with the object of using this protein to obtain a higher Protein Flour.

Moreover, he also envisioned the packaging and marketing of this protein as a dietary supplement.

Even though Shri G. S. Bhandari's visit in this country was rather short, he made many friends and left a memorable impression everywhere he went.

We were, of course, shocked by his sudden death, and are sure his loss has been deeply felt by his many friends and relatives.

Sincerely Yours,
DIXIE PORTLAND FLOUR MILLS, INC.
Sd. Alfred A. Leon
Alfred A. Leon
Export Manager

FLOUR MILLING
Capacity 30000 Cwt.

GRAIN STORAGE
4—500.000—Bushels

S. S. GADRE. B.A., LL.B.
INDORE

For the Memories of Late Sri G. S. Bhandari

I have had the fortune to serve under the Late Shriman G. S. Bhandari, for about 2 years and a half.

During this period, there were various occasions to see the various aspects of his nobleness, insight into the working of the Office and frankness.

He had the knack of taking work from persons by his sweet tongue and he judged himself the quantum of work with his subordinates. As an example, I may state that on a particular day, he desired about 100 letters to be issued with samples of products to the parties and he told me at about 2 p. m. to do it. I expressed my inability to do it in such a short time, when he said that he would assist me in the work and he actually sat infront of me and I had only to fill the Despatch Register and note the letters. He himself filled up the letters in the envelops with the samples and gave to the peon to paste them and affix stamps on them.

He was not rigid in seeing that his staff was there through out the Office hours. He was sympathetic to them. He had instructed me to inform the Secretary if I wanted to go out for a short time.

When I had joined the duty here he had told me that as I was then recently retired from Government Service as a Gazetted Officer the job here would not suit me as he had experience in the past of such people leaving the Job in two months.

It was also his speciality to judge every one's ability and integrity within a short time. On one occasion, I could not attend the Office in time, as the train by which I was coming to Indore, was late. When I was not here in time, he enquired from Mr. Kutumbale, Stenographer, whether any intimation had been received from me and when he replied in the negative, Shriman Bhandari Saheb immediately observed that there must have been some reason for my delay in attending the Office and that had I wanted to avail of leave the application whould have been received in time. I attended Office at 12 noon and in [illegible] to him about the delay but he merely read the slip [illegible] yed it.

One more thing a [illegible] as that he used to go everyone's table wh[illegible] ne, and watch the p[illegible] working and also se[illegible] etc.

Whenever, he we[illegible] Signature pad, wh[illegible] to be sent to him d[illegible] at insight in find[illegible] mistakes and when[illegible] stakes he took t[illegible] concerned to task.

Whenever, he had to sit in Office after Office hours he immediately informed all the Staff to leave the Office at the appointed hour. This is a clear proof of his noble heart.

In order to have a check on the Factory Staff, he used to visit factory at any hour of the day.

Another example of his special knack of getting work done by sweet tongue. It so happened one day, that the Stenographer was either not present or had left the Office, and he had some urgent work of typing in the evening, it was about 6 O'clock in the evening and he was standing in verandah, where he called me and said that could I type out a small letter as it was of an urgent type ? He could have as well ordered me to do the same, but he realised that it was not my regular work and so he spoke in that fashion.

In important matters, he used to dictate letters immediately to the Stenographer, even if they were to be issued by the Secretary, as this quickened the pace of disposal. He used to have clear ideas of every problem and so could dictate swiftly.

When I was appointed, he had told me that I was to work as I/c of despatch and it was my duty to see that no letter passed through me with any mistake. Once a foreign letter was to be despatched and I thought that there was some mistake in it. He was then leaving for the factory and I went to him and pointed out the mistake. He agreed to my viewpoint but observed that it should go as it was for the simple reason that Americans may not be able to detect it. This shows his broad mindedness in accepting a lacuna in his own dictation. Such type of nobleness is hardly to be found in the Directors of Companies. Ordinarily, such behaviour of the subordinate would have been taken ill by others.

I was I/c of noting the leave to the Staff. In respect of peons, his having realisation that they have had to work overtime and were ill-paid, he had given special instructions that before noting any peon's leave, his instructions should be obtained in the matter and if he found that on that account any peon was likely to put to loss, that leave should not be counted.

Before concluding, I would like to mention that he also respected religion of his subordinates. I was contemplating to observe a weekly fast for four months and naturally needed some special timings on those days and he was kind enough to readily grant the facility. Furthermore, on completion of the fast, I brought the 'PRASAD' for him and he gladly accepted it with thanks. This proves that he respected his subordinates' religious sentiments and feelings.

Sd. S. S. Gadre
15/10/76

N. D. AGARWAL
1005 Sector 8
Chandigarh

My acquaintance with the Late Shri G. S. Bhandari dates back to the late fifties when as an Ariticle of R. D. Joshi & Company, Chartered Accountants, Indore. I was deputed for auditing Bhandari Group of Companies/concerns. I had a very few occasions to come in contact with the Late Shri Bhandari as my audit work involved my association mostly with the people in the Accounts Department. But I admire the acute sense of memory which the Late Shri Bhandari possessed and the great humane attitude he played towards the people even if he did not know them very closely. I give here an instance.

Sometime, during the summer of the year 1970, the Late Shri Bhandari was enjoying the pleasure trip to Kulu on his car with his family. As the bad luck had it, his car gave way in Kulu putting him in fix as he could not get the parts required to put the car again on wheels. Finding no other alternative, he travelled as a commoner from Kulu to Chandigarh by bus and reached the Premier Motor Garage to seek their help for putting their standard car in Kulu in order. Fortunately, I also happened to be present there with the problems of my own car. Surprisingly the Late Shri Bhandari caught my identity at a glance and we were soon lost in conversation reminiscent of my day in his company as an auditor. He enquired of my and my family's welfares and all about the time I had spent since then. Thrilled as I was, I invited him and his family members to my residence and his response was spontaneous and heartening. It was a very happy event for me and my family to serve the Late Shri Bhandari and his family members on that day. His unassuming personality and simplicity of thoughts won the hearts of all of us and when they parted on a taxi, arranged by me for his onward journey to Dehradun, it was a time mixed with feelings of joy as well as sadness for us.

—N. D. Agarwal

S. C. GONDAL, M. COM.

I was at that time a student of M. Com. (Final). One evening I saw an advertisement for a post of Stenographer in M/s Industrial Traders. Next morning I went to that office and met Shri G. S. Bhandari. He was ready to employ me and offerred a salary of Rs. 200/- p.m., with permission to continue my studies. The first pleasant surprise was that when I signed the salary register at the month end, it showed Rs. 225/- against my name. Thinking that it was through oversight, I brouht this to the notice of the Accountant, who told me that 'Bhaiya Saheb' (Shri GSB was called like that) has been pleased with my work and has ordered that I should be paid at Rs. 225/- p.m. This incident had a great psychological impact on me and thereafter, I never felt as though I was serving in a private concern.

Shri GSB's behaviour with the younger staff reminded me of the behaviour of elders in any family. Gradually he had developed so much of confidence in me that besides typing and correspondence work, he entrusted me with cash handling and confidential matters.

He had great respect for his elders Once a team of members of Cow & Gate (England) came to Indore. They were lodged in the Nandanwan Kothi itself. Bhaiya Saheb desired that I should come to the Kothi with typewriter etc., to take notes After the morning session of discussions was over, he was seen keeping things in order and removing rough papers etc.

He said it was time for Shriman Suganmalji Bhaiya Saheb to come and every thing should be neat and tidy before his arrival.

He had very abmitious industrial plans. Many a times I had the occasion to travel with him in car to Bhopal. Once he had an appointment with the then Chief Minister Shri D. P. Mishra in connection with submission of proposals for the Milk Products Factory at Indore. I remember how thoroughly he was busy reading books and magazines to acquaint himself with every detail of the industry. Not only that he visited several such factories to acquire basic know-ge about them and then only decided to establish such

a factory and prepared proposals for submission to the Chief Minister.

Similarly, once I had the opportunity to travel to Delhi, where Shri GSB had already reached by plane to settle terms of collaboration with a British firm. Shri GSB was so cordial and helping that one afternoon he handed over the key of his suite in the Ashoka Hotel to me saying that I may relax till they come back from the Cricket Test match. He never treated his staff members as subordinates.

When I was selected for a job in the Indore University, I approached Bhaiya Saheb with a little hesitation to give him this news. To my utter surprise, I noted that he was not only happy to know this, but encouraged me and said 'I will not come in your way of better prospects; this is a good opportunity and you should not hesitate to take up the job.' He further said 'If you have any problem there, you are welcome to join us again.' Words are insufficient to express my sense of regards for him.

Once when we met in a marriage reception party, looking to my tie, which was very much similar in colour and print with the one he had put on, he remarked, "we are the two young looking persons with go-go ties." This was only a few months before his sad demise and who knew then that the Almighty had already counted his days.

Jayendra K. Majumdar
B.A., LL.B. (Advocate)

K 220 Adinath Co-op.
Housing Society Ltd.
Poona-Satara Road,
Poona 411009

Dated 14/10/76

Gajendra Singh—Friendship Personified

Whenever I make efforts to bring together the happy reminiscences of the wonderful hours, days and years spent in the company of my best friend late Shri Gajendra Singhji, I always have a feeling that I am talking to him, listending to him most polite and courteous throught-provoking talk. His ever smiling face, even after lapse of half a decade, is visibly moving before my eyes making me experience truth perception and bringing within me the awareness of his revealing nature. He was not only excellent as a friend, but he was ever willing being to give patient hearing to everyone who approached with their problems. It is always a matter of pride to have had a friend like him and I cannot but resist my temptation to say that,

> "Thought, Friendship and World together rise and together set.
> Still by Thought and Friendship the World is lit.
> In existence Real, Thought, Friendship and World
> are formed and lost."

We were very close to each other during the period when I was posted as Manager of Bank of India, Indore and I am yet to come across a personality who is very much humane, polite, courteous, humble and considerate. He was the life blood of Bank's activity at Indore and I can never forget the assistance received from him for developing the Bank's business He was a member of Bank's Local Committee at Indore and his advise, services and recommendations enabled me to make the institution most popular one in the State of Madhya Pradesh. I succeeded because of him and the entire credit for any good work done is his.

He was above the dangers of conflicts of greed for wealth and power and he lead a pure, spiritual life so that he could cope up with the innumerable problems maturely. He was a
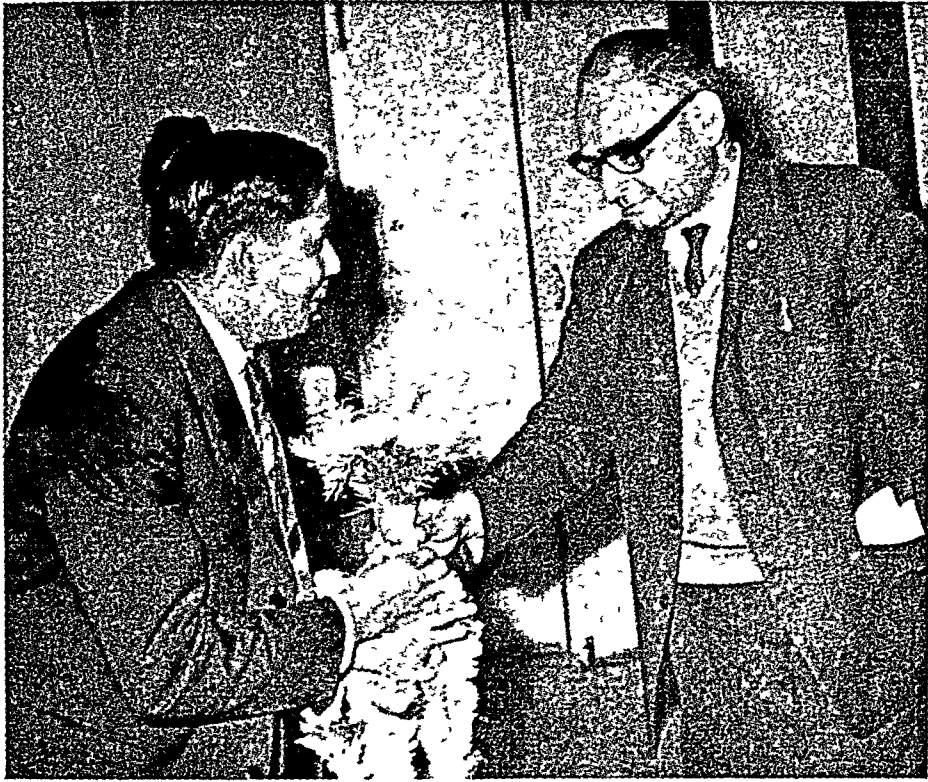
श्री मजूमदार, चीफ एजेंट बैंक ऑफ इण्डिया इन्दौर, के साथ श्री गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी कमेटी मेम्बरशिप मे रिटायर्ड होते समय विदाई समारोह पर गुलदस्ता भेंट कर रहे हैं।
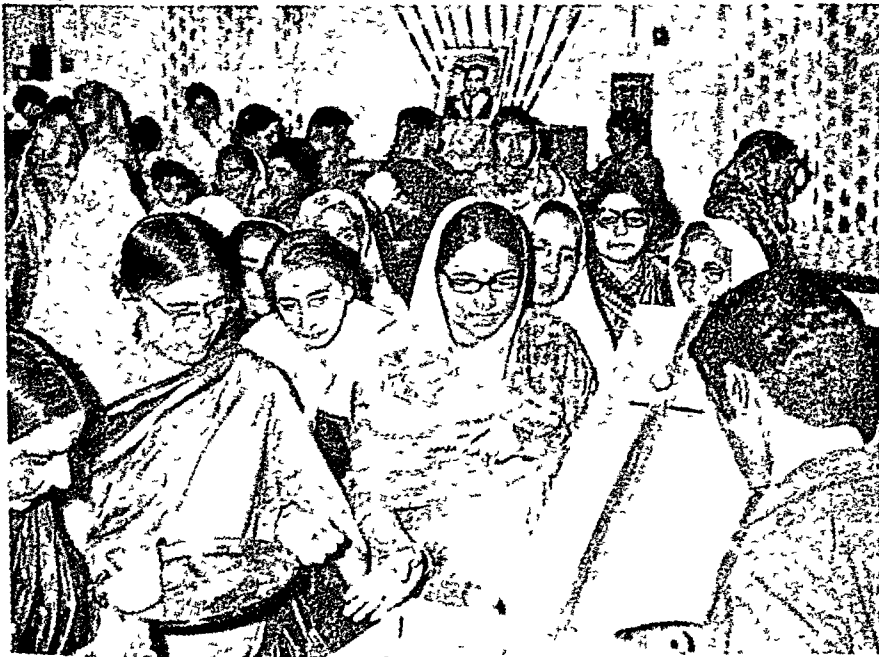
भारतीय ग्रामीण महिला सघ के बेकरी यूनिट के प्रेरणा पुज श्री भण्डारी साहब थे जिनकी प्रेरणा मे इन्दौर मे यूनिट का प्रारम्भ हुआ। बेकरी यूनिट के उद्‌घाटन के समय का चित्र।

दाएं से बाएं—श्रीमती कृष्णा बहन अग्रवाल, श्रीमती सरोजनी बहन वरदप्पम् [अध्यक्षा सोशियल वेल्फेयर बोर्ड, नई दिल्ली], सुश्री दोमाथ बहन इलाविया, श्रीमती भुवन भन्डारी, श्रीमती शकुन्तला पाहुआ, अतिथि श्रीमती भुवन भन्डारी ब्रेड कटिंग मशीन के सम्बन्ध ... ा

उद्योग और राजनीति में मधुर समन्वय :-

आदरणीय श्री भगवतराव मण्डलोई (तत्कालीन मुख्यमन्त्री म०प्र०) को दिए गए भोज के अवसर पर लिया गया चित्र। श्री गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी आदरणीय मण्डलोई जी तथा अन्य उद्योगपति एवं राज नेता।

फ्लोअर एण्ड फूड लिमिटेड स्टाफ के साथ

एम. के सागराजका, (हेड मीलर), श्रीमान गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी, (मेनेजिंग डायरेक्टर), श्री टी. एन. पार्थसाथी, (फैक्ट्री मेनेजर), श्री जार्ज पोल (प्रमुख तकनीशियन पोलेण्ड)

मिसेस पोल एवं श्रीमती भवन भण्डारी मिसेस पोल को विदाई देते समय।

true seeker who inwardly felt the call of Truth. He discovered that when the true wisdom of Reality is attained, the veil of ignorance will disappear and he will be establishing for others the right way of living amidst chaos and confusion. I have never seen him getting upset over any affair, whether it is trivial or alarmingly harmful.

My memory lane is thickly over-crowded with the thoughts of moments spent in his company; but, the pen is faltering at every word and my heart is bleeding just for one thought creeping into the mind that 'I have lost my best friend and I shall never meet him again' In him, I had a friend who would have been a polestart to meand a lighthouse to many. But, the fateful realities of life, like a dome of many splendoured glasses has stained the radiance of eternity by prowling upon his physical existence and bringing untimely premature death to him.

I shall always miss him and will feel the void created by his death and this is a gap which will ever remain unfilled. I shall never again have a friend who was "GUNATIT" and I pay my humble tributes to late Shri Gajendra Singhji by quoting a verse from Shrimad Bhagwat *Gita* :

समदु:खसुख: स्वस्थ: समलोष्टाश्मकांचन: ।
तुल्य प्रियाप्रियो धीरस्तुल्य निन्दात्मसंस्तुति: ।।
मानापमानयोस्तुल्य-स्तुल्यौ मित्रारिपक्षयो: ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीत: स उच्यते ।।

—अध्याय १४, श्लोक २४-२५

Mr. M.K. Panduranga Setty

Mr. Bhandari had a pleasing and charming personality. He was always eager to make friends and learn about the happenings in the other part of the country. He was always interested in starting new industries and new enterprises. He was a most dynamic person.

His interest in the Flour Milling industry was so great and was very keen to employ the best of personnel to produce quality products. He was also very much interested in Research and Development. Many a times, he expressed his desire to associate himself with the Research and Development activities of the flour milling industry.

Sd/M. K. Panduranga Setty

'Memoirs' of late Shri G. S. Bhandari

From

Mr. P. S. Kalani

My first close contact with Shri Gajendra Singh Bhandari was around 1962, when we discussed regarding the formation of M. P. State Board of The All India Manufacturers' Organization and he requested me to become the Hon. Secretary of the State Board. He was the founder President of The M. P. State Board of All India Manufacturers' Organization, which was inaugurated on 31-3-1962. From then on, I was in close contact with him in connection with the organizational matters, which developed into a personal friendship

It was because of his dynamic personality, persuasive power, genuine interest in the Industrial development of the State that in short period, M. P. State Board of The All India Manufacturers' Organization came to be one of the leading Organizations, representing the interest of the Industry. However in spite of all the persuasions from his friends and admirers, he stepped down from the Office of the President of State Board of All India Manufacturers' Organization after one year.

He had a charming personality and the most polite way of expression, even if, he disagreed on certain matter. He had great persuasive power to involve people into any project and to get the best out of them.

He had a wide circle of friends, admirers, which includes persons from large and small industry, business, profession, bankers and advocates

MADAN RAJ SINGHVI
Advocate
Pitaliyon Ka Rasta
Johri Bazar,
JAIPUR-3

On Sixth Death Anniversary of Shri G. S. Bhandari my heart is sad with the reminisciences of the personality who was endowed with unique quality of Head and Heart. The cruel hand of Death snatched him from amongst us when he was in the prime of his youth and on height of popularity amongst his friends, admirers, followers, relatives and collegues around him. His administrative capacity for Industrial & Technological Development with Congenial company and pleasent personality will ever be remembered with vivid Memories. His association with the Bhandari Mills and Flour and Food Ltd., Indore has left an indelible mark of his capabilities which he could not show in full due to untimely death.

His absence will be felt very much at this time when the Mother India is in great need of progressive Industrialists for the Industrialisation of India.

—M. R. Singhvi
Advocate

☆

A Study of Shri Gajendra Singhji's many-sided personality

By—Dr. H. V. Mehta

Many times you know someone for years and that remains only as an acquaintance or at most a formal friendship; whereas with someone else you may just meet that person for a few moments and something clicks your mind immediately absorbs the image of that person and you have formed an instant association that is valid for a life time.

With Shri Gajendrasinghji it was love at first sight for me. We met at a party at the house of a common friend and I was immediately attracted to his magnetic personality. Since the day, it had been a continuous saga of deep friendship and emotional attachment.

Shri Gajendrasinghji has been a man of great vision and foresight full of dynamism and enthusiasm. But the greatest was his feeling of humanism which made him so much loved and respected by all those in whose contact he came. He left an indeliable impression on everyone as a thorough gentleman always ready to come forward to help any deserving cause. This has been my personal experience. Whenever I approached him and requested him to help a good cause, without the slightest hesitation and greatest expediency he extended all the help that he could master. He lived an ideal life which can be aptly described in the words of Swami Vevekanand :

"My ideal indeed can be put into a few words and that is to preach into mankind their divinity and how to make it manifest in every movement of Life."

In every movement in the life of Shri Gajendrasingji, goodness and divinity were fully manifest.

Although born with a silver-spoon in his mouth, highly educated abroad, and accepted as a bright star in the industrial firmament of Madhya Pradesh, Shri Gajendrasinghji was extremely simple and straight forward in nature and easily approachable to all. He firmly believed that "In character, in manners, in style, in all things, the supreme execellence is simplicity."

I came to Indore in early 1965. We were outsiders to this place. When in 1969, time came to decide whether to leave Indore for good or live here, it was in no small measure due to Shri Gajendrasinghji that my family members unanimously decided to settle down in Indore. This one fact only reveals the magnetism in his personality to attract everyone to him and retain and maintain that emotional attachment for all time to come which may be full of ups and downs in the life of those who were attached to him.

Being so closely attached to him, my feelings when I first got the news of his most untimely and sorrowful death could be imagined particularly when I was physically separated from him by thousands of miles. My feelings at the time and for all time to come are aptly described by the following lines of the famours English Poet William Wordsworth :

> "To most grievious loss—That thought's return
> Was the worst pang that sorrow ever bore
> Save one, one-only, when I stood forlorn,
> Knowing my heart's best treasure was no more;
> That neither present time, nor years unborn
> Could to my sight that heavenly face restore."

Shri Gajendrasingh Bhandari—as I knew him

By—Shri T. C. Jethmalani
Chairman, M. P. State Board, AIMO, Indore

I came to know Shri Gajendrasinghji Bhandari in 1964 when after leaving Government Service I decided to start my own Industry. At that time Shri Bhandari had already earned for himself a place of great love and admiration in the hearts of the Industrial Community of Indore and Madhya Pradesh. Coming as he was from the illustrious family of Bhandaries of Indore he had not only imbibed in himself all the sweet qualities that go to make a successful businessman but he had developed a much matured head over his young shoulders It was a pleasure and eduction to discuss with him any matters whether they be of business, cultural or social. As an Industrialist he had great foresight and a much advanced outlook which helped in he establishment in Madhya Pradesh of the M. P. State Board of the All India Manufacturers' Organisation. He was our founder Chairman in the year 1962 when the State Board was established. He continued his association with this Organization till he was suddenly removed amongst us in the year 1971. In whatever capacity he worked he applied to the Job wholeheartedly and absolutely unreservedly. His sweet reasonableness combined with sharp intelligence and the capacity to take a overhaul perspective view of things made him a very successful and pleasant Committee man and a natural leader. I had the privilege of associating myself with him a number of times in such discussions and I still cherish the memories of those pleasant times. It is the uncanny way of God which many times defies normal logic that removes such sweet and dynamic personalities from amongst us at such a young age and it has been a great loss to Indore and to Madhya Pradesh How deeply we feel his absence many times when difficult situation face us. His approach to all such situations was so calm and composed that in his presence no problem appeared to be unsurmountable.

The first thought that came to my mind on being elected as the Chairman of the M. P. State Board of AIMO was whether I would be able to do Justice to the post which was once occupied by Shri Bhandari with such distinction. I felt a bit difficult as to whether I was competent to be in line with such a fine man. But what gave me courage was the sweet memory of my association with Shri Bhandari and the education we had received from him. His motto was "Approach every issue boldly with your cards clear. Have an open mind to appreciate the other point of view and a solution to the problem would not be difficult." If we follow this, we would be giving due respects to the cherished memories of Shri G. S. Bhandari.

☆

BRIGADIER KALE SAHEB
19, General Road
MHOW

With a mixed feeling of pleasure and sorrow that I write these few lines in Memory of Late Shri Gajendrasinghji Bhandari of the famous Bhandari House of Indore.

My pleasure is in being asked to write my memories of my association with Shri Gajendrasinghji, and the sorrow consists in the fact that I still to this day have not got over the shock I experienced at the sudden and uncertainly and very untimely death of the very capable Industrialist of Indore.

A young entreprenuer in the line of business which increases our national production, I have a vivid memory of our first meeting with Shri Gajendrasinghji. It was at the Rotary Club of Indore. A few years ago I was asked to give a talk to the Rotary Club at Indore on the defence of India and the Indian cities. I remember after my talk was over Shri Gajendrasinghji was amongst a very few of the audience who remained behind to ask me some very pertinent questions which they told they wanted to ask quietly and separately. He not only asked me those questions but while discussing those questions I got a glimpse of the person that Shri Gajendrasinghji was, he with those excellent manners which he always carried with him came all the way to my Car to see me off.

After this first meeting, during his life time we met about 4 or 5 times and at each time we felt we grew closure to each other. He was extremely genial by his temperament. He had a vision. He was a very practical man who by his ability to run his own industry so very efficiently that he combined the unusual features which we don't come across in the young generation of entrepreneurs

As a result of our meeting, I found him as a citizen not only a noble citizen but a very patriotic one at that. He followed the theme of my talk right through the rest of the lift such we shared by occasional meetings between us and I am very proud to say that even to this day his equally capable 3 of his sons starting with elder Jasbir, Jamboo and Satish who are all growing up in the foot-steps of their capable father and carrying on the torch of his vision of his patriotism and his capability into the industries which they are also running equally efficiently. The reason for our growing association was the common subject of the welfare of the Ex-

serviceman. I, in that lecture had emphasized the need for the awareness of the Indian citizen towards his duty to the soldier of our nation and the need for each citizen to contribute his own mind in looking after the Ex-servicemen. After our first meeting Shri Gajendrasinghji left standing instructions with administrative staff that whenever any vacancy arose in his establishment his administrative staff would make a reference to me if there was a suitable Ex-serviceman in need of such service, the place was always made available to such Ex-servicemen by the industries of the Bhandari. I am again proud to say that what was laid down is still being continued and I am grateful to the house of Bhandaries for this awareness as well as prompt action with which they absorb Ex-servicemen into any of the suitable job growing in their concern.

I found Shri Gajendrasinghji of very even temperament always well meaning, very generous in out-look and forgiving in his behaviour. Even after he saw the fault he refrained from pointing it out but condoning it only after making the person realising that he had made a mistake. This special quality of Gajendrasinghji won him large number of friends, large number of admirers. It was that quality of forgiveness of faults and the generosity with which to look at such fault was the key to his greatness.

The other meetings were equally pleasant. Whenever you met him you always saw a green and a smile of welcome on his face and when you parted with him irrespective of the nature and the discussions he always smiled. He had a large number of friends even before me in this cantonement of Mhow and I found that each one of them had always a good word to say about Shri Gajendrasinghji. I remember amongst the admirers, General Onkarsinghji Kalkat who was then senior most Officer in the Station. In this very connection, I also remember that to carry on welfare of ex-servicemen he had called me and my wife for a dinner at his residence in Nandanvan and who did I find there in the dinner, other young industrialists and entrepreneures in Indore, the commercial capital of M. P. and many acquaintances which I carry today amongst the young generation of entrepreneures were in this dinner invitation at Nandanvan by Gajendrasinghji and he made me talk. Somehow, he steered the conversation in such a manner that those who had issued my talk, he made me emphasized those very points and he thus helped me and my cause in enlarging the awareness and the opportunities for ex-servicemen to be associated as employees in

various industries in Indore. I could never forget the good turn for my causes which Shri Gajendrasinghji arranged.

It is indeed a great loss that we lost him and lost him so very suddenly. When we heard of his sudden passing away, we rushed to his house. I could not possibly bring myself to convince that he had left us. His gracious lady wife Bhuwanji, as she is familiarly called in their family was over-crowded with great and unbearable grief. We could not bear to look at her but time is a great healer. Bhuwanji realising where her responsibility lies, Bhuwanji inspired by the great innate qualities of Gajendrasinghji has unfailingly carried out the duties which destiny has imposed on her and has made the younger generation of Gajendrasinghji, the Trimurty—the Trio of his sons and is today shaping them into the chips of the old stock into the shoes of their late beloved father, and it is indeed a great pleasure to see, Jasbir at this age of his is today well settled in the saddle with the responsibilities which Gajendrasinghji left on his shoulders.

I wish them all great luck and like to finish these few lines with a prayer to God to bless Gajiendrasinghji's soul wherever it may be and to place his family, Bhuwanji and the 2 capable sons. I pray to God that they grow from strength to strength and carry on the great work of Late Shri Gajendrasinghji Bhandari.

☆

RANJIT VITHALDAS

Central India Flour Mills,
BHOPAL.
26th October, 1976

Even though I personally came to know him only in the year 1970 and had the good fortune of his association for hardly a year and half, I have always felt as if I had known Gajendrasinghji for many years. The reason, according to me, of my missing him so much today even though I had known him for such a short time, is that he had unique amiable nature and humane personality, which generated lot of warmth and feeling of sincere friendship amongst people who came in contact with him. To me, he was an embodiment of polite dignity and a person full of sincerity. It was my pleasure to have associated with him and known him and through him the Bhandari family. I always cherish sweet memories of my association with late Gajendrasinghji.

—RANJIT VITHALDAS

R. A. HUNT
Regional Director
Wheat Associate, U. S. A.
903, Far East Shopping Centre Building
Orchard Road, Singapore-9

I agree that your plan to compile a book on the 'Memoirs' regarding the life of the late Shriman G. S. Bhandari is an excellent idea.

I knew Mr. Bhandari well, and appreciated his wonderful qualities regarding both his life and his work.

I first knew him as a flour miller in India where many of the flour millers were simply grinding wheat and producing a product called flour Mr. Bhandari all times strived to the utmost to produce the best quality product he could from the raw materials available. At the time when many millers had dispensed with their own trained but well paid millers Mr. Bhandari retained his expatriate millers to make possible the production of good products.

I visited the flour mill on several occasions, and always found it a model of cleanliness and operating effeciency. I shall never forget one visit I made to Indore with Mr. Jim Doty, the world famous Cereal Chemist. Mr. Bhandari showed us Wheat Germ he had been extracting. Mr. Doty congratulated Mr. Bhandari on the Wheat Germ and stated it was an excellent quality that was being produced by the finest mill in any place in the world.

On that visit, Mr. Bhandari took us to the fabulously beautiful Jain temple in Indore. Its gleaming glass interior, coupled with its religious significance made a wonderful rememberance that shall always remain with us and I am sure with Mr. Doty.

When I got more acquainted with Mr. Bhandari I realised that he was a man of wonderful qualities, including a deep sense of honesty, high moral values and respect for his fellow men regardless of what they might be, or what might have been their background. These qualities alone provided the fondest remembrances of Mr. Bhandari.

When your "Memoir" book is completed, I would really like to have a copy. Mr. Bhandari was my friend, and when I was told of his untimely passing, I felt a deep loss.

Sincerly yours,
Sd/ R. A. Hunt

O

Gajendrasinghji : A true Rotarian & A Perfect Humanitarian

By—Rtn. Dr. Ramesh Agarwal
Past District Governor
R. I. District 306

Late Rtn. Gajendrasinghji was a true Rotarian of this Great humanitarian movement Rotary. He has practised perfectly well in life the principles of Rotary "Service Above Self" and "He profits most who serves Best". I had always found him ready to serve the others without any discrimination. The Rotary "Four Way Test" is a test-stone the "Paras-Patthar" testing on which every Rotarian's action becomes a humanitarian's action. Gajendrasinghji was a Rotarian who was using this "Paras Patthar" as a test-stone in his life. He may miss a Rotary meeting on account of his heavy professional duties, but he was not missing the action on principles of Rotary "Serve the Society alongwith your own profession or vocation." His profession or vocation was a source of service to poors. I wished God would have gifted him with a longer-life so that his personality would have bloomed in perfection and would have been an example for others to follow.

May the noble SOUL REST IN ETERNAL PEACE.

Sd/-Ramesh Agarwal

□

Maj. Gen. O. S. Kalkat
P.V.S.M (Retd.)
Punjab Public Service Com.

No. OSK/DP-8
3 November, 76

I vividly recollect my happy association with Mr. Bhandari during my successive tenures at Mhow particularly my stay as Commandant at the Mhow Military station from August 1968 to May 21. I came in contact with Mr. Bhandari very frequently There was hardly a week during my two and half years stay when we did not meet on some occasion or the other. Most of the meetings were held in connection with noble work for social uplift and betterment of the poor and the weaker section of the Society in which Mr. Bhandari took a leading part.

He was a great organiser and an excellent leader in the field of business administration and management. He was always meticulous and prompt in his dealings. He had great charm & talent. The main characteristic of his work was his keen desire to look after the lower range of society. In the meetings of Rotary, Lions and other Welfare Societies, he made it a point to make sure that the poor and the downtrodden were look-after well. A case in point is his invaluable help to me in organising a Cooperative Society for the Class IV civilians employed in Infantery School Mhow. Nearly about a thousand people were involved and due to his help and encouragement we got the Society going This Society freed these people from the clutches of the money-lenders of Mhow and helped them to get their necessities of life on controlled and reasonable rates.

Apart from all this, he was a leading social figure. He was very popular among all the officers and their families and also civilians I remember vividly the grand time we had together on many social gatherings. He was frank, charming and sincere It is a tragedy that the cruel hand of fate snatched him from our midst at an early age. I can never forget him. How can any one do so Such men are rarely born. He did a lot for society and my constant prayer is that his family should have the strength and courage to carry on the good work and noble ventures which he started.

With warm regards

☆

Nath Raj Singhvi,
B. A., LL. B., Advocate

Phone No. 46
Merta City
(Rajasthan)

I came in contact with Shri Gajendrasinghji Bhandari for a period of about 20 years. Initially we met and worked together in some social functions. I could know his organising capacity even at a very young age Till then I did not know much about his ability in Industrial matters, though I had heard much about it. He had pleasant manners and was calm and quite and would be least disturbed even if one gave an occasion for it. He was so particular about maintaining relations that he came down to Merta to meet us even at his personal inconvenience. On his visit to this place he extracted a promise from me that I should visit his place with members of my family. He was so affectionate that I had to take my family to meet him at Indore

At Indore I had an opportunity to have a look at the Industry which he had started on his own initiative and which was being run very efficiently under his able guidance and supervision. I discussed with him regarding his future plans in developing his works and I became sure that he would make and open some new Vistas in the technology. He had great insight and was original.

This is my experience that persons who are engrossed in big or even ediocre Industry become machine like and lack personal affection and human touch but Mr. Bhandari, it seems was an exception to it. During my stay at Indore he looked to every small convenience of mine as well as of members of my family personally.

It is a true saying that God also loves those to whom people love and they die young. I am sure that if the Almighty had spared a few more years to him he would have shone like a meteor in the Industrial feermament

□

SHANTILAL DHAKAD

Kanchan Vihar
7/1, New Palasia
INDORE-1

"He whom the God Loves Dies Young"

The above saying flashed across many minds when dear Shri Gajendrasinghji suddenly crossed over to his heavenly abode. He was more affactionately known as 'Gajju'.

Possessing an ever smiling face and noble heart, I always foud him, facing problems with deftness and courage. His methodical working with broader vision had always inspired his collegues and friends around him. He nourished an urge to become an enterprising entreprenuer.

Apart from a close relationship he was more nearer to me as a friend. Many a times I had the opportunity to discuss with him on varied subjects and invariably he showed deep knowledge and keen insight about them. He always evinced good interest in social service and particularly expressed glowing desire to promote real good education for children.

The qualities of a great man are generosity in planning, humanity in execution and moderation in success. He almost had all these qualities in him. He believed in the saying of Sir C. V. Raman, "Be ambitious and let there be no limits to your ambition. It is better to live gloriously and die gloriously than live a life of inactivity."

Active and ambitious through-out, as he was, he left us at the peak of his career when he was most needed.

We can now only remember his good deeds and the sweet aroma of his warm friendship and recall the words of Longfellow—

"Lives of great man all remind us,
We can make our lives sublime,
And departing, leave behind us,
Footprints on the sands of time."

☆

Dr. V. K. TONGIA

Rituraj Industries
INDORE

I have been asked to write my memories of my association with Sri Gajendrasinghji. Only I know, by this request how much I was sentimentally perturbed, as to write for a person who was a close friend, philosopher and guide is not so easy as said, and I took quite a few days to prepare for such a venture I will call it a venture, because to select a few memorable events from an association, every day of which is now a memory is not a easy thing. My close association with Shri Gajendrasinghji Bhandari started in 1961 and continued till the last day. I dare not list the various memorable events but would like to record what I achieved and gained by my decade long association with Shri Gajendrasinghji and his family.

I and my family had the privilege of travelling extensively with Shri Gajendrasinghji and his family during this period. I can say that most of my social and pleasure travelling was with Shri Gajendrasinghji and sometime it extended to even for weeks. This gave us an opportunity to understand each other better and better, and I am proud to say that some habits and qualities I picked up from him, I am practising them to my benefit even today.

The most important God-gift and self practiced quality in Shri Gajendrasinghji according to me was his nack to pick up a right person for a right job, at a right time. I have yet to come across a friend who has mastered this ability to perfection. Very often we used to discuss about this part, whether he was to pick and choose a man in business, a friend or an acquaintance and every time we discussed I became wiser. I recall an instance when we had gone to Bombay sometime in 1962 for a meeting of A. I. M. O. We were staying in Shri Gajendrasinghji's flat at 'C' Road. One evening a friend of mine, rather a collegue in Ph.D. called on me. He had just got his Doctorate. We were all talking in evening and my friend went back after about an hour. We were then looking for a person to look after the recently organised M P State Board of A I M. O. of which Shri Gajendrasinghji was the founder President. Even during the above meeting I did not get any idea about what Shri Gajendrasinghji had in his mind but he

could get all the particulars he wanted to make up his mind in a very casual manner. Next morning he talked me if we could take him in M. P. State Board of A.I.M.O. I was overwhelmed with his idea but was doubtful if my friend will accept it. Even after any association with him for 6 years but Shri Gajendrasinghji catagorically said that I should talk him and he will accept. On the next opportunity of meeting with him I talked him, and to my surprise he instantly accepted the offer. His selection at that time was so useful that only we people in A.I.M.O. know, how correct was his decision. The similar instance again occured in 1971 and at that time also Shri Gajendrasinghji was correct. Now having set down to write, I am recollecting many such instances and to incorporate them will become a volume and I am asked to write a not only.

Another quality which I observed in him sometime to my annoyance with him, was his habit to give the credit of work done jointly with him to the other person. We used to think and plan many things together and if I happen to implement those ideas under his guidance, he always used to force the credit on me, and as I said above, sometimes it was quite annoying to me and I used to say him that this is your bad habit of always giving the credit of success to me and if sometimes the idea was not to klick properly then he used to take the blame on himself by saying that I overlooked this aspect which I should not have done. This habit has been so spread by him to Mrs. Gajendrasingh that its conspicuousness can be observed in her way of life also. I could not judge during my long association of 10 years that who inplanted in whom, whether Shri Gajendrasinghji or Bhabhi Saheb this habit, and unfortunately now I will never be able to know. I again recall an instance in this respect. During 1963-67 I was either Hon. Secretary of V. P. of M. P. State Board of A. I. M. O. and did not want to continue to hold any office in 1968 as it was taking lot of time which I could ill afford. He prevailed upon me to continue for a year more as President of the M. P. State Board of A. I. M. O and he offered that he will devote his time for doing the work. I must admit that he meant what he said and he carried it through in word and spirit through not my tenure of that office, not to mention that the credit of the

good work done that year was forced upon me and only I know that the person responsible for that was Shri Gajendrasinghji.

If we place these qualities togeather, we find that the person who will emegre will be really successful businessman, a large hearted friend and a respected loveable guide. Shri Gajendrasinghji personified the above persons by virtue of his God given, inherited, and self perfected qualities I am also observing, though from a distance that Jasbeer, Jambu and Satish are also following the same path, the repute of which was perhaps given to them by their father by inheritance and enlarged by the circumstances created by him during their young days. I am looking ahead for a day when I will see each one of them a step ahead, of their father, which will give me such an innate pleasure which would never be written or expressed.
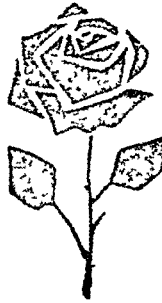
S. N. KOHLI
B.A., LL.B.
ADVOCATE

Phone { 7887
4300
15/1, South Tukoganj
INDORE-1

To write about Gajendrasinghji is not an easy task. It would be obvious to those who had the privilege of knowing him. This is because he was a many splendoured presonality and therefore wouldnot fit into usual kind of classification in which we place different human beings.

I met him for the first time in Bombay through a mutual friend who along with Gajendrasinghji had gone to Bombay in 1962 to arrange the first AIMO Conference in Madhya Pradesh. This meeting lead to a close friendship. During this period we spent together great deal of time which will remain part of my most pleasant memories. I can't forget 24th September, 1971. On that evening I was go to Bombay. Two days earlier Gajendrasinghji had telephoned me. I enquired about his health and was told that he is now absolutely alright. He suggested that since we have not met for quite sometime we must meet. He said that he has resumed going to office. Therefore we fixed up that we will have tea together in his office during tea break of our court two days later on 24th September 1971. In my wildest dreams I could not have imagined that it would be the last talk which I will have with him. On 24th September 71, when I went to his office I was confronted instead of his ever smiling face by a peculiar silence. I knew that there was something wrong and my worst fears were confirmed. Though it is now about five years since then his memory has not been dimmed. Associated with his memory are scores of delightful incidents which form part of my most precious memories.

His achievments at a very young age were outstanding As an industrialist his approach was most progressive. He was always complaining as to why Indore has not been able to reach the industrial height which other cities have reached. With him we lost a very great hope for the further industrialisation of this city.

What else I can mention but say that like me there would be many people who would be missing him and missing him greatly Is it not the greatest thing a person can leave behind? How can—forget therefore that fetal day of 24th September, 71.

Dr. CHIMANLAL NAGRATH

Trustee
Nagrath Charitable Trust
INDORE

Gajendra Bhandari, as I knew him, was a man of various parts, though we had been meeting at private parties and social functions, but our friendship with him really began in January, 69 when he came to Pushpkunj Hospital with his charming wife Bhuwan and other Milan Club Ladies.

From then on we became close family friends and I was charmed with his many faceted personality. He was always alive, vibrant and pulsating with life—giving his full attention to whatever he did whether it was something in his own office or a political discussion or a social function or a family affair.

The parties that he gave were a pleasure to attend as he looked after the comfort and taste of each and every one of his guests personally with meticulous attention to detail, from seating arrangements to the planning of the menu. So also was he a very popular guest with my wife and we always enjoyed asking him over as he made you feel that he enjoyed being with you and relished every dish that was being served—believe me that is a great art indeed.

We often met as a family unit when he would come over with his wife and children to our place or we did the same at his place and I had a chance to note what a close knit, united and loving family they were.

I never heard him even criticise either his wife or any of his boys He always treated them all with love, respect and understanding, which they fully reciprocated. He even studied teen-age fashions carefully and encouraged his boys to dress according to the latest in vogue, even if it seemed crazy to adults. His reasoning was that if boys are allowed to be crazy boys while they are teen-agers they will grow up to be responsible adults and how he was right—for all his boys were good students while their father was alive and are now good business men—the older two are already efficiently handling the Firm, he had started and the youngest is soon to join them.

It seems God almighty needed him more. Such a loving and devoted couple as Bhuwan and Gajendra were separated at such young age and devoted father was removed from his boys when they needed him more. How proud he must be the boys have overnight turned into young men of eminence, such a comfort to their dear mother and grand parents.
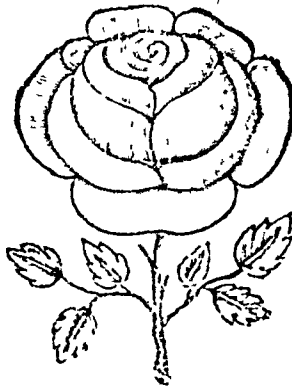
□ **श्री शादीलाल जी जैन** — वरोर हाउस, वम्वई
(भू० पू० शैरिफ वम्वई)
भू० पू० अध्यक्ष भारत जैन महामंडल वम्वई

पूज्य कवि मुनि श्री महेन्द्र कुमार जी "कमल" एक युवा साधक एवं ओजस्वी कवि है। उनकी वाणी में ओज, चिन्तन में गांभीर्य और भाषा-शैली मे अनूठा प्रवाह है। वर्षावास इन्दौर मे उनके द्वारा किये गये प्रवचनो का संकलन निःसन्देह जन-जन के लिए उपयोगी होगा।

स्वर्गीय श्रीयुत गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी मेरे निकट परिचित मित्रो में से एक थे। वे अपने परिवार के लिए तो स्तम्भ थे ही किन्तु मित्रो के लिए भी आदर्श थे। आल इण्डिया मैन्युफैक्चर्स एसोसियेशन मे हम साथ-साथ थे। उनकी पावन-स्मृति को अक्षुण्ण वनाये रखने के लिए यह संकलन सही कार्य है।

मैं अन्तर्दृष्टि के प्रवचनकार पूज्य मुनिश्री 'कमलजी' को साधुवाद देता हूँ और मेरे स्वर्गीय मित्र श्री गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी को श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ।

●

□ **श्रीमान् फकीरचन्द जी सा० मेहता**
इन्दौर (म० प्र०)

भण्डारी परिवार की अनेक आशाओ के जो केन्द्र रहे उनके वारे मे लिखने मे यह कलम रुक-रुक जाती है। जिनका सौम्य व्यक्तित्त्व व हँसमुख चेहरा जव भी याद आता है उनकी स्मृतियाँ ताजी हो जाती हैं। ऐसे श्री गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी का जीवन अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त रहा है। उनके मित्रो का वहुत वड़ा समुदाय था साथ ही वे वड़े आतिथ्य प्रेमी थे। चाहे वड़ा उद्योगपति हो, वेंकर हो, मित्रगण हो या सम्वन्धी वे स्वय खड़े रहकर मेजवानी करते थे।

औद्योगिक क्षेत्र के कई संस्थानो के छोटी उम्र मे ही वे पदाधिकारी रहे। अखिल भारतीय निर्माता संघ की मध्य प्रदेश शाखा की स्थापना मे अग्रणी रहे। भण्डारी मिल्स के डायरेक्टर्स मे वे मेरे साथ रहे। अपनी जिम्मेदारी को वे खूब समझते थे। वे एक अच्छे मित्र और निपुण सलाहकार थे।

इस वर्ष महावीरभवन इन्दौर मे युवा कविरत्न श्री महेन्द्र मुनि जी के प्रवचनो ने जैन समाज को सम्मोहित किया है। उनके कवि हृदय की भाषा को लिपि करने का मुख्य श्रेय श्रीमती भुवन वहन भण्डारी को है। इस प्रकाशन से भावी पीढ़ी को प्रेरक सत्साहित्य प्राप्त हो और उसके साथ श्री गजेन्द्रसिंह जी की स्मृतियाँ जुड़ जावें। यह प्रकाशन देश-विदेश मे उनके मित्रो तक पहुँचे ताकि उनमे जैन आस्थाएँ स्थापित हो। यह मेरी कामना है।

●

संस्मरणों के आइने में

☆ ☆

☆ ☆

[सकलन श्री टी० पार्थसार्थी]

उदार-हृदय

मेरे तेरे की सकुचित भावना के पास जैसे वे कभी गुजरे भी नही थे। एक वार कोई आवश्यक रचनात्मक कार्य सम्पन्न कर मैंने उनसे कहा, साहेव, आपका काम हो गया है ? यह सुनते ही वे तुरन्त वोले आपका काम हो गया है, ऐसा न वोलो। अपितु यो कहो कि हमारा काम हो गया है। भविष्य मे कभी भी तुम, तेरे-मेरे की वाते मत करना। आज भी जव-जव मुझे उनके द्वारा कही गई उक्त वात की स्मृति होती है, तो मन उनके प्रति आदरपूर्वक सोचने लगता है कि वस्तुतः वे कितने उदार हृदय थे।

ठीक ही कहा है, यह मेरा है, यह तेरा है, ऐसी तुच्छ वातें छोटे मन वाले ही किया करते है। उदार हृदय वालो के लिए तो सारा संसार ही कुटुम्व है।

> अय निजः परोवेति, गणना लघुचेतसाम्।
> उदारचरितानाम् तु, वसुधैव कुटुम्वकम्।

देखो युवा शक्ति का कितना दुरुपयोग हो रहा है

विश्व का नव-निर्माण, धर्म साहित्य और कला के नये क्षितिज का उद्घाटन प्रायः युवा शक्ति के हाथो से ही सम्पन्न हुआ है। युवा रक्त ने ही विश्व मे नये कीर्ति-मान स्थापित किये है। आज आवश्यकता है, पुनः युवाशक्ति युगानुकूल नवीन मूल्यो का अंकन करे।

एक वार वे अपनी केविन की खिडकी से वाहर देख रहे थे। तभी स्कूल एवं कालेज के लडके कुछ शरारतें करते हुए, नारे लगाते हुए, उधर से निकले। उन्हें देख कर अत्यन्त पीडा के स्वरों मे उन्होने कहा, देखो, युवा शक्ति का कितना दुरुपयोग हो रहा है। अगर ये अपनी शक्ति का उपयोग सम्यक् रूप से, रचनात्मक पवित्र प्रवृत्तियो के संचालन के निमित्त करे तो, आज देश की तसवीर वदली जा सकती है।

नौजवानों ! यह समय सोने का नहीं है
नौजवानों ! यह समय रोने का नही है।
जमाने की निगाहे तुम्हारे पर लगी हुई है,
क्या काम वह है, जो तुमसे होने का नही है ॥

पितृ-भक्ति

प्रातः काल उठिये रघुनाथा।
मात-पिता गुरु नाम ही माथा ॥

रामायण की इस चौपाई के अनुरूप वे अपने सम्माननीय पूज्य पिता श्रीयुत सुगनमल जी साहव भण्डारी का असीम आस्थापूर्वक सम्मान करते थे। वे अपने माता-पिता द्वारा प्रदत्त किसी भी प्रकार का कोई भी आदेश कभी टालते नही थे। एक वार जव वे विदेश भ्रमण के लिए जा रहे थे, उनकी इच्छा थी कि वे, अपनी धर्म-पत्नि श्रीमती भुवनेश्वरी जी को भी अपने साथ ले जा सके और इस दृष्टि से उन्होंने उनके पासपोर्ट आदि भी वनवा लिए। पर पूज्य पिता श्री की आज्ञा नही मिलने के कारण उन्होने सहर्ष अपनी इच्छाओ को गौण कर विदेश अकेले ही गए। यह वात उनकी पितृ-भक्ति की परम परिचायक है।

विवेक व विनम्रता की जीवंत मूर्ति

एक राजस्थानी कहावत है,

एक जोबन दुजो धन पल्ले।
साहेब करे तो सीधो चल्ले ॥

यौवन प्रायः अन्धा होता है। यौवन की मादकता एवं वैभव का सयोग पाकर कोई विरले ही क्षमा, शांति, विनय आदि सद्गुणों मे स्थित रहते है। पर उन्हें तो अभिमान ने जैसे कभी छूआ भी नही था। मैंने अनेक वार देखा, उनके मन मे न केवल अपने आदरणीय श्रद्धेय पुरुषो एवं साथियो के लिए अपितु उनसे छोटी आयु वालो के प्रति भी अत्यन्त सम्मान एवं विनय की उत्कृष्ट भावना थी। वे प्रायः कहा करते थे कि नम्रता से हमेशा फायदा है। भगवान् महावीर का यह उपयोगी सन्देश उनके जीवन के कण-कण मे रम गया था—विनय जीवन का मूल है।

☐ एम० एस० वरणगावकर
एम० ए०, एल० एल० बी० साहित्यरत्न
सौ० माधवी वरणगावकर
एम० ए० (इन्जीनियरिंग)
एम० ए० (फिजिक्स) बी० एड०

फोन : ३६०१६
६८, नारायनबाग
इन्दौर

यद्यपि स्वर्गीय श्री गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी साहब इस संसार रूपी यज्ञ मे अपने जीवन की समिधा देकर, अपनी अनगिनित जीवनानुभूति और संवेदनाओ के सरमरण समर्पित कर विलीन हो गये किन्तु जब तक संसार-चक्र चल रहा है, लोग उनकी स्मृतियो को आजीवन भुला नही पायेंगे। ऐसे ही कुछ संस्मरण मैं श्रद्धांजली स्वरूप समर्पित कर रहा हूँ।

१० नवम्बर, १६७० का वह शुभ-दिन मैं अपने जीवन मे कभी भी भुला नही पाऊँगा जिस दिन सर्व प्रथम मैं स्वर्गीय सेठ श्रीमान् गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी के समक्ष फायनल इन्टरव्यू के लिए उपस्थित हुआ था। इन्टरव्यू लेने के बजाय, वे सिर्फ इतना ही बोले कि आज से आप कम्पनी की सेवा मे रख लिये जाते है किन्तु मुझे आश्वासन दीजिए कि आप इस कम्पनी की सेवा से कभी भी पृथक् नही होंगे। जाइये, और लगन से काम कीजिए।

उनके इस सम्बोधन मे कितना अनोखापन और आत्मीयता थी, जैसे मानो वे मुझे जन्म-जन्मान्तर से जानते हों।

आज जब भी मेरा मन विचलित हो जाता है तो उनका आत्मीयता-भरा सम्बोधन और तेजोद्दीप्त चेहरा मेरे अन्तर मन मे उठे अविवेकपूर्ण विचारो का सर्वनाश कर, मेरी मन-स्थिति को पुनः पूर्वस्थिति के दायरे की परिधि में सीमित कर देता है और मेरा मस्तिष्क श्रद्धास्वरूप झुक जाता है।

श्री गजेन्द्रसिंह भैयासाहब स्नेह की प्रतिमूर्ति थे। उन दिनो फूड कारपोरेशन आफ इण्डिया से बालाहार बनाने का हमारा नया-नया ही कान्ट्रेक्ट हुआ था और उन्होंने इस कार्य हेतु मुझे अधिकृत कर सारी जिम्मेदारी सौंप दी। भारी मात्रा मे बालाहार इन्ग्रेडियन्ट्स का स्टाक हम जुना मिल (श्री रायबहादुर कन्हैयालाल भंडारी मिल) मे रख रहे थे। एक दिन संध्या ६-७ बजे लगभग जबकि हम कार्य मे अत्यधिक व्यस्त थे, श्री गजेन्द्रसिंह जी भैयासाहब स्वयं कार ड्राईव्ह करते हुए गोडाउन आ पहुँचे। वे लगभग १५-२० मिनिट तक गोडाउन में रहे और प्रत्येक मजदूर के पास जा-जाकर यह समझाईश देते रहे कि किस तरह स्टैक्स लगाये जाय और उनमे कितना डिस्टंस हो। यद्यपि इन्चार्ज होने के नाते वे मुझे इन बातो से अवगत कर निर्देश दे सकते थे किन्तु निःसदेह उनका यह कृत्य इस बात का द्योतक है कि वे एक करोडपति सेठ होते

हुए भी उनके हृदय मे मजदूरों के प्रति अपार स्नेह और पीड़ा थी । सादगी और सरलता से भरा उनका विराट् व्यक्तित्व, निर्मल स्वभाव, हमेशा मुस्कराता तेजोदीप्त चेहरा सबको अपनी तरफ आकृष्ट कर लेता था और इसी कारण जो भी उनके सानिध्य में आया सदैव के लिए उनका होकर रह गया ।

श्री गजेन्द्रसिंह भैयासाहब प्रेरणा के श्रोत थे । उनकी अपने माता-पिता एवं बडो के प्रति अपार श्रद्धा थी । किसी कार्यवश मुझे संध्या के समय कोठी पर बुलाया था । मैं निर्धारित समय पर कोठी जा पहुँचा । भैयासाहब फैक्टरी गये हुए थे । उनके पिताश्री जैनरत्न श्री सुगनमल जी भण्डारी साहब जिन्हे हम आदर से मालिक साहब कह कर सम्बोधित करते है, कुर्सी पर विराजमान थे । उन्होने मुझे बैठने के लिए कहा । मुश्किल से १५-२० मिनिट ही हुए होगे कि श्रीमान् भैयासाहब की कार कोठी मे प्रवेश करती हुई पोर्च में आकर खडी हो गई । कार से उतरते ही वे सीधे मालिक साहब के पास आये और उनके श्रीचरणों में शीश झुकाकर प्रणाम किया । इस कलियुग मे भी पुत्र का पिता के प्रति इतना आदर-भाव देखकर मेरे नेत्रों मे आनन्दाश्रु आ गये । चौकीदार से पूछने पर पता चला कि यह परम्परा तो वर्षो से इस कोठी के बुजुर्गों को विरासत मे मिली है । इस प्रसंग ने मेरे हृदय को झकझोर दिया और उनकी यह प्रेरणा मेरे जीवन मे अब आदर्श बन गई है ।

आज श्री गजेन्द्रसिह जी भैयासाहब शरीर रूप से भले ही हमारे बीच मे नही है किन्तु उनके आदर्श हमे जीवन-पथ पर सदैव उन्नति के उच्च-शिखर पर अग्रसर करते रहेगे ।

हमारी श्रद्धेय बाई साहब श्रीमती भुवनकुमारी जी भण्डारी जो उनकी स्मृति मे परमपूज्य मुनि श्री महेन्द्रकुमार जी "कमल" के प्रवचनो से प्रेरणा लेकर "अन्तर-दृष्टि" नामक पुस्तक का प्रकाशन कर रही है । उनका यह प्रयास मानव-जाति के कल्याण और प्रेरणा का श्रोत बने यही मेरी मंगल कामना है ।

—म० स० वरणगावकर
प्रशासकीय अधिकारी
फ्लोअर एण्ड फूड लि०

★

'गजाधिपति गजेन्द्र'

□ एस० सी० नाहर
मैनेजर, महादेव शाहरा एण्ड सन्स, इन्दौर

स्व० श्री गजेन्द्रसिह जी भण्डारी जोकि देवास फ्लोअर आइल एण्ड डी आइल्ड केक फैक्टरी, देवास के तत्कालीन संचालक थे उनके निर्देशन मे सन् १९६० से चार वर्ष तक कार्य करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था।

वह सौम्य मूर्ति, जो कि आज हमारे वीच शारीरिक रूप से विद्यमान न सही, किन्तु उनकी स्मृतियाँ चिरस्मरणीय वन गयी है। उनका वह कार्यकाल निस्सन्देह अपने आप मे इस वात का साक्षी है कि उनके निर्देशन मे उपरोक्त फैक्टरी का निर्माण-कार्य इस प्रकार द्रुतगति से हुआ कि फैक्टरी न केवल प्रदेश मे किन्तु विदेशो मे भी अपनी अमिट छाप बना गयी। उक्त कारखाने के निर्माण कार्य से लेकर उसके द्वारा निर्मित "डी-आइल्ड केक" देवास केक के नाम से विदेशो को निर्यात की गयी और अपनी विशिष्ट किस्म से विदेश मे अपना उत्कृष्ट स्थान वनाया। उत्पत्ति से लेकर उत्थान तक, आदरणीय स्वर्गीय गजेन्द्र भैयासाहव का उक्त फैक्टरी पर विशेष योगदान रहा। वे तकनीक दृष्टिकोण से कारखाने का निर्माण-कार्य स्वय की देखरेख में कराते रहे। फैक्टरी का निर्माण कार्य पूरा होने पर विशेष रुचि लेते हुए उसके कुशल सचालन के लिए, योग्य एव अनुभवी वैज्ञानिक, इजीनियर एव अन्य पदाधिकारी नियुक्त किये। निस्सन्देह वे मानव-हीरो एवं जवाहरातो के पारखी थे। इसी तारतम्य मे वे श्री मराठे एवं श्री ए० जी० खानोलकर जैसे श्रेष्ठ इजीनियर, प्रोडक्शन मैनेजर का चयन कर सके जिनके सद्प्रयत्नो से उक्त कारखाने ने काफी प्रगति की। देश के कोने-कोने से वे कैमिस्ट, आपरेटर्स एवं अन्य तकनीशीयन को आकर्षित करके ला सके। इसी दौरान उन्होने विदेश भ्रमण भी किया। यहाँ यह लिखना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि भंडारी परिवार मे ऐसी सूझवूझ, दूरदर्शिता, अनुशासनप्रियता गम्भीरता, सौम्यता, सहृदयता एव बहुमुखी प्रतिभा के धनी वनने का सौभाग्य उन्हे ही मिला था।

उपरोक्त फैक्टरी के पश्चात्, उन्होने कई सस्थानो जैसे भण्डारी क्रासफिल्डस प्रा० लि०, फ्लोअर एण्ड फूड लि० इत्यादि सस्थानो का निर्माण कार्य अपने कुशल सचालन मे कराये, वे चले गये, किन्तु अनेक निशानियाँ छोड गये जो उनके इरादो की प्रतीक है एव उत्तरोत्तर प्रगति की ओर अग्रसर है।

दूरदर्शिता एव अनुशासनप्रियता उनके दो प्रमुख दृष्टिकोण थे। वे स्वय अनुशासित रहते सदैव प्रसन्नचित रहते। सघर्ष के क्षणो मे वे कभी विचलित नही हुए। जटिल से जटिल समस्याओ का निराकरण करने मे वे माहिर थे।

कई सामाजिक संस्थाओं, वैंक, व्यापारिक तथा सांस्कृतिक संस्थानो के वे पदाधिकारी रहे एवं उनकी निर्देशन कुशलता से कई संस्थाएँ आज भी उनकी ऋणी है ।

ऐसे व्यक्तित्व के प्रति जितना भी लिखा जाय वह सदैव ही अपूर्ण रहेगा। उनके सानिध्य में चार वर्ष तक जो कुछ मैंने सीखा वह मैं आजीवन नही भुला सकता ।

उनको मेरी श्रद्धाजलि । उनकी सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि उनके द्वारा दर्शाए हुए मार्ग-दर्शन पर चलकर उनके स्वप्नों को साकार कर सकें ।

कार्यपरायण स्व० श्री गजेन्द्रसिंहजी भण्डारी

☐ **श्री मोतीलाल लोढा, इन्दौर**

श्रीमान गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी की छत्र-छाया मे कार्य करने का दो-ढाई वर्ष तक मुझे सौभाग्य मिला । मैंने पाया कि वे आदमी की पहचान वहुत जल्दी कर लेते थे। उन्होने मुझे फ्लोअर एण्ड फूड लिमिटेर्ड मे सेवा करने का आदेश दे दिया जव कि मैं इस कार्य से अनभिज्ञ था । उन्हे अपने कर्मचारियो से सदैव सहानुभूति रहती थी । यदि किसी दिन काम कम हो तो वे कर्मिक को तुरन्त अवकाश दे देते थे । इस सम्वन्ध मे उनका निर्णय ही अन्तिम होता था ।

कार्यो मे व्यस्त रहते हुए भी वे समय-समय पर धार्मिक कार्यक्रमो के लिए भी समय निकाल ही लेते थे। यही कारण था कि उनमे सहृदयता एवं दयालुता थी । वे स्वयं ही सभी कर्मचारियो के कार्य के कार्य का निरीक्षण करते थे । यदि किसी कर्मचारी के पास अधिक कार्य होता तो स्वयं उसमे हाथ वँटाते थे । कार्य के आधार पर वे अपने अधीनस्थ की शीघ्र पदोन्नति कर देते थे तथा फैक्ट्री के कार्य की देखभाल, वे वडी तत्परता एवं परिश्रम से करते थे । यही कारण है कि उनके द्वारा स्थापित उद्योग आज प्रगति पथ पर अग्रसर है ।

☆

सुसंस्कार के प्रणेता स्वर्गीय भैया साहब गजेन्द्रसिंह जी

☐ रमेश जोशी
४२, भरत मार्ग, इन्दौर

होती जिनकी चाह धरा पर, प्रभु भी उन्हें बुलाते हैं,
योग्य तथा युग पुरुष धरा पर, कुछ ही दिन जी पाते हैं।

क्रूर काल की कराल छाया, ओजस्वी व्यक्तित्व को समय से पूर्व ही ग्रस लेती है, यही प्रकृति का सनातन विधान रहा है। ऐसे ही अद्भुत व्यक्तित्व के धनी चिरस्मरणीय स्वर्गीय सेठ गजेन्द्रसिंह जी साहब भण्डारी थे जो असमय ही भण्डारी परिवार एव समस्त स्नेही जनो पर वज्रप्रहार कर उनके होठों की मुस्कान छीन दिव्य-ज्योति मे लीन हो गए। आज वे शारीरिक रूप से हमारे बीच नही रहे, लेकिन उनकी सत्प्रेरणाओं की अमूल्य स्मृतियाँ हमारे बीच जीवित है। उन्होने अपने मित्रों, परिजनो एव सहयोगियो को जो सुसंस्कारों का वरगद सौंपा है उसके लिए हम सब आजीवन उनके ऋणी रहेगे।

१९७० के प्रारम्भ मे जब मैं स्वर्गीय भैयासाहब द्वारा प्रतिपादित एव उनके लघु भ्राता श्रीमान् राजेन्द्रसिंह जी साहेब भण्डारी द्वारा संचालित "भण्डारी क्रास फिल्ड्स प्राइवेट लिमिटेड" मे नियुक्त हो कर राजस्थान क्षेत्र का कार्य देख रहा था। राजस्थान के लम्बे प्रवास के पश्चात् मैं प्रधान कार्यालय इन्दौर आया हुआ था। कार्यालय का समय संध्या ६ बजे समाप्त हो चुका था। सभी कर्मचारी जा चुके थे। सिर्फ मैं एवम् क्रास फिल्ड्स के सचिव महोदय श्री चन्दनसिंह जी भण्डारी, कार्यालयीय कार्य मे व्यस्त थे। प्रवास की थकान एवं दिन-भर की व्यस्तता की वजह से मैं वस्तुतः थक चुका था। तथा सचिव महोदय से अनुरोध कर रहा था कि मैं सवेरे से कार्य मे व्यस्त हूँ और सध्या के ७-३० बज चुके है, अब मैं काफी थक चुका हूँ कार्य बन्द कर देना चाहिए और अवशिष्ट कार्य कल आकर पूर्ण कर लेवेंगे। स्वर्गीय भैया साहब फ्लोअर एण्ड फूड लिमिटेड के कार्यालय से कोठी जाते हुए न जाने कब से हमारा वार्तालाप सुन रहे थे। हमे उनकी उपस्थिति का जरा भी आभास नही था। वे तत्काल मेरे सम्मुख आकर कहने लगे—"मिस्टर जोशी"! देखो भाई, मैं भी तो सुबह ८ बजे से कार्य मे व्यस्त हूँ और अब जब घर जा रहा हूँ, कार्यालय के आवश्यक कागजात मेरे पास है जिनका कि निपटारा मैं घर जाकर करूँगा। काम से मनुष्य को कभी नही घबराना चाहिए।" उनके इस स्नेहपूर्ण सम्बोधन ने मेरे मन-मस्तिक मे नई चेतना जागृत कर दी, तभी वे मेरे समीप रखी मेरी दैनिक रिपोर्ट फाइले उठाकर उसका अवलोकन करने लगे। क्षणिक अवलोकन के पश्चात् उन्होने मेरे कार्य की

प्रशंसा करते हुए कहा, "कठिन परिश्रम ही मनुष्य का श्रेष्ठ गुण है," यह कहकर श्रीमान् भैया साहब कोठी के लिये प्रस्थान कर गये किन्तु मेरा अन्तराल झकझोर उठा, यह स्मरण कर कि ये कितने महान हैं, ये देवता स्वरूप पुरुष, जिन्होंने एक करोडपति सेठ की गरिमा से परे हटकर मुझ जैसे साधारण कर्मचारी को स्नेह समर्पित कर गये, उनकी इस सीख को मैंने एक सत्प्रेरणा के रूप मे अंगीकार कर लिया, जो आज मेरे जीवन का अमूल्य निधि है। यह मेरा अहोभाग्य है कि आज मैं स्वर्गीय भैया साहब द्वारा अकुरित संस्थान फ्लोअर एण्ड फूड मे कार्यरत हूँ तथा उनके पूज्य पिताश्री श्रीमान् सेठ सुगनमलजी साहब भण्डारी एवं स्वर्गीय भैया साहब के सुपुत्रो श्रीमान जसवीरसिंहजी साहब, श्रीमान जम्बूकुमारजी साहब एवं श्रीमान सतीशकुमार जी साहब भण्डारी के निकट सम्पर्क मे हूँ। इन दोनो पीढियो को देखकर मेरे हृदय मे हमेशा यह कचोट खलती है कि स्वर्गीय भैया साहब से और अधिक सम्पर्क हुआ होता तो मुझे जीवन मे और कई अच्छे मार्गदर्शन मिले होते।

"पुत्र ही पिता की प्रतिमूर्ति है," इस कथन के अनुसार स्वर्गीय भैया साहब के तीनो सुपुत्र शालीनता एवं विनय की प्रतिमूर्ति के रूप मे है। इतने बड़े धनाढ्य परिवार मे पलकर, बडे होने के बावजूद, वैभव एवं पद का अहभाव इन्हे छू भी नही पाया है। अपने आश्रित कर्मचारियो के प्रति इनके हृदय मे असीम सहानुभूति है और श्रीमान जसवीरसिंहजी साहब मे तो स्वर्गीय भैया साहब के वे सस्कार ऐसे कूट-कूटकर भरे हुए है कि सम्पर्क मे आने वाले सभी व्यापारी वर्ग एवं कर्मचारीगण नि.सन्देह उन्हे स्वर्गीय भैया साहब की प्रतिमूर्ति के रूप मे पाते हैं।

सद्गुणों के समुद्र स्वर्गीय श्रीमान् गजेन्द्रसिंहजी भैया साहब की धर्मपत्नी आदरणीय भुवनेश्वरी जी के ममतामयी-हृदय रूपी स्नेह सागर की कितनी विशालता है कि वे अनाथालय मे बच्चो को खाना भिजवा देने मात्र से ही सन्तुष्ट नही होती अपितु वहाँ उपस्थित होकर अपने हाथो से खाना परोस कर खिलाती है, ऐसी धर्म-निष्ठ समाज सेविका ने अपने पुत्रो को सुसस्कृत किया है फिर क्यो न इनके सुपुत्र व्यवहार निपुण, विनयी होगे। आदरणीय भुवनेश्वरी आज भी सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों मे अपूर्व योगदान दे रही है।

आज भी मैं कार्यालयीय प्रवास मे जहाँ-जहाँ भी जाता हूँ स्वर्गीय भैया साहब के सम्पर्क मे आये हुए व्यक्तियो के हृदय पटल पर, भैया साहब ने ऐसी अमिट यादे छोड दी हैं कि उनके सद्गुणो की व्याख्या किये वगैर नही रहते, ऐसे कई व्यापारी एव वड़े-वड़े व्यक्ति मुझे मिले हैं, जो स्वर्गीय भैया साहब के व्यवहार एवं विनम्रता की व्याख्या करते-करते गद्गद हो जाते है। यही सोचता हुआ पुनः मैं उनके अप्रतिम व्यक्तित्व के सम्मुख नत-मस्तक हो जाता हूँ। ☆

उदारता एवं गम्भीरता के धनी स्व० श्रीमान कवर श्री गजेन्द्रसिहजी भण्डारी

☐ श्रीमति केसरकुमारी वेद मेहता, बीकानेर

श्रीमान स्वर्गीय गजेन्द्रसिह जी साहव भण्डारी की स्मृति मे आज मुझे यह अभागी लेखनी चलानी पड़ रही है कि मैं किन शब्दो मे उनकी गरिमा का वर्णन करू ँ। उनका सौम्य स्वभाव, हंसमुख चेहरा, प्रतिभाशाली व्यक्तित्व एवं निश्चल व्यवहार कभी नही भुलाया जा सकता है। वे लक्ष्मीपुत्र थे किन्तु उनमे दम्भ नाममात्र को भी न था। वे प्रत्येक व्यक्ति से वड़ी शालीनता से पेश आते थे, चाहे वह अमीर हो या गरीव। सचमुच ऊँच-नीच का भेद उनमे था ही नही। उनके इन्ही गुणों को देखकर उन्हे "स्वर्णजटित हीरा" कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी।

ऐसे महान् व्यक्ति की असामायिक मृत्यु का समाचार सुनते ही मेरे हृदय पर वज्रपात हुआ, अभी उनकी उम्र ही क्या थी ? वे माता-पिता के परम भक्त थे, उनके हृदय पर क्या वीती होगी ? वे उस पुष्प जैसे थे जिसका सौरभ प्रातःकाल की वायु मे मिलकर दिग्दिगन्तो को सुरभित कर देता है। काश ! इस पुष्प का सौरभ हमे सदियो तक मिलता तो कितना अच्छा होता, लेकिन क्रूर काल ने उन्हे असमय मे ही दवोच लिया। वडे-वड़े वाहुवली भी इस कालवली से कव जीत पाये हैं ? विधि के इस अटल विधान को, सभी को स्वीकार करना पड़ा है।

कंवर साहव स्वर्गीय भण्डारी जी सन १९६७ मे वीकानेर पधारे थे। उस समय घर के मायूस वातावरण मे उन्होने रुआसे स्वर मे कहा था, "मासी साहव को वैधव्य के रूप मे देखने की कल्पना मात्र से ही मेरे रोंगटे खड़े हो रहे हैं।" उनके कथन पर शायद यह कुटिल काल मुस्करा रहा था और आज वही वैधव्य मेरी माताजी चि० भुवनेश्वरी को भोगना पड़ रहा है। मनुष्य सोचता कुछ है और होता कुछ है। दूसरो के दुःख मे द्रवित होने वाले भण्डारी साहव के परिवार पर ऐसा क्यो ? नियति के विधान को स्वीकारना ही पड़ता है—यही सोचकर अपने हृदय की करुण-वेदना व्यक्त कर रही हूँ :—

चाह नही है मुझको प्रभुवर ! ऊँचे से अरमानो की।
चाह नही है इस दुनियाँ में भाग्यवान मेहमानो की ॥
चाह नही है सुन्दर सपनों की और न कोई अभिलाषा।
किन्तु चाह है मन में प्रभुवर ! पूरी कर दे अव आशा ॥
धर्मप्राण, निष्काम स्वय थे अतः स्वर्ग उनको देना।
भवसागर में नाव पड़ी है निजकर से प्रभुवर ! खेना
छोड़ गये सुकुमार पुष्प जो, रहे अधूरे जो सपने।
उन पुष्पों को विकसित करना, हृदय लगा लेना अपने ॥ ☆

एक सफल व्यक्तित्व

□ श्री जवाहर लालजी डी नन्दवानी
आर्या कन्फैक्शनरी वर्क्स, इन्दौर

स्वर्गीय श्री गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी साहव मैं० फ्लोअर एण्ड फूड लिमिटेड के संस्थापक एवं एक महान् व्यक्ति थे। वे कामयाव उद्योगपतियों मे से थे। आज फ्लोअर एण्ड फूड लिमिटेड द्वारा निर्मित पदार्थ मध्यप्रदेश की और मिलो के मुकावले मे सर्वोच्च कोटि के माने जाते है। उसका श्रेय निस्सन्देह श्री भण्डारी साहव को ही है।

श्री भण्डारी, छोटे हों या वडे, सवको साथ मे लेकर काम करने वालों मे से थे। वे हमेशा उत्सुक रहते थे कि हर किसी सम्वन्धित व्यक्ति को अच्छी तरह सुनकर, समझकर, उनकी उपयोगी वातो का फायदा लेना चाहिये। प्रारम्भ में जव उन्होंने अपनी मैदा मिल द्वारा तैयार माल वाजार मे लाने का विचार किया तो सर्वप्रथम उनके पिता सेठ श्रीमान् सुगनमलजी भण्डारी साहव ने उन्हें सलाह दी कि वे मण्डी मे जाकर कुछ पुराने अनुभवी व्यापारियों से मिलें। मण्डी की क्या स्थिति है, कैसा माल आता है एवं विकता है, उसका पूर्ण अध्ययन करें। उसी समय श्री जी० एस० भण्डारी साहव प्रथम वार मेरे से आकर मिले थे और व्यापार-सम्वन्धी चर्चा की थी। उनका स्वभाव एवं सूझवूझ मुझे वहुत ही अच्छा लगा। उसके पश्चात् तो मैं उनकी मैदा मिल का अधिकृत वितरक वन गया और आज भी हूँ। श्री भण्डारी साहव समय समय पर जो भी समस्याये उत्पन्न होती थी, उन पर विचार-विमर्श करके उनका समाधान करते थे। मध्यप्रदेश के समस्त व्यापारियों को वुलाकर उनसे चर्चा करते थे। कई व्यापारियो से उन्होंने मेरा परिचय भी करवाया था।

माल की ऊँची क्वालिटी कायम रखने के प्रति वे हमेशा कोई कसर नहीं रखते थे। मध्य प्रदेश के वेकरी उद्योग मे किस प्रकार का मैदा उपयोगी होगा व खाद्य पदार्थ किस प्रकार सर्वोच्च श्रेणी के निर्मित हो, इस उद्देश्य से उन्होंने एक वार मध्यप्रदेश के समस्त वेकरी व विस्कुट फैक्टरी वालो की इन्दौर में एक वैठक वुलाई थी। उसी सम्वन्ध मे फ्लोअर एण्ड फूड लिमिटेड के कार्यालय मे एक तीन दिवसीय वर्कशाप की व्यवस्था का आयोजन किया गया तथा व्हीट असोसियेट आफ यू०एस०ए०, दिल्ली के कुछ अधिकारियो को भी आमन्त्रित किया गया था। व्हीट (गेहूँ) की क्वालिटि के प्रति व्हीट असोसियेट के श्री कन्वारीजी ने वेकरी वालो को अवगत कराया था। जिससे यह ज्ञान प्राप्त हुआ कि अलग-अलग गेहूँ के प्रकारों को जानकर वेकरी निर्माण के कार्य मे भी थोडी-वहुत आवश्यक फेर वदल करनी पड़ती है। भिन्न-भिन्न वेकरी वालों ने अपनी समस्याएँ भी प्रस्तुत की थी। उन समस्याओ

का निदान गुजरात के आनन्द की टैक्नीकल संस्था की तरफ से आये हुए प्रतिनिधि ने किया था। मिल के श्री पार्थसारथी ने भी उनके अनुभव के आधार पर उद्योग से सम्बन्धित उपयोगी बातें बताईं। सभी को इन बातो का पूर्ण लाभ हुआ। बेकरी उद्योग मे ऊँचे स्तर को लाने की चेष्टा केवल श्री भण्डारी साहब ने की थी।

मध्य प्रदेश मे सभी प्रकार के उद्योग बढे, यह उनकी हार्दिक इच्छा थी। उन्होने आल इण्डिया मैन्यूफेक्चरर्स आरगेनाइजेशन बम्बई की एक शाखा इन्दौर मे खुलवाने की बहुत ही कामयाब कोशिश की जो शाखा आज भी मौजूद है। इस संस्था के वे हमेशा सक्रिय कार्यकर्ता रहे। उनके ही परिश्रम से सक्रिय कार्यकर्ताओ ने स्टेट बोर्ड आफ मध्य प्रदेश आल इण्डिया मैन्युफेक्चरर्स आरगेनाइर्जेशन का निजी भवन "इण्डस्ट्रीयल स्टेट" पोलोग्राउण्ड मे बनवाया, जहाँ कि वर्तमान कार्यालय चल रहा है। थोड़े ही समय मे ऐसा महान् उद्योगपति हँसमुख एव विख्यात व्यक्ति हमसे अलग हो गया। आज भी उनकी अच्छाइयाँ और सद्‌गुण हम नही भूल पाये हैं। और वे हमेशा याद रहेगे। आर्या कन्फेक्शनरी वर्क्स, इन्दौर की ओर से इस महान आत्मा को सादर श्रद्धान्जलि अर्पित है।

☆

निष्काम कर्म-योगी स्वर्गीय श्रीमान् गजेन्द्रसिंहजी

☐ अ० का० भाण्ड
सहायक मिलर, फ्लोअर एण्ड फूड लिमिटेड

आदरणीय श्रीमान् गजेन्द्रसिंहजी भैयासाहव की स्मृति मे आज जब मैं कुछ लिखने का प्रयास कर रहा हूँ, तो वरवस आंसुओ से आखें डवडवा रही हैं। सोचता हूँ, क्या वास्तव मे भैयासाहव हमारे वीच नही रहे है ? कितना सौभाग्य होता जो आज वे हमारे वीच होते। और अपने भरे पूरे परिवार की श्रीवृद्धि को स्वय निहारते। लेकिन क्रूर एवं अटल विधि के आगे मनुष्य अपने आपको असहाय पाता है।

आज से लगभग १० वर्ष पूर्व मैं "फ्लोअर एण्ड फूड लिमिटेड" की सेवा में आया था, उस समय मैं अपने भविष्य के प्रति चिन्तित था क्योंकि यह संस्थान और उसके नियोक्ता मेरे लिये नये थे। साथ ही फ्लोअर मिलिंग लाईन का इतना अनुभव नही था जोकि आज आदरणीय भैयासाहव के आशीर्वाद से मुझे मिला है मेरे कार्यकाल के कुछ ही समय वाद मैं स्वर्गीय भैयासाहव के निकट सम्पर्क मे आया और उन्होंने मुझे फ्लोअर मिलिंग के उच्च अध्ययन के लिये प्रोत्साहित किया। उनके प्रोत्साहन के फलस्वरूप मैंने फ्लोअर मिलिंग का विशेष अध्ययन करना प्रारम्भ कर दिया। अध्ययन पर समस्त व्यय संस्था के माध्यम से उन्होंने दिया, साथ ही फ्लोअर मिलिंग कोर्स के लिये सी०एफ०टी० आर० आई० मैसूर भेजकर शार्ट टर्म का तीन मास का कोर्स पूरा करवाया, जिसका भी सम्पूर्ण व्यय श्रीमान् भैयासाहव द्वारा वहन किया गया। आज उस वात का मुझे वेहद दुःख है कि मैंने सिटि एण्ड गिल्ड्स, इंग्लैण्ड से फ्लोअर मिलिंग का पूर्ण अध्ययन कर लिया है तो मेरी कामयावी को देखने वाले हमारे पूज्य भैयासाहव आज हमारे वीच नही रहे।

श्रीमान् भैयासाहव के वहुमुखी जीवन-दर्शन को लेखनी से लिपिवद्ध कर सकना मेरे लिये सम्भव नही है। वे एक वास्तविक स्वभाव (प्रैक्टीकल मैन) के व्यक्ति थे। जो सोचते थे उसे वास्तविक रूप से धरातल पर उतारते थे। वे यह चाहते थे कि फ्लोअर एण्ड फूड लि० और मागलिया गांव जहां आज यह फैक्टरी स्थित है, दोनो ही आदर्श वने। वे अपने इस कारखाने मे इतना विशिष्ट उत्पादन चाहते थे कि संस्थान के साथ ही साथ उस स्थान का नाम भी पूरे देश मे जाना जावे। और यह वड़ी प्रसन्नता का विषय है कि आज उनका यह सपना साकार रूप ले चुका है। हमारे मिल का उत्पादन अपनी विशिष्टता की वजह से देश के कोने-कोने तक पहुँच चुका है। और अपनी उत्तमता की वजह से हमारी संस्था के साथ ही साथ मांगलियां गाव फ्लोअर एण्ड फूड लिमिटेड की वजह से पूरे देश मे जाना जाता है।

उनकी उदार प्रवृत्ति, शालीनता, गम्भीरता व स्नेहमय स्वभाव, एक वार जो उनके सम्पर्क मे आ जाता था वह भूल नही सकता ।

मैंने उन्हे सामाजिक जीवन मे ही अधिकांश रूप से देखा है । वैसे बहुत व्यस्त रहते थे, इसलिये अधिक रूप से गपशप का अवसर कम ही मिलता था, फिर उन दिनों हमारा इन्दौर से वाहर तबादला भी हो गया । लेकिन जिस किसी के यहाँ पार्टी मे मुलाकात होती थी तो मैंने हमेशा यही देखा कि उस घर की छोटी से छोटी चीज की सजावट की व खाने की तारीफ ही करते थे । अहम् उनमे नही था वर्ना अपने घर से तुलना करके तो मित्रो के घरों मे तारीफ जैसी कोई चीज ही नजर नही आती । वैसे उनका स्वभाव इतना मिलनसार था कि गरीब व अमीर सभी उन्हें अपना ही समझते थे ।

जीवन मे कोई घडी बहुत ही अशुभ आती है, उसी तरह एक घण्टे मे ही वे हम सबको छोड़कर चल बसे । वह दृश्य और घटना बडी दर्दनाक थी । विश्वास नही होता कैसे क्या हुआ ? दो दिन पहले मेरे यहाँ पार्टी थी, श्रीमती भण्डारी अस्वस्थ थी मैंने टेलीफोन किया तो बहुत आग्रह करके उन्होने भुवन वाई साहव को मेरे यहाँ भेजा ।

किसने सोचा था कि एक दिन बीच मे छोडकर दूसरे दिन सुबह ही वे हम सभी को छोडकर हमेशा के लिए विदा हो जावेंगे ।

उनका पति-पत्नी का प्रेम व एक-दूसरे के प्रति इज्जत उदाहरण योग्य थे । ऐसा लगता है शारीरिक रूप से वे एक-दूसरे से विछुड़ गये है लेकिन उनकी आत्माओं का सम्वन्ध चिरस्थायी है । उनके तीनो पुत्र भी उनके आदर्श पर चल रहे हैं ।

यद्यपि वे हमेशा के लिये हम से बिछुड़ गये हैं लेकिन उनकी मधुर स्मृति हम मित्रों के हृदय मे चिरस्थायी है । उस समय तो उनका विछुडना हम मित्रो के लिये भी इतना जवर्दस्त प्रहार था कि ऐसा महसूस हो रहा था कि इस आघात को कैसे वर्दास्त करेंगे । ईश्वर ऐसे दुखो को भी सहन करने की शक्ति देता है । जव हमारे जैसे मित्रों को भी सँभालने मे खासा समय लगा तो उनके वृद्ध माता-पिता पत्नी व वच्चो के तो दिल ही टूट गये । लेकिन उनकी पत्नी ने जिस तरह अपना व परिवार का सन्तुलन सम्हाला वह सराहनीय है । ☆

गुण-दृष्टि

□ **श्री एल० आर० कन्धारी**
डायरेक्टर
व्हीट असोसियेट्स, नई-दिल्ली

स्वर्गीय श्री गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी की स्मृति मुझे कई वार होती रहती है।

गुण ग्रहण का भाव रहे
दृष्टि न दोषों पर जाये

यह पंक्ति मुझे लगा कि, उन्होंने अपने जीवन की गहराई में आत्मसात् कर ली थी।

एक वार उन्होने मुझसे कहा था कि इस दुनिया मे कोई भी मनुष्य बुरा नही है। हमे अवगुण छोडकर, हमेशा दूसरों की अच्छाइयां और सच्चाइयां देखनी चाहिए। सोचता हूँ, उनकी गुण दृष्टि कितनी अनुपम थी। यह हमारा दुर्भाग्य ही कहिए कि उन जैसे विनम्र, उदार-हृदय एवम् गुण-निष्ठ व्यक्ति का सुखद सान्निध्य अधिक नहीं मिला तथापि उनकी मधुर स्मृति आज भी लोक मानस मे तैर रही है। साथ ही गुण-ग्रहण के लिए यह मूल मन्त्र वता रही है।

काले काजल से भी नैन का शृंगार किया जाता है
कटीली झाड़ियों से भी खेत का प्राकार किया जाता है
गुणी आदमी बुराई में से भी भलाई ढूंढ लेते हैं,
सड़ी गली खाद से भी वाग को गुलजार किया जाता है

अन्त मे उनके अलौकिक प्रवासित गुण-निष्ठ पवित्र पुनीत जीवन का शत-शत अभिनन्दन।

जनसेवी योजनाएँ उनकी सदैव याद दिलाती रहेंगी

☐ चन्दनमल लूँकड़

प्रसिद्ध भण्डारी परिवार मे जन्म लेकर श्री गजेन्द्रसिंह भण्डारी ने इन्दौर लेडी कालेज मे प्राथमिक शिक्षण ग्रहण किया, पश्चात् वे इंगलैण्ड में व्यापार विशेपज्ञ का उच्च अध्ययन करने भी गये थे। वे सदैव हसमुख, निष्कपट, मितव्ययी, उत्साही, कार्य-कुशल एवं अनेक गुणो से परिपूर्ण थे, मानों वे सब गुण उन्हें विरासत में ही मिले हो। अपने व्यवसाय को सुसंगठित, सुव्यवस्थित एवं अनुशासित रूप से चलाने मे से हमेशा रुचि रखते थे। प्रसिद्ध या सस्ती लोकप्रियता के एवं अन्य किसी झगडो मे न पड़कर अपने कार्य को सम्पादित करना, उनकी विशेपता ही थी। नये-नये व्यवसाय धन्धो का आरम्भ कर, अत्यधिक आवश्यकता वालो को स्थान देकर उन्हे कार्यों मे संलग्न कर सहयोग देना ही उनका लक्ष्य था। ये ही गुण थे कि जिनके कारण वे अनेको के मार्गदर्शक, सलाहकार एव प्रेरणा पुंज कहलाये। मृदुभापी थे, ईर्ष्या से दूर रहना, सदैव उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य करते रहना, उनकी यह सर्वाधिक विशेपता थी। अल्पायु मे ही वे "बैंक आफ इण्डिया" के डायरेक्टर रहे, रोटरी क्लब के अध्यक्ष रहे एव कई संस्थाओ से प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष रूप से जुडे रहे तथा मार्गदर्शन देते रहे तथा उनके सुनिर्दिप्ट निर्देशन मे भण्डारी मिल का सचालन भी चल रहा था। उनकी स्वप्रेरणा से उनके कुछ साथियो ने जनसेवा की योजना बनायी थी, जिनके विशेष आग्रह पर अपनी व्यस्तता के बाद भी वे जनसेवा हेतु कुछ समय दे सकने की स्थिति मे पहुँचे थे। योजनाएँ बनी ही थी कि एक होनहार युवक को ईश्वर ने हमारे बीच से सदा के लिये उठा लिया। किसे पता था कि समय के कलुषित प्रहार से यह अपूरणीय क्षति होगी जनमानस की आकांक्षाओ पर कुठाराघात होगा। इन्दौर शहर मे एक के बाद एक अकाल युवा मौत हुई है, मानो लगता है कि ऊपर वाले के पास भी युवको की कमी हो गई है। विधि के विधान को बदला नही जा सकता।

उनके इस आकस्मिक व असमय निधन से न केवल भण्डारी परिवार को ही क्षति हुई अपितु इन्दौर शहर, प्रदेश एव देश के विकास मे कुछ धक्का-सा महसूस हुआ है। ऐसे दुःखद समय मे परमेश्वर से यही प्रार्थना है कि इस असहनीय दुख को सहन करने की शक्ति शोक-सतप्त परिवार को प्रदान करें।

☆

एक अविस्मरणीय व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धा सुमन

☐ पी० सी० मेहता
सेल्स मैनेजर
फ्लोअर एण्ड फूड लि०, इन्दौर (म०प्र०)

भारतीय संस्कृति ने देश को कई विभूतियाँ दी हैं। कई विभूतियाँ अपने कार्यों से सुशोभित होकर अपनी अमिट छापें छोड़ गयी। कुछ ऐसे व्यक्तित्व भी रहते है जो कि विशेप होते हुए भी प्रकाश में नही आते लेकिन अपने व्यक्तित्व के प्रेरणास्रोत से कई असंख्य लोगों का कल्याण कर जाते है लेकिन वो अपनी प्रशंसा पाने की इच्छा नही रखते। ऐसी ही विभूतियो मे एक चिरस्मरणीय विभूति थे आदरणीय स्व० भैया साहव श्री गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी आज जिनकी स्मृतियाँ ही शेष हैं।

मनुष्य अपनी शिक्षा के समाप्ति पर जीवनयापन की खोज मे क्षेत्र खोजता है। उसी तारतम्य मे मैं स्वयं अपने भविष्य निर्माण की नीव रखने के प्रयास मे अपने पथ-प्रदर्शक की खोज मे था। उसी समय मुझे सन् १९६० मे मेरे नियोजक प्रकाश-स्तम्भ एवं प्रेरणा स्रोत स्वरूप आदरणीय स्व० भैयासाहव के सानिध्य मे कार्य शुभारम्भ करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

मैंने अपनी १८ वर्ष की आयु मे उनके सानिध्य मे कार्य की शुरूआत की। उनके साथ लगभग ११ वर्ष तक कार्य करने का मुझ जैसे साधारण व्यक्ति को उनके निकट सम्पर्क मे रहने का सौभाग्य रहा है जोकि मेरे जीवन की एक अविस्मरणीय उपलब्धि है, लेकिन दुर्भाग्य है कि इस महान् व्यक्तित्व का मार्गदर्शन मैं केवल ११वर्षों तक ही ले सका। यह समय मेरे लिये निस्सन्देह वरदानस्वरूप था जिसके दौरान मैंने उन्हे सदैव शिक्षक, कर्तव्यपरायण, कुशल एवं प्रभावशाली उद्योगपति, प्रखर अनुशासक, सुलभ मृदु स्वभावी एवं सहृदय व्यक्तित्व के रूप मे पाया। आज आदरणीय भैया साहव का सानिध्य मेरे साथ नही है, लेकिन उनके द्वारा प्रदान किया गया मार्गदर्शन आज मेरे जीवन का प्रमुख प्रेरणा स्रोत है। मेरे दैनिक जीवन के वे आज भी प्रकाश-पुंज है। मेरा कोई भी कार्य वह चाहे कार्यालयीन हो या पारिवारिक हो सभी पर उनकी एक अमिट छाप है, जो मेरे जीवन के लिये अमूल्य निधि है।

आदरणीय भैया साहव के गुणों के सम्बन्ध में विश्लेषण करना मेरे जैसे साधारण व्यक्ति के लिये एक कठिन कार्य है, लेकिन यहाँ उनकी कार्य-कुशलता अनुशासन एवं सहृदयता के वारे मे कुछ अंशों मे लिखने का प्रयास कर रहा हूँ।

समाज-भूषण, जैन रत्न सेठ सुगनमलजी भण्डारी के ज्येष्ठ पुत्र के रूप मे श्रीमान गजेन्द्रसिहजी भैया साहव का भण्डारी परिवार मे दिनाक ९ नवम्वर १९२९ को एक जाज्वल्यमान नक्षत्र के रूप मे उदय हुआ था। अपने वाल्यकाल से युवावस्था तक पव्लिक स्कूल तथा इसके तदनन्तर विदेशों मे शिक्षा-दीक्षा पायी। अपनी

युवावस्था की २१ वर्ष की आयु मे (श्रीमती) भुवन भण्डारी से दिनांक १५-२-१९५१ को अजमेर में विवाह हुआ। (श्रीमती भुवन भण्डारी आज कई समाज कल्याणकारी संस्थाओं एवं धार्मिक संस्थाओं का संचालन कर रही है।) आपको तीन पुत्र रत्नों की प्राप्ति हुई जोकि अपने आप में आदरणीय स्वर्गीय भैया साहब की प्रतिमूर्ति के रूप में विद्यमान है।

अपनी अल्पायु करीब २० वर्ष से ही भैया साहब ने पारिवारिक, सामाजिक कार्यो के साथ ही साथ व्यावसायिक प्रतिष्ठानों एवं कारखानों के संचालन का कार्य-भार देखना प्रारम्भ कर दिया था जो उनके अन्तिम क्षणो तक निर्बाध रूप से उनके साथ रहा। इस बीच उन्होंने कई कारखानों के निर्माण कार्य, अपने वैज्ञानिक दृष्टि-कोण से कराये जो आज भण्डारी संस्थानों की धरोहर है। इन कारखानों के निर्माण के दौरान देश तथा विदेशो मे कई प्रयास किये। प्रत्येक विदेश प्रवास की वापसी में हमेशा उपलब्धि एवं सफलता उनके साथ थी।

सन् १९६६ मे फ्लोअर एण्ड फूड लिमिटेड, इन्दौर (मैदा मील) की स्थापना एवं निर्माण कार्य उनकी सूझ-बूझ एवं कुशल बुद्धि का परिचायक है जो आज देश की एक सबसे आधुनिक एवं प्रमुख मैदा मील है जिसके उत्कृष्ट गेहूँ निर्मित पदार्थ का हर क्षेत्र मे अपना एक विशिष्ट स्थान है।

आदरणीय भैया सा० के कार्य करने की अपनी एक विशिष्ट शैली थी जिसकी छाप आज भी उनके द्वारा संचालित समस्त सस्थाओ मे देखने को मिलती है। क्योंकि सभी संस्थाओं का संचालन आज भी उनके द्वारा आधारित शैली पर ही चल रहा है और इसके ठोस होने का प्रमाण यह है कि ये सस्थाए दिनोदिन प्रगति की ओर अग्रसर है।

जिस तरह एक कलाकार मिट्टी को स्वरूप प्रदान कर तरह-तरह की मूर्तिया गढता है उसी प्रकार स्वर्गीय भैया साहब की यह एक प्रमुख विशेषता थी कि वो अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को उनकी कार्यक्षमता के अनुसार व्यक्तिगत रूप से तैयार करते थे। व्यक्ति जब पूर्णरूप से उनकी कार्य शैली को अपने आप मे ढाल लेता था तब उसे महत्त्वपूर्ण कार्य सौपने मे वे सदैव तत्पर रहते थे।

आदरणीय भैया साहब अनुशासन के पक्के धनी थे। वह स्वयं भी अनुशासन-बद्ध रहते थे तथा अपने प्रत्येक कर्मचारी से यह अपेक्षा रखते थे कि वो अनुशासन मे रहे। उनकी यह मान्यता थी कि कार्यालयीन समय मे अनुशासनबद्ध रहने से कार्य की क्षमता बढती है। कार्य की क्षमता मे ही सफलता निहित है जो व्यक्ति एवं संस्था दोनों को ही प्रगति की ओर अग्रसर करती है।

अपने व्यवहार कुशलता के लिये वो इतने सुप्रसिद्ध थे कि कई कठिन समस्याओ का अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से तुरन्त देखते-देखते समाधान कर देते थे। समस्या चाहे वह

कार्यालयीन कर्मचारी, व्यावसायिक प्रतिनिधि अथवा सामाजिक कार्यकर्ता द्वारा उठायी गयी हो । कई मर्तवा ऐसे भी प्रसंग देखने को मिलते थे जब आगंतुक अपने आक्रोश मे श्रीमान भैयासाहव से मिलते लेकिन उनसे मिलने के वाद यह पाया जाता कि उसकी समस्या का समाधान हो गया है एवं वह उनसे मिलने के वाद पूर्णतया संतुष्ट है । आज भी हमारे कार्यालय मे ऐसे कई व्यावसायिक प्रतिनिधि आते है जो उन्हें कभी नही भूलते और एक स्वर मे उनका यही कहना होता है कि उद्योगपति तो हमने कई देखे लेकिन श्रीमान गजेन्द्रसिह जी भण्डारी जैसा व्यक्तित्व विरले ही व्यक्तियों में देखने को मिला ।

श्रीमान भैयासाहव चाहते थे कि उनके अधिनस्थ समस्त कर्मचारी, खुशहाल रहे । इस वारे मे उन्होंने अपने कर्मचारियों को कभी भी एक कर्मचारी की हैसियत से नही समझा अपितु थे उसे अपने परिवार के एक सदस्य के रूप मे मानते थे । अपने कर्मचारियों के सामाजिक कार्यो मे सदैव वह निश्चित रूप से उपस्थित रहकर यथासभव वित्तीय सहायता भी प्रदान करते थे ।

अपनी प्रतिष्ठा के अनुरूप समाज मे तथा उद्योगपतियो मे उनका अपना एक विशिष्ट स्थान था । छोटे-वड़े सभी समारोह मे वे समान रूप से उपस्थित रहते थे । अनेक सामाजिक एव व्यवसायिक संस्थाओ के वे पदाधिकारी रहे एवं समय-समय पर अपने उचित मार्गदर्शन एवं अनुदान द्वारा उन्हे निरन्तर लाभान्वित करते रहे ।

मेरे जीवन का एक संस्मरण प्रस्तुत करते हुए मैं आत्मविभोर हूँ । यह दिन २० सितम्बर, १६७१ का था जिस दिन आदरणीय भैया साहव के कार्यालय मे आने का अन्तिम दिवस था । इस दिन उन्होने मुझे फ्लोअर एण्ड फूड लि०, इन्दौर के सैल्स मैनेजर का पद-भार (DESIGNATION) दिया ।

मैं यह मानता हूँ कि उनके सानिध्य मे ११ वर्षो तक मुझसे उनकी जो भी सेवा हो सकी उसका उन्होने अपने अन्तिम प्रयाण के चार दिन पूर्व मुझे इसका प्रतिफल दिया जो उनके स्नेह का मेरे लिये एक वहुत वड़ा उपहार है ।

२४ सितम्बर, १६७१ का वह दिवस मेरे जीवन का एक ऐसा हृदय विदारक एवं दुःखदायी दुर्दिन था जिस दिन भैया साहव अपने समस्त परिजनो, मित्रों एवं सहयोगियों को विलखता छोड़कर ४१ वर्ष की अल्पायु मे दिव्य ज्योति में लीन हो गये । उन्हें मेरी अश्रुपूरित श्रद्धाजलि ।

आज भले ही वो शारीरिक रूप से हमारे वीच नही है लेकिन उनके वताये हुए मार्गदर्शन पर आज उनके यशस्वी पुत्र श्री जसवीरसिहजी भण्डारी जोकि वर्तमान मे फ्लोअर एण्ड फूड लि०, इन्दौर के प्रवन्ध संचालक हैं, संस्था को दिनोदिन सफलतापूर्वक नया स्वरूप प्रदान कर उनकी आकांक्षाओं को साकार करने मे संलग्न है । □

जव याद आती है....

□ श्रीमती प्रतापकुमारी मेहता
अजमेर

मात पिता ने एक लाल दिया
जिसने मानव सेवा का काम किया
जीवन उसका था अति निर्मल
मानो कीचड मे था खिला कमल
दुखियों का था वह वड़ा सहारा
अमीरों का भी था वह वड़ा दुलारा

कैसे इस कटु सत्य पर विश्वास करू कि एक देवता हमको हमेशा के लिए छोड़ कर चले गए।

मेरे दामाद (श्रीमान् गजेन्द्रसिह साहव भण्डारी) मनुष्य के रूप मे एक देवता थे। उस महान आत्मा के गुणों का वखान करने की शक्ति मेरी इस लेखनी में नही है, फिर भी सोचती हूँ कि उस महान् व्यक्ति के गुणो को लिखकर शायद मैं अपने आप को कुछ सान्त्वना दे सकूं।

श्री गजेन्द्रसिंह जी एक धनाड्य व सम्पन्न परिवार मे पैदा हुए। लक्ष्मी जैसे उनके चरणों की दासी वनकर ही जव तक थे इस घर मे रही। परन्तु इतना सब कुछ होने के पश्चात् भी वे इतने विनम्र, स्नेही, कर्तव्यपरायणता से ओत-प्रोत व्यवहार! सहनशीलता मे तो सागर का साक्षात् स्वरूप था।

मैंने अपनी सुपुत्री भुवनेश्वरी को उस खानदानी धनी परिवार के एक महान व्यक्ति श्री गजेन्द्रजी के हाथो सौपकर अपने आपको वड़ा ही भाग्यशाली समझा और वड़ी शान्ति का अनुभव किया और जव-जव कँवरसाहव अजमेर पधारते, उनका वह स्नेहसिक्त शब्दो का सम्वोधन, 'वाईजी' मुझे तो आपकी यह हवेली इतनी पसंद है कि यहां से जाने की ही मेरी इच्छा नही होती, देखिये इसीलिये साल मे मेरे दो-तीन चक्कर अजमेर के हो जाते है," ये शब्द वडे ही आत्मीयता एवं स्नेह से फरमाते थे। वैसे उनकी भव्य कोठी के सामने मेरी हवेली का क्या मुकावला। जो सुख-सुविधायें उनको अपनी कोठी मे प्राप्त है, वह तो यहां पर सारी नही थी, पर फिर भी पता नही, क्यो इतना लगाव था। वह झरोका जहा कंवरसाहव दिनभर विराजते थे, अभी भी उनकी यादे संजोये वही का वही अडिग, शायद पुनः उनके आने की वाट मे खड़ा है।

मेरी पुत्री भुवन का जीवन भी सु[illegible] में [illegible]कर लहराता था।

कितनी भाग्यशाली थी, जो ऐसे गजेन्द्र को पति के रूप मे पाया था, कभी अवसाद के क्षण तो जैसे भुवन के जीवन मे आये ही नही थे। सदा कमल की भांति प्रफुल्लित चेहरा दोनो का रहता था। अहं तो नाममात्र भी नही था और शायद उन्हीं के कारण भुवन ने भी इस महान् गुण को अभी तक आत्मसात किया है। अनजान व्यक्ति उन्हें देखकर यह कह ही नहीं सकता था कि वे इतने धनी परिवार के हैं। उनकी महानता ने हर एक के हृदय पर ऐसी छाप छोड़ी है कि आदमी उन्हे भुलाये ही नही भूल सकता, क्या परिवार और क्या मिलने वाले। उनका मोहक चेहरा, स्नेहिल सम्बोधन, सौष्ठव से अभिसिंचित व्यक्तित्व एवं उनकी करुणा के सौरभ की अनुभूति नवागन्तुक व्यक्ति प्रथम परिचय मे ही पा जाता। वह तो एक ऐसा हीरा था जो अपने समस्त पहलुओ से प्रकाश फैलाता था। कौनसा पहलु ज्यादा प्रकाशमान था कहना अति कठिन है। अभी भी ऐसा लगता है कि वे कही बाहर गये हैं और वापस आयेंगे। बाहर पर से याद आया कि भुवन की शादी के बाद भी कंवर साहब ७-८ बार विदेश गये पर भुवन को साथ नही लेकर गये। मुझे मन मे अन्दर ही अन्दर बड़ा खेद होता था कि क्या कारण है, वैसे तो ये दोनो १५ दिन भी अलग नही रहते और जब-जब विदेश पधारते है, भुवन को यही छोड़ जाते है। प्रोग्राम दो माह का बनता किन्तु कवर साहब २०-२५ दिन में ही वापस इन्दौर, फिर भी यह प्रश्न सदैव मुझे विस्मय मे डाल देता जब कभी भी भुवन से इस विषय मे पूछा तो हसकर ही सामने आई। मां, क्यो आप इतना आश्चर्य अनुभव करती हो। क्या पूज्य बाबूजी की एक छोटी सी इच्छा को भी ये पूर्ण करने मे असमर्थ रहेगी कभी ऐसा होने नही दूंगी। चाहे ये लाख चाहे जिस दिन बाबूजी अपने श्रीमुख से फरमायेंगे उसी दिन हम दोनो विदेश की यात्रा पर जावेंगे। यहा कौन सी चीज को या जाने को बाबूजी मना करते हैं। उनकी भी कोई परिस्थितिवश मजबूरी होगी। मुझे तो बड़ी खुशी और गर्व है कि आज भी पिता का आदेश सर माथे पर एवं आँखों की पलको से पूजने वाले पुत्र इस धरती पर मौजूद हैं। और जब कभी कंवर साहब से पूछा, बडे ही मजाक के लहजे मे कहते, आपकी बेटी को मेरे साथ विदेश जाना पसद नही है। मेरा बन्धन तो यही बहुत है, बाहर तो आराम से घुम फिर लूं। कितना दोनो का आपस मे एक विचारो मे सामन्जस्य था। आज के जमाने मे कौन इतना त्याग करेगा। एक बार नही अनेक बार परन्तु कवर साहब त्यागमूर्ति पिता की छवी थे। पिता श्री सेठ सुगनमलजी साहब का तो सारा जीवन ही त्यागमय रहा और माता चम्पाबाई साहब तो साक्षात् लक्ष्मी है। उनकी जैसी महान् स्त्री तो इस स्त्री जगत मे मिलना असंभव है। हालांकी मेरा साथ रहने का काम बहुत कम पड़ा पर जैसा मैंने भुवनजी को कहते इन लोगों के बारे मे सुना, अपने कानो पर विश्वास नही होता, सेठ साहब को यदि दशरथ एवं ब्याणसाहब को कौशल्या के नाम से सम्बोधित किया जावे तो शायद अतिशयोक्ति नही होगी। सेठ साहब को पुत्र रूपी राम और लक्ष्मण मिले थे। राम रूपी गजेन्द्र ने तो

अपना कर्त्तव्य आखिर क्षणों तक मरण शैया पर भी यह कहते हुये निभाया, वताते हैं कि वावूजी मैं ठीक हूँ, आप फिकर मत करिये। सच्चे पितृभक्त थे। आखिर समय भी जैसा सब लोग कहते है, हँसते-हँसते ही विदा ले गये—क्या बीती होगी उस समय ऐसे पुत्र, पति, पिता और अनुज को खोकर ईश्वर ही जानता होगा।

जब भी उनकी बातें, उनकी महानता व सदैव मुस्कराता चेहरा मेरे सामने आता है, तो मेरा हृदय टूक-टूक हो जाता है, आँसू भी उस तड़पते हुये हृदय को सान्त्वना नही दे सकते लेकिन जब मुझे भुवन याद आती है कि वो किस तरह इस दुःख के सघन अँधेरे मे, बीहड़ मे, जहां सासारिक सुखों कि ज्योति विलीन हो गई है, अदम्य साहस से अपराजित स्त्री बनी होने का साहस कर रही है। उसमें तो क्या शक्ति है पर कंवरसाहव की आत्मा ही उस समुद्र के टावर की भांति अन्धेरे मे घिरे हुये जीवन के जहाज का मार्गदर्शन कर रही है, वरना इतने छोटे वच्चे चि० जसवीर जम्बू, सतीश को लेकर इस जगत मे उसी सम्मान पूर्वक चलाना आसान काम नही है। इतनी छोटी-सी उम्र मे अपने परमपूज्य दादासाहव के मार्गदर्शन में जो इन लोगों ने व्यापारिक व्यवसाय संभाला है, वह उस महान् आत्मा के आलोक से प्राप्त मूक ज्योतिर्मय निर्देशन ही है।

इस दुःख-के विकट समय मे भी जरा-सी खुशी की झलक दिखती है तो बस यही कि आज बच्चे सम्मानपूर्वक अपने पिता श्री का हर क्षेत्र चाहे व्यापारिक, सामाजिक, पारिवारिक हो, पूर्ण अनुसरण कर रहे हैं। सदैव अपनी पूज्य मां का सम्मानपूर्वक आज्ञा का पालन करते रहे ? उसने तो इन सबो की खुशी के लिये पता नही दुःख को कौनसी पाताल की गहराई और नभ की ऊंचाई में छिपा दिया है।

किसी व्यक्ति विशेष की तारीफ करना और खास करके जाने के बाद तो ऐसा होता ही है परन्तु मैं जो लिखने जा रही हूँ वह काल्पनिक या मनगढन्त घटना नही है, जैसा की मैंने आपको प्रारम्भ मे ही कहा कि महानता को शब्दों मे बाँधने का मुझमे साहस नही है। उनकी मोहव्वत व वडो के प्रति आदर व सम्मान का उदाहरण तो सचमुच मे देखते ही बनता था। बात बहुत छोटी है, पर उसके अन्तर की गहराई को अनुभव करने वाला ही उस रहस्य को आत्मसात कर सकेगा।

एक बार मेरे पति (भुवनजी के पापा) किसी शादी मे इन्दौर पधारे और वहाँ पर अचानक तवियत विगड गई, तत्काल डाक्टर साहव मुकर्जी जो वहाँ के सबसे नामी डाक्टर है, बुलाकर वताया, सारी जांच इत्यादी करवाई, लेकिन एक छोटी-सी घटना जो मेरे मन एवं मस्तिष्क मुझे नही भुला सकती कि एक इतना बड़ा भव्य व्यक्तित्व वाला आदमी, इतना छोटा और यह कहना उपयुक्त होगा कि घृणित सा काम अपने हाथ से करेगा, कल्पना करना भी मुश्किल है, परन्तु यह सही है कि अपने

ससुरजी के टट्टी एवं पेशाव के डव्वे व शीशी खुद हाथ से उठाकर डाक्टर साहव जहाँ जाँच करते हैं, खुद लेकर आये। वह यह काम नौकर या ड्राइवर से या अन्य किसी व्यक्ति विशेष से भी करवा सकते थे। परन्तु अपने से वड़ो के प्रति कितनी अवस्था, असीम आस्था थी कि अच्छी और वुरी भावना का वहाँ कोई महत्त्व ही नही था। सेवा ही जिनका मुख्य उद्देश्य था। उनके महान हृदय की झाँकी को इन टूटे-फूटे शब्दो की परिभाषा मे परिभाषित करना वड़ा ही दुष्कर कार्य है, शायद और किसी की नजर मे यह वात महत्त्व न रखे लेकिन मेरे हृदय के तो ये ऐसे मर्मस्पर्शी उद्गार हैं, उनकी मानवीय महानता के अनेकों उदाहरण है :—

एक वार मैं और भुवनजी अजमेर से दिल्ली गये। कंवर साहव भी दिल्ली पधारे तो भुवनजी उनके साथ अशोका होटल मे ठहरी। मैं मेरी छोटी लड़की के पास नजफगढ़ ठहरी। इतनी दूर मेरा ठहरना उन्हे अच्छा नही लगा। भुवनजी को पहले उन्होने लेने भेजा और जव मैं उनके साथ नही आई कि मैं होटल मे तुम लोगों के वीच क्या करूँगी—यह वात कंवरसाहव को अच्छी नही लगी और मुझे आकर दिल्ली दिखाने घुमाने के वहाने वहाँ से ले पधारे और वापस मुझे आने नही दिया और वही पर ठहराया, कितना विशाल हृदय था।

इसी प्रकार मेरी छोटी पुत्री की शादी मे जव अजमेर पधारे १९५९ मे, तो एक वेटा भी क्या काम करेगा, इस तरह से उन्होंने हर क्षेत्र मे जिम्मेदारी से काम किया। वरात कलकत्ता की थी। नाज-नखरे वहुत थे। मेरे निकटतम रिश्तेदार नाज-नखरो से तंग आ गये। एकमात्र कवरसाहव ही ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने उस वारात के सारे वारातियो को अपने मृदु व्यवहार से इतना सन्तुष्ट किया कि जाते-जाते सभी लोग प्रशंसा के अम्वार लगा गये। कहाँ तो वारात नाराज होकर जा रही थी और कहाँ इतनी खुश होकर कि उन्ही के शब्दो मे यह कह गई, "सोचा था नाको चने चववायेंगे, आखिर सेठ साहव के इकलौते लड़के की शादी है, इसमे तूफान नही मचाया तो आगे मौका कव मिलेगा इत्यादि और वही लोग जाते-जाते कह गये कि आपके जंवाई ने तो अपनी व्यवहार कुशलता से, मोहक चेहरे की मुस्कान से, हम सभी को लुभा लिया और हमे पानी-पानी कर दिया। प्रभु ऐसा दामाद या वेटा सभी को दे और अपने कटु व्यवहार की क्षमा माँग कर गये।

दया भाव भी मन के कौने-कौने मे भरा था, किसी को किसी भी प्रकार से संतप्त अवस्था मे देख नही सकते, चाहे आर्थिक हो, मानसिक हो या शारीरिक, सभी को समयोचित उपाय करने की कोशिश मे रहते। मुझे दमे की शिकायत वहुत पुरानी है। जव-जव भी पधारते, कुछ न कुछ नई दवायें लेकर पधारते या जहाँ भी पधारते इससे सम्वन्धित मिलने वालो से सदैव कुछ पूछ कर ही पधारते और नये-नये प्रयोग

व दवाइयां लेकर पधारते या पार्सल से भिजवाते। जव तक अजमेर विराजते अपने हाथों से अपने सामने दवा खिलाते और जरा भी उठकर चलने नही देते। आप मेरे पास विराजिये, मैं तो दो दिन मे चला जाऊँगा। वाईजी, हाथ देखिये और वताइये, भविष्य कैसा है। आपकी वेटी बीच में ही तो धोका नही दे जावेगी क्योंकि भुवनजी की तवियत हमेशा गड़वड, कुछ न कुछ खराव चलती रहती थी और अव तो शायद एक दिन भी ठीक नही रहती है। पर उसने भी, लगता है कि कवरसाहव के उस गुण को आत्मसात किया है, "कितनी भी विपरीत परिस्थितियाँ हों, सदैव मुस्कुराते हुये उनका आलिंगन करो, कभी दुःख से पराङ् मुख न हो, दु.ख एक कसौटी है जिसमे मनुष्य परखा जाता है कि वह कुन्दन है या पीतल। दु.ख मे घवराकर विचलित होने वाले की गति पतझर से गिरे पत्ते के समान है, जिसे कोई जानता भी नही। सुख सध्या का लाल क्षितिज है, जिसके पश्चात् घनघोर अन्धकार है और दु.ख प्रात.काल का पुनीत प्रकाश है जिसके पश्चात् उज्ज्वल प्रकाश ही प्रकाश—जीवन मे महान वही है जो दूसरों की मुस्कानों के लिए अपने आँसू हँसते-हँसते पी ले।" भुवनजी ने भी लगता है यह पूर्णरूप से अपना लिया है, अन्दर कितनी घुटन होगी, कितना दुःख होगा, इसकी कल्पना तो ईश्वर ही कर सकता है। पर जव कभी यदा-कदा वड़ी हिम्मत वटोर कर पूछने का प्रयास भी मैंने किया, तो वस एक ही जवाव देती है— माँ, दुखों का तो अव सागर मेरे सामने लहरा रहा है, सव मेरे कर्मो का ही तो फल है। सुख भी देखा, दुःख भी। जव सुख से नही घवराई तो दुःख से भी घवरा कर भागना नही है। जव तक दिमाग की अवस्था ठीक है और शरीर मे प्राण है तव तक दुःखो से कभी भी मुह नही मोडूंगी। उसी प्रकार हँसते हुये इन परिस्थितियों का आलिंगन करूँगी, उनकी आत्मा जरूर मुझको संवल देती रहेगी, दे रही है, वरना मेरी क्या विसात जो मैं यह सव सह सकू। सच मे लगता है कि कोई आत्म शक्ति ही पथगामी वनकर उसे शक्ति दे रही है। जव-जव भुवनजी का वह भोला चेहरा याद आता है, वस यह पक्तियाँ वरवस निकलती है—

क्या ही भोली वह सूरत थी
कैसा वह ठाट निराला था
देखो ! जैसे श्री विधि ने निज कर से
यह जोडी सांचे में ढाली थी ॥
जितनी ओपमा दे डारू, वह सभी इसी पर वारी है
लेखनी मेरी लिख न सके, न मुझमे शक्ति भारी है।

इनके जीवन के सुखद प्रसंगो को मेरी यह पंगु लेखनी लिखने मे असमर्थ है और मनोदशा तो और भी विकृत अवस्था मे है।

जब भी भुवनजी का विगत जीवन याद आता है कि कितना सुख-सुविधाओं से परिपूर्ण जीवन था, कोई चीज की तो कमी नही थी। कही पैसा होता है तो पति का आचरण ठीक नहीं, बच्चे नहीं। कुछ न कुछ जीवन में अवश्य कमी रहती है, परन्तु यहाँ तो ईश्वर की कृपा से सभी कुछ मिला था। पैसे के साथ पति के रूप मे तो सच मे साक्षात् श्रीकृष्ण मिले थे। मेरे परिवार के सदस्य कोई लैला-मजनू कहता था, कोई राधा-कृष्ण कह कर इन दोनों को सम्बोधित करते थे। कितनी खुशहाली थी उनके जीवन मे जिसका सोचना भी कल्पना के बाहर है। प्रभु की कृपा से तीनो पुत्र जसबीर, जम्बू, सतीश भी ब्रह्मा, विष्णु, महेश सदृश्य है। क्या-क्या लिखूं, बच्चो के बारे मे। जब याद आया तो मुझे याद है, तीनो भाईयो को जब छोटे थे, अपने हाथ से अपनी थाली मे साथ बैठकर खिलाना, कपड़े यदि गन्दे कर दें तो अपने हाथ से बदल देना, अपने हाथ से उनको नहला देना। बच्चो के लिये शायद अपनी जान भी लगा दे तो कम था। दिनभर गोद और सर पर चढ़े रहते थे। बच्चो की हर फरमाईश पूरी होती थी पर फिर भी इतने प्यार से पले बच्चो मे अविवेक का कही नामोनिशान तक नही था, कितना शिष्टाचार था। छोटे-छोटे थे तब भी माँ से सदैव डरते थे। हमेशा भुवनजी कहती, माँ, इतना ज्यादा लाड़-प्यार करती हो कि बच्चे बिगड जायेंगे। इतना प्यार होने के पश्चात भी तीनों भाई जसबीर, जम्बू, सतीश को जब ६-६ वर्ष के हुए देहरादून के स्कूलों मे पढने के लिये भेज दिया और जब हम पूछते कि आपने कैसे भेजा, आपका मन कैसे माना, आप तो क्षण भर भी रह नही सकते थे, वहाँ पर बस यही कहते, कर्तव्य व उद्देश्य के आगे अपने स्वार्थ को पीछे धकेलना पड़ता है और शायद कँवरसाहब की उस समय की दूरदर्शिता ही आज उभर कर सामने आ गई है कि जसबीर, जम्बू और सतीश ने इतनी अल्प आयु मे उनके द्वारा स्थापित फैक्टरी को एव दूसरे जो भी उनके अधूरे काम है उनको करने मे समर्थ हो रहे है। आखिर उस महान पिता की सन्तान है। उनकी आत्मा इनका पथ-प्रदर्शन सदैव-सदैव करती रहे। उनके बच्चे उनके जितने भी गुण थे, उनको ग्रहण करें ताकि उनका परिवार उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर वापस आरूढ हो। हमारा समाज, परिवार एवं देश इन भविष्य के निर्माताओ पर नाज करे। उनके जीवन के उन सभी शाश्वत गुणो को ग्रहण करके दीर्घायु हो—इन बच्चो का भविष्य अपने पापाजी से भी ज्यादा सुखद एवं ऐश्वर्यशाली हो।

सर्वगुण सम्पन्न सर्वोच्च सत्ता प्रभु से हमारी यही हार्दिक प्रार्थना है, जहाँ भी वह भव्य आत्मा विचरण कर रही है, चिर सुख-शान्ति मिले एवं आत्मा के आलोक से हमारा पथ-प्रदर्शन करती रहे। अब तो जिनकी पावन स्मृति और आशीष ही हमारे प्रेरणा के स्रोत हैं। उनकी स्मृति-मात्र से हमारी भावनायें शुद्ध होती हैं और हमारी निष्ठा सुदृढ होती है।

अन्त मे अपने पढ़ने वाले पाठकों से नम्र निवेदन करूंगी कि यदि उनके जीवन का अंश मात्र भी किसी ने अनुसरण किया तो हम बड़े कृत-कृत्य होंगे। मैंने तो मेरी अन्तरधारा मे जो रस वहा वह लेखनी द्वारा एक अश मात्र प्रवाहित कर दिया है। ज्यादा न लिखने की शक्ति है, न मन की मनोदशा ही आवद्ध करने की क्षमता रखती है।

और सबसे ज्यादा आभारी हूँ पूज्य गुरुदेव मोहनलालजी महाराज साहव के शिष्य महेन्द्रमुनिजी महाराज साहव की, जिनके ओजपूर्ण व्याख्यानों एवं प्रवचनो से मेरी पुत्री भुवनजी के मन मे इस पुस्तक की योजना आई और उसे मूर्तरूप देने का दृढ़ संकल्प किया और हमे भी अश्रुपूरित नेत्रों से उस महान् आत्मा के विषय मे दो शब्द लिखने का अवसर प्राप्त हुआ।
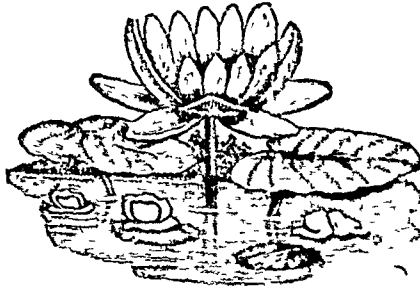
श्री गजेन्द्रसिंहजी भण्डारी : एक मधुर स्मृति

□ श्री वी० एल० जैन

स्व० श्री गजेन्द्रसिंह जी साहब भण्डारी से मेरा सम्पर्क केवल एक वर्ष तीन माह का ही रहा। इस अल्पकालीन सम्पर्क में ही कुछ अवसर ऐसे आये जिनकी स्मृति सदैव बनी रहेगी।

सन् १९७० की दीपावली के मुहुर्त पर अभिनन्दन के लिये मैं उनके निवास-स्थान 'नन्दनवन' कोठी पर गया। वहाँ भण्डारी परिवार के श्री सुरेन्द्रसिंहजी भण्डारी भी बैठे हुए थे जिनसे मेरा परिचय बहुत कम था। एम. टी. क्लाथ मार्केट इन्दौर के कुछ व्यापारी परिवार के एक सज्जन के पास अभिनन्दन के लिये आये, हम सब एक ही हाल मे बैठे थे। मैं और गजेन्द्रसिंहजी साहब कुछ कार्य सम्बन्धी वार्तालाप कर रहे थे। श्री सुरेन्द्रसिंहजी ने कपड़े के व्यापारियो का स्वागत इलायची-सुपारी से किया लेकिन मुझे अनदेखा कर गये। यह बात श्री गजेन्द्रसिंहजी साहब को अच्छी नही लगी, और लगती भी कैसे, मैं उनका कर्मचारी था। मेरी अवहेलना वे सहन नही कर सकते थे। जैसे ही सुरेन्द्रसिंहजी ने इलायची सुपारी की ट्रे टेबल पर रक्खी श्री गजेन्द्र-सिंहजी साहब तुरन्त खड़े हुए और मेरा स्वागत किया।

श्री गजेन्द्रसिंहजी साहब अपने स्वभाव की शालीनता के कारण बड़े लोकप्रिय थे। अपने कर्मचारियो के साथ, चाहे वह आफिसर हो या चपरासी हो, या मजदूर बड़ा स्नेह रखते थे व उन्हे यथोचित आदर देते थे। प्रत्येक मजदूर और कर्मचारी को वे व्यक्तिगत रूप से जानते थे और उसे कोई कष्ट तो नही है इसका सदैव ध्यान रखते थे।

वे एक कुशल उद्योगपति थे। कर्मचारियो के चुनाव के बारे मे उनकी दृष्टि बड़ी ही पैनी थी, किसी भी व्यक्ति की अव्यक्त कार्यक्षमता को वे फौरन पहचान लेते और उसे साहस देकर उसकी कार्यक्षमता विकसित करने मे पूरा योगदान देते थे। आज उनके उद्योग मे जितने भी जवाबदार आफिसर हैं उन्हे आगे लाने और उनमे कार्य-कुशलता की वृद्धि कर ऊपर उठाने का श्रेय श्री गजेन्द्रसिंहजी को ही है। कार्य के बारे मे वे कठोर नियोक्ता थे। उन्हे प्रत्येक कार्य के व्यवस्थित रूप से जल्दी से जल्दी सम्पन्न होने की अपेक्षा रहती थी, कार्य मे त्रुटियाँ और विलम्ब उन्हे बिल्कुल सहन नही होता था, उनकी इस प्रवृत्ति को मैंने 'जल्दबाजी' की संज्ञा दे रक्खी थी। मेरे मन मे यह धारणा बन गई थी कि जैसी साधारणतया सब उद्योगपतियो मे इस अनुभव की कमी रहती है कि किस कार्य के करने मे कितना समय लगता है, इनमे भी वह कमी है।

एक वार उनके औद्योगिक प्रतिष्ठान के सम्बन्ध मे एक स्टेटमेण्ट शीघ्र ही वनाना था। स्टेटमेण्ट वहुत वडा और साथ ही विलष्ट भी था। उन्होंने मुझे वह स्टेटमेण्ट वनाने का आदेश दिया, मैंने उनके सामने वैठकर ही वह कार्य शुरू किया। आवश्यक कार्यवश मुझे आफिस जल्दी छोड़ना था, मैंने वह स्टेटमेण्ट दूसरे दिन दोपहर तक वनाकर देने का वादा किया और आफिस से घर चला आया, दूसरे दिन सुवह आफिस जाने पर देखता हूँ कि वह स्टेटमेण्ट पूरा स्वय उनके हाथ से वना हुआ मेरी टेवल पर मेरे द्वारा जाँच किये जाने के लिये रक्खा हुआ था। स्टेटमेण्ट वड़े सुन्दर ढंग से वना हुआ और त्रुटि रहित था। फिर तो मन का सव भ्रम दूर हो गया। जो व्यक्ति स्वयं कोई भी कार्य इतनी अच्छी तरह से कर सकता है उसका दूसरो से भी ऐसी अपेक्षा रखना स्वाभाविक ही है।

अपने कर्मचारियो के प्रति आत्मीयता की भावना भी उनमे वडी प्रवल थी, उनके परिवार मे कोई भी आयोजन होता तो उसमे कर्मचारियों को अवश्य निमन्त्रित किया जाता और वे उस आयोजन मे सम्मिलित प्रत्येक कर्मचारी का ध्यान स्वयं रखते। एक वार उनके पिताजी श्रीमान सेठ सुगनमलजी भण्डारी ने एक प्रतिष्ठान के टैक्स सम्वन्धित कार्य को देखने का आदेश दिया। श्री गजेन्द्रसिंहजी साहव उन दिनों अस्वस्थ थे। उन्होने दो दिन वाद ही टेलीफोन पर वात की और मुझसे कहा कि तुम कार्य के लिये कोई योग्य वकील ढूंढकर नियुक्त करवा दो। तुम्हारी अनुपस्थिति मुझसे सहन नही होगी।

श्री गजेन्द्रसिंहजी साहव वडे उत्साही, कर्मठ, सहृदय एवं उदार व्यक्ति थे, जो कोई भी उनके सम्पर्क मे आता वह उनके भव्य व्यक्तित्व से प्रभावित हुए विना नही रह सकता था।

ऐसे श्री गजेन्द्रसिंह जी साहव को कैसे भुलाया जा सकता है—

कहते हैं फानी जिन्हें हम,
वे फना होते नही।
मरने वाले असल में,
हमसे जुदा होते नही॥

☆

एक अधूरी याद ...

□ मन्मथ पाटनी, इन्दौर

तुम्हें कहता है मुर्दा कौन, तुम जिंदों के जिंदा हो।
तुम्हारी नेकियां बाकी, तुम्हारी खूबियां बाकी॥

मेरा श्रीमान् गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी साहब से परिचय सन् १६७० मे हुआ, जब मैंने इन्दौर की एक ब्रेड एवं बिस्कुट फैक्टरी में प्रोडक्शन मैनेजर की हैसियत से कार्य प्रारम्भ किया। उस समय ब्रेड की क्वालिटी अच्छी नहीं आ रही थी। सबसे पहले मैंने मैंदे की क्वालिटी देखी। मैंदे की क्वालिटी खराब थी और इसी कारण ब्रेड खराब आ रही थी। मैंने मैंदा मिल मे फोन किया। श्रीमान् भंडारी साहब उस समय वही थे। उन्होंने फोन पर सब बाते बड़ी धीरजता से सुनी और मैंदे की क्वालिटी सुधारने का आश्वासन दिलाया।

मुझे आश्चर्य उस समय हुआ जबकि श्रीमान् भंडारी साहब उसी दिन दोपहर को, उस समय के हैड मिलर श्री पोल साहब के साथ उस छोटी-सी बेकरी मे स्वयं होकर आये। उन्होने जो मैंदा वहाँ थी और उससे जो ब्रेड बनी थी, उसे श्रीपोल साहब को बताया और उन्होंने विश्वास दिलाया कि अब आपको किसी प्रकार की शिकायत नही रहेगी और क्वालिटी अच्छी प्राप्त होगी। बेकरी मे वे करीब एक घंटा रुके और मैंदे की क्वालिटी के बारे मे मुझसे बात करते रहे।

इस छोटी-सी मुलाकात से मैं बहुत ज्यादा प्रभावित हुआ और मैंने अनुभव किया कि इतने बड़े आदमी होने के बावजूद वे किस प्रकार छोटी-छोटी बातो का ख्याल रखते थे।

मैंने उनके साथ हुई इस छोटी-सी मुलाकात से इतना अपनापन महसूस किया कि मैं उन्हे ब्रेड से सम्बन्धित कई छोटी-छोटी बातो के लिए उन्हे कष्ट देने लगा। परन्तु उन्होने कभी किसी बात को टाला नही और उन्होने मुझे सभी प्रकार का हर सम्भव सहयोग दिया।

दिनाक २४ सितम्बर, १६७१ को सुबह दस बजे मैंने उनसे मिलने के लिए अपाइन्टमेन्ट लिया था। मैं उनके ऑफिस मे जाने ही वाला था कि उस हृदय-विदारक दु:खद घटना का समाचार मिला—और वह महापुरुष कई व्यथित हृदयो को बिलखता हुआ दिव्यज्योति मे लीन हो गया।

आज मैं, उनके लगाये हुए पौधे फ्लोअर एण्ड फूड फैक्टरी, जो कि आज वट-वृक्ष की भांति बढ रहा है, उसी मे कार्य कर रहा हूँ। फैक्टरी मे लगी उनकी तस्वीर जब भी मैं देखता हूँ, उनसे हुई पहली मुलाकात का दृश्य मेरी आंखो के सामने से गुजर जाता है और सोचता हूँ, काश ! मैं उनका सान्निध्य एवं मार्ग-दर्शन का लाभ अधिक समय ले पाता !

बस, तस्वीर आपकी नजर आती है···

□ एम० एस० सुराना
कैशियर फ्लोअर एण्ड फूड लि०

जब याद
आपकी आती है
बरवस आंसू
टपक जाते है
चारों ओर,
नजर फेंकता हूं
बस तस्वीर
आपकी नजर आती है।

पूज्य श्रीमान् गजेन्द्रसिंह जी भैया साहब (सुपुत्र जैनरत्न श्रीमान् सुगनमल जी भण्डारी साहब) से मेरा सम्पर्क अगस्त सन् १९६९ से हुआ, जब मेरी नियुक्ति फ्लोअर एण्ड फूड लि० मे हुई। मुझे उन्होने कैशियर के पद पर चुना था, जब से आज तक मैं उसी पद पर हूँ।

भैया साहब विद्वान् होने के साथ-साथ कुशल उद्योगपति थे। आपका व्यक्तित्व बडा प्रभावशाली था, आँखो मे स्नेह की झलक थी जो बरबस आँखो को अपनी ओर आकर्षित कर लेती थी। स्पष्टवादिता, नम्रता, समय-तत्परता, आत्म-सम्मान आदि आपके चरित्र के विशेष गुण थे।

उन्हे ईमानदारी, कार्य-कुशलता व मेहनत से बड़ा लगाव था। वे स्वयं बहुत मेहनत करते थे। प्रत्येक कर्मचारी पर उनका स्नेह था, चाहे वो आफिसर हो, क्लर्क हो या मजदूर हो, वे प्रत्येक के साथ एकसा व्यवहार रखते थे। अच्छा कार्य करने पर बहुत खुश होते थे, इतना ही नही वे कार्य करने का तरीका भी समझाते थे, वे प्रत्येक कर्मचारी को कुछ बनाना चाहते थे।

चूंकि भैया साहब ने मुझे कैश का काम दे रखा था, फिर भी वे मुझसे सेल्स, परचेज, गेहूँ डिसपेच, ओल्ड वारदाना सेल्स आदि कार्य करवाते थे। समय-समय पर मुझे कहते थे मि० सुराना मैं चाहता हूँ कि आप सब कार्य सीखें। मैं जब भी आपको किसी कार्य को करने को दूं तो आप उसे कुशलता से कर सके। यह विचार उनके मेरे प्रति ही नही अपितु हर कर्मचारी के प्रति थे। वे चाहते थे, मेरा कर्मचारी इतना कुशल हो कि वह किसी भी कार्य को करने में अपने आपको अक्षम न समझे।

भैया साहब मे व्यापारिक सूझ-बूझ इतनी थी कि कोई भी व्यापारी उनके पास जाता था तो वह इतना प्रभावित हो जाता कि बिना सौदा नोट कराए वापस नही जाता था।

भैया साहब इस कम्पनी (फ्लोअर एण्ड फूड लि०) को इतना रोशन करना चाहते थे कि इसका नाम मध्यप्रदेश मे ही नहीं अपितु पूरे भारत में हो। उनके इस सपने को हमारे मैनेजिग डायरेक्टर (स्व० श्री गजेन्द्रसिह जी साहब के सुपुत्र) श्रीमान् जसवीरसिह जी साहब साकार करने मे जुटे हुए हैं।

आदरणीय भैया साहब के दुखद एवं असामयिक निधन पर हम गहन शोक मे समा गए।

उनकी स्वर्गीय आतमा को परम शान्ती प्राप्त हो व हमारी श्रद्धाजलि अर्पित हो।

☆

मौत क्या है, जिन्दगी की
दूसरी तस्वीर है।
जिसने इस रुख से इसे
देखा, वही कामिल हुआ॥

एक अधूरी इच्छा

□ श्रीमती पदमा कालानी
कालानी हाउस
इन्दौर—४५२००१

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन !
संगं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्विकोमतः।

आज वर्तमान की न जाने कौन-सी अज्ञात प्रेरणा अतीत की किसी कथा को सम्पूर्ण मार्मिकता के साथ दोहराने को आकुल है। आज जव कलम हाथ मे लेकर लिखने बैठी हूँ तो मेरे सामने १७ वर्ष पूर्व के वे दिन याद आते हैं जव आदरणीय भाई साहव,भाभी साहिवा इलाहावाद मे हमारे घर पर आए थे, न वो हमारे परिवार से परिचित थे, न हम लोग, सिर्फ मेरे पिताजी एव भाई साहव को वो अपने व्यवसाय के माध्यम से जानते थे। लेकिन पता नहीं भाई साहव और भाभी जी की वातों मे इतना अपनापन हम सभी परिवारीजनो को महसूस होने लगा कि व्यापार व्यवसाय की वातें तो एक तरफ रह गईं और शादी व्याह की चर्चाएँ चलने लगी और इसी प्रसंग मे मेरे पिताश्री ने मेरे लिए कोई उपयुक्त लड़का अगर भाई साहव के ध्यान मे हो तो पूछ लिया। भाई साहव ने तत्काल कालानी परिवार मे लडका है, सुझाया— यह भी कुछ संयोग ही समझिये कि उन्होने तो सहज रूप से वात कही थी और भविष्य मे वह सम्वन्ध पक्का हो गया और मैं उस घर की वहू वन कर इस शहर मे आ गई। नये शहर और नये लोगो के वीच भाई साहव एव भाभी जी का स्नेहपूर्ण वर्ताव इतना आत्मीय लगा कि शव्दो से व्यक्त करना सम्भव प्रतीत नही होता है। मैंने इस घर को अपने वडे भाई का घर ही समझा और अव भी वही रिश्ता है, कहते है कि—

Friendship is the most precious of flowers that grows in the garden of life.

मेरे जीवन की वगिया मे भाई स्वरूप मे एक ऐसा अनोखा पुष्प खिला था जिसकी प्रशंसा मे वर्णन करना अत्यधिक कठिन है। आज मेरी स्मृति अतीत के उस गाढ़े होते हुए धुंधलेपन मे अनेक रेखाएँ खीच रही है। उन रेखाओ का उजलापन आज एक व्यथा से गीला-सा हो रहा है। कितने ही ऐसे प्रसग मेरे हृदय के स्मृति-पटल पर समुद्र की लहर के समान लहरा रहे हैं। मुझे याद आ रहा है, वह दिन जव मिलन क्लव की ओर से एक द्वि-दिवसीय मेला लगाया गया था। जिस लेडीज क्लव का मैं उल्लेख करने जा रही हूँ वह भी उनकी हार्दिक प्रेरणा से ही भाभीसाहव व

हम आठ-दस महिलाओं ने मिलकर बनाया था। नारी शक्ति पर उनकी बहुत श्रद्धा थी। सदैव ही उन्होने नारी को बड़ी ही सम्मानीय दृष्टि से देखा व परखा था। मेले मे पहले दिन कुछ कम लोग आये। उस रात मेरा मन बहुत ही उद्‌विग्न था। अगले दिन सुबह जब मैं मेला मैदान मे कुछ वस्तुएँ ठीक करवा रही थी तभी भाईसाहब एव भाभी जी वहाँ आये। रात की मेरी उदासीन मनोदशा उन्होने भाँप ली थी। बातो ही बातो मे उन्होंने कुछ ऐसी बातें कही, जो भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के १८वे अध्याय के ११वे श्लोक मे अर्जुन को सम्बोधित करते हुए कहा था कि "कर्म ही कर्त्तव्य है, यही सोचकर कर्म करो फल की आशा मत रखो!" उनके इस उद्‌बोधन के पश्चात् हम लोग मेले की सजावट मे लग गये, लेकिन हमारे आश्चर्य का पारावार नही रहा, जब मेले मे अपार जनमेदनी आई और हमे प्रवेश टिकिट बन्द कर देने पड़े। इस प्रकार से उस दिन हमारे उस मेले ने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की। जो उत्साह उस समय भाई साहब ने बढाया उससे उनके प्रति मेरे मन मे एक अगाध स्नेह जागृत हुआ और मैंने अपने मन-मस्तिष्क मे ये विचार बना लिए कि आने वाले रक्षाबन्धन के महापर्व पर भाई साहब को रक्षाबन्धन के कच्चे धागो से भाई के रूप मे बाँध लूंगी, किन्तु विधि के क्रूर चक्र के आगे जब वह समय आया तो मेरी इच्छा अधूरी रह गई और जब कभी भी भौतिक रूप से पूर्ण न हो सकेगी किन्तु आत्मा के आलोक से भाई साहब सदैव हमारे से बँधे हुए है। वह रिश्ता तो शायद ईश्वर भी तोड़ने मे समर्थ नही हो सकेगा, हमारा पथ सदैव अपनी आत्मा के उस ज्वाज्वल्यमान प्रकाश से एवं सद्‌गत दिव्यानुभूति से निरन्तर प्रेरणा के माध्यम से देदीप्यमान करते रहेगे जिससे हम भी समन्वय के पथ पर बढकर उनकी आत्मा को शान्ति पहुँचा सके और उनके मूक आदेशो का परिपालन अन्तरमन से कर सके—

कि जिन्दगी की राह मे फूल भी हैं और कांटे भी
फूलों को चुगते चलो और कांटों को छोड़ते चलो
विष यदि अपना है तो भी मारक है
अमृत यदि पराया है तो भी तारक है॥

इस प्रकार की न जाने कितनी ही बाते उनके सामीप्य मे रोज होती रहती थी, जो वे बिना बोले ही कार्यरूप मे परिणित कर सदैव कर्म करने की प्रेरणा देते रहते थे।

बस, लगता है कि भगवान को भी उनके ये मूक सन्देश इतने मन भा गये कि उन्हे इतनी जल्दी हमारे बीच से अपने पास बुला लिया। हमारी तो प्रभु से यह बहुत बडी शिकायत है कि संसार रूपी रंगमंच पर उनको इतना छोटा-सा पार्ट अदा करने

को क्यो भेजा ! इतनी अल्पायु मे भाई साहब जितने भी लोगों के सम्पर्क में आए उनके हृदय पर अमिट छाप छोड गये ।

लौ की कोमल दीप उन्ही से
तम की एक अरूप शिला पर
तूने दिन के रूप गढ़े शत
ज्वाला की रेखा अंकित कर

अपने सद्कार्यों से आदरणीय भाई साहब अमर हो गये और अपनी अमिट स्मृतियाँ हमारे हृदय-पटल पर छोड गये । उन्हें मेरी सादर श्रद्धांजली । अन्ततः सर्वज्ञ ज्योतिर्मय प्रभुश्री से मेरी हृदय की यही प्रार्थना है—

"When life's journey here is ended
And life pathway you have trod
May your name be written in the
autograph of God."

☆

अद्‌भुत व्यक्तित्व

☐ डा० नेमीचन्दजी जैन
सम्पादक, तीर्थंकर, इन्दौर

दिवगत श्री गजेन्द्रसिह जी भण्डारी से तो मेरे सम्पर्क बहुत कम रहे, किन्तु जब भी उनसे सक्षिप्त भेट हुई मन पर एक अमिट प्रभाव काफी समय तक बना रहा। मैंने उन्हे एक मृदुभाषी, प्रवन्धपटु, व्यवहारनिष्ठ और सुदूरदृष्टि व्यक्ति के रूप मे देखा है। उत्तराधिकार मे उनको जो व्यक्तित्व मिला वह अप्रतिम था और किसी भी अपरिचित पर पहली ही भेट में चुम्बक जैसा प्रभाव डालने वाला था।

वैसे तो सम्पूर्ण भण्डारी परिवार उदार, सूझबूझ सम्पन्न और जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे अपनी गहरी पैठ रखने वाला है किन्तु इन सब गुणो के प्रतिनिधि के रूप मे गजेन्द्रसिह जी को सहज ही देखा जा सकता है। उनका हृदय इतना विशाल था कि वे न केवल उन लोगों के प्रति जो उनसे छोटे थे अथवा उनके अधिन कार्यरत थे, स्नेह, सम्मान और वात्सल्य की कृपा दृष्टि रखते थे। मुझे विश्वास है, उनका व्यक्तित्व जिस स्नेह तेज और प्रतिभा की धातुओ से बना था उनके कुटुम्बीजन अपने चरित्र में उन्हें अक्षुण्ण बनाये रखेंगे।

इस अवसर पर जबकि उनका एक स्मृतिग्रन्थ मुनिश्री महेन्द्र मुनिजी 'कमल' के प्रवचनों के साथ प्रकाशित किया जा रहा है, मैं उनके प्रति एक गहरा सद्‌भाव व्यक्त करता हूँ उनकी स्मृतियों की यह मंजूषा उनसे सम्बन्वित स्नेह सम्पर्कों को उत्तरोत्तर प्रगाढ बनायेगी यह आशा सहज ही की जा सकती है।
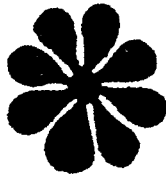
एक जिन्दादिल....

☐ डाक्टर मिसेस पी० नागरथ
मैनेजिंग ट्रस्टी, नागरथ चेरीटेबल ट्रस्ट
डायरेक्टर, पुष्पकुंज हास्पिटल, इन्दौर

गजेन्द्र भैया से मेरी प्रथम मुलाकात जनवरी १९६९ मे हुई थी। लन्दन से सिडनी कार रेस का दिन था। मैंने भी अपनी कार अन्य कारों की तरह बच्चों को रेस दिखाने के लिये सडक के किनारे खडी की थी। किसी ने कहा, 'गजेन्द्र भैया व भुवनजी के घर की छत से रेस का जैसा स्पष्ट दृष्य दूर तक दिखेगा वैसा दूसरा कही से नही।' बस मिनटो मे सब मित्रो की टोली गजेन्द्र भैया के घर जाने को तैयार हो गई। मैंने कहा—मैं तो उन लोगो को नहीं जानती। तो वे लोग बोले—इसमे क्या होता है, वे बहुत अच्छे लोग हैं।

वैसे इन्दौर जैसे छोटे से शहर मे सभी एक-दूसरे को जानते हैं—न जानने का कोई विशेष सवाल न था। सवाल था केवल निकट सम्पर्क का। उस समय मुझे मालूम नही था कि मामूली-सी पहचान को निकटतम सम्पर्क में बदलने के फन मे यह दम्पत्ति कितने माहिर थे।

खैर, हम रेस देखने उनकी छत पर पहुँचे। बहरहाल शायद गजेन्द्र भैया को लगा कि मैं उनके इष्ट मित्रों मे अपने आप को एक अजनबी महसूस कर रही हूँ—शायद दूसरो की दिलचस्पी मे खुद दिलचस्पी लेना उनका स्वभाव ही था—गजेन्द्र भैया ने धीरे से हमारे काम के बारे मे बात शुरू करदी।

मैं अजनबी लोगों को सहसा अपनी रामकहानी बताने की आदी नही हूँ। बल्कि एक डाक्टर होने के नाते खामोशी से दूसरों के दु:ख-सुख सुनना व नपी-तुली राय देना ही मेरा काम रहा है। किन्तु गजेन्द्र भैया मे ऐसा कुछ जादू था कि न जाने कैसे उन्होने मुझसे बहुत कुछ कहलवा लिया, किस तरह मैंने खुद सरकारी नौकरी, बच्चे पालने के लिये छोडी। किस तरह भाई भतीजावाद के कारण अन्याय के साथ डा० चमनलाल को सेवा निवृत्त कर दिया गया और अब किस तरह जिन्दगी मे एक बडी भारी कसक रह गई है। मैंने अपने आप को सब कुछ कहते पाया मैंने उन्हे बताया कि हमारे पास काम भी आता है, पैसा भी आता है, निमन्त्रण भी आते हैं—जिन्दगी हँसते-खेलते गुजर जाती है किन्तु ऐसा लगता है कि हम अमीरो के डाक्टर बनकर रह गये है। हम सर्जन हैं—शल्य चिकित्सा हमारा काम है और यह काम अस्पताल मे ही

सफल हो सकता है। इन्दौर मे गैर-सरकारी अस्पतालो की कमी नही। नर्सिगहोम वहुत हैं किन्तु प्राइवेट नर्सिगहोम मे तो वही जा सकता है जिसके पास पैसा हो हमारे पुराने गरीव मरीज जो हमे ढूंढते हुए पहुँच जाते थे, उन्हे कई वार निराश होना पड़ता था दूसरी वात जो हमे हमेशा खटकती थी, वह थी विशेप प्रकार की शल्य चिकित्सा की। विशेषज्ञ होने के नाते हमें यह अखरता था कि हमारे पूरे प्रान्त में हृदय रोग, फेफड़े, दिमाग व प्लास्टिक सर्जरी के आपरेशन नही होते हैं। जो होते भी थे वन्द हो चुके है। जो आपरेशन हमे करने आते है वो भी सुविधाओं के अभाव से हम कर नही पाते प्राइवेट नर्सिग होम्स मे तो वडी मामूली सुविधाये हैं और उसमें वहुत ही मामूली किस्म के आपरेशन हो पाते हैं। गजेन्द्रजी ने कुछ ही मिनिटों मे यह मुझसे कहलवा लिया—"इस सवका आपने सौल्युशन क्या सोचा है?" उन्होंने पूछा।

मैंने वताया कि हमने एक Charitable trust वनाया है जिसमे चन्दा जमा करके हम एक ऐसी सस्था वनाना चाहते हैं जिसमे यह सव काम हो सके। गरीवों का निशुल्क आपरेशन भी हो सके व Specialization भी पनप सके।

उनकी तीव्र वुद्धि ने इन्दौर की इस वहुत वडी खामी को समझा और इस नये सुझाव को एकदम झेला। भुवनजी को उन्होने आवाज लगाई—"भुवन, सुनो डाक्टर क्या कह रही है। तुम अपने लेडीज क्लव की तरफ से कुछ करो।"

भुवन ने उसी समय अपनी Ladies Club की अध्यक्षा से वात करी और पुष्पकुंज अस्पताल आने का प्रोग्राम वनाया। जव वह महिलाएं आई तो उनके साथ गजेन्द्र भैया भी आये। उन्होंने कुछ देखा, कुछ समझा, डा० चमनलाल से मिले व कुछ ठोस सुझाव दिये।

उनकी समझ-वूझ देखकर हमने उन्हे अपनी Trust मे एक Trustee वनाना चाहा किन्तु उन्होने वावूजी (श्री सुगनमलजी) को ही Trustee वनाने का सुझाव दिया व वावूजी को Trustee वनने पर मजवूर भी किया। कहते थे मैं तो यूँ भी आपके साथ हूँ। Trustee वनने से ही कुछ ज्यादा निकट नही आ जाऊँगा और सचमुच हर तरह से सदैव मदद करते रहे।

आज पुष्पकुंज अस्पताल का नाम गजेन्द्र, वावूजी, डा० मुकर्जी, श्री चितले, सिस्टर वैपटिस्टा, मिसेस शिन्दे आदि के अथक प्रयत्न, सहयोग व आशीर्वाद से ग्रामीण वातावरण मे होते हुए भी शहर के वड़े से वडे अस्पतालो के साथ लिया जाता है। यहाँ हृदय व फेफड़े के आपरेशन के अलावा वाकी सव आम आपरेशन भी होते है।

हर शुक्रवार को डा० एस० के० मुकर्जी गरीब-अमीर सभी Medical Cases की जांच व उपचार करते हैं और दो R.S.O. ड्यूटी करते है। यहाँ भी Rural health team आसपास के ग्रामवासियो का Pracative inaculation, digno-sis, treatment व Health education का कार्य करती है।

पालदा मे एक Group of Villages को adopt करके उनके स्वास्थ्य, साफ सफाई व Pracative inaculation बालवाड़ी, बच्चो को दूध वितरण, बालाहार इत्यादि के लिये भी हमारी Team कार्य करती है। हमारे डाक्टर उनका निःशुल्क इलाज करते है।

खैर, बात गजेन्द्रजी की हो रही थी और कहने का तात्पर्य यह है कि वह उन लोगो से से थे जो अपने को आगे न लाकर गुप्त रूप से मदद करना ज्यादा पसन्द करते थे। ऐसे मित्र विरले ही मिलते है।

गजेन्द्रजी मे कुछ ऐसा जादू था कि शीघ्र ही वह हमारे निकटतम मित्रो मे हो गये। उनके बिना हमारा कोई भी Function कोई भी पार्टी पूर्ण नही मानी जाती थी।

विचारात्मक तत्त्वों मे विचारात्मक, प्रीति-भोज मे हंसमुख व बच्चो में बच्चा बनके रहना उनके स्वभाव का एक अग था।

जिस दिन हमे उनके स्वर्गवास की बुरी खबर मिली, एकाएक विश्वास नही हुआ। ऐसा लगा यह सब झूठ होना चाहिये। भगवान इतना अन्यायी नही हो सकता।

छः महीने बाद बंगलौर मे एक Conference के लिए जाना पड़ा, वहाँ ब्रिगेडियर तलवार मिले। हम सब कार मे कही जा रहे थे कि उन्होंने कहा गजेन्द्र मेरी चिट्ठी का जवाब क्यो नही देता ? और फिर जब हमने कारण बताया तो कार दुर्घटना (accident) होते-होते बची। ब्रिगेडियर तलवार के कार चलाने वाले हाथ काप गये। 'उन जैसा हर क्षण जीवित व जिन्दादिल इनसान मृत कैसे हो सकता है— इसका क्या जवाब है। मैं तो सिर्फ इतना ही कह सकती हूँ कि मित्रों के हृदय मे व मित्रो की याद मे वह हमेशा जीवित रहेंगे।

यद्यपि वे पुष्पकुंज अस्पताल के ट्रस्टी नही थे किन्तु उसकी प्रगति के लिए सदैव सक्रिय रहते थे। अचानक उनके चले जाने से मानो ये अस्पताल जैसे लावारिस हो गया हो।

☆

कुछ यादें....

☐ हरिकिशन मुछाल

प्रसिद्ध वस्त्र व्यवसायी

एम० टी० क्लाथ मार्केट, इन्दौर

श्रद्धेय गजेन्द्रसिंह जी भैया साहब के जीवन के सम्बन्ध मे मेरे कुछ संस्मरण यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ—

भण्डारी परिवार से हमारे परिवार के सम्बन्ध काफी वर्षो से घर-जैसे रहे हैं। वस्त्र व्यवसाय मे सलग्न होने की वजह से दिन-प्रतिदिन यह सम्बन्ध और निकटतम होते चले गये।

भण्डारी मील के सेल्स का समस्त कार्य आदरणीय श्रीमान् सुगनमल जी भैयासाहब स्वय देखते थे, अतः उनका हमारे प्रतिष्ठानो के प्रति विशेष स्नेह रहा। यही कारण था कि हमारे समस्त प्रतिष्ठानो का व्यवसाय विशेषरूप से भण्डारी मील के साथ होना स्वाभाविक था। इसी तारतम्य मे मैं आदरणीय सुगनमल जी भैया साहब के ज्येष्ठ पुत्र श्रद्धेय गजेन्द्रसिंह जी के निकट सम्पर्क मे आया। वे भण्डारी परिवार के अत्यन्त उत्साही एवं होनहार सदस्य थे। उद्योगो को बढ़ाने मे उनकी एक विशिष्ट शैली थी और वे स्वयं उसमे रुचि लेकर उनके विकास के लिए प्रयत्नशील रहते थे। मुझे भी अपने स्वय के उद्योग मे काफी अभिरुचि थी और जब कभी भी हम एक-दूसरे से मिलते थे स्वयं चलकर मुझ से मेरे उद्योगों एव व्यवसाय के बारे मे पूछते रहते। उनके ये शब्द, 'क्या नया जूना चल रहा है' मैं कितनी आत्मीयता थी। जब कभी भी उनके इन शब्दो की स्मृति मुझे आ जाती है तो बरबस ही उनकी छवी मेरे सामने आ जाती है। वे सदैव कुछ न कुछ नई बात उद्योगो के सम्बन्ध मे बताते रहते थे, साथ ही तत्पर होकर अपनी राय भी स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करते। मुझे यह कहते हुए गर्व है कि आज भण्डारी परिवार के पास जो भी उद्योग है वे श्रद्धेय गजेन्द्रसिंहजी की अनूठी सूझबूझ से ही स्थापित हो पाये हैं। उनकी सूझबूझ से ही देवास मे प्रदेश का सर्वप्रथम साल्वेंट एक्सट्रैक्शन प्लाण्ट डाला गया और भण्डारी क्रासफिल्ड्स तथा फ्लोअर एण्ड फूड लिमिटेड जैसे आधुनिक उद्योग स्थापित हो सके, जो आज भी सफलतापूर्वक चल रहे है।

श्रद्धेय गजेन्द्रसिंहजी किसी भी मुश्किल से घबराते नही थे। उनकी यह खास विशेषता थी कि वे अपने स्नेहीजनो से कोई भी बात छुपाते नही थे। ऐसे उत्साही व्यक्ति का हमारे बीच से चले जाना जहाँ भण्डारी परिवार के लिए महान् क्षति है वही उद्योगो के विकास एव उनके स्नेहीजन जिन्हे वे निस्वार्थ सहयोग

एव मार्गदर्शन देते थे उनके लिए भी श्रद्धेय गजेन्द्रसिह जी के न रहने से एक ऐसी क्षति है जो आने वाले इन वर्षों मे पूरी होती दिखाई नही देती।

वे न सिर्फ उद्योग एवं व्यवसाय को ही उन्नत करने मे लगे रहे लेकिन साथ ही साथ सामाजिक कार्यो मे भी काफी रुचि लेते रहे तथा उन्हें सक्रिय योगदान भी दिया। उनका न होना सभी सस्थानो के लिए भारी क्षति है। मेरी तो ऐसी मान्यता है कि श्रद्धेय गजेन्द्रसिह जी का न होना ही भण्डारी मील का जाना है।

●

☐ श्री भंवरलाल धाकड़, इन्दोर

जन्म और मृत्यु, यह एक विधाता का अटल नियम है—किन्तु बहुत कम व्यक्ति ऐसे होते है, जो जीवन को सार्थक कर जीने योग्य वनाते हैं।

श्री गजेन्द्रसिह भैया ने अल्पायु मे ही हम सव स्नेहीजनों से विदा लेली। वे मेरे सामने ही वड़े हुए, देश व विदेश मे उच्च शिक्षा प्राप्त की और अपना कार्य अत्यन्त ही योग्यतापूर्वक सम्हाला। वे हमेशा मुझसे वड़ी ही आत्मीयता एवं श्रद्धा के साथ मिलते थे।

हर समय उन्हे मैंने मुस्कराते देखा। उनका स्वभाव वडा सरल, सौम्य और उदार था। कार्य करने को उनमे अदम्य उत्साह था और साथ ही हर कार्य मे दृढ निश्चय एवं आत्म-विश्वास की एक झलक भी।

उनकी मधुरवाणी, मिलनसारिता और हर एक के प्रति सहानुभूति हम सव के लिये एक उदाहरण है। उनके गुणो को याद करना ही आज उनकी सच्ची स्मृति है।

उनकी याद मे जो स्मारिका वन रही है, उसके लिये मेरी हार्दिक शुभकामनाएं हैं। मुझे वड़ी ही प्रसन्नता हुई है कि यह शुभ कार्य हाथ मे लिया गया है।

●

☐ एम० टी० तातेड

फ्लोअर एण्ड फूड लिमिटेड
२७ महात्मागांधी रोड, इन्दौर

सन् १९४४ मे प्रथमवार मध्यप्रदेश के प्रसिद्ध उद्योगपति श्रीमान जैनरत्न सुगनमलजी साहब भण्डारी से नौकरी के सम्बन्ध मे मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्होने मुझे भण्डारी मिल्स स्टोर्स मे नियुक्त कर अनुग्रहीत किया। सन् १९५० मे मुझे इण्डस्ट्रियल ट्रेडर्स में डेप्यूटेशन पर भेजा गया और वही मैं स्वर्गीय श्रीमान गजेन्द्रसिहजी भण्डारी के निकट सानिध्य मे आया और तब से लेकर आज तक उन्हीं की विभिन्न कम्पनियो मे सेवा करते आ रहा हूँ। इस समय मे फ्लोअर एण्ड फूड लिमिटेड मे सैक्रेटरी के पद पर कार्य कर रहा हूँ। स्वर्गीय गजेन्द्रसिहजी भैया साहब के सम्बन्ध मे, मैं अपने कुछ संस्मरण यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ।

इण्डस्ट्रियल ट्रेडर्स की भोपाल शाखा से जब मेरा स्थानान्तर इन्दौर किया था तो श्रीमान भैया साहब ने मुझसे कहा, मि० तातेड, जितना कमीशन आप भोपाल मे प्राप्त कर रहे थे, उतनी रकम की वृद्धि फिलहाल आपके वेतन मे नही की जा सकती। अत. आपको कुछ समय के लिए क्षति उठानी पडेगी परन्तु नया उद्योग प्रारम्भ होने पर मैं आपकी इस क्षति की पूर्ति कर दूँगा। उन्होने बडी ही आत्मीयता से मुझे समझाया कि, "वर्तमान की क्षति भविष्य की उन्नति के लिए आवश्यक हो तो उसे उठानी पड़ती है। उद्योग के सभी कर्मचारी सयुक्त परिवार के सदस्य होते है, अतः परिवार की आय कम होने पर सबको ही उसका समायोजन करना चाहिये।" श्रीमान भैया साहब के स्नेह व आत्मीयता को देखकर मैंने बिना किसी हिचकिचाहट के उनके आदेश का पालन किया। समय आने पर श्रीमान भैया साहब ने जैसे मुझे कहा था उसके अनुरूप करके मुझे अनुगृहीत किया।

स्वर्गीय श्रीमान गजेन्द्रसिहजी भैया साहब के प्रतिष्ठानो मे काउ एण्ड गेट इण्डिया लिमिटेड भी एक संस्था थी। इसकी स्थापना उन्होने उज्जैन जिले के मक्शी नामक स्थान पर की थी। इस संस्था मे भी मैंने अपनी सेवाएँ दी थी।

एक बार जीप द्वारा पाट डाक बगले से दूध के लिये दूध उत्पादको से मिलते हुए जब घोसला के निकट आये तो ड्राइवर का सन्तुलन बिगड जाने से हमारी जीप रेल्वे पटरी को पार करती हुई गढ्डे मे जा गिरी। ड्राइवर को तो वही लकवा हो गया और मुझे काफी चोटें भी आई। जीप को गाँव वालो के सुपुर्द कर हम उज्जैन अस्पताल लाये गये। वहाँ हमारी जाँच और एक्सरे किये गये। मैं तो रात मे ही इन्दौर आ गया। दूसरे दिन सुबह श्रीमान भैयासाहब को जब इसकी सूचना मिली तो वे स्वय उसी वक्त मुझे देखने पधारे तथा ड्राइवर को भी जिसकी कि हालत अत्यधिक नाजुक थी, देवास देखने भी गये। ड्राइवर को उन्होने तसल्ली दी तथा उसके इलाज का सम्पूर्ण खर्च वहन किया और माकूल आर्थिक सहायता भी दी।

भैया साहव के इस नैतिक एव सहानुभूति पूर्ण व्यवहार से कर्मचारी एवं दुर्घटनाग्रस्त परिवार काफी प्रभावित हुए।

कार्यालयीन कार्य के सम्वन्ध मे श्रीमान भैया साहव पूरी जानकारी रखते थे। उनमे कुशल प्रशासक के समस्त गुण विद्यमान थे। एक वार सभी कर्मचारियों की टेवल तथा दराज का अवलोकन किया। कुछ ऐसे पत्र मिले जिनका प्रत्युत्तर नही दिया गया था। उन्होने मुझे केविन मे वुलाकर कहा, जो भी पत्र कार्यालय मे प्राप्त हो, वे चाहे आवश्यक हो या अनावश्यक किन्तु उनके प्रत्युत्तर कार्यालय से दिया ही जाना चाहिये। श्रेष्ठ प्रशासक की यह पहली आवश्यकता है। उस दिन से मैं प्रत्येक पत्र का प्रत्युत्तर कार्यालय मे ही नही वल्कि अपने व्यक्तिगत जीवन मे भी देता हूँ। यह उनकी ही प्रेरणा का प्रतिफल है।

आज श्रीमान भैया साहव हमारे वीच नही रहे किन्तु उनकी अनगिनित स्मृतियाँ आज भी हमे अपने कर्तव्य से विमुख नही होने देती और हम उनके मार्ग-दर्शन से निरन्तर प्रगति के पथ पर वढ़ते चले जा रहे हैं।

☆

☐ **श्री आर० एम० वंसल**
रवीन्द्रनाथ टैगोर मार्ग, इन्दौर

यो तो क्षितिज पर कई तारो का उदय होता है इनमे से कई लुप्त हो जाते हैं, कई काल के अनत गर्भ मे समा जाते है परन्तु इनमें से कुछ ही ऐसे होते है जिनका कि प्रकाश अद्यावधि तक दूसरो को मार्ग प्रशस्त करता रहता है। ऐसे ही महान पुरुष स्वर्गीय श्रीमान गजेन्द्रसिह जी साहव भण्डारी थे।

मेरी उनसे पहली वार मुलाकात तव हुई थी जवकि मैं नौकरी वावत उनसे मिलने गया था। तव ही मैं उनसे इतना प्रभावित हुआ कि मैं उनके समक्ष मन्त्रवत् निरूपित हो गया। उनके ये शव्द आज भी मुझे ध्यान आ जाते है आदमी को पैसे के लिये ही सव कुछ नही करना चाहिये वल्कि उसे अपने को इस लायक वनना चाहिए की वह काम मे कही भी किसी से पीछे न रहे, तुम पैसे की कमी फिक्र मत करना वस मुझे तो काम करके दिखाओ" आज भी मैं कभी भी ऐसा महसूस नही करता हूँ कि मैं कही वाहर काम कर रहा हूँ। वे हमेशा कहते थे कि आप लोग इसे अपनी ही फैक्ट्री समझ कर काम करें। इसमे होने वाले हानि-लाभ को भी स्वयं का ही समझे। और यही कारण है कि आज भी यहा कार्य करने वाला प्रत्येक व्यक्ति इसमे होने वाले नुक्सान को स्वय का नुक्सान समझता है क्योकि स्वयं भैया साहव प्रत्येक कर्मचारी के साथ एक पारिवारिक सदस्य जैसा वर्ताव किया करते थे। प्रत्येक व्यक्ति को आदमी वनाने वाले एक सफल शिल्पज्ञ के, मैं और कई सैकड़ो कर्मचारी उनके ऋणी रहेगे।

भुलाना असंभव है…

□ श्रीमती शशिमिश्रा
नई दिल्ली

स्नेहशीला श्रीमति भण्डारी,

सस्नेह नमस्कार,

आपके पत्र से विदित हुआ कि आप पूज्य भाईसाहव श्री गजेन्द्रसिंह जी साहव की स्मृति में एक प्रवचन पुस्तक का प्रकाशन करवाने जा रही है, जानकर मन में वड़ी खुशी भी हुई और मन भारी भी हो गया। ईश्वर आपको एवं परिवार को इस कार्य मे सत्-सत् सफलता प्रदान करें यही हम दोनो की हार्दिक प्रार्थना है।

आपने हमको भण्डारी साहव के प्रति कुछ संस्मरण लिखने को कहा, लिख तो रही हूँ, पर यह मानने को मन तैयार नही है कि भण्डारी साहव हमारे वीच मे नही हैं, पर फिर भी सच्चाई को झुठलाई नही जा सकती।

श्री भण्डारी साहव के सम्पर्क मे जो भी एक वार आ गया उनके व्यक्तित्व को भुलाना सम्भव नही हो सकता, हम लोग अपनी जीवन-यात्रा मे शायद ही किसी ऐसे मित्र के सम्पर्क मे आये हों जिसका व्यवहार इतना सरल एवं प्रेमपूर्ण और स्वभाव इतना मधुर एवं दमन रहित हो। साक्षात् लक्ष्मी-पुत्र होने के पश्चात् भी जो सरलता एवं विनम्रता उनमे थी, वह गुण तो उनका अनुकरणीय है। कभी परिस्थितियो से हारना सीखे ही नही। हार को जीत मे वदलने का अदम्य साहस उनमे था, हमने वह इन्द्रौर मे रहे तव देखा।

भण्डारी साहव के जीवन का अत तो एक शानदार अन्त है—जितनी कम आयु मे भगवान ने उन्हे हमसे छीन लिया उससे यही सिद्ध होता है कि जो इस संसार मे सभी को प्रिय होते है, वह भगवान को भी शायद अत्यधिक प्रिय होते हैं। उनके विषय मे जितना लिखूं उतना थोड़ा है। जो आदर व सम्मान हमारे मन मे उनके लिये है, वह लिख कर शायद मैं शव्दो मे सीमित नही कर सकूंगी। उनकी स्मृतियों को भुलाना कभी भी सम्भव नही है परन्तु 'अन्तर्दृष्टि' के माध्यम से उनकी स्मृति सदा हमारे हृदय पटल पर अकित रहेगी। उनका नाम हमेशा अमर रहेगा। वे सद्गत दिव्यानुभूति से यहां ऐसी प्रेरणा भेजते जायें कि जिससे आप समन्वय के पथ पर आगे वढ़े।

इन्ही शुभ कामनाओ सहित

गजेन्द्रसिंहजी : एक कर्मयोगी व्यक्तित्व

☆ सौ० कृष्णा अग्रवाल
सदस्या, केन्द्रिय समाज कल्याण बोर्ड
इन्दौर

स्वर्गीय गजेन्द्रसिंहजी का व्यक्तित्व एक ऐसी प्रतिमा थी—जिसने जीवन मे विचारधारा और कर्म का समन्वय किया और जो कुछ कहा—उसे विचारो मे परिवर्तित किया। मैंने उन्हे बहुत निकट से देखा और पाया कि उस विशाल काया में जो महान् हृदय छिपा था—उसके रग-रग मे समाज के लिए कुछ काम करने की तडपन थी। दीन-दुःखियों के लिए वेदना थी और कुछ काम कर उन्हे राहत देने की इच्छा थी। वे अपने व्यवसाय के माध्यम से ही कुछ ऐसा रास्ता निकालना चाहते थे—जिससे वे बेरोजगारी कम करने मे सहायक हो सकें और साथ ही गरीबों की कुछ आर्थिक मदद भी हो सके। यह उन्ही का सुझाव एवं कल्पना थी कि हमारी संस्था ग्रामीण जीवन-ज्योति राऊ में एक बेकरी यूनिट की स्थापना की जावे। जिससे गरीब, असहाय एवं निर्धन बहिनो की कुछ आर्थिक सहायता हो सके। आज वे पार्थिव शरीर से अपनी उस योजना को मूर्त्त रूप होते हुए नही देख सकते है। लेकिन मेरा मस्तिष्क उनकी इस सूझ-बूझ से श्रद्धापूर्वक नत-मस्तक है। प्रभु उनकी उस महान आत्मा को चिरस्थायी शान्ति प्रदान करें। तथा गरीबो के हृदय से निकलने वाली दुआएं उनकी आत्मा के महाप्रयाण मे सहायक हो।

मैं तो मानती हूं कि लक्ष्मी की गोद मे पलने वाले विरले ही ऐसे व्यक्ति होते है जो दूसरों का दुःख अपना समझें और उसके लिए कुछ विचार करें। स्वर्गीय गजेन्द्रसिंह जी ऐसे ही कर्मयोगी व्यक्तित्व थे। आज वे नही हैं। लेकिन उनकी जिन्दगी की प्रेरणा स्रोत भुवनकुमारी बहिन भण्डारी को समाज हित की पूर्ति करने हेतु हम सबके बीच मे छोड गये। एक सच्ची जीवन साथिन होने के नाते भुवनकुमारी बहन उनकी कल्पानाओं को साकार करने का अपना कर्त्तव्य निभा रही हैं और जिस संस्था मे वे जब कभी भी अध्यक्ष रही उन्होंने कुछ न कुछ समाज के चिरस्थायी कार्य के लिए समर्पित किया। मेरी शुभ कामना है कि प्रभु उनमे स्वर्गीय गजेन्द्रसिह जी की समस्त शक्ति भर दें जो उनके जीवन की ज्योति द्विगुणित होकर प्रकाशित हो। जिससे इस दुःखी पीडित समाज को अधिक से अधिक राहत मिल सके और एक आदर्श पति-पत्नि की प्रतिमा का स्वरूप समाज मे प्रतिष्ठापित हो।

□

☐ **श्री जयन्तिभाई मनसुखभाई**

हेमानी एण्ड कम्पनी, इन्दौर

फ्लोअर एण्ड फूड लिमिटेड के संस्थापक सेठ श्री गजेन्द्रसिहजी साहव भण्डारी से मेरे व्यावसायिक सम्वन्ध थे। वे एक समदृष्टि भावना के व्यक्ति थे, हर विचारों को परखने वाले सही पारखी थे। चेहेरे से वे हमेशा प्रसन्नचित्त नजर आते थे तथा अपने आगत का मधुर मुस्कान के साथ स्वागत करते थे।

विशाल वुद्धि, विशाल कार्य एवं रिद्धि-सिद्धि के धनी श्री गजेन्द्रसिहजी वास्तव मे 'गजेन्द्र' ही थे।

सेठ श्री गजेन्द्रसिह जी से मेरी प्रथम भेंट सन् १९६७ मे हुई थी। जव कुछ समय पूर्व ही मैं अपने गृहनगर (धौराजी) गुजरात से इन्दौर आया था तथा यहाँ पर व्यावसायिक काम-काज की खोज मे था, उस समय फ्लोअर एण्ड फूड लिमिटेड का चापड (wheat bran) गुजरात के मार्केट मे जाना प्रारम्भ हो गया था। हमारी दुकान पर भी कुछ माल आया। माल की क्वालिटी एव पेकिग से गुजरात के व्यव-सायी एवं उपभोक्ता वहुत प्रभावित हुए और उसी सन्दर्भ मे मेरी उनसे प्रथम भेंट उनके कार्यालय मे हुई थी। उनके व्यक्तित्व से मैं वहुत अधिक प्रभावित हुआ। उनमे अपने ग्राहकों को समझाने की अद्‌भुत शक्ति थी। जव मैंने अपने को गुजरात का रहवासी वताया तथा वहाँ के वाजारो की जानकारी दी तो उन्होने मेरे मार्फत ही गुजरात मे चापड़ का व्यवसाय करने का आश्वासन दिया जिसे उन्होने हमेशा निभाया तथा मुझे मेरे व्यावसायिक कार्य को वढ़ाने मे वहुत वडा योगदान किया।

स्व० सेठ गजेन्द्रसिह जी भण्डारी द्वारा किए गये सहयोग का ही प्रतिफल है कि गुजरात के कई क्षेत्रों मे मेरे व्यावसायिक कार्यों मे आशातीत प्रगति हुई हैं।

अत्यधिक व्यस्त होने के वावजूद भी जव-जव मैं उनके कार्यालय मे जाता तो वे मुझसे मिलने के लिए समय अवश्य निकाल लेते थे। पता नही उनमे क्या देवी शक्ति थी कि उनसे मिलने के वाद नए-नए अनुभव एव ज्ञान प्राप्त हो जाता था।

आज सेठ गजेन्द्रसिहजी हमारे वीच मे नही रहे लेकिन उनकी कार्य-कुशलता की अमिट छाप सदैव हमारे वीच विद्यमान रहेगी।

☆

आदमी के पारखी……

□ श्री छोटेलाल लुनिया

मृदुभाषी और सरल स्वभावी, कर्मनिष्ठ गुण ग्राही ।
करुणा आवे आप हृदय मे, देखत पीर पराई ।।

श्री गजेन्द्रसिहजी भण्डारी के सम्पर्क मे मुझे कुछ लम्बे अरसे तक रहने का मौका मिला । उनके व्यवहार और विचारो मे मैंने जो विशेषता देखी उसी आधार पर उपरोक्त पंक्तियाँ लिखने को मैं प्रेरित हुआ ।

श्री गजेन्द्रसिह भैया मे अटूट साहस, और अदम्य उत्साह यह गुण विशेष रूप से पाये जाते थे । मुझे सन् १९६४ के उनके कहे हुए शब्द जब भी याद आते है तो कार्य करने मे विशेष चेतना आ जाती है । उन दिनो एक नया उद्योग स्थापित करने की योजना भैया गजेन्द्रसिह जी के सम्मुख थी । उस योजना से सम्बन्धित स्थानों पर अध्ययन किया गया और विदेशो मे भी जाकर भइया गजेन्द्रसिहजी ने जानकारी प्राप्त की । योजना को मूर्त रूप देने के पहले उद्योग का मुख्यालय कहाँ रखा जाय इसका सर्वे करने का कार्य मुझे सौपा गया, सर्वे रिपोर्ट मे जब मैंने यह बतलाया कि मालव क्षेत्र मे इस योजना के सफल होने की सम्भावना नही है तब भैया के यह शब्द थे कि कठिनाइयों से झूझकर सफलता प्राप्त करना इसी मे विशेषता है । दूसरे के किये हुये कार्य को करने मे क्या महत्त्व है । मक्सी जैसे छोटे से गाँव मे विशाल उद्योग की शुरूआत होते ही पूरे शाजापुर जिले के पशुपालको मे एक नई जागृति आ गई । भण्डारी उद्योग समूह उन दिनो मालवे मे अपना विशेष स्थान रखता था, इस कारण उद्योग के कार्यकर्ताओं को जिले के हर स्थान पर जनता का सहयोग मिला ।

भैया गजेन्द्रसिहजी गर्मी के दिनो मे भी दोपहर को मक्सी आते, मशीनों के पास खडे रहकर काम करने वालो का मार्गदर्शन देते हुये कोई अपरिचित इन्हे देख कर यह नही जान पाता कि वातानुकूलित कक्ष मे बैठकर ठण्डी हवा लेने वाले यही गजेन्द्रसिह भैया है । बोलचाल की भाषा मे मृदुता और आत्मीयता के व्यवहार ने कार्यकर्ताओ को इतना प्रभावित किया कि उद्योग के उत्थान मे हर श्रमिक पूरी शक्ति के साथ लग जाता था ।

जिले के कृषक भी भैया को विशेष सम्मान देते थे । एक बार शाजापुर के पास किसी गाँव के प्रगतिशील कृषक ने शादी मे भैया को निमन्त्रित किया । मैं भैया के साथ था । कार्यक्रम से निवृत्त होकर जब हम लोग विदा होने लगे तो उपस्थित जन-समुदाय

जिन में जिले के प्रभावशाली व्यक्ति और कई वयोवृद्ध सज्जन भी थे। सब के सब भैया को गाडी तक विदा करने आये। नवयुवक उद्योगपति ने अपने व्यवहार का असर गाँव मे भी बता दिया।

अब अन्त मे भैया गजेन्द्रसिंह जी के जीवन की मुख्य विशेषता की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। जिस प्रकार जौहरी हीरे की पहचान करने मे सिद्धहस्त होता है उसी प्रकार योग्य कार्यकर्ता की पहचान अपनी पैनी निगाह से यह कर लेते थे। आज भी उनके उद्योग में ऐसे कई पदाधिकारी है जिन्हे साधारण श्रेणी मे प्रवेश मिला था।

एक युवक महाशय जो अपनी शिक्षा पूर्ण करने के बाद भण्डारी परिवार की सेवा मे आये थे। सर्वप्रथम उन्होने मेरे मातहत दो वर्ष तक कार्य किया। इस युवक की कार्य-कुशलता को श्रीमान गजेन्द्रसिंह जी भैयासाहब की पैनी निगाह ने पहचान लिया और वे इस युवक को मेरे पास से अपनी सस्था मैसर्स इण्डस्ट्रियल ट्रेडर्स के लिए ले गये। मुझे याद है कि उन्होने इस युवक को इतना प्रशिक्षित किया कि आज यही युवक उनके भारी उद्योग मैसर्स फ्लोअर एण्ड फूड लि० इन्दौर के सेल्स मैनेजर है।

मनुष्य का उज्ज्वल बनना यह हर व्यक्ति की योग्यता पर निर्भर है ही साथ ही जिसके कार्य का पारखी भी उदार एवं सहृदय होना भी जरूरी है। यह गुण विशे-षता भैया मे पूज्य पिताश्री जैनरत्न सेठ सुगनमलजी की ही देन थी। भण्डारी उद्योग समूह के मेरे ४५ साल में एक सौ व्यक्तियो से भी अधिक मेरी स्मृति मे है जो सेठ साहब के मार्गदर्शन मे साधारण श्रेणी से उच्च अधिकारी बने।

यह देखकर प्रसन्नता होती है कि भैया गजेन्द्रसिह जी के उन्नत विचारों के स्वप्नो को साकार करने के लिये उनके ज्येष्ठपुत्र श्री जसवीरसिहजी और उनके बन्धु पूर्ण प्रयत्नशील हैं।
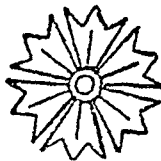
गुणों की मूर्ति थे....

☐ मोहनलाल कीमती, इन्दौर

गजेन्द्रसिंह नाम के अनुरूप गजेन्द्र ही थे। सूर्य के उदय के साथ जैसे उसकी किरणों का प्रकाश आसमान में चारो ओर फैलता है वैसा ही एक अभूतपूर्व व्यक्तित्व का आगमन उनके जन्म के साथ ही भण्डारी परिवार मे हुआ। सभी दोरतो मे प्रगति एवं अभिवृद्धि हुई। वे अपने पिता के अनन्य भक्त थे। गजेन्द्रसिंह मेरा वडा आदर करते थे मेरे प्रति उनका अगाढ स्नेह एव श्रद्धा थी वो मुझे दादा कहते थे।

वचपन से ही गजेन्द्रसिंह जव वे भण्डारी मिल पर रहते थे वडे ही मिलनसार थे।

किशोर अवस्था में भी चुलवुले नही थे कहने का तात्पर्य है वे (वालक) थे— वडे ही समझदार और सन्तोपी।

जव वे डेली कालेज की किट मे नीली नेकर और श्वेत शर्ट मे आते तो मानो ऐसा प्रतीत होता था जैसे कोई अनुशासनवद्ध वालक आ रहा है उस वचपन मे भी उनकी अनुशासन के प्रति एक निष्ठा थी।

यद्यपि ये श्याम सलौने वचपन मे शारीरिक तौर पर काफी छोटे थे परन्तु दिल के वड़े ही गजेन्द्र थे (नाना के अनुरूप ही)।

उनका जीवन वडा ही नियमित था। डेली कालेज से जव तव छुट्टी मे घर आते तो सीधे माता का सानिध्य पाने को लालायित रहते। आते ही पूछते नाना वाईसा कहाँ है और उनकी गोद मे लोटना जो कि उनकी माता के प्रति प्रमुख आदतो मे से एक था अगाढ़ प्रेम और श्रद्धा का प्रतीक था। वे एक आज्ञाकारी पुत्र थे, सरल हृदयी निरभिमानी जैसे महान मानवीय गुणो की साक्षात् मूर्ति थे।

आत्म विश्वास तो गजव का था उनमे। उद्योगो को आगे वढ़ाने मे नई-नई फैक्ट्रियाँ खोलने मे व्यस्त रहने के वाद भी वो सामाजिक कार्यो मे भाग लेने मे हमेशा तत्पर रहते थे। उदयपुर मे निर्मित सस्थान इसके उदाहरण है। प्रगतिशील युवक थे, अनेकों वार विदेशों की यात्रा कर आये थे किन्तु पश्चिम की सभ्यता उन्हे डिगा नही पाई थी हर वार विदेश से आने पर उनका परिवार के प्रति, भारतीय संस्कृति के प्रति जो प्रेम भाव था उसमें वृद्धि ही होती थी। जैनदर्शन के पुजारी गजेन्द्रसिंह एक अपूर्व व्यक्तित्व के धनी थे।

उनके दिवगत होने के साथ ही ऐसा प्रतीत होता था जैसे आज नन्दनवन का वह सूर्य अस्त हो चुका है।

☆

स्मृति के साथ अन्तर्दृष्टि

□ श्री हस्तिमल झेलावत, इन्दौर

आत्मार्थी सन्त पं० मुनिश्री रामनिवासजी महाराज, मेवाड़ केसरी मुनिश्री मोहनलालजी महाराज एवं युवा कविरत्न श्री महेन्द्रकुमारजी 'कमल' आदि सन्त मंडल का इन्दौर नगर का यह वर्षावास दीर्घकाल तक स्मृति-पटल पर अंकित रहेगा। विद्वान वक्ता श्री महेन्द्रमुनिजी 'कमल' ने अपने ओजस्वी विचारों द्वारा काव्य का सुमधुर पुट देकर जन-जन के हृदय को जिस प्रकार सिंचित किया वह विशेषरूप से स्मरणीय रहेगा। सन्त मण्डल के इस वर्षावास ने सफलता के उन्नत गिखर को छू लेने के साथ ही इतिहास के पृष्ठो को भी मुखरित किया है। ऐसे विद्वान सन्त के मानव कल्याणकारी विचारो को मात्र चार दिवारी तक सीमित रखने मे उन्हे उन्मुक्त वातावरण मे प्रसारित करना समय का तकाजा है। इसी पावन उद्देश्य के प्रति विचारों को केन्द्रित करते हुये वर्षावास के रचनात्मक स्वरूप के अनुरूप मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'कमल' के सामयिक प्रवचनों को पुस्तक रूप मे प्रकाशित किया जाना अति आवश्यक कार्य था।

श्री स्थानकवासी जैन श्रावक सघ इन्दौर के अध्यक्ष जैन रत्न श्रीमान सेठ सुगनमलजी भण्डारी व उनके परिवारीजनो ने इस पावन कार्य को अपने हाथों मे लेने का निर्णय किया। स्व० श्री गजेन्द्रसिहजी भण्डारी की धर्मपत्नि श्रीमती भुवन भंडारी ने इस कार्य मे विशेप रुचि लेकर मुनिश्री के प्रवचनों का कुशलता के साथ संकलन किया। स्व० श्री गजेन्द्रसिहजी भण्डारी की स्मृति मे, ज्ञान ज्योति के दिव्य प्रकाश मे व्यक्ति स्वय का सूक्ष्म अवलोकन करने की दिशा मे प्रवृत्त हों इसी उद्देश्य से "अन्तर्दृष्टि" पुस्तक का प्रकाशन किया जा रहा है। पुस्तक प्रकाशन का जो जनोपयोगी महत्त्वपूर्ण कार्य भण्डारी परिवार ने किया है, वह सराहनीय एवं आदर्श है। इस पुनीत कार्य के द्वारा उन्होने अपने अर्थ को सार्थक किया है।

मैं इस ज्ञानवर्धक मगल कार्य के प्रति हार्दिक शुभकामना व्यक्त करता हूँ। आशा है यह पुस्तक मानव जाति को सन्मार्ग प्रदर्शित कर सार्थक सिद्ध होगी।

इसी शुभ अपेक्षा के साथ....

□

स्व० भण्डारी साहब का बहुमुखी व्यक्तित्व

☐ श्यामसुन्दर पण्डित

श्री गजेन्द्रसिंह जी से मेरी पहली मुलाकात एक मित्र के घर हुई। इसके पश्चात् तो कई बार मिलना हुआ जो एक अत्यन्त प्रगाढ़ और विश्वसनीय दोस्ती के स्वरूप में विकसित हुआ। श्री गजेन्द्रसिंह जी मेरे एक अनन्य मित्र थे, जिनके प्रेम एवं विश्वास की पूर्ति अब संभव नहीं है। उनके साथ संघर्षों का एक अनूठा सिलसिला है जिसका पूर्ण विवरण देना संभव नहीं है। किसी भी उत्सव या पार्टी में उनसे मिलना होता था। उनके स्वभाव की कई विशेषतायें निकट सम्पर्क से सामने आयी। वे एक अत्यन्त विश्वासपूर्ण मित्र थे। उनकी काम के प्रति अटूट लगन थी। किसी भी कार्य को करने में वे अपने को उस कार्य के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित कर देते थे। समय-समय पर उस कार्य के बारे में विचार-विमर्श कर वे दूसरों के दृष्टिकोण को महत्त्व देकर उसके बारे में अपना निश्चय बड़े सरल-भाव से व्यक्त करते थे। उनकी यह विशेषता मुझे तब पता लगी जब उनके द्वारा स्थापित फ्लोअर एण्ड फूड लि० की स्थापना के सिलसिले में मैं उनसे काफी दिनों तक इसके व्यावसायिक पक्ष पर विचारविमर्श करता रहा। इस कारखाने की स्थापना पर उन्होंने कितना श्रम किया था; वह वे ही लोग जान सकते हैं जो उनके निकट सम्पर्क में उस समय रहे। हर काम को बारीकी से लेने पर तथा आश्वस्त हो जाने पर ही वे विराम लेते थे।

उनको हर शाम मित्रों के साथ बैठने व सब विषयों पर बातचीत करने में बड़ा आनन्द प्राप्त होता था। इस समय श्रीमती गजेन्द्रसिंह जी (भाभी साहब) हमेशा साथ रहती। उनके साथ कई शाम हमने नन्दन वन के लान पर दरी बिछाकर बैठ कर बिताईं। उस समय उनके अन्तरंग मित्रों के अलावा और कोई नहीं होता था। सभी बैठकों का अन्त एक सहभोज के रूप में होता। उनको सबके साथ भोजन करने में बड़ा आनन्द आता था। उनके स्वभाव को देखते हुए मेरा ऐसा ख्याल है कि उन्होंने शायद अकेले भोजन कभी नहीं किया होगा। ज्योतिष पर बहस, जिसमें भाभी साहब काफी रुचि लेती है, भी कई बार लम्बे विवाद का विषय होता था। उनके स्वभाव का मानवीय पक्ष भी विलक्षण ही कहूँगा। एक बार की घटना याद आती है, जब एक शाम लान की बैठक के पश्चात् यह तय हुआ कि सब घूमने चलें। सब लोग देव गुराड़िया जाने को तैयार होकर वहाँ पहुँचे। इच्छा हुई कि पहाड़ पर चढाई करें। थोड़ी दूर तक

तो सव लोग साथ चढ़े उसके पश्चात् चढ़ाई अधिक होने के कारण सभी रुके, लेकिन मैं आगे बढ़कर काफी दूर तक जाकर पहाड़ के ऊपर पहुँचा। वहाँ से नीचे उतरते समय कुछ कठिनाई हुई लेकिन मैंने उन्हें हाथ हिलाकर अभिवदन किया। वे मुझे देख कर एकदम वैचेन हो उठे। वे समझे कि मैं उतरने मे कठिनाई महसूस कर रहा हूँ एव सहायता के लिये इशारा कर रहा हूँ। इसी समय उन्होंने एक साथी को दौडाया व बड़ी वेसब्री से मेरा इन्तजार करने लगे। जव मैं उतरकर आया तो सवालो की झड़ी लगा दी। इतना ही नही मेरे हाथ सहलाकर देखने लगे कि कहीं लगी तो नही ? हम समझे आप फिसल रहे हैं। उनकी वेसब्री उस समय देखने लायक थी।

एक और वात भी उनके जीवन मे, कि वे दिखावे के विलकुल पक्ष में नही थे। उन्हें कभी इस वात का एहसास नही था कि वे एक अत्यन्त सम्भ्रान्त व्यक्ति हैं तथा दूसरे उस स्तर के नही हैं। यहाँ तक कि वे उन्हे यह महसूस तक नही होने देते थे। दोस्तों में वरावरी का निर्वाह उनकी एक वड़ी विशेपता थी जो आजकल आमतौर पर लक्षित नहीं होती। दोस्ती मे स्तर कभी आड़े नहीं आता, उनके साथ रात के १२-१ वजना तो मित्र-मण्डली मे मामूली वात थी। संगीत में भी उनकी विशेप अभिरुचि थी। अभिनव कल समाज के प्रोग्रामों में अधिकतर हम साथ ही जाते और रात्रि के २-३ वजे लौटते। उसके पश्चात् कॉफी और फिर सभा विसर्जन। एक रोज तो प्रोग्राम इतना रोचक व लम्बा था कि सुवह ६ वजे लौटे (शायद अमजद खाँ का सरोद वादन था उस रोज) उस दिन उनका संगीत मे विभोर होना भी देखने लायक था।

विधाता का भी विधान अजीव है। हमे क्या पता था कि जिसके साथ हम इतनी घनिष्ठता रख रहे हैं वे हमें छोडकर एकदम चले जावेंगे। यह क्षति अव अपूरणीय है और शायद ही इस जीवन में हमे उनके जैसा अभिन्न मित्र व शुभेच्छु प्राप्त हो। हमारे जीवन मे यह क्षति हमेशा ही वनी रहेगी और उन्हे हम कभी भी नही भूल सकेंगे।

☆

भाई सा० गजेन्द्रसिंहजी : जैसा कि मैंने उन्हें जाना....

☐ हीरा बहन मेहता
सुस्मित फेब्रिक्स, इन्दौर

इन्दौर आये हुए हमे आज करीब ११-१२ साल होते आये हैं। जब आये थे, तब लगा था कि महानगरो की जिन्दगी के मुकाबले यहाँ की जिन्दगी कितनी शान्त है न दौड-धूप, न कोई हलचल-न भागमभाग। यहाँ धीमी गति से बहती जीवन की धारा है। भीड-भाड व्यस्तता के हम लोग आदी थे। शुरू मे लगा था कि कैसे मन लगेगा यहाँ ?

इस शहर के लिये हम अजनबी जरूर थे, पर था कुछ ऐसा यहाँ के लोगो मे कि जिससे हमे बड़े शहरों जैसा अजनबीपन नही महसूस हुआ। एक अपनापन मिला ऐसा लगा कि जैसे यहाँ बनावट नही है—न चेहरों मे, न व्यवहार मे।

आज जब उन बीते हुए दिनो पर नजर डालती हूँ तो कई चेहरे एक साथ सामने आते हैं—विश्वास भरे, अपनापन लिए मित्रता का वादा करने वाले चेहरे। उनमें से एक चेहरा सबसे अलग दिखाई देता है—सौम्य, मृदु, हंसमुख, निष्कपट चेहरा। और वह चेहरा है भाई साहब गजेन्द्रसिंहजी का।

बहुत से परिचितों की भीड़ मे कोई एक चेहरा ही क्यों साफ-साफ उभरता है ? दुनियाँ मे बहुतेरे ऐसे भी होते हैं जो एक साथ भाग्यवान भी होते है, सुशिक्षित भी और अभिजात भी। व्यक्तित्व का ऐसा संयोग किसी के भी मन मे अहंकार का कारण बन सकता है और दूसरों के लिये ईर्ष्या का। मगर भाई साहब के व्यक्तित्व मे वह विशेषता थी जो आमतौर पर कम ही देखने मे आती है। उन्हे जरा भी अहकार न था। दिखावा और झूठी शान तो जैसे उन्हे मालूम ही न थी। इतने सरल और मिलनसार। आश्चर्य होता है कि कैसे इस व्यक्ति को जरा भी अहकार नही था। छोटे-बडे सभी से वे बड़ी मिठास से बात करते थे।

इतने बड़े उद्योगपति, इतनी व्यस्तता पर मैंने कभी नही जाना कि उनके पास घर के लिये, घर वालो के लिये, बाल-बच्चों के लिये या मित्रो के लिये समय की कमी रही हो। उन्होंने कभी घर की उपेक्षा नही की। घर बाहर सब ओर उनकी बराबर नजर रहती थी। आए, गये लोगों के स्वागत-सत्कार मे वे कोई कमी नही होने देते थे।

अक्सर उनके यहाँ दावतें होती रहती थी। अक्सर हम लोग मिलकर पिकनिक पर जाते थे। वे भी जब हमारे यहाँ आते तो भोजन चाहे वैसे ही बनता था जैसा कि आमतौर पर बना करता है, पर वे थे कि तारीफ किये जाते थे। उन जैसे सुरुचि सम्पन्न, शौकीन व्यक्ति के सत्कार मे मेजबान को भी बेहद खुशी होती थी।

यो प्रोत्साहन देना, वढ़ावा देना, उनका स्वभाव था। यह उनकी शालीनता थी। किसी का हौसला वढाना, धीरज वँधाना, जिन्दगी में जरूरी होता है। तभी आगे वढ़ने की मुसीवतें झेलने की हिम्मत वढ़ती है।

मुश्किल के समय, दुख या चिन्ता मे तो यह और भी जरूरी होता है कि हमे सहारा मिले तो ऐसा जो मजवूत भी हो और कोमल भी। मेरे पूज्य श्वसुरजी का जव देहान्त हुआ तो मेहता साहव वहुत विचलित हो गये थे। वेटे के लिये पिता का निधन मानसिक आघात होता है। और मेहता साहव स्वभाव से ही भावुक और कोमल चित्त हैं। उनके लिये वह आघात गहरा था। लेकिन भाई गजेन्द्रसिहजी ने जो आश्वासन दिया धीरज वँधाया वह सचमुच एक भाई की तरह ही था।

पता नही उनमे वह कौन सी ऐसी वात थी, जो यह महसूस कराती थी कि इस व्यक्ति से किसी का कोई नुकसान नही हो सकता कोई दुख किसी को हो नही सकता, किसी को कोई चोट नही पहुँच सकती, यह किसी को सहसा गलत नही समझ सकता, जो हरदम सवके लिये खुला है, जिस तक आसानी से पहुँचा जा सकता है मन की, तकलीफ की, सुख-दुख की वात कही जा सकती है।

अपने वारे मे दूसरे के मन मे यह विश्वास पैदा करना क्या साधारण व्यक्ति का काम है? उन जैसा व्यक्तित्व, जो सारे मानवीय रिश्तो की सुन्दर मिसाल हो शायद ही कभी होता है और अगर होता भी है तो वह अपने तमाम मित्रों, स्नेहीजनो, परिवार वालो के लिये जीवन की चिरस्मरणीय निधि वन जाता है।

□

□ **श्रीमान रतनलालजी गंगवाल**
७ नसीया रोड, इन्दौर।

श्री गजेन्द्रसिहजी भाव प्रवण व्यक्ति थे। मेरे वे अनन्य मित्र थे। जव भी दो चार रोज का अवकाश होता तो वे वाहर जाने का प्रोग्राम वना लेते और हम लोग रवाना हो जाते।

एक वार जवकि फ्लोअर एण्ड फूड लिमिटेड की फैक्टरी का काम शुरू हुआ था तव वे काफी व्यस्त रहते थे। एक दिन मैं उनके कार्यालय गया और उनसे पूछा कि आप इन दिनो काफी व्यस्त रहते है तो उन्होने कहा कि हर काम की शुरूआत के लिये जोरदार तैयारी की ही जरूरत होती है। अगर इस समय मेहनत कर ली तो धीरे-धीरे काम कम होने लगता है और वाद मे जरूरत सिर्फ देख भाल की ही रह जाती है। जैसे इमारत वनाने के पूर्व प्रारम्भ मे मेहनत करके नीव को मजूवत वनाया जाता है तथा दीवाले वगेरे भी अच्छी वनाई जाती है ताकि इमारत सुन्दर और मज-वूत वने और वाद मे सिर्फ उसकी देखभाल करने की जरूरत रह जाय। वे अपने

धुन के पक्के थे। उन्होंने मेहनत करके फैक्टरी की इमारत सुन्दर और मजबूत वनाई तथा बहुत ही कम समय में फैक्टरी चालूकर उत्पादन प्रारम्भ कर दिया। यह फैक्टरी, मे देख रहा हूँ कि आज भी खूब ही चल रही है और अपने उत्पादन के लिये सम्पूर्ण देश मे अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

एक दिन मैंने उनसे कहा कि कुल्लु का दशहरा ससार प्रसिद्ध है अतः हमलोग इस बार दशहरा मनाने कुल्लु-मनाली चलेंगे। उन्होने तत्काल अपनी सहमति दे दी और हमने कुल्लु कार द्वारा जाने का प्रोग्राम वना लिया और निर्धारित दिनांक को हम कार द्वारा कुल्लु के लिये खाना हो गये। कुल्लु मे हमे होटल में जगह नहीं मिली। हम वहां से कटरादून जो कि कुल्लु और मनाली के बीच में पडता है, वहां गये और वहा के डाक वंगले मे रुके। रात को करीव एक-ढेड वजे उनकी तवीयत खराव हुई और जोर का दर्द उठा। कटरादून एक छोटा ग्राम है, वहा न तो अस्पताल है और न ही कोई डाक्टर। हमने कुल्लु अस्पताल मे फोन किया तो वहां भी कोई डाक्टर नही मिला। गजेन्द्रसिंहजी कहने लगे सब ठीक हो जायेगा आप फिकर न करें। इतना दर्द होने के वाद भी उन्होने हिम्मत नही हारी और न किसी को परेशान ही किया। मतलब यह कि विपत्ति मे भी वे घवराते नही थे। जब हम सब मनाली से दिल्ली के लिये रवाना हुए तब रास्ते मे हमारी कार का गियर खराव हो गया। इसकी भी उन्होंने कोई चिन्ता नही की और वोले कोई वात नही हम सब वस द्वारा दिल्ली चले जावेंगे और हम सब बस द्वारा दिल्ली आये। किसी भी विपत्ति का धैर्य पूर्वक सामना करते थे, कभी घवराते नही थे। हमेशा हंसमुख रहते और नोकर चाकरो का भी वडा ख्याल रखते थे। काम के वक्त फालतू वातों में ध्यान नही देते थे। वे अत्यन्त अनुशास प्रिय व्यक्ति थे। अपने कर्मचारियों के प्रति अपार स्नेह रखते थे और उन्हे अपने परिवार का ही सदस्य मानते थे। उनकी वजह से ही हम कुछ लोगो का एक ग्रुप वन गया था जो हर छुट्टी मे एकत्रित होता किन्तु उनके जाने के वाद अव सव कुछ खत्म हो गया है। वड़े ही मिलनसार व्यक्ति थे। हमने एक वहुत ही सहृदय व्यक्ति खो दिया जिसकी पूर्ति होना अव मुश्किल है। परमात्मा से प्रार्थना है कि दिवंगत आत्मा को शांति प्रदान करें।

□